# महाकवि भारवि एवं माघ



डॉ० राजदेव मिश्र
डॉ० शिवाकान्त शुक्ल

# महाकवि भारवि एवं माघ

लेखक

डॉ० शिवाकान्त शुक्ल

आमुख-लेखक

डॉ० राजदेव मिश्र

पूर्व कुलपति,

सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय,

वाराणसी

प्रकाशक

शारदा प्रकाशन

नियावाँ रोड, फैजाबाद

प्रकाशक :
शारदा प्रकाशन
आलोकपुरी (नयी कालोनी),
नियावाँ रोड, फैजाबाद
दूरभाष : २६४६

© प्रकाशकाधीन
प्रथम संस्करण १९९२ ई०
मूल्य : दो सौ पचीस रुपये

मुद्रक :
रवीन्द्रनाथ द्विवेदी
देववाणी प्रेस,
सी. ३०।३६-ए, बड़ी मलदहिया
वाराणसी-२२१००२

राजभवन,

राज्यपाल,                                                                 लखनऊ

उत्तर प्रदेश ।                                                           मई १०, १९९१

प्रिय डॉ० शिवाकान्त शुक्ल,

आपका पत्र दिनांक ६–५–१९९१ मिला ।

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि आपने संस्कृत विषय में 'महाकवि भारवि एवं माघ का तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध-प्रबन्ध लिखा और अवध विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्ति की और अब इस शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन हो रहा है। आपका यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय है। इससे संस्कृत जगत् को, विशेष रूप से छात्रगण को, बड़ा लाभ होगा । निस्सन्देह इसके लिये आप बधाई के पात्र हैं ।

शुभकामनाओं सहित,

आपका,

बी० सत्यनारायण रेड्डी

डॉ० शिवाकान्त शुक्ल

(शिक्षक)

राजकीय आदर्श विद्यालय, शिवगढ़,

रायबरेली, उ० प्र० ।

**डॉ० लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय**

शिक्षा निदेशक, बेसिक

उत्तर प्रदेश

लखनऊ, दिनांक

मई ३१, १९९१

मैंने डॉ० शिवाकान्त शुक्ल द्वारा लिखित "महाकवि भारवि एवं माघ" ग्रन्थ का अवलोकन किया। यह ग्रन्थ ११ अध्यायों में विभक्त है। इसमें महाकवि भारवि तथा माघ के काव्यों का महाकाव्यत्व, रस, अलंकार, भाषा आदि की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है। इसमें ज्ञान-विज्ञान की विपुल सम्पत्ति समाहित हैं। उस ज्ञान की उपलब्धि अध्येता के अध्यवसायपूर्ण चिन्तन एवं मनन पर निर्भर है। डॉ० शुक्ल ने संस्कृत साहित्य की उदात्त महाकाव्य-परम्परा के अन्तर्गत अलंकृत शैली के अन्यतम दो महाकवियों भारवि एवं माघ पर शोधपूर्ण कार्य प्रस्तुत किया है। जहाँ तक मेरी जानकारी है भारवि एवं माघ के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन विषयक कोई प्रामाणिक ग्रन्थ समुपलब्ध नहीं है। इस दृष्टि से लेखक का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

उक्त ग्रन्थ के अवलोकन से डॉ० शिवाकान्त शुक्ल का श्रम, साहित्यानुराग, चिन्तन एवं सुयोग्यता सुस्पष्ट होती है। उदीयमान युवा शिक्षक डॉ० शिवाकान्त शुक्ल अपने अध्ययन, चिन्तन एवं लेखन से देववाणी की सेवा में संलग्न रहते हुये उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर होते रहें, यही मेरी कामना है।

**डॉ० शिवाकान्त शुक्ल**
राजकीय आदर्श विद्यालय,
शिवगढ़, रायबरेली

**डॉ० लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय**
शिक्षा निदेशक, बेसिक
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

## आमुख

अपार काव्य-संसार का स्रष्टा कवि सर्वथा विलक्षण एवं निरुपम है—'अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।' यद्यपि लौकिक जगत् के स्रष्टा प्रजापति के साथ उसका औपम्य विधान किया जाता है, परन्तु वह (कवि) अलौकिक जगत् (काव्य) का रचयिता होने के कारण उससे ( प्रजापति से ) सर्वांशतः भिन्न ही नहीं, अपितु श्रेष्ठ भी है। प्रजापति किन्हीं निर्धारित नियमों के अन्तर्गत सृष्टि करने को बाध्य है। इसीलिये उसकी सृष्टि 'नियतिकृतनियम-सहिता' है। उसमें पद्म में ही सौरभविशेष (कमल के गन्ध) की सत्ता हो सकती है। उसकी सृष्टि अदृष्ट के सिद्धान्त पर आधारित है। उसमें मनुष्य पूर्वजन्मकृत कर्म या अदृष्ट के अनुसार ही, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक आदि प्राप्त करता है, परन्तु इसके विपरीत कवि की सृष्टि ( काव्य ) 'नियतिकृतनियमरहिता' है। लौकिक जगत् की भाँति उसमें 'यत्र-यत्र पद्मत्वं तत्र तत्र सौरभविशेषः' इस नियम के लिए कोई अवकाश नहीं। कवि यदि चाहे तो वह रमणी के मुख में कमल के गन्ध का, उसकी आँखों में कमल के सौन्दर्य का एवं उसके शरीर में कमल की कोमलता का सञ्चार करा सकता है। कविसृष्टि अदृष्ट आदि के नियम से परे है। वह अपने स्रष्टा कवि की कल्पना के अनुरूप ही स्वरूप धारण करती है। लौकिक सृष्टिभूत काव्य के स्वरूप-निर्धारण में कवि की इच्छा अथवा कल्पना का ही वर्चस्व है। वह जैसा चाहता है, उसकी सृष्टि वैसी बन जाती है—'यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते।' उसमें लौकिक जगत् की भाँति स्वर्ग-प्राप्ति के लिये दिव्य शरीर धारण करना आवश्यक नहीं। उसकी प्राप्ति तो इसी देह से करायी जा सकती है—

**'स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनी।'**

प्रजापति की सृष्टि, सत्त्व, रजः तथा तमः इन तीनों गुणों से युक्त होने के कारण, त्रिगुणात्मिका है, अत एव वह 'सुखदुःखमोहस्वभावा' है। पर काव्य-सृष्टि 'ह्लादैकमयी' है, वह केवल सुखमयी है। उसमें दुःख एवं मोह के लिए कोई स्थान नहीं। उसमें करुण, वीभत्स आदि जैसे रसों में भी आह्लाद ही आह्लाद है। काव्य का सेवी सहृदय काव्य-चिन्तन या नाट्यदर्शन से एक अपूर्व आनन्द के सागर में निमज्जित हो जाता है।

ब्रह्मा की सृष्टि 'अनन्यपरतन्त्रा' है अर्थात् उपादान (समवायि), असमवायि तथा निमित्त आदि कारणों से नियन्त्रित है। उन कारणों के बिना वह अस्तित्व में ही नहीं आ सकती। पर कवि-सृष्टि से उक्त कारणों का कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी अधीनता अथवा नियमन का कोई प्रश्न ही नहीं। वह तो मात्र कवि-प्रतिभा से जनित है। प्रतिभा ही काव्य-सृष्टि का बीजभूत है। उसके विना काव्य सृष्टि सम्भव नहीं; यदि 'हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता' (कवि) के द्वारा उसका निर्माण हो भी जाय तो वह सहृदय के हृदय का आह्लाद करने के बजाय, हास्य का ही आलम्बन विभाव बनेगी।

प्रजापति की सृष्टि में मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त ये छः रस हैं, जिनसे युक्त भोज्य का भोक्ता भोग करता है। उन छः रसों में सब रस सबको प्रिय नहीं हो सकते। किसी का कोई रस विशेष प्रिय है तो कोई अप्रिय ! पर कविसृष्टि में छः के स्थान में शृङ्गार, वीर, करुण आदि नौ रस हैं और सभी के सभी आनन्द के स्रोत हैं। इसीलिये वह ( काव्यसृष्टि ) नवरस-रुचिरा है। उसमें सभी रस प्रिय एवं वरेण्य हैं।

मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश के प्रारम्भ में ही, कवि वाङ्निर्मिति ( कवि-सृष्टि ) का प्रजापति की सृष्टि के साथ तुलनात्मक बिवेचन करते हुये, उसके उत्कर्ष के प्रख्यापन द्वारा उसका जयकार किया है—

**नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।**
**नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥**

इस प्रकार की अलौकिक सृष्टि का रचयिता कवि मनीषी, परिभू, स्वयम्भू आदि अनेक अभिधानों से लोकविख्यात है—'कविर्मनीषी, परिभूः, स्वयम्भूः।'

कवि में समस्त चर-अचर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व के दर्शन की क्षमता है, फिर अपने दर्शन के वर्णन करने का उसमें अपूर्व सामर्थ्य है। वह अपने प्रातिभ चक्षु से चराचर जगत् के बाह्याभ्यन्तरीय तत्त्व के दर्शन (अनुभूति) कर लेता है और फिर अपनी वर्णना-चातुरी से (अनुभूति की) वर्णना करता है। उसे कवि की पदवी इसीलिये मिली है कि उसमें दर्शन एवं वर्णन दोनों का मणिकाञ्चन योग है—

**'दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ लोके रूढा कविश्रुतिः।'**

दर्शन (अनुभूति) एवं वर्णन (अभिव्यक्ति) दोनों अन्योन्याश्रित हैं और दोनों का योग होने पर ही काव्य-सृष्टि होती है। दर्शन (अनुभूति) से धनाढ्य होने

पर भी, मनुष्य कवि के वरेण्य पद पर तब तक प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, जब तक वह अपने दर्शन का वर्णन नहीं कर पाता। अपने चिर सहयोगी के वियोग से व्यथित क्रौञ्ची की वेदना से वाल्मीकि के हृदय में एक अपूर्व शोक की अनुभूति हुई। वह शोक जब उनकी वर्णना के माध्यम से झटिति श्लोक बन गया—'शोकः श्लोकत्वमागतः'—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

तब वह (वाल्मीकि) लोक में 'कवि' के अभिधान से विभूषित हो गये और उनका वह श्लोक 'कविता' बन गया। इस प्रकार भारत में काव्य-सृष्टि की परम्परा का श्रीगणेश हो गया।

काव्य-सृष्टि परम्परा के साथ ही धीरे-धीरे काव्यालोचन की भी परम्परा ने जन्म लिया। एक ओर जहाँ मनीषी कवियों ने अपनी रचनाओं से संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध किया, वहीं दूसरी ओर उसके आलोचकों अर्थात् अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने, उसे महनीय बनाया। कवियों की काव्यसृष्टि ने अनेक विधाओं में अपने स्वरूप का विस्तार किया और आचार्यों के अलङ्कारीय ग्रन्थों ने संस्कृत-वाङ्मय में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया। फलतः काव्य एवं काव्यशास्त्र दोनों के द्वारा संस्कृत-वाङ्मय का भावात्मक (काव्यात्मक) जगत् महनीय बन गया। अलङ्कारशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के स्वरूप, उसके हेतु, प्रयोजन, अलङ्कार, गुण, रस, दोष आदि का गहन चिन्तन तथा मनन किया। काव्य के अन्य पक्षों की भाँति आचार्यों की दृष्टि उसकी विविधता (भेद) पर भी गयी। फलतः उन्होंने काव्य के स्वरूप-वैविध्य को भी अपने चिन्तन का विषय बनाया और काव्य का वर्गीकरण के लिये आकार, बन्ध, भाषा, अर्थ-रमणीयता, इन्द्रियग्राह्यता तथा वस्तु आदि को आधार बनाया गया। बन्ध के आधार पर दण्डी आदि आचार्यों ने काव्य के जितने भेदों का वर्णन किया उनमें सर्गबन्ध महाकाव्य (सर्गबन्धो महाकाव्यम्) मुख्य है।

जहाँ तक संस्कृत-साहित्य में महाकाव्य की परम्परा का प्रश्न है, वह नितान्त प्राचीन एवं समृद्ध है। आदिकवि का रामायण, महाकाव्य का चूडान्त निदर्शन है। उन्होंने रामायण के द्वारा जिस महाकाव्य-परम्परा का श्रीगणेश किया, वह क्रमशः गतिशील होती गयी और आज भी अग्रसर है। वाल्मीकि

के पश्चात् कालिदास, अश्वघोष भारवि, माघ, श्रीहर्ष, कुमारदास आदि महाकवियों ने, अनेक महाकाव्यों की रचना करके, महाकाव्य परम्परा को जीवित ही नहीं रखा, अपितु उसे गौरवमण्डित भी किया।

वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य में जिस पद्धति को अपनाया है, वह रसमयी है। उसका मुख्य लक्ष्य रस है। काव्यशास्त्रियों ने काव्य के जितने प्रयोजनों का विश्लेषण, मनन एवं चिन्तन किया है उनमें रस मूर्धन्य है। वह काव्य के समस्त प्रयोजनों में सिरमौर ( सकलप्रयोजनमौलिभूत ) है। उसके कारण ही काव्य का काव्यत्व है। शब्द-अर्थ काव्य के शरीर हैं और रस उसका आत्मा। इसी आत्मभूत रस की सृष्टि करने के कारण ही रससिद्ध कवीश्वर अपने यशःशरीर से अनन्तकाल तक जीवित रहते हैं, उनके यशःशरीर में जरा एवं मरण का भय नहीं रहता—

**जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।**
**नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥**

वाल्मीकि द्वारा सहजतः प्रचालित काव्य की रसमयी पद्धति में रस प्रधान स्थान पर प्रतिष्ठित है। उसमें अलङ्कार, सुष्ठु पदावली, गुण आदि का यथोचित स्वाभाविक निवेश है। उसमें पदे-पदे अनुपम स्वाभाविकता एवं सरलता विराजमान है। वाल्मीकि की उक्त रसमयी पद्धति अथवा सुकुमार मार्ग को महाकवि कालिदास ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। कालिदास के परवर्ती अश्वघोष ने रसमयी पद्धति को यथासम्भव सम्मान दिया। कालिदास के काव्यों का चिन्तन करने पर उक्त तथ्य की यथार्थता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

महाकाव्य की परम्परा तथा विकासक्रम के इतिहास का अवलोकन करने से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि उसमें आदिकवि वाल्मीकि ने जिस रसमयी पद्धति को जन्म दिया और महाकवि कालिदास ने जिसे विकास पथ की मंजिल तक पहुँचाया वह (रसमयी पद्धति) आगे चलकर अक्षुण्ण न रह सकी। महाकाव्य की परम्परा में महाकवि भारवि का प्रादुर्भाव एक अविस्मरणीय प्रकरण बना। उन्होंने उस महाकाव्यपरम्परा में एक नयी पद्धति को जन्म दिया, जिसे आचार्य कुन्तक के शब्दों में 'विचित्रमार्ग' कहते हैं। उस विचित्र मार्ग को अलङ्कृत मार्ग भी कहा जाता है। उसमें रस प्रधान न होकर अलङ्कार प्रधान हो गया तथा वर्ण्य विषय मुख्य न होकर वर्णन विषय मुख्य

हो गया। इस पद्धति की काव्य-यात्रा में भारवि के परवर्ती माघ, श्रीहर्ष आदि कवि भी सम्मिलित हुये।

उक्त दोनों पद्धतियों का विवेचन करने से यह तथ्य अनायास प्रकाशित हो जाता है कि रस-सिद्ध शैली में रस का एक सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। उसमें कवि का समस्त सारस्वत अध्यवसाय उसी केन्द्र बिन्दु पर अवलम्बित होता है। कवि की दृष्टि रसपरक होती है और उसकी दृष्टि में अलङ्कार आदि उसी के पोषक होते हैं। पर अलङ्कृत मार्ग में वह (रस) उस स्थान का भागी नहीं है।

रससिद्धमार्ग में अलङ्कार प्रयोग में एक स्वाभाविकता होती है और वह रस सर्जना में सहजतः सहायक होता है तथा वर्ण्य को सौन्दर्यमय बनाने में समर्थ होता है, पर अलङ्कृतमार्ग में अलङ्कारों के प्रयोग में इतनी कृत्रिमता होती है कि वे प्रतिपाद्य का सौन्दर्यवर्धन उतना नहीं कर पाते, जो अपेक्षित होता है। वे मात्र अपना प्रदर्शन करते हैं। अलङ्कारमार्ग की यह कृत्रिमता अलङ्कारों को किसी सर्राफ की दूकान का आभूषण बना देती है, जो दूकानों में निवास करते हुये, आभूषण लोलुप ग्राहकों को प्रलुब्ध करते रहते हैं, पर सौन्दर्यवर्धन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अथवा जो आभूषणलोलुपा रमणी के शारीरिक अङ्गों में सर्वथा कृत्रिम ढंग से संलग्न होकर मात्र रमणी की अलङ्कारप्रियता का प्रदर्शन कराते हुये, उसकी शोभा बढ़ाना तो दूर, उसे हास्यास्पद ही बना देते हैं। अलङ्कार्य की सर्वथा उपेक्षाकर, अलङ्कारों को ही सर्वस्व मानने वाली यह ( अलङ्कृत पद्धति ) भला सहृदय के हृदय का आह्लाद कैसे कर सकती है ?

रससिद्ध मार्ग के काव्य में भाषा में प्रसादमयता तथा सरलता होती है। उसमें एक ऐसा प्रवाह होता है जो प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने में सहायक होता है। सरल तथा प्रसादमयी भाषा के माध्यम से काव्य-पाठक सहज भाव से बोध्य का बोधन कर लेता है।

रससिद्ध मार्ग में कवियों की दृष्टि विषय-विस्तार तथा उसकी व्यापकता पर रहती है। रघुवंश इस तथ्य का निदर्शन है। जहाँ १९ सर्गों में, रघुवंशीय राजा दिलीप से लेकर, अग्निवर्ण तक अनेक राजाओं से सम्बद्ध कथानक काव्यात्मक ढंग से गुम्फित है। रससिद्ध मार्ग में विषय-विस्तार की भाँति प्राकृतिक वर्णन को स्थान प्राप्त नहीं था परन्तु अलङ्कृत मार्ग में विषय-विस्तार

का स्थान वर्णन विस्तार ने ले लिया। स्वल्पातिस्वल्प कथावस्तु को लेकर कवियों ने, उसका वर्णन विस्तार कर अपने महाकाव्य बना डाले। यही नहीं, इस मार्ग में प्राकृतिक वर्णन को भी इतना महत्त्व दिया गया कि उसके समक्ष महाकाव्य की मुख्य कथावस्तु की उतनी प्रधानता नहीं रह पायी, जितनी अपेक्षित थी। वर्णन-विस्तार तथा प्राकृतिक वर्णन के निदर्शन के रूप में महाकवि भारवि तथा माघ आदि के काव्यों को लिया जा सकता है।

इस प्रकार संस्कृत में भारवि द्वारा प्रचालित अलङ्कृत मार्ग, रस-सिद्ध मार्ग का बाधक बनकर गतिशील हुआ। अलङ्कृत मार्ग के भारवि और माघ तो ऐसे कवि-युगल हैं, जो सहृदय के मानस-पटल पर एक साथ ही बिम्बित हो हो जाते हैं। एक का नाम ग्रहण करते ही दूसरे का स्मरण अनायास ही हो जाता है। इस मार्ग में कवित्रयी—भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष मूर्धन्य स्थान के भागी हैं, जिस प्रकार रससिद्ध अथवा सुकुमार मार्ग में वाल्मीकि, कालिदास एवम् अश्वघोष प्रतिष्ठित हैं। भारवि और माघ दोनों की कृतियों का सूक्ष्म अध्ययन करने से दोनों के साम्य तथा वैषम्य का बोध सुगमता से हो जाता है। दोनों की समता के मूल में यत्र कुत्रचित् संयोग की भूमिका है पर उनकी समता का अधिकांशतः मूल कारण दोनों का एक ही काव्य पथ का पथिक होना है। अलङ्कृत मार्ग की किन्हीं विशेषताओं की चर्चा ऊपर की जा चुकी है, जो स्वल्पाधिक मात्रा में, इस मार्ग के सभी कवियों में दृष्टिगोचर होती है। जहाँ तक दोनों के वैषम्य का प्रश्न है, उसके मूल में दोनों की निजी विशेषतायें हैं।

भारवि और माघ दोनों मात्र एक-एक महाकाव्य के रचयिता हैं। भारवि की एकमात्र रचना किरातार्जुनीय तथा माघ की शिशुपालवध है। दोनों महाकाव्यों की कथावस्तु क्रमशः महाभारत के वनपर्व तथा सभापर्व से ली गयी है। दोनों ने अपने महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्री' शब्द से किया है। दोनों के मङ्गलाचरण में वस्तुनिर्देश है। दोनों महाकाव्यों के प्रथम सर्ग में सन्देश-कथन विराजमान है। किरात में वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को तथा शिशुपाल में नारद द्वारा श्रीकृष्ण को सन्देश दिया गया है। दोनों के द्वितीय सर्ग में राजनीति विषयक वार्तालाप है। किरात में युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी तथा शिशुपाल में श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव मन्त्रणा में भाग लेते हैं।

किरात में वेदव्यास की तथा शिशुपाल में महर्षि नारद की उपस्थिति में समानता है। दोनों क्रमशः पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण को प्रेरणा देते हैं।

अलङ्कृत मार्ग में वर्णन-विस्तार की प्रधानता होती है। उसके अनुरूप किरात तथा शिशुपाल दोनों में वस्तु-वर्णन का विस्तार दृष्टिगोचर होता है। किरात तथा शिशुपाल दोनों महाकाव्यों का इतिवृत्त अति स्वल्प है पर छोटे से कथानक को लेकर भारवि ने १८ सर्गों का तथा माघ ने २० सर्गों का अपना विशालकाय महाकाव्य बना डाला। शिशुपालवध की कथावस्तु तो किरात से भी छोटी है पर माघ ने कृत्रिमता तथा कलावादिता के सहारे उसे २० सर्गों का कलेवर प्रदान कर दिया।

किरात में ऋषि (वेदव्यास), हिमालय, कैलास, इन्द्रकील आदि पर्वतों, अप्सराओं का इन्द्रकील पर प्रस्थान, वनविहार, जलक्रीडा, सन्ध्या, पानगोष्ठी, ऋतु तथा दूत-सम्प्रेषण आदि का आलङ्कारिक वर्णन है। इसी प्रकार शिशु-पाल में ऋषि (नारद), रैवतक पर्वत, ऋतुओं, वनविहार, जलक्रीडा, पान-गोष्ठी, सन्ध्या, प्रभात, युधिष्ठिर-सभा तथा राजसूय यज्ञ का अलङ्कृत वर्णन है। दोनों महाकाव्यों के वस्तु वर्णनों में प्रायः साम्य है। इस बिन्दु को दृष्टिगत कर यह कहा जा सकता है कि इस सन्दर्भ में माघ, भारवि से निस्सन्देह प्रभावित हैं। पर यहाँ यह ध्येय है कि माघ का रैवतक पर्वत वर्णन तथा प्रभात वर्णन संस्कृत महाकाव्य जगत् की वस्तु वर्णन परम्परा में बेजोड़ है। रैवतक ही ऐसा पर्वत है जिसका वर्णन माघ के अतिरिक्त प्रायः अन्य कवियों ने नहीं किया है। माघ के रैवतक पर्वत का वर्णन तो इतना भव्य तथा हृदयहारी है कि उसी के माध्यम से माघ की 'क्षणे क्षणे यन्नवतानुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' सौन्दर्यविषयिणी उक्त मान्यता का उद्घाटन हुआ है, जो सदियों से सहृदय के हृदय का कण्ठहार बनी हुयी है। यहीं नहीं, विशाल एवं नीलगगन में एक छोर पर सूर्य के गोले के नीचे जाने तथा दूसरे छोर पर चन्द्र गोले के उदीयमान होने के दृश्य का चारु तथा चित्तहारी औपम्य विधान, विशाल हाथी के दोनों ओर लटकने वाले घण्टाओं से करने के कारण, वे 'घण्टामाघ' इस पदवी से उसी प्रकार विभूषित हुये, जिस प्रकार स्वयंवर भूमि में गतिशील इन्दुमती का औपम्य, सञ्चारिणी दीपशिखा से करने के कारण, महाकवि कालिदास 'दीपशिखा' की लोकविश्रुत पदवी से अलङ्कृत हुये।

किरात तथा शिशुपाल दोनों में पाण्डवों की उपस्थिति है, पर अन्तर यह है कि किरात में पाण्डव वनवासी हैं जबकि शिशुपाल में शासनारूढ़। किरात

के नायक अर्जुन तथा माघ के नायक श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रभावोत्पादकता के साथ चित्रित हैं। जहाँ तक नारी पात्र का प्रश्न है, माघ में कोई नारी पात्र नहीं है। किरात में एक मात्र द्रौपदी नारी पात्र के रूप में उपस्थित की गयी है जिसके रूप आदि के वर्णन में रुचि न दिखाकर, कवि ने ओजस्विता तथा कौरवों के प्रति प्रतिशोध-मूलक भावों से मण्डित उसके भव्य स्वरूप को उपस्थित किया है जो काव्य पाठकों को अनुभावित एवं प्रभावित कर देता है।

दोनों महाकाव्यों में नायकों के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन जिस प्रकार श्लाघ्य तथा चारु है, उसी प्रकार उनके शौर्यादि आन्तरिक गुणों का चित्रण भी प्रभावोत्पादक है। अर्जुन में शूरता, स्वाभिमान, पौरुष, वाक्पटुता, प्रतिज्ञा-पालन आदि मानवीय गुण विद्यमान हैं। जबकि दैवी पुरुष होने के कारण श्रीकृष्ण में अद्भुत सौन्दर्य तथा आकर्षक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। उनमें विनम्रता, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा आदि महनीय गुण विद्यमान हैं। दोनों के चरित्र-चित्रण में अन्तर यह है कि अर्थगौरव के उपासक भारवि जहाँ पात्रों के संक्षिप्त किन्तु प्रभावमय वर्णन के उपासक हैं वहीं माघ विस्तृत (साङ्गोपाङ्ग) तथा आकर्षक वर्णन के पक्षधर हैं। कृष्ण में मधुरभाषिता के साथ अनुपम वाक्पटुता है। वे एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति पाठकों के सामने उपस्थित होते हैं जबकि अर्जुन में इस स्वरूप का अभाव है।

दोनों महाकवियों ने महाकाव्य के प्रमुख तत्त्व रस के चित्रण में अपनी रुचि दिखायी है। दोनों महाकाव्यों का अङ्गीरस वीर है। दोनों में वीर रस का चित्रण महाकाव्यगतलक्षण-सम्मत तथा प्रशंसनीय है। दोनों में रणप्राङ्गण में युद्ध वीर रस के निवेश का प्राधान्य है, पर अन्तर यह है कि शिशुपाल में दानवीर तथा दयावीर रस की भी छटा विद्यमान है, जबकि किरात में उसका अभाव है।

दोनों महाकाव्यों में अङ्गीरस के साथ श्रृङ्गार, रौद्र, भयानक आदि अङ्ग रसों का भी सम्यक् संयोजन हुआ है। उनमें भी श्रृङ्गार को प्रमुखता प्राप्त है। किरात में सम्भोग श्रृङ्गार का अति चारु-चित्रण है। उसमें रति के आलम्बन के रूप में, अप्सराओं आदि का तथा उद्दीपन रूप में ऋतुओं, सन्ध्या, पर्वत तथा चन्द्रोदय आदि का सम्यक् स्फुटन है। किरात के आठवें, नवें तथा दसवें सर्ग में श्रृङ्गार का निवेश है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है

कि भारवि की अपेक्षा माघ में श्रृङ्गारप्रियता अधिक दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने तो युद्ध के प्रसंग में भी श्रृङ्गार का दामन नहीं छोड़ा है। शिशुपाल के वीर रस के चित्रण-प्रसङ्ग में असम्बद्ध श्रृङ्गार की क्रीडाओं का चित्रण, वह भी पूरे छः सर्गों में, कहाँ तक सङ्गत है ? अङ्गी रस वीर पर अङ्गरस श्रृङ्गार का यह आधिपत्य बेहद खटकता है।

यद्यपि भारवि तथा माघ वीर तथा श्रृङ्गार दोनों के कुशल चित्रकार हैं। अपने-अपने काव्य में, महाकाव्य लक्षणगत परिपाटी का परिपालन करते हुये दोनों ने रस को स्थान दिया है और इस दृष्टि से उनकी सरसता पर उंगली नहीं उठायी जा सकती। पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उन्हें रससिद्ध अथवा सुकुमार मार्ग का कवि नहीं माना जा सकता, क्योंकि उस मार्ग के खेमे में किसी कवि को निविष्ट करने के लिये जिन बातों की अपेक्षा होती है उनका उनमें अभाव है। रससिद्ध मार्ग के कालिदास द्वारा वर्णित श्रृङ्गार तथा अलंकृत मार्ग के कविद्वय (भारवि तथा माघ) समेत अन्य कवियों के द्वारा वर्णित श्रृङ्गार रस के प्रसंगों को केन्द्रित कर, अध्ययन करने पर, दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। अलंकृत शैली के कवियों का श्रृङ्गार-वर्णन वासना एवं उत्तेजना का वर्धन तो कर सकता है, पर वह सहृदय के हृदय में काव्यानुरूप सरसता का संचार नहीं कर सकता।

भारवि तथा माघ दोनों कलावादी तथा अलङ्कारप्रिय कवि हैं। कलावादिता तथा अलङ्कारप्रियता ही उनकी विशेषता है। कविता-कामिनी को नानाविध अलङ्कारों से सजाने में उन दोनों की दृष्टि रमी है। उन दोनों कवियों ने अपने काव्य में अलङ्कारों के प्रति अपना अनुराग दिखलाया है। पर यमक, श्लेष तथा चित्रबन्ध आदि शब्दालङ्कारों तथा उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि अर्थालङ्कारों के प्रति उनका अधिक आकर्षण है। किरात के चतुर्थ तथा पञ्चम सर्ग में हिमालय तथा ऋतुओं के वर्णन में यमक की चारु छटा दर्शनीय है। इसी प्रकार शिशुपाल के चतुर्थ तथा षष्ठ सर्ग में रैवतक पर्वत तथा ऋतुओं के चित्रण में यमक की कमनीयता द्रष्टव्य है। भारवि की अपेक्षा माघ ने यमक का प्रयोग प्रचुरता से किया है। शिशुपाल के वसन्तवर्णन से सम्बद्ध 'नवपलाशपलाशवनं, इत्यादि श्लोकों में यमक की छटा नितान्त मनोरम तथा हृद्य है। दोनों कवियों ने श्लेष का प्रयोग भी किया है। यह बात दूसरी है कि श्लेष का स्वतन्त्र प्रयोग न होकर किसी न किसी अर्थालङ्कार के साथ हुआ

है। अनुप्रास की छटा भी उभयत्र प्राप्त होती है। भारवि तथा माघ दोनों ने चित्रालङ्कार के प्रति अपने व्यामोह को प्रदर्शित किया है। किरात तथा शिशुपाल दोनों में चित्रालङ्कार के दर्शन होते हैं। जिनमें अनुप्रास का भी चारु निदर्शन है। पर ऐसे स्थलों में बोद्धव्य विषय दुरूह हो गया है जो काव्यकला की दृष्टि से अनपेक्षित ही नहीं, आपत्तिजनक भी है। शिशुपाल में अनुप्रास का प्रयोग बहुलता से हुआ है। भारवि की अपेक्षा माघ में शब्दालङ्कार के प्रति अधिक व्यामोह दिखायी देता है।

दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं में अर्थालङ्कारों को सम्यक् स्थान दिया है। दोनों ने उपमालङ्कार को महनीय तथा प्रचुर स्थान देकर उसे सम्मानित किया है। पर इस अलङ्कार के प्रयोग में भारवि की अपेक्षा माघ अधिक सिद्धहस्त हैं। माघ की उपमाओं का क्षेत्र व्यापक है तथा वे प्रकृति, शास्त्र, लोक तथा अन्तःकथाओं आदि से सम्बद्ध हैं। उनमें भारवि की अपेक्षा पाण्डित्य का अधिक प्रदर्शन है।

भारवि द्वारा प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास के चित्र स्पृहणीय हैं। किरात में एक से एक अर्थान्तरन्यास के चित्र सहृदय के हृदय का आह्लादन करते हैं। उक्त अलङ्कार के प्रयोग में भारवि सिद्धहस्त हैं। उनके अर्थान्तरन्यासों में सजीवता तथा स्वाभाविकता के साथ विद्वत्ता भी दृष्टिगोचर होती है। भारवि के अर्थ-गौरव का बहुत कुछ सम्बन्ध अर्थान्तरन्यास से ही है। निस्सन्देह अर्थालङ्कार के प्रयोग में भारवि को सफलता मिली है। शिशुपाल में भी अर्थान्तरन्यास का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अर्थान्तरन्यास के कारण भारवि तथा माघ दोनों की रचनाओं में अनेकानेक सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में सञ्जीवनी का कार्य करती हैं।

उक्त अलङ्कारों के साथ ही दोनों कवियों ने उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, निदर्शना आदि अर्थालङ्कारों का भी प्रयोग किया है, जो उनके अलंकारानुराग का प्रख्यापन करता है। भारवि यदि अलंकृत शैली के उद्‌भावक हैं, तो माघ उसके पूरक। यद्यपि दोनों अलंकारप्रिय कवि हैं पर भारवि सर्वांशतः अलंकारवादिता के पोषक नहीं है। भारवि के अलंकारों में लौकिक अनुभव अनुस्यूत हैं, जबकि माघ में कल्पना तथा पौराणिक आख्यानों का प्राधान्य है। दोनों महाकाव्यों में चित्रबन्ध के प्रयोग में जो एकाक्षर, द्वयक्षर आदि श्लोकों का प्रयोग हुआ है, उससे सहृदय पाठकों के मन में एक अजीब उद्वेलना होती है। यही कारण है

कि वे (पाठक) इन रचनाओं से काव्यानन्द की उतनी अनुभूति नहीं कर पाते, जो उन्हें वाल्मीकि-कालिदास आदि की रचनाओं के अध्ययन से होती हैं।

अलंकृतमार्ग की एक विशेषता कठिन तथा कृत्रिम भाषा का प्रयोग भी है। वह भारवि तथा माघ दोनों में दिखायी देती है। यद्यपि भारवि ने इस बात का प्रयास किया है कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द भावबोधन में कोई कठिनाई उपस्थित न करें, पर उनके महाकाव्य की भाषा कठिनता तथा कृत्रिमता से बच नहीं पायी है। भाषा काव्याभिव्यक्ति का साधन है। भावों को प्रभावशाली बनाने के लिये भाषा का तदनुकूल होना नितरां वांछनीय है। इस तथ्य को दृष्टिगत कर दोनों महाकवियों ने अपने काव्यों में भावानुकूल भाषा का प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। भारवि अर्थगौरव के पक्षपाती हैं। अतः उन्होंने इस बात का यथाशक्ति प्रयास किया है कि ऐसी शब्दावली का प्रयोग हो जिससे अधिक से अधिक अर्थ की सम्यग् अभिव्यक्ति हो सके। एतदर्थ उन्होंने अपने काव्य में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है जो अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति करने में समर्थ है। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण भारवि को अपने लक्ष्य की सिद्धि में सफलता भी मिली है। उनकी शब्द-प्रयोग-कुशलता प्रशंस्य है। उनके महाकाव्य में यत्र-तत्र शब्दों द्वारा उपस्थापित नाद व्यञ्जना भी ध्यातव्य है। वस्तुतः भारवि सुश्लिष्ट पद विन्यास के महाकवि हैं, उनके काव्य में कालिदास जैसी प्रसादमयी पदावली का प्रयोग नहीं है परन्तु अर्थगौरव मण्डित पदों का विन्यास तो हुआ ही है।

माघ ने अपने महाकाव्य में पात्रों के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग किया है। उन्होंने प्रतिपाद्य के अनुरूप पद-प्रयोग में अतिशय निपुणता दिखायी है। माघ ने क्लिष्ट तथा नवीन शब्दों का आश्रय अधिक लिया है। उनका शब्द भण्डार इतना विशाल है कि वे नये-नये शब्दों का प्रयोग सहजता के साथ कर लेते हैं। नवीन शब्दों की रचना में माघ का व्याकरण-पाण्डित्य भी सहायक है। 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'—यह उक्ति उनके विषय में चरितार्थ है। शिशुपाल में उन्होंने हजारों नवीन शब्दों का प्रयोग किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। नवीन पदावली का प्रयोग कवि की निजी विशेषता है। नवीन शब्दों के प्रयोग के प्रति माघ का इतना व्यामोह है कि उन्होंने अनेक नये शब्दों की रचना कर डाली है और अप्रचलित शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

माघ ने शिशुपाल में अकेले कृष्ण के लिये लगभग ७५ पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है।

माघ ने अपने विविध शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिये भी शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसी स्थिति में अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ उनके काव्य में, क्लिष्ट पदावली का भी प्रयोग हो गया है। भारवि के शब्द-प्रयोग में माघ जैसा वैविध्य एवं नवीनता नहीं है। अर्थगौरवपरक दृष्टि होने के कारण उनकी भाषा यत्र तत्र क्लिष्ट हो गयी है।

इस सम्बन्ध में माघ की एक विशेषता का उल्लेख कर देना आवश्यक है और वह है उनके काव्य का पदलालित्य। यद्यपि भारवि के काव्य में भी श्रुति मधुर पदावली का प्रयोग किया गया है, पर ललित पदों के प्रयोग में वे माघ की समता नहीं कर सकते। माघ ने अपने महाकाव्य में किन्हीं वर्णनीय स्थानों में ऐसी ललित पदावली का प्रयोग किया है, जिसमें सौकुमार्य, माधुर्य तथा संगीतात्मकता है। दोनों महाकवियों की भाषा में अनेक विषमतायें भी विद्यमान हैं। भारवि यत्र तत्र ही ललित पदावली का प्रयोग करते हैं जबकि माघ उसका सहज भाव से प्रयोग करते हैं। भारवि की भाषा में दीर्घ समासों की स्वल्पता है, पर माघ में समस्त पदावली का प्राचुर्य है।

वर्ण्य विषय के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग भारवि की उल्लेखनीय विशेषता है। वे कोमल भावों के प्रसङ्ग में कोमल तथा कठोर-भावों के सन्दर्भ में कठोर शब्दावली का प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से उनकी शैली को वैदर्भी के निकट माना जा सकता है। यद्यपि उन्होंने अपने काव्य में कहीं-कहीं क्लिष्ट पदावली का भी प्रयोग किया है और अलङ्कार-व्यामोह के कारण एकाक्षर श्लोक आदि की भी रचना की है, पर वह स्वल्प है। माघ में भी वर्ण्य के अनुरूप पद-प्रयोग के दर्शन होते हैं और उनके काव्य का पदलालित्य मनोरम तथा आकर्षक है, परन्तु उनमें अलङ्कारों तथा समास बहुल पदावली के प्रति इतना आग्रह है कि उसके कारण उनका काव्य क्लिष्ट हो गया है। इस दृष्टि से उनकी शैली वैदर्भी से दूर हो गयी हैं। उन्हें गौडी रीति का कवि कहने में कोई अनौचित्य नहीं है। इतना अवश्य है कि उनकी शैली गौडी होते हुये भी आकर्षक है। पर माघ का दुर्भाग्य यह है कि वे अनुपम पद-विन्यास एवं शैली के अधिपति होते हुये भी कालिदास के समान यशोभागी नहीं हो सके।

माघ कलावादी श्रेणी के कवि हैं। वे सहज कवित्वप्रतिभा के धनी हैं, पर कविरूढिता की परवशता के कारण उनका भाव पक्ष, मौलिक होते हुये भी, आक्रान्त हो गया है। पाण्डित्य प्रदर्शन और कला प्रदर्शन के मोह से ग्रस्त होने के कारण उनकी मौलिक काव्य प्रतिभा का वास्तविक निखार नहीं हो सका है।

भारवि और माघ दोनों में अगाध पाण्डित्य है और दोनों में सांसारिक अनुभव कूट कूट कर भरा है। जहाँ तक राजनीतिक पाण्डित्य का प्रश्न है, उसमें भारवि तथा माघ के पाण्डित्य में अन्तर है। किरात के राजनीतिक वाद-विवादों में युक्तियों का अधिक सहारा लिया गया है और वे (विवाद) विशेषतः लोकव्यवहार पर आधारित हैं, जबकि शिशुपाल के राजनीतिक वाद-विवादों में शास्त्रीय सिद्धान्तों का अधिक प्रयोग हुआ है। व्यावहारिक धरातल पर अवस्थित भारवि का राजनीतिक ज्ञान अधिक महत्त्वपूर्ण है। माघ के वाद-विवादों में पाण्डित्य प्रदर्शन अधिक है।

दोनों महाकवियों के पाण्डित्य का क्षेत्र राजनीति के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, व्याकरण, कामशास्त्र आदि तक विस्तृत है। भारवि की अपेक्षा माघ में पाण्डित्य सम्बन्धी विषय-विविधता अधिक है। शिशुपाल के अनेक स्थलों में, उनके व्याकरण, दर्शन, कामशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत आदि विषयों से सम्बद्ध ज्ञान के साथ, पशुविद्या आदि के ज्ञान के दर्शन होते हैं। दोनों के शास्त्रीय पाण्डित्य उनकी काव्यकला को प्रभावित करते हैं जो अलौकिक काव्य जगत् में वाञ्छनीय नहीं है। महाकवि कालिदास के भी शास्त्रीय ज्ञान की सीमा विस्तृत है पर उनके काव्यों में कहीं भी ऐसा पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं है जो उनकी काव्य शैली को प्रभावित और आक्रान्त करता हो। पात्रों के माध्यम से जब शास्त्रीय ज्ञान का प्रकाशन सहजतः एवं प्रसङ्गतः होता है तब वह काव्य शैली पर हावी नहीं हो सकता। परन्तु इसके विपरीत जब कोई पात्र असहज एवं अप्रासंगिक रूप से शास्त्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन करने लगता है तब वह काव्यकला की भी दृष्टि से वाञ्छनीय नहीं होता। जब कोई पात्र किसी विषय-विशेष पर एक प्रोफेसर की भाँति भाषण देने लगता है, तब काव्यानन्द के लिये अवसर ही कहाँ रह जाता है? शिशुपालवध के उद्धव बलराम के राजनीतिक संवाद में ऐसी ही पाण्डित्य प्रदर्शन की स्थिति पायी जाती है, जो काव्य के उत्कर्षाधायक होने के बजाय अपकर्षाधायक ही है।

भारवि और माघ दोनों ही संस्कृत काव्य जगत् के विशेषतः अलङ्कृत मार्ग के, महान् कवि हैं। सहृदय-जगत् दोनों की काव्यमाधुरी का पान करने का अभ्यासी है। दोनों हजारों वर्षों से सहृदय समाज को अपनी काव्य-कला से चमत्कृत तथा प्रभावित करते आ रहे है। ऐसी स्थिति में दोनों के विषय में अनेक प्रशस्तियों का प्रचलन स्वाभाविक हैं। कुछ उक्तियाँ ऐसी हैं, जो सम्बद्ध कवि की, किसी गुण विशेष के उल्लेख के विना, प्रशस्ति करती हैं। 'मेघे माघे गतं वयः' 'काव्येषु माघः कविकालिदासः' आदि इसी श्रेणी में हैं। इनमें किसी गुण के उल्लेख के बिना माघ की प्रशस्ति है। कुछ कवि के गुण-विशेष का उल्लेख करके उसकी महत्ता का प्रख्यापन करती हैं। 'भारवेरर्थगौरवम्' 'नारिकेलसम्मितं वचो भारवेः, 'वंशस्थवृत्तेन·····नृपायते भारविरात्तकीर्तिः' में भारवि की तथा 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' में माघ की प्रशस्ति है। कुछ ऐसी उक्तियाँ हैं जो सम्बद्ध कवि को दूसरे कवि से श्रेष्ठ ठहराती हैं—'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः'। इसमें माघ को भारवि से श्रेष्ठ ठहराया गया है। 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' एक मात्र ऐसी प्रशस्ति है जिसमें गुणोल्लेख पूर्वक माघ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।

उक्त सभी उक्तियों के विषय में कुछ न कहकर, केवल 'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः' पर कुछ कहना संगत तथा प्रसंगोपेत है। भारवि माघ के पूर्ववर्ती हैं तथा अलंकृत मार्ग के जनक। अतः (पूर्ववर्ती होने के कारण) उन पर माघ के प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ तक माघ के ऊपर भारवि के प्रभाव का प्रश्न है, उसके विषय में सन्देह के लिये अवकाश नहीं है। भारवि तथा माघ के साम्य विवेचन सम्बन्धी स्थलों में उक्त प्रभाव के दर्शन किये जा सकते हैं। परन्तु भारवि से प्रभावित होने के बावजूद माघ अपनी कई विशेषताओं के कारण प्रशस्तिभाजन बने हैं, उसमें उनकी कलावादिता तथा विविध शास्त्र विषयक उनका पाण्डित्य ये दोनों महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भारवि की अपेक्षा माघ का क्षेत्र व्यापक है। इस दृष्टि से माघ को भारवि से अपेक्षाकृत श्रेष्ठ माना जा सकता है। परन्तु यदि सूक्ति का यह अर्थ अभिप्रेत है कि काव्य जगत् में माघ के आगमन से भारवि प्रभाविहीन हो गये, तो उससे सहमति नहीं व्यक्त की जा सकती। भारवि भी अपने क्षेत्र में बेजोड़ हैं। कम से कम वे,

गागर में सागर भरने वाले हिन्दी के कवि बिहारी की भाँति, अपने अर्थगौरव के लिये तो साहित्य जगत् में लोकविश्रुत बने ही रहेंगे। यही कारण है कि सहृदय-जगत् में यह कवियुगल समान रूप से आदरभाजन हैं और यह आदर-भाजनता की उन दोनों की स्थिति सदैव बनी रहेगी। आज के युग के अनुरूप, परिवर्तित साहित्यिक मान्यताओं के कारण, यदि सहृदय समाज का (साहित्यिक) मापदण्ड परिवर्तित होगा तो उससे दोनों (भारवि तथा माघ) प्रभावित होंगे, न कि अकेले भारवि।

डॉ० शिवाकान्त शुक्ल का प्रस्तुत ग्रन्थ उनके शोधप्रबन्ध का प्रतिरूप है। यह ग्रन्थ कुल ११ अध्यायों में विभक्त है। डा० शुक्ल ने प्रत्येक अध्याय के शीर्षक के अनुरूप प्रतिपाद्य का प्रतिपादन करने का प्रयास किया है। इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। शोध-प्रबन्ध की अपनी एक सीमा होती है। अतः उस सीमा निर्धारण के कारण अनेक आवश्यक बातें या तो छूट जाती हैं अथवा वे अपेक्षा के अनुसार चर्चित और विवेचित नहीं हो पातीं। पर डा० शुक्ल की यह कृति उक्त तथ्य की अपवाद है। उन्होंने प्रत्येक अध्याय के प्रतिपाद्य का विवेचन एवं प्रतिपादन सर्वाङ्गपूर्ण ढंग से किया है, जो सर्वथा सराहनीय है। इस सन्दर्भ में एक बात उल्लेखनीय है और वह यह कि उनका वर्ण्य विवेचन सामान्य न होकर विशेष है। उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में, भारवि तथा माघ की रचनाओं से यथेष्ट उद्धरणों को उद्धृत किया है जिससे पाठक के मन में उनका प्रतिपादन साधार प्रतिष्ठित हो जाता है।

आज कल छात्रों की शोधकार्य की प्रवृत्ति में प्रायः उनकी विवशता कारण होती है। परिणामतः वे एक घिसी पिटी पद्धति पर शोधकार्य पूर्ण करके, शोधोपाधि प्राप्त करने के लिये व्यग्र रहते हैं। ऐसी स्थिति में उनके शोधविषयक अध्ययन में एक तो मौलिकता का अभाव होता है, दूसरे गम्भीर चिन्तन एवं मनन की स्वल्पता। पर डा० शुक्ल में इन दोनों रूढ़ियों का अभाव है। शोध-कार्य के प्रति उनकी प्रवृत्ति में उनकी विवशता कदापि कारण नहीं थी। 'अथातो धर्मजिज्ञासा' के अनुसार उनकी प्रवृत्ति के मूल में जिज्ञासा ही, जिसे यहाँ ज्ञानार्जन के प्रति उत्कट इच्छा भी कहा जा सकता है, मूल प्रेरणातत्त्व थी। इस ग्रन्थ के अवलोकन से ग्रन्थ लेखक की जिज्ञासा, मनन एवं चिन्तन के पदे-पदे दर्शन होते हैं। साथ ही उसकी मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। ग्रन्थकार ने भारवि तथा माघ दोनों के महाकाव्यों का गम्भीर चिन्तन एवं मनन किया

है। उसने किसी सन्दर्भ में जहाँ दोनों महाकवियों का तुलनात्मक विमर्श किया है, वहाँ उसकी मौलिकता विशेषतः स्पष्ट होती है। यों तुलनात्मक विमर्श के अतिरिक्त विषयोपस्थापन अथवा प्रतिपादन के प्रसङ्गों में भी मौलिकता के दर्शन होते हैं।

ग्रन्थ की भाषा एवं शैली नितान्त हृद्य तथा आकर्षक है। भाषा में प्रसादमयता के साथ प्रवाहपूर्णता भी है। शैली गम्भीर तथा प्रभावोत्पादक है। ग्रन्थ के अध्ययन के समय कहीं गत्यवरोध नहीं होता।

प्रस्तुत ग्रन्थ उन जिज्ञासुओं की जिज्ञासा की शान्ति करने में सर्वथा समर्थ होगा, जो भारवि तथा माघ को अच्छी प्रकार जानना चाहते हैं और उनकी कृतियों के मर्म को सम्यक् समझने की कामना रखते हैं। इस ग्रन्थ में भारवि तथा माघ के विषय में बहुत कुछ एकत्र मिल जाता है। अतः यह ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य के गौरववर्धन में अवश्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा तथा लेखक को यशोभागी बनायेगा, ऐसी आशा है।

ग्रन्थ में कुछ न्यूनतायें रह गयी हैं। वे ग्रन्थकार की अनभिज्ञता या उपेक्षा के कारण नहीं, अपितु, शोध-जगत् की किन्हीं विवशताओं के कारण रह गयी हैं। उदाहरण स्वरूप प्रथम अध्याय में, महाकाव्य के उद्भव और विकास सम्बन्धी अध्ययन को थोड़ा और व्यापक तथा विस्तृत बनाना था, जिससे माघ के परवर्ती महाकाव्यों का, विस्तरशः न सही, संक्षेपतः ही, विवेचन हो जाता। इसी प्रकार एकादश अध्याय में माघ पर भारवि के प्रभाव को दिखाया गया है। उसके साथ ही भारवि पर पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव पर भी यदि कुछ प्रकाश डाल दिया गया होता तो अच्छा होता।

उक्त के बावजूद लेखक का विषय-ज्ञान, अध्यवसाय तथा ज्ञानपिपासा प्रशस्य है। उस पर निस्सन्देह उंगली नहीं उठायी जा सकती। आशा है लेखक भविष्य में अपनी अन्य कृतियों से भी संस्कृत-साहित्य के भाण्डागार को परिपूर्ण बनायेगा।

वसन्त पञ्चमी २०४८ वि०

—राजदेव मिश्र

८ फरवरी १९९२ ई०

# पुरोवाक्

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। प्राचीनकाल में इस भाषा का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार था। जहाँ तक संस्कृत का भारत से सम्बन्ध का प्रश्न है, वह (संस्कृत) भारतीय जीवन के साथ इस प्रकार जुड़ी है कि उसे पृथक् कर भारत के सर्वाङ्गपूर्ण स्वरूप के दर्शन नहीं हो सकते। संस्कृत की इसी ग्राह्यता के कारण सहस्र वर्षों के पारतन्त्र्य काल में समादृत फारसी, अंग्रेजी भाषा भी भारतीय जनमानस में वह स्थान नहीं प्राप्त कर सकी, जो संस्कृत ने प्राप्त किया। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, आदर्श चरित्र, दर्शन, इतिहास, आचार-विचार की जन्मदात्री संस्कृत भाषा ही है।

संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। देववाणी की पदवी से मण्डित उसमें (संस्कृत-भाषा में) मानव-जगत् के समस्त लौकिक व्यवहारों के साथ-साथ पारलौकिक साधना एवं निःश्रेयस् रूप परम प्राप्तव्य की सर्वाङ्गपूर्ण विवेचना की गयी है जो अत्यन्त दुर्लभ है। इस वाङ्मय में जहाँ वेद, पुराण, उपनिषद् एवं गीता आदि ज्ञान-विज्ञान की अक्षय निधि है, वहीं उसमें साहित्य की विभिन्न विधायें–महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चम्पू, कथा एवम् आख्यायिका आदि की अजस्र धारा का अजस्र प्रवाह अव्याहत गति से आज भी प्रवाहित हो रहा है। इन सबके माध्यम से चित्ताह्लादन के साथ-साथ व्यवहार जगत् में करणीय, कार्य की दिशा भी प्राप्त होती है। वस्तुतः जीवन में वास्तविक आनन्द रस ही है। 'रसो वै सः' इस कथन के द्वारा आनन्दघन ब्रह्म के साथ रस की अभिन्नता सिद्ध होती हैं और इसीलिए रस का ब्रह्मानन्दसहोदरत्व भी चरितार्थ होता है। कवि के हृदय में उद्भूत भावों के प्रत्यक्षीकरण का सर्वोत्कृष्ट एवं प्रभावकारी माध्यम कविता ही है। अपने सहचर क्रौञ्च के वध से विदीर्ण हृदय एवं वियोग-विधुरा क्रौञ्ची के असह्य दुःख से आदिकवि का शोक 'मा निषाद प्रतिष्ठां....' इस प्रकार की वाणी का कलेवर धारण कर प्रथम कविता के अभिधान से विभूषित हो गया। आचार्य आनन्दवर्धन की 'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः' उक्ति तथा महाकवि कालिदास की 'श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः' यह भणिति उक्त संदर्भ को ही संदर्भित करती है।

काव्य, हृदय को सरसता प्रदान कर उसका (हृदय का) परिष्कार करता है जिससे उसके आवेग नियन्त्रित होते हैं। दानवता पर मानवता की विजय

को काव्य सुनिश्चित करता है तथा 'रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्' यह काव्यानुशीलनोपदेश स्वयं में चरितार्थ होता है। ऐसे उत्कृष्ट एवम् उदात्त भावों से परिपूर्ण साहित्य के प्रति किसी का भी आकृष्ट होना अत्यन्त स्वाभाविक है। काव्य के प्रति आरम्भ से ही मेरी सहज रुचि रही है। यही रुचि शनैः शनैः संस्कृत में निबद्ध काव्य जगत् पर अनुसन्धान के रूप में परिणत हो गयी। अध्ययन काल में बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित भारवि एवं माघ के काव्यों किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। संस्कृत काव्य जगत् में भारवि एवं माघ में कई दृष्टियों से परस्पर साहचर्य सम्बन्ध है। यही कारण है कि एक का नाम ग्रहण करने पर दूसरे का नाम स्वतः आ जाता है। फलतः दोनों महाकवियों की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने की भावना मेरे मन में उठती रही। मैंने अपनी इस भावना के विषय में अपने सम्माननीय गुरुवर्य विद्वद्वरेण्य डॉ० राजदेव मिश्र, पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से निवेदन किया। उसे उन्होंने सहर्ष अपनी मान्यता दे दी। उन्होंने जिस प्रकार मेरे सारस्वत जीवन को अनुप्राणित और प्रोत्साहित किया उसी प्रकार इस ग्रन्थ को अपने आमुख से कृतार्थ किया। निस्सन्देह मेरी इस भावना को साकार रूप प्रदान करने का सारा श्रेय पूज्य गुरुवर्य को ही है जिन्होंने साहित्यिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवम् अन्यान्य व्यस्तताओं के होते हुये भी मेरे ऊपर अहैतुकी कृपाकर अपना अमूल्य निर्देशन तथा प्रेरणा दी है; एतदर्थ मैं अत्यन्त श्रद्धासंवलित हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। उनके अमूल्य निर्देशन के बिना प्रस्तुत कार्य की परिपूर्णता सम्भव नहीं थी। पूज्य गुरुजी के सान्निध्य में रहकर मैंने उनकी कर्मठता, कार्यकुशलता एवं पाण्डित्य के जो दर्शन किये हैं, वे मेरे जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि हैं।

ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन विद्वानों एवं सुहृज्जनों का साहाय्य प्राप्त हुआ है, उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

सम्मान्य पण्डितप्रवर डॉ० रविनन्दन त्रिपाठी, प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग, साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद ने समय-समय पर जो प्रेरणा एवं सुझाव दिये हैं, उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। समादरणीय बन्धुवर डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने ग्रन्थ की पूर्णता में जो साहाय्य प्रदान किया है तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित

करता हूँ। आचार्यप्रवर श्री रामप्रसाद मिश्र, प्राचार्य, रामानुज संस्कृत महाविद्यालय, अयोध्या, ने अत्यधिक स्नेहसिक्त भाव से जो कृपापूर्ण सहायता की है, वह अविस्मरणीय रहेगी। सुहृद्वर श्री करुणाशङ्कर तिवारी ने मुझे अनेकशः उत्साहित एवं प्रेरित किया है, एतदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। शुभेच्छु बन्धुवर श्री जगदम्बा बख्श सिंह, मित्रवर श्री सुधीर तिवारी, श्री श्यामकिशोर पाण्डेय एवं प्रिय अनुज रमाकान्त शुक्ल का साहाय्य सदा मेरे स्मृति-पथ पर अवतीर्ण रहेगा। उक्त कार्य में प्रिय बहन शुचिता राय, आचार्य, का सहयोग भी अति श्लाघ्य रहा। मैं उक्त सभी के प्रति आभार प्रकाशित करता हूँ। ग्रन्थ के मुद्रण के लिये श्री रवीन्द्रनाथ दूबे, देववाणी प्रेस, मलदहिया, वाराणसी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अति कठोर श्रम से यथासमय ग्रन्थ का प्रकाशन कर मेरा सहयोग किया।

अन्त में मैं उन सभी ग्रन्थकारों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से पर्याप्त सहायता मिली है।

मैं अपनी इस कृति को पूर्ण मौलिक कहने का साहस तो नहीं कर सकता, किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि इसको मौलिक बनाने हेतु मैंने यथाशक्ति प्रयास किया है। प्रयत्न करने पर भी लेखन, प्रूफ आदि की अनेक त्रुटियाँ सम्भव हैं। एतदर्थ क्षमायाचना करते हुये विद्वज्जनों से निवेदन करता हूँ कि वे कृपया मेरी त्रुटियों की ओर इङ्गित कर मुझे अवश्य कृतार्थ करें जिससे अपनी इस कृति को भविष्य में यथाशक्ति दोषमुक्त बना सकूँ।

वसन्त पञ्चमी सं० २०४८ — विनीत

८ फरवरी १९९२ ई० — शिवाकान्त शुक्ल

# विषयानुक्रम

: १ :

# संस्कृत महाकाव्य

## उद्भव एवं विकास

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं प्राचीन है। इसका विभाजन वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य इन दो वर्गों में किया जाता है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् एवं लौकिक साहित्य में इतिहास, पुराण, रामायण, नाटक आदि परिगणित होते हैं। वैदिक साहित्य में विभिन्न संवादों आदि के रूप में काव्य-तत्त्वों की छाया मात्र दृष्टिगत होती है, जिसे पूर्णतया हम काव्य अथवा महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित नहीं कर सकते। वैदिक साहित्य का सर्जन वस्तुतः काव्यदृष्टि अथवा लोकरंजन की दृष्टि से नहीं हुआ अपितु वह तो मन्त्रद्रष्टा ऋषियों[1] के अध्यात्म-चिन्तन का प्रतीक है अथवा तत्त्व साक्षात्कार का निदर्शन है। पुराणों की रचना भी छन्दोबद्ध है, किन्तु उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः संस्कृत का आदि काव्य वाल्मीकिरामायण है। महर्षि वाल्मीकि तमसा के तट पर स्नान करने गये हुये थे। वहीं परस्पर क्रीड़ासक्त क्रौञ्च दम्पति में से नर (क्रौञ्च) को व्याध ने मार दिया। पतिवियोगजनित शोक से विह्वल क्रौञ्ची ( पक्षी ) के करुण-क्रन्दन को सुनकर महर्षि वाल्मीकि की वाणी ही फूट पड़ी—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥'

''हे व्याध ! तू अधिक दिनों तक प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सकेगा क्योंकि तूने क्रौञ्चके युगल में से काममोहित एक (क्रौञ्च) का वध कर दिया है।' महर्षि का यही छन्द—'आम्नायादन्यत्र नूतनच्छन्दसामवतारः' हुआ। ध्वनिप्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन ने 'शोकः श्लोकत्वमागतः तथा 'श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः' कहकर वाल्मीकि के आदिकवित्व को ही प्रदर्शित किया है। रामकथा से सम्बद्ध यही महाकाव्य उत्तरवर्ती काव्य-जगत् का उपजीव्य सिद्ध हुआ। इसमें राम का आदर्श एवं लोकानु-

---

१. ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।

करणीय रूप प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा वाल्मीकि ने शाश्वत मानव-मूल्यों की स्थापना की है। महाकाव्यों की इस विकास परम्परा में रामायण के पश्चात् महाभारत का नाम आता है। यह एक विशाल-काय महाकाव्य है। इसके कर्त्ता पराशर-पुत्र वेदव्यास हैं। जिन्होंने तीन वर्ष निरन्तर श्रम करके इसे ग्रन्थ-रूप दिया।[1]

महाभारत में नीति धर्म तथा राजनीति का वर्णन है। इसे संस्कृत साहित्य का विश्वकोष कहा जाता है। विभिन्न काव्य इस ग्रन्थ के उपजीवी हैं जिन्होंने इसमें वर्णित आख्यानों, उपाख्यानों को अपनी कृति का आधार बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण और महाभारत के कर्त्ता वाल्मीकि और व्यास ने अन्य कवियों का मार्ग दर्शन कराया है।[2]

कालिदास, भवभूति, कुमारदास, भट्टि आदि महाकवियों ने रामायण की तथा भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों ने महाभारत की कथा के आधार पर अपने काव्य का प्रणयन कर दोनों की उपजीव्यता स्वीकार की है। महाकाव्यों की इस विकासशील परम्परा में रामायण और महाभारत के बाद प्रौढ़ महाकवियों का काल आता है। इस परम्परा में कालिदास, अश्वघोष, मातृचेट, आर्यशूर, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, भट्टि, भट्टभौमक, कुमारदास, प्रवरसेन एवं माघ आते हैं। महाकाव्यों की विकसित परम्परा में कालक्रमानुसार महाकवि कालिदास का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने रघुवंश, कुमारसम्भव महाकाव्यो की रचना की है। कालिदास अन्य परवर्ती कवियों की भाँति अलंकृत शैली के पोषक नहीं हैं, वे पूर्णतया रसवादी कवि हैं। कालिदास का समय विवाद-ग्रस्त है। विभिन्न तथ्यों के आधार पर उनके जीवन-काल के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है। तर्कसंगत होने से सामान्यतः इनका काल प्रथम शताब्दी ई० पूर्व माना जाता है। कालिदास विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से थे। इसके आधार पर ही इन्हें ई० पूर्व प्रथम शताब्दी में समझा जाता है।

---

१. त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्॥

—महाभारत, आदिपर्व, ५६.५२

२. मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः।

महाकवि कालिदास (प्रथम शताब्दी ई० पूर्व) से लेकर हर्षवर्धन (६५० ई०) तक महाकाव्यों का विकास उच्चकोटि का रहा जिसमें रस, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से काव्य-प्रणयन हुआ। इसके पश्चात् काव्य में प्रदर्शन का प्राधान्य बढ़ता गया और काव्यशास्त्रीय दृष्टि पूर्ववत् नहीं रह सकी। यह काल ६५० ई० से १२ वीं शती के नैषधकार श्रीहर्ष के बाद पृथ्वीराजविजय के कर्ता जयानक तक माना जा सकता है। विकास की दृष्टि से कविक्रमानुसार उनके महाकाव्यों का वर्णन अग्रलिखित है।

महाकाव्यों की विकास परम्परा में दो प्रकार की शैली दृष्टिगोचर होती है। प्रथम रससिद्ध शैली तथा द्वितीय अलंकृत शैली। प्रथम शैली में वाल्मीकि, कालिदास आदि आते हैं और द्वितीय में भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि की गणना होती है।

## कालिदास

महाकवि कालिदास की कृतियों में रघुवंश और कुमारसम्भव दो महाकाव्य हैं जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है—

### रघुवंश महाकाव्य

संस्कृत महाकाव्यों में रघुवंश–महाकाव्य को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त है। यह लघुत्रयी में परिगणित अन्यतम महाकाव्य है। इस काव्य में १९ सर्ग हैं तथा इसमें सूर्यवंशीय २९ राजाओं का चरित्र वर्णित हुआ है। इसमें एक ही वंश के अनेक राजा नायक रूप में चित्रित हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ निःसन्तान राजा दिलीप द्वारा सन्तानार्थ अपनी पत्नी सुदक्षिणा सहित महर्षि वशिष्ठ के आश्रमगमन से होता है।[1] दिलीप वहाँ कामधेनु पुत्री नन्दिनी की सम्यक् सेवा कर अभीष्ट वर प्राप्त करने के पश्चात् उचित समय आने पर रघु जैसे वीर एवं प्रभविष्णु पुत्र को प्राप्त करते हैं जो युद्ध में इन्द्र को भी पराभूत कर देता है तथा जिससे वरतन्तु शिष्य कौत्स अपने गुरु को प्रदेय दक्षिणा चतुर्दश कोटि स्वर्ण मुद्रा प्राप्त कर कृतार्थ होता है। मुख्यतया रघु के शौर्य, लोकानुरञ्जन, दानप्रवणता आदि उसके उदात्त गुणों के कारण इस महाकाव्य का नाम 'रघुवंश' पड़ा।[2]

१ 'अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वशिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ॥'—रघुवंश, १।३५

२. वही ३।२१

इस महाकाव्य में प्रथम सर्ग से पन्द्रहवें सर्ग तक राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ तथा राम के आदर्श राजत्व एवं शौर्य का चित्रण किया गया है। सोलहवें सर्ग में अयोध्या की दशा तथा कुश का पुनः अयोध्या आगमन वर्णित है। सत्रहवें सर्ग में अतिथि का राजसिंहासनासीन होना तथा उसका व्यवहार वर्णित है। अठारहवें सर्ग में एक या दो श्लोकों में ही बीस राजाओं का उल्लेख हुआ है तथा उन्नीसवें सर्ग में विलासी अग्निवर्ण के वर्णन के साथ महाकाव्य समाप्त हो जाता है।

कालिदास के इस महाकाव्य में भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूपेण झलकता है। इसकी महत्ता वर्ण्यवस्तु एवं काव्य शैली दोनों के कारण है। यह प्रसादगुणयुक्त सरल एवं स्वाभाविक अलंकारों से मण्डित है। रघुवंश महाकाव्य के अनुशीलन के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि यह रससिद्ध शैली का पूर्ण विकसित एवं सर्वतोभावेन प्रौढ़ महाकाव्य है। इसी महाकाव्य के द्वारा कालिदास को आलोचकों ने 'रघुकार' की संज्ञा दी है।

**कुमारसंभव**

इसमें सत्रह सर्ग हैं। यद्यपि इस महाकाव्य के सम्बन्ध में मतवैविध्य है, कुछ लोग कुमारसम्भव के प्रथम आठ सर्गों को ही कालिदास की रचना मानते हैं। शेष नौ सर्ग किसी अन्य कवि की कृति मानते हैं। इसके समर्थन में यह भी तर्क दिया जा सकता है कि सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इसके प्रथम आठ सर्गों पर ही टीका लिखी है। तथापि उपलब्ध सत्रहों सर्गों के अध्ययन से कवि का पाण्डित्य परिलक्षित होता है। इस महाकाव्य का आधार रामायण एवं महाभारत के अन्तर्गत आदि कथायें हैं। इस कथानक को कवि ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से रससिक्त कर महाकाव्य परम्परा को गौरवान्वित किया है।

इस महाकाव्य में शिव-पार्वती का विवाह, कुमार (कार्तिकेय) का जन्म तथा तारकासुर के वध की कथा वर्णित है। कुमारसम्भव नाम से स्पष्ट है कि कुमार (कार्तिकेय) का जन्म ही इसका मुख्य वर्ण्य विषय है।[1]

महाकवि कालिदास के दोनों महाकाव्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित महाकाव्य-लक्षणों के आधार पर खरे उतरते हैं। इनके महाकाव्यों की सर्वाधिक विशेषता यह है कि एक विस्तृत

---

१. 'कुमारस्य (स्कन्दस्य) सम्भवः उत्पत्तिर्महिमातिशयश्च यत्र तत्।'

कथावस्तु का भाषा चारुत्व, अलंकार, गुण, रीति, प्रकृति आदि के सन्तुलन के साथ सुष्ठु संयोजन किया है जो परवर्ती महाकाव्यों में नहीं प्राप्त होता क्योंकि परवर्ती कवियों ने प्रायः कलापक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया है।

## अश्वघोष

अश्वघोष सुप्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क के समकालिक थे। कनिष्क कुषाणवंशीय विमकदफिस के पश्चात् सिंहासनासीन हुआ जिसका समय ७८ ई० के लगभग माना जाता है। अतः यही काल अश्वघोष का भी मान्य है।

कवियों में संस्कृत बौद्धकवि अश्वघोष प्रमुख हैं। इनके द्वारा विरचित बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दो महाकाव्य प्राप्त होते हैं जिन्हें कवि का कीर्तिस्तम्भ कह सकते हैं।

### बुद्धचरित

इसमें २८ सर्ग हैं जो साकल्येन तिब्बती अनुवाद में प्राप्त हैं तथा संस्कृत में प्रथम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक ही उपलब्ध है। इसमें महात्मा बुद्ध के जन्म, अन्तःपुर बिहार, महाभिनिष्क्रमण, छन्दक विसर्जन, तपोवन-प्रवेश एवं ज्ञानप्राप्ति का वर्णन हुआ है।

इस महाकाव्य का प्रधान रस शान्त है क्योंकि कवि का उद्देश्य मात्र काव्य रचना नहीं अपितु मानव को भौतिक सुखों से विरक्त कर बुद्धत्व प्राप्त कराना है। इस दृष्टि से 'बुद्धचरितम्' महाकाव्य अत्यन्त सरस एवं रोचक बन सका है। इसमें सम्भोग, विप्रलम्भ, धर्म, मोक्ष, मुनि, स्वर्ग, पुत्रजन्म एवं प्रकृति चित्रण आदि महाकाव्य लक्षणों का सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है। कालिदास के काव्यों में बहुक्षेत्रीय ज्ञान, संस्कृति, आदर्श समाज तथा विभिन्न उदात्त स्वरूपों का निरूपण है किन्तु अश्वघोष अपेक्षाकृत सीमित हैं। रस की दृष्टि से भी विभिन्न रसों का समाहार कालिदास ने किया है। रसों में शृंगार रस को रसराजत्व प्राप्त है जिसमें अश्वघोष सर्वथा कालिदास से पीछे हैं।

### सौन्दरनन्द

यह १८ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें बुद्ध के भाई नन्द तथा सुन्दरी (पत्नी) का कथानक निबद्ध है। इन्हीं दोनों के प्रेम को लेकर कवि का उद्देश्य नन्द के प्रव्रज्या का वर्णन करना अभीप्सित है। नन्द

और सुन्दरी दोनों ही क्रौञ्चद्वन्द्ववत् परस्पर आसक्त हैं।[1] इसी आसक्ति को तिरोहित कर ज्ञानोन्मुख करना कवि का उद्देश्य है। अश्वघोष के काव्यों में कालिदास के काव्य जैसी रसमयता भले ही न हो किन्तु उनमें परवर्ती अलंकारवादी कवियों की भाँति चारण-प्रशस्ति का गान नहीं है। ये काव्य एक भक्त हृदय अध्यात्मानुरागी महाकवि के सहजभावों के प्रवाह हैं जिन्हें भौतिक जगत् के बाह्य आकर्षणों की भाँति साहित्य के बाह्य तत्त्व कलापक्ष की अपेक्षा नहीं है।

## मातृचेट

महाकवि अश्वघोष के ही समकालिक मातृचेट हैं। इन्हें बौद्ध धर्मावलम्बी कनिष्क का आश्रय प्राप्त था। कविवर मातृचेट की बौद्ध स्तुतियाँ सर्वप्रसिद्ध हैं। उन्होंने वर्णार्हवर्णस्तोत्र तथा अध्यर्थशतक दो स्तुतिकाव्यों की रचना की है। वर्णार्हवर्णस्तोत्र चार सौ पद्यों में उपनिबद्ध स्तुतिकाव्य है। यह द्वादश परिच्छेदों में विभक्त है जिनमें तथागत बुद्ध की उदात्त भावों से परिपूर्ण सुन्दर स्तुति की गयी है।

अध्यर्थशतक १५० अनुष्टुप् छन्दों में निबद्ध महत्वपूर्ण रचना है। इसका अनुवाद चीनी एवं तिब्बती भाषाओं में हो गया है। यह १३ विभागों में विभक्त अवान्तरकालीन कवियों के लिए प्रेरणाप्रद स्तुति-काव्य है। सरलता तथा भावों की मार्मिक अभिव्यञ्जना इसकी विशेषता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार—'मातृचेट के स्तुतिपद्य में हृदय को स्पर्श करने की अलौकिक क्षमता है, तथागत के उच्च सिद्धान्तों का सुबोध शब्दों में प्रकट करने की विलक्षण सामर्थ्य है। बौद्ध आचार्यों तथा जैन सूरियों की स्तुति—काव्य लिखने की प्रशस्त प्रेरणा देने के कारण हम मातृचेट को स्तुतिकाव्य का 'जनक' मान सकते हैं।[2]

## आर्यशूर

अश्वघोष की ही परम्परा में बौद्धकवि आर्यशूर को भी माना जा सकता है। उनके निम्नांकित तीन ग्रन्थों की प्राप्ति तिब्बती अनुवाद में ही होती है—

---

१. 'स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्तया समेतः प्रियया प्रियार्हः।'

(सौन्दरनन्द', ४।२)

२. आचार्य बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १७८,

(१) प्रगतिमोक्षसूत्रपद्धति ।
(२) बोधितत्व जातक धर्मगण्डी ।
(३) सुपथनिर्देश परिकथा ।

इनका मुख्य ग्रन्थ जातकमाला है जो उनकी प्रतिभा का अक्षय यश स्तम्भ है। यह सुन्दर एवं साहित्यिक भाषा में लिखित है जिसमें ३४ जातक कथाओं का काव्यात्मक वर्णन है। यह काव्य गुणों से समलंकृत आख्यान शैली में निबद्ध गद्य-पद्यात्मक काव्य है। आर्यशूर की एक अन्य रचना 'पारमितासमास' जिसमें दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञापारमिता छः पारमिताओं का उल्लेख है। इसमें छः सर्ग तथा ३६४ श्लोक हैं जो सरल और बोधगम्य भाषा एवं प्रसादमयी शैली में लिखित हैं।

बौद्ध काव्यों में प्रायः एक सार्वभौम साम्य मिलता है जो धर्म का जनसाधारण में प्रचार एवं प्रसार है और जिसके कारण ही भाषागत कृत्रिमता एवं अलंकारों की सायात उपस्थापना का सर्वथा अभाव है तथा हृदय को आकर्षित करने की अपूर्व क्षमता है।

## महाकवि भारवि

बृहत्त्रयी के लब्धप्रतिष्ठ महाकवियों में भारवि का स्थान प्रमुख है। इन्होंने काव्य के क्षेत्र में एक नवीन मार्ग की उद्भावना की जिसे अलंकृत या विचित्र मार्ग कहा जाता है। आचार्य कुन्तक ने काव्य रचना के तीन मार्गों सुकुमार विचित्र, मध्यम अथवा उभयात्मक का उल्लेख किया है।[1] उन्होंने कालिदास को सुकुमार, मार्ग का कवि बताया है। विचित्र मार्ग की काव्य परम्परा का आरम्भ भारवि-प्रणीत काव्य से होता है। विचित्र मार्ग की विशेषता यह है कि कवि किसी वस्तु का नवीन वर्णन करने की अपेक्षा उसे उक्तिवैचित्र्य मात्र से परिपूर्ण बनाकर उसके द्वारा पाठक के हृदय का आवर्जन करता है। इसके साथ ही उसमें अलंकारप्रियता का प्राधान्य होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य कुन्तक ने कहा है कि जिस प्रकार रत्नों की कान्ति से देदीप्यमान आभूषण रमणी के शरीर को आच्छादित कर उसे अलंकृत अथवा सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार विचित्रमार्ग के कवियों के द्वारा अलंकार्य आच्छादित सा होकर प्रकाशित होता है।[2] इस मार्ग की एक विशेष बात जो

---

१. वक्रोक्तिजीवित १।२४

२. वही, १।३७

भारवि, भट्टि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों के अनुशीलन से स्पष्ट होती है, यह है कि इसमें कवि वर्णनों को अपने पाण्डित्य प्रदर्शन की दृष्टि से बढ़ाता है न कि उनके औचित्य अथवा प्रासंगिकता के आधार पर। राजनीति, ज्योतिष, दर्शन, व्याकरण आदि के ज्ञान का प्रदर्शन कवि का उद्देश्य बना रहता है।

भारवि ने अपनी एकमात्र कृति किरातार्जुनीय में विचित्र मार्ग का अनुसरण किया है और शैली की दृष्टि से वे अपने परवर्ती कवियों—भट्टि, माघ, हर्ष आदि के उपजीव्य हैं।

## भट्टि

महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य का नाम 'रावणवध' या 'भट्टि काव्य' रखा है। यह महाकाव्य २२ सर्गों में विभक्त है। इसका इतिवृत्त रामायण से लिया गया है। महाकवि भट्टि का कथानक यद्यपि भारवि एवं माघ की अपेक्षा अधिक है तथापि कवि ने कथानक के प्रवाह की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। महाकवि का व्याकरण की ओर विशेष पक्षपात दृष्टिगत होता है।[1] इसमें व्याकरण विषयक ज्ञान के द्वारा कवि ने अपना पाण्डित्य प्रदर्शित किया है। फलस्वरूप काव्यगत चारुत्व का अभाव दृष्टिगत होता है। जब कवि का किसी विषय विशेष के प्रति विशेष लगाव हो जाता है चाहे वह व्याकरण सम्बन्धी हो, दर्शन सम्बन्धी हो अथवा अलंकार सम्बन्धी हो, तब काव्य का रस-पक्ष जो जीवातु है, क्षीण हो जाता है और वह काव्य हृदय का विषय न होकर मस्तिष्क का विषय बनकर रह जाता है।

भट्टि काव्य चार काण्डों में विभक्त है—प्रकीर्ण काण्ड, अधिकार काण्ड, प्रसन्नकाण्ड एवं तिङन्त काण्ड।

डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार-भट्टिकाव्य संस्कृत की उस परम्परा का संकेत करता है जिसमें महाकाव्य के द्वारा व्याकरण के नियमों का प्रदर्शन कवि का ध्येय रहा है।[2]

१. दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धानां भवेत् व्याकरणादृते ॥'

—भट्टिकाव्य, २२।३३-३४

२. डॉ० भोलाशंकर व्यास, "संस्कृत कवि दर्शन", पृ० १२६

महाकवि भट्टि को श्रीहर्ष के साथ जोड़ा जा सकता है क्योंकि श्रीहर्ष ने भी दर्शन विषयक पाण्डित्य के साथ-साथ व्याकरण का वर्णन किया है अथवा मात्र पाण्डित्य प्रदर्शन ही उनका ध्येय रहा है जो बहुत कुछ भट्टि से साम्य रखता है। क्योंकि दोनों ही महाकवियों को अपने महाकाव्य पर गर्व है।

### भट्ट भौमक

काश्मीरी कवि भट्ट भौमक अथवा भूमि या भौमक ने रावणार्जुनीय काव्य की रचना की, जिसका आदर्श भट्टि काव्य है। इसमें सत्ताईस सर्ग हैं। इसमें कवि ने अर्जुन और रावण से सम्बद्ध स्वल्प कथानक का अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णन किया है। रावण ने भ्रमण करते हुये माहिष्मती पहुँचकर अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा की किन्तु वहाँ अर्जुन को न पाकर उसने पुनः घूमते हुये विन्ध्याचल से नर्मदा नदी पहुँचकर स्नान पूर्वक भगवान् शंकर की पूजा की। अर्जुन अपनी सहस्रबाहुओं से जल रोककर विहार कर रहा था जिससे जल का बहाव विपरीत दिशा की ओर हो रहा था। इससे रावण की पूजा सामग्री बह गयी और उसने क्रुद्ध होकर अर्जुन से युद्ध किया जिसमें वह अर्जुन द्वारा बाँध लिया गया। पुनः मुनि पुलस्त्य के कहने पर छोड़ दिया गया।

इस कथानक के लिये कविकर्म रामायण के ३१ से ३३ सर्ग में वर्णित रावणार्जुन प्रसंग का उपजीवी है। आचार्य दण्डी निरूपित समस्त महाकाव्य लक्षणों से यह काव्य युक्त है। यह एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें कवि ने रघुवंश की शैली को भी अपनाया है।[१] इसमें अलंकृत शैली के प्रवर्त्तक महाकवि भारवि का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है।[२] इस काव्य में अष्टाध्यायी के सूत्रों का उपयोग भी विस्तार से किया गया है। यद्यपि यह भट्टि काव्य का अनुवर्त्ती है तथापि इसमें सरलता, सरसता एवं सुबोधता सुलभ है।

### कुमारदास

महाकवि कुमारदास, भारवि एवं माघ के मध्यकालिक हैं। भारवि ने जिस अलंकृत अथवा विचित्रमार्ग की उद्भावना की उसका प्रभाव

१. रघुवंश सर्ग २।९-१० एवं रावणार्जुनीय २३।४२-४३,
२. किरात०, २।२१ तथा रावणार्जुनीय, १४।१३

कुमारदास पर भी पड़ा। इस युग में वर्ण्य वस्तु को आवश्यकता से अधिक अलंकृत किया जाने लगा और अत्यल्प वस्तु का अधिकाधिक वर्णन कवियों के पाण्डित्य प्रदर्शन का सिद्धान्त बन गया। यद्यपि कुमारदास के समक्ष रघुवंश का आधार रहा किन्तु वह मात्र कथानक ग्रहण करने तक ही सीमित था, उनकी ( कालिदास ) शैली से वह प्रायः अप्रभावित ही रहे।

जानकीहरण कुमारदास की एक ही रचना है। इसमें २० सर्ग हैं। यह महाकाव्य रामायणी कथा का उपजीवी है। प्रारम्भ में अयोध्या, दशरथ एवं रानियों का वर्णन है। तदनन्तर रामजन्म तथा जानकी का अपहरण, राम-हनुमान् मित्रता, लंकादहन एवं अन्त में राम विजय के साथ ही इस महाकाव्य का अन्त हो जाता है।

### प्रवरसेन

संस्कृत महाकाव्यों की भाँति प्राकृत में भी विभिन्न महाकाव्यों की रचनाएँ हुयीं। जो संस्कृत महाकाव्यों से किंचिदपि न्यून नहीं हैं। प्रवरसेन विरचित प्राकृत का 'सेतुबन्ध' महाकाव्य अत्यन्त प्रमुख है। इस महाकाव्य में १५ आश्वास हैं। इसे रावणबहो (रावणवध) नाम से भी जाना जाता है। इस महाकाव्य पर महाकवि कालिदास का प्रभाव है। संस्कृत—प्राकृत काव्य के विकास में वाकाटकवंशीय राजाओं का योगदान भी कम नहीं रहा है।

सेतुबन्ध महाकाव्य प्रवरसेन की उज्ज्वल कीर्त्ति का प्रतीक है।[1] इसमें सेतुबन्ध से प्रारम्भ कर प्रसाद गुण युक्त शैली में रामकथा उपनिबद्ध है। यद्यपि इस काव्य में नवीन कल्पनाओं का अभाव है तथापि भाषा अत्यन्त सरस एवं सुरुचिपूर्ण है। इस काव्य का प्रभाव अवान्तरकालिक महाकाव्य गौडवहो पर विशेष रूप से पड़ा।

### महाकवि माघ

अलंकृत शैली में महाकवि भारवि के अनन्तर महाकवि माघ आते हैं। उनका 'शिशुपालवध' महाकाव्य बृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान का भागी है। इस महाकाव्य का कथानक महाभारत में सभापर्व के शिशुपाल-वध आख्यान पर आश्रित है। इसमें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण के द्वारा चेदिनरेश शिशुपाल का वध बीस सर्गों में वर्णित है[1]। इसी के आधार पर इसका नाम 'शिशुपालवध' हुआ है। इसमें १६५० श्लोक हैं।

---

१. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥—हर्षचरित १।१४

माघ ने इस छोटे से कथानक को अपनी काव्य-प्रतिभा से उत्पन्न विस्तृत रूप प्रदान किया हैं। यद्यपि महाकाव्यों की परम्परा में माघ ने अपने पूर्ववर्ती भारवि, भट्टि, कुमारदास का ही अनुपरण किया है किन्तु उन्होंने अपने काव्य में यह सदैव ध्यान रखा है कि इस शैली के कवियों में वे अपना अपूर्व स्थान स्थापित कर सकें।

माघ ने मुख्यतया भारवि से प्रतिस्पर्धा की है क्योंकि भारवि शैव हैं तो माघ वैष्णव। वे यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने लक्ष्मीपति का चरित कीर्तन मात्र अपने काव्य में किया है।[1] इनकी विष्णु विषयक धार्मिक आस्था तो अवश्य ही दृढ़ हैं किन्तु उनके काव्य में एक भक्त हृदय की द्रवणशीलता या प्रवाह नहीं है। जब कभी कोई कवि किसी की प्रतिस्पर्धा में काव्य-सर्जन करता है तो वह अपने काव्य के निर्माण में काव्यशास्त्रीय एवं तुलनात्मक दृष्टि को सामने रखता है। इस दृष्टि से माघकाव्य का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि उन्होंने लक्षण–ग्रन्थोक्त महाकाव्य के लक्षणों को दृष्टिगत रखकर एक-एक लक्षण के अनुसार अपने काव्य को अलंकृत किया है। वे जहाँ प्रकृति के वर्णन में जुट जाते हैं, वहाँ सारी प्रकृति को अपनी प्रकृति से रंजित कर देते हैं। युद्ध का वर्णन करने पर उसे इतना बीभत्स अथवा शृंगारिक बना डालते हैं जिससे पाठक की रसानुभूति में अवरोध सा उत्पन्न हो जाता है। इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि माघ अपनी सरणि के विख्यात कवियों में अद्वितीय हैं। तभी तो वह अपने को कालिदास, भारवि और दण्डी के काव्य वैशिष्ट्यों से मण्डित कर लेते हैं।[2] यही एक ऐसे कवि हैं जिन्हें सुकुमारमार्गी कवि कालिदास और विचित्रमार्गी भारवि के साथ खड़े होने का सौभाग्य प्राप्त है।

## श्रीहर्ष

महाकाव्यों के क्षेत्र में श्रीहर्ष विरचित 'नैषधीयचरित' महाकाव्य का मुख्य स्थान है। यह २२ सर्गों में विरचित विशाल महाकाव्य है। इसका वर्ण्यविषय नल और दमयन्ती की प्रेमकथा है। इसका कथानक

---

१. लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारुमात्र

(शिशुपालवध, कविवंशवर्णन, श्लोक सं० ५)

२. 'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥'

महाभारत पर आधारित प्रसिद्ध आख्यान है। महाकाव्य कलेवर की दृष्टि से कथावस्तु स्वल्प प्रतीत होती है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ राजा नल के वन-विहार से होता है। द्वितीय सर्ग में हंस दमयन्ती के सौन्दर्य का चित्रण करता है तथा नल के द्वारा प्रेमाभिव्यक्ति करने पर हंस कुण्डिनपुर जाता है और दमयन्ती के हृदय में नल के प्रति अनुराग उत्पन्न करता है। चतुर्थ सर्ग में दमयन्ती की पूर्वानुरागजनित वियोगावस्था का वर्णन है। पंचम सर्ग में इन्द्र, वरुण, अग्नि एवं यम आदि नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजते हैं। षष्ठ सर्ग से नवम् सर्ग तक नल के जाने एवं दमयन्ती के नखशिख का वर्णन है। नल देवताओं के सन्देश का कथन करते हैं किन्तु दमयन्ती देवों को नहीं चाहती। तदनन्तर नल अपना वास्तविक परिचय देते हैं।

दशम सर्ग में स्वयंवर से पूर्व दमयन्ती का शृंगार वर्णित है। ग्यारहवें तथा बारहवें सर्ग में स्वयंवर में समागत राजाओं का सरस्वती द्वारा परिचय श्लेषगर्भित रूप में चित्रित है। जिससे देवता भी अप्रसन्न न हों और दमयन्ती भी नल को पहचान जाय। इस प्रसंग में कवि ने अपने शब्दश्लेष पाण्डित्य का प्रचुर परिचय दिया है। ग्यारहवें तथा बारहवें सर्ग में विभिन्न देशों से समागत राजाओं का उल्लेख है। तेरहवें सर्ग में चार देवों का वर्णन है जो नल का रूप धारण कर स्वयंवर में उपस्थित होते हैं। यह वर्णन अत्यन्त श्लिष्ट बन पड़ा है। चौदहवें सर्ग में दमयन्ती द्वारा असली नल के वरण करने का वर्णन हुआ है। तदन्तर पन्द्रहवें सर्ग में कवि ने विवाह से पूर्व वर-कन्या के प्रसाधन का भी अलंकारमय चित्रण किया है। सोलहवें सर्ग में नल और दमयन्ती का पाणिग्रहण हो जाता है। सत्रहवें सर्ग में देवगण स्वर्ग चले जाते हैं मार्ग में कलियुग मिलता है जो नास्तिकवाद की प्रतिस्थापना करता है किन्तु देवता उसका अनुमोदन नहीं करते। अठारहवें सर्ग में नल-दमयन्ती के प्रथम मिलन का वर्णन हुआ है। अन्तिम चार सर्गों में राजा और रानी की दिनचर्या का वर्णन है जिसमें देव-स्तुतियों एवं सूर्योदय आदि का वर्णन है। इस प्रकार काव्य समाप्त हो जाता है।

श्रीहर्ष का महाकाव्य चित्रकाव्य का प्रतिनिधित्व करता है। इस महाकाव्य में चरित-वर्णन परम्परा का भी सर्जन किया गया है। चरित-वर्णन की ओर सम्भवतः राज्याश्रयी होने के कारण कवि को झुकना पड़ा होगा।

## भारवि का जीवनवृत्त

महाकवि कालिदास की भाँति ही भारवि का भी जीवनवृत्त विवादग्रस्त है। प्राचीन कवियों में अपना परिचय लिखने की परम्परा न थी। भारवि की कृति किरातार्जुनीय से उनके जीवन काल के सम्बन्ध में कोई भी तथ्य समक्ष नहीं आता। भारवि के जीवन के विषय में अनेक कल्पित कथायें प्रचलित हैं। इनमें कहाँ तक सत्यता है, कहा नहीं जा सकता। एक किंवदन्ती के अनुसार यह धारा नगरी के निवासी थे। इनकी माता का नाम सुशीला तथा पिता का नाम श्रीधर था। इनका विवाह चन्द्रकीर्ति की कन्या रसिका से हुआ था। ऐहोल अभिलेख में[1] भारवि का नामोल्लेख होने से इन्हें दक्षिण भारत का निवासी माना जाता है। अवन्ति सुन्दरी कथासार के अनुसार कौशिक वंशीय नारायण स्वामी इनके पिता थे। भारवि के बाल्यकाल का नाम दामोदर था[2] श्री रामकृष्ण कवि दामोदर को ही भारवि मानते हैं। यद्यपि कुछ लोग भारवि और दामोदर को एक मानने में सहमत नहीं हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार भारवि महाकवि दण्डी के प्रपितामह थे तथा विष्णुवर्धन, दुर्विनीत सिंह विष्णु के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। भारवि का जीवन-वृत्त ज्ञात करने में दण्डी कृत अवन्तिसुन्दरीकथा एवम् अवन्ति सुन्दरी कथासार से बड़ी सहायता मिलती है। अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुसार भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशस्थ आर्य देशीय शिरोरत्न स्वरूप आनन्दपुर नामक स्थान है जहाँ कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मणों को निवास भूमि थी जिन्होंने नासिक्य देशस्थ अचलपुर को आवास स्थान बनाया जो वर्तमान एलिचपुर है।

**'अस्त्यानन्दपुरं नाम प्रदेशे पश्चिमोत्तरे।**
**आर्यदेश शिरोरत्नं यत्रासन् बहवो नृपाः ॥[3]'**

---

१. 'ऐहोल अभिलेख' श्लोक सं ३५,

२. ततोऽभिनिःसृता काचित्कौशिकब्रह्मसन्ततिः।
ब्रह्मलोकादिवायान्ती पुण्यतीर्था सरस्वती ॥
तस्यां नारायणस्वामिनाम्नो नारायणोदरात्।
दामोदर इति श्रीमानादिदेव इवाभवत् ॥
—अवन्तिसुन्दरीकथासार, १।२१--२२

३. अवन्तिसुन्दरीकथासार, १।१९,

इसी ब्राह्मण वंश के नारायण स्वामी से दामोदर का जन्म हुआ जो बाद में भारवि नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुये।

भारवि का वंश-वृक्ष इस प्रकार है—

नारायण स्वामी — कौशिक ब्राह्मण
|
दामोदर — ( भारवि )
|
मनोरथ
|
वीरदत्त — गौरी ( पत्नी )
|
दण्डी

भारवि के तीन पुत्र थे। इनमें मध्यम पुत्र मनोरथ के चार पुत्रों में से वीरदत्त और गौरी से उत्पन्न पुत्र दण्डी थे। अन्तरंग साक्ष्य के अनुसार भारवि कोंकण अथवा पश्चिमीघाट के निकटवर्ती प्रदेश के निवासी प्रतीत होते हैं। भारवि दाक्षिणात्य थे। भारवि शिव-भक्त थे। इसका परिज्ञान उनके महाकाव्य से होता है जिसमें उन्होंने भगवान् शंकर की वायु-मूर्ति, अग्निमूर्ति, जलमूर्ति, व्योममूर्ति की वन्दना की है। किरातेश्वर और अर्जुन के मध्य हो रहे युद्ध में शिव के ऊपर उछलने पर युद्ध की ही इच्छा से अर्जुन ने किरातपति शंकर के चरण पकड़ लिये।[1] भगवान् शंकर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये। उन्हें देखकर अर्जुन ने जो स्तुति की है वह कोई वास्तविक भक्त हृदय ही अपने आराध्य की कर सकता है। इससे भारवि का शैव होना स्पष्ट प्रतीत होता है। भारवि के पिता उच्चकोटि के पण्डित थे। वे अपने पुत्र को भी सर्वाधिक योग्य बनाना चाहते थे। एक किंवदन्ती के अनुसार भारवि को अपनी विद्वत्ता पर गर्व हो गया। भारवि के पिता को इस बात का बड़ा कष्ट था कि पुत्र दर्पोन्मत्त होकर पण्डितों को परास्त कर प्राप्त विजयश्री से शास्त्राभ्यास छोड़कर निष्क्रिय हो रहा है। इससे वे पुत्र से अप्रसन्न रहते थे और उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए यत्र तत्र सर्वसाधारण के सम्मुख उनकी उपेक्षा एवं निन्दा किया करते थे। पिता के इस व्यवहार से भारवि विक्षुब्ध हो उठे तथा संसार में अपनी प्रज्ञा का शत्रु पिता को ही मानकर उनके वधार्थ कृतसंकल्प हो गये। एक

---

१. 'किरातार्जुनीयम्', १८।१३,

दिन रात्रि में पिता को मारने की इच्छा से ही घर के पीछे छिपे हुए थे, ऐसे समय में भारवि की माँ पिता से पुत्र की उदासीनता एवं पिता की पुत्र के प्रति निन्दा की चर्चा करते हुए कह रही थीं कि आप ही हमारे पुत्र के सबसे बड़े शत्रु हैं जा सभाओं में विजय प्राप्त करने वाले पुत्र की अहर्निश भर्त्सना किया करते हैं। इस पर पिता ने पुत्र के प्रति उन्नति की कामना से अपने अन्तर्निहित विचारों को व्यक्त करते हुए कहा कि मैं जानता हूँ कि मेरा पुत्र विद्वान् एवं गुणज्ञ है किन्तु इन दिनों वह अभिमानी हो रहा है। अभिमानी होने से वह शास्त्राभ्यास से विमुख हो रहा है। इससे उसका यश क्षीण हो जायगा। अतः उसको उन्नति पथ पर और अधिक गतिमान होने के लिए मैं यह उपेक्षा एवं निरादर करता हूँ। भारवि यह सब बड़े ध्यान से सुन रहे थे जिसे सुनकर वह बहुत दुःखी हुए और पिता के चरणों में पड़कर प्रायश्चित्त करने का बार-बार आग्रह किया। पिता ने बहुत आग्रह करने पर प्रायश्चित्त स्वरूप भारवि को छः महीने ससुराल में रहने को कहा। प्रायश्चित्त स्वरूप भारवि ससुराल में रहकर गायें चराने लगे। एक बार इनकी पत्नी को कुछ धन की आवश्यकता पड़ी। भारवि ने एक श्लोकार्ध दिया और उसे गिरवी रखकर कुछ धन ले लेने को कहा। भारवि की पत्नी नगरश्रेष्ठि वर्धमान के घर गयीं। वर्धमान व्यापार हेतु बाहर गये थे। उनकी पत्नी भारवि के लोक-प्रसिद्ध पाण्डित्य से परिचित थीं। उसने उस श्लोकार्ध को लेकर भारवि-पत्नी को प्रभूत धन प्रदान कर दिया तथा उस पंक्ति को बड़े अक्षरों में लिखवाकर अपने शयन लक्ष में टँगवा दिया। जब वैश्य वर्धमान व्यापार के लिए विदेश गये थे उस समय उनकी पत्नी गर्भवती थी। पुनः पन्द्रह वर्ष बाद जब वैश्य वापस घर आया उसने पत्नी की परीक्षा लेने के लिए रात्रि में गृहप्रवेश किया। वर्धमान की पत्नी अपने पञ्चदशवर्षीय युवक पुत्र के साथ एक ही पलंग पर लेटी थी। वर्धमान ने परपुरुष शंका जन्य क्रोध से उन दोनों को मार डालने के लिए तलवार निकाल ली किन्तु एकाएक उनकी दृष्टि उस श्लोक खण्ड पर गयी जो ऊपर टँगा था।

**सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम् पदम्**

उसने सोचा पहले जगा दिया जाय तब इन निःशस्त्रों का वध कर दिया जायगा। तलवार के अग्रभाग से संकेत कर उन्हें जगाया। जगते ही पत्नी ने वैश्य को प्रणाम किया और प्रसन्नता पूर्वक पुत्र को भी

जगाकर पिता से परिचय कराया। यह देखकर वह वैश्य स्तब्ध रह गया और उस श्लोक खण्ड की गुरुता पर पुनः पुनः विचार करने लगा। वह उस श्लोक के प्रति कृतज्ञ हो रहा था जिसने उसके पुत्र और पत्नी के प्राणों को बचाकर वंशोच्छेद से रक्षा की थी। वर्धमान ने उस श्लोक के सम्बन्ध में पत्नी से पूछा तथा द्वितीय चरण भी भारवि को बुलाकर उनकी पूजा आदि कर प्राप्त किया।

**'वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः'**

भारवि के इसी पाण्डित्य एवं लोकहितकारी रचना के सम्बन्ध में एक और किंवदन्ती है। भारवि का जीवन ही निरर्थकता में बीत रहा था। धनाभाव के कारण तथा मात्र काव्य रचना में ही अहर्निश संलग्न रहने से उनकी पत्नी भारवि से अप्रसन्न रहती थीं तथा उन्हें कुछ प्रेरक कठोर शब्द भी कहा करती थीं। इससे खिन्न होकर भारवि ने राज्याश्रय प्राप्त करने का निश्चय कर प्रस्थान किया। कवि की प्रतिभा स्वच्छंद रूप से काव्यानन्द प्रदान कर रही थी। वह तो परिस्थितिवश धन की इच्छा से निकले थे, वस्तुतः वह धनासक्त तो थे नहीं। उनका तो चिन्तन एवं आनन्द स्रोत काव्य ही था। मार्ग में एक सरोवर के किनारे विश्राम करते हुए उन्होंने एक पत्र पर एक श्लोक लिखा—

**'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम् पदम्।**
**वृणुते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥'**

इसी मध्य वहाँ का शासक भी उसी मार्ग से निकला। उसने भारवि के इस श्लोक को देखकर बड़ी प्रशंसा की और उन्हें दरबार में आमंत्रित किया किन्तु भारवि की दीनहीन अवस्था एवं वेश को देखकर द्वारपालों ने राजभवन में प्रवेश ही नहीं होने दिया। पुनः वहाँ से तिरस्कृत होकर भारवि अपने घर चले आये। राजा ने उस श्लोक को स्वर्णाक्षरों में अंकित करा दिया। एक बार राजा एक सप्ताह के लिए शिकार खेलने निकले थे किन्तु निकट ही होने से वह द्वितीय रात्रि में ही राजमहल वापस आ गये। उन्होंने रानी को एक सुन्दर युवक के साथ शयन करता हुआ देखकर व्यभिचार की आशंका से दोनों का वधकर देने का निश्चय किया किन्तु भारवि के "सहसा विदधीत न क्रियाम्" श्लोक को पढ़कर रुक गया और दोनों को जगाकर दण्डित करना चाहा। जगाने पर ज्ञात हुआ कि यह पुरुष तो उसका ही पुत्र है जिसे दासी ने अपहृत कर लिया

था तथा जो उसी दिन मिला था। इस घृणित कार्य को रोकने में केवल वह श्लोक ही समर्थ था। अतः रचयिता (भारवि) का पता लगाकर उसे सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार महाकवि भारवि के जीवन से सम्बद्ध अनेक दन्तकथायें हैं। यद्यपि इसमें प्रामाणिक अंग का अन्वेषण कर पाना कठिन अवश्य है किन्तु इन सबसे कवि का वैदुष्य, पाण्डित्य एवं तज्जन्य लोक-ख्याति तो स्पष्ट ही सिद्ध होती है। हमें इन दन्तकथाओं का ऐतिहासिक सम्बन्ध में विश्लेषण नहीं करना है, बल्कि इनसे भारवि के जीवन के कुछ तथ्यों को खोजना है जो अधोलिखित हैं—

१. भारवि का जीवन निर्धनता पूर्ण था।

२. भारवि के पाण्डित्य एवं उनकी विद्वत्ता की चतुर्दिक धाक थी।

**स्थिति-काल**

किसी भी कवि के जीवन-काल का मुख्याधार उससे परवर्त्ती साहित्य, अभिलेख अथवा स्वकृति में वर्णन होता है किन्तु महाकवि भारवि ने अपने जीवनवृत्त, समय आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। एतदर्थं हमें बाह्य साक्ष्यों पर ही अधिक आश्रित होकर निश्चय करना है। भारवि, कालिदास से परवर्ती अवश्य रहे क्योंकि कालिदास का प्रभाव भारवि पर दिखायी पड़ता है तथा भारवि का प्रभाव माघ काव्य में प्रत्यक्ष होने से माघ का पूर्ववर्ती मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। माघ का समय सात सौ ई० माना जाता है।

महाकवि भारवि के जीवन के सम्बन्ध में ऐहोल अभिलेख से भी जानकारी प्राप्त होती है। इस अभिलेख में चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी द्वितीय के शौर्य पूर्ण कार्यों का वर्णन है। इस अभिलेख में सामान्यतया चालुक्यवंशी राजाओं की वंशावली ही दी गयी है। यह शिलालेख बीजापुर जनपदस्थ ऐहोल ग्राम स्थित जैन मन्दिर में प्राप्त हुआ है। पुलकेशी से सहायता प्राप्तकर बुद्धिमान रविकीर्ति ने गौरव स्वरूप पत्थर का जैन मन्दिर बनवाया।[1] इस अभिलेख में इसका समय महाभारत युद्ध के ३७३५ वर्ष पश्चात् तथा कलियुग में शक राजाओं के संवत् ५५६ (६३४ ई०) वर्ष—पश्चात् बताया गया है।[2] इसमें रविकीर्ति

१. ऐहोल अभिलेख, श्लोक सं० ३५,

२. त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चाशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥—(ऐहोल अभिलेख, ३३, ३४)

ने अपने आश्रयदाता की वीरता एवं दानशीलता का वर्णन करते हुए अन्त में कालिदास एवं भारवि का उल्लेख करते हुए अपने को इन्हीं विद्वानों कवियों की श्रेणी में रखा है। जिस विवेकी रविकीर्ति ने नव अर्थ सर्जन के लिए सुदृढ़ पत्थर का जैन मन्दिर निर्मित कराया, उस रविकीर्ति की जय हो, जिसने अपनी काव्य कला में कालिदास और भारवि के यश को प्राप्त किया—

**येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।**
**स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः[1] ॥**

इससे प्रतीत होता है कि भारवि उस समय तक काव्य जगत् में प्रख्यात एवं लोकप्रिय हो चुके थे। यद्यपि कालिदास और भारवि के समय में अन्तर है तथापि इससे पुलकेशी द्वितीय से भारवि का पूर्ववर्त्ती होना सिद्ध होता है। इस ऐहोल अभिलेख का समय ६३४ ई० उल्लिखित है। अतः भारवि का समय इससे लगभग ५० वर्ष पूर्व मान्य होना चाहिये क्योंकि इतना समय तो महाकवि भारवि को प्रसिद्धि प्राप्त करने में लगा ही होगा। अतः भारवि का समय ६३४ ई० से ५० वर्ष पूर्व करके ५८५-५९० ई० तक निश्चित होता है।

भारवि की अमर कृति किरातार्जुनीय का उल्लेख दक्षिण भारत के एक अन्य अत्यन्त प्राचीन लेख में प्राप्त होता है, जो पृथ्वी कोंगणि का दानपत्र नाम से अति प्रसिद्ध है। महाराज पृथ्वी कोंगणि ने एक जैन मन्दिर की पूजा-अर्चादि के व्यय हेतु एक ग्राम दान में दिया था। इसी का उल्लेख इस दानपत्र में है। इस दानपत्र का समय[2] ६९८ शक संवत् उल्लिखित है। यह दानपत्र मान्यपुर नामक ग्राम में लिखा गया था। जैसी कि दानपत्रों में एवम् अभिलेखों में सम्बद्ध राजाओं का वंशानुक्रम परम्परा लेख्य होती है। उसी अनुसार आरम्भ में पृथ्वीकोंगणि की वंशावली[3] का वर्णन हुआ है, जो सम्पूर्ण गद्य और पद्य मिश्रित शैली में

१. ऐहोल अभिलेख, श्लोक संख्या ३५।
२. पृथ्वीकोंगणिमहाराजेन अष्टानवत्युत्तरषट्शतेषु (६९८) शक वर्षेष्वावर्तितेषु।
३. स्वस्तिजितं भगवता गतधनगगननामेन पदमनामेन श्रीमज्जाह्नवेयकुलामल-व्योमावभासनभास्कर.......श्रीमत्कोंगणिवर्मधर्ममहाधिराजस्य.........अविनीतनामान।

है। इस दानपत्र के अनुसार राजा पृथ्वीकोंगणि से सात पीढ़ी पूर्व अविनीत का पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ। यह बड़ा विद्वान् था। पिता द्वारा राज्याधिकार से च्युत कर दिये जाने पर इधर-उधर पर्यटन करते हुये किरातार्जुनीय के पन्द्रहवें सर्ग की टीका तथा बृहत्कथा का शब्दावतार नाम से संस्कृत-अनुवाद किया। इस दानपत्र का समय शक संवत् ६९८ अर्थात् ७७६ ई० है। इससे पृथिवी कोंगणि से सात पीढ़ी पूर्व जानने के लिए कम से कम २५ वर्ष प्रतिपीढ़ी कम करके ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार १७१ वर्ष ७७६ ई० से कम करने पर ६०० ई० के लगभग दुर्विनीत का समय निर्धारित होता है। यही समय रविकीर्ति के शासन काल का भी था। इस प्रकार इस दानपत्र के आधार पर सिद्ध हो जाता है कि भारवि सप्तम शती के प्रथम चरण तक अथवा पूर्व ही थे, पश्चात् नहीं। इस समय तक लोग भारवि के कर्तृत्व एवं नाम से सुपरिचित हो चुके थे। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भारवि का समय ईसा की षष्ठ शताब्दी के पहले ही मानना तर्क संगत प्रतीत होता है।

दण्डिकृत 'अवन्तिसुन्दरी' तथा अवन्तिसुन्दरीकथासार से भी महाकवि के जीवन-काल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। कविवर दण्डी 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' में दामोदर को अपना प्रपितामह बताते हैं।[1] जिन्हें महाकवि भारवि माना जाता है तथा जो चालुक्यवंशीय नरेश पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। विष्णुवर्धन का समय सप्तम शतक माना जाता है। दण्डी का समय ६३५ ई० से ७०० ई० के लगभग माना जाता है। इस प्रकार भारवि को तीन पीढ़ी पूर्व अथवा ७५ वर्ष पूर्व मानने पर इनका समय ५६० ई० मानना चाहिये। इस प्रकार भारवि का समय षष्ठ शताब्दी का मध्य या अन्तिम भाग माना जा सकता है।

वामन तथा जयादित्य ने अपनी काशिकावृत्ति में पाणिनीय-सूत्र[2] 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' में किरातार्जुनीय[3] के एक श्लोक खण्ड का उदाहरण दिया है। इससे सिद्ध होता है कि भारवि, वामन और जयादित्य

---

१. अवन्तिसुन्दरीकथासार १।२१--२२

२. अष्टाध्यायी १।३।२३

३. किरातार्जुनीय ३।१३

से बहुत पूर्व थे तथा इनके समय तक पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इससे भारवि का सप्तम शती से पूर्व होना निश्चित होता है।

राजशेखर (८८०-९२०) ई० ने भारवि का उल्लेख किया है—

> इह कालिदासमेण्ठामररूपसूरभारवयः।
> हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्[1] ॥

इस उज्जयिनी नगरी में कालिदास, भर्तृमेण्ठ, अमर, रूप आर्यसूर, भारवि, हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त नामक कवियों की परीक्षा हुयी थी।

बल्लाल कवि ने अपने भोज-प्रबन्ध में भारवि का उल्लेख किया है। यद्यपि इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें लगभग उक्त ग्रन्थ से पूर्ववर्त्ती समस्त कवियों को लाकर भोज के दरबार में उपस्थित कर दिया गया है। इसमें वररुचि, कालिदास, बाण, भवभूति, मयूर, माघ सभी कवियों को एक साथ ला दिया गया है।

बाणभट्ट ने अपनी कृति हर्षचरित के प्रारम्भ में कुछ सामान्य काव्यगत तथ्यों के पश्चात्, व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास जैसे सम्मानित कवियों का स्तवन किया है किन्तु इनमें महाकवि भारवि का कोई उल्लेखन नहीं है। अतः सम्भवतः भारवि काव्य-जगत् में प्रतिष्ठित नहीं हो सके थे। अन्यथा बाणभट्ट इनके सम्बन्ध में मौन न रहते। भारवि बाणभट्ट से पूर्ववर्त्ती थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारवि का समय ५५० ई० से ६०० ई० तक माना जा सकता है।

जैकोबी महोदय ने भारवि का समय षष्ठ शताब्दी का पूर्व माना है।[2] विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर भारवि का समय षष्ठ शताब्दी ही माना जा सकता है।

**रचना**

'किराताजुर्नीय' ही महाकवि भारवि की एक अमर कृति है जिसमें अष्टादशसर्ग हैं। इसके अतिरिक्त इनके किसी अन्य ग्रन्थ

---

१. काव्यमीमांसा, पृष्ठ १३६।

२. वियना ओरियण्टल सोसाइटी जनरल तीसरा भाग पृ० १४४

का पता नहीं चलता। भारवि ने स्वयं भी अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। किरातार्जुनीय के अनुशीलन से भारवि के सिद्धान्त का अनुमान लगाकर यह कहा जा सकता है कि इन्होंने एक ही ग्रन्थ का प्रणयन किया होगा। प्रथम तो यह कि भारवि बड़े ही स्वाभिमानी एवं नैतिक मूल्यों के संस्थापक हैं। वे आत्मश्लाघा को निन्दा-स्वरूप मानते हैं।[1] महाकवि भारवि ने अक्षय यश के लिये एक ही कृति पर्याप्त माना होगा। उनकी दृष्टि में तो वही पुरुष है जिसका नाम प्रथम अंगुलि पर लिया जाय।[2] अतः इस दृष्टि से भारवि ने एक अद्वितीय कृति की सर्जना की। भारवि नाम का अर्थ सूर्य होता है। अतः यदि महाकवि ने, यथानाम अर्थात् सूर्य भी एक ही है जो समस्त विश्व को आलोक प्रदान करता है, का विचार कर एक ही ग्रन्थ का प्रणयन किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भारवि संख्याधिक्य के बजाय अन्तः शक्ति-पूर्ण एकाकी होना अधिक उपयुक्त मानते हैं, जिसमें बहुआयामी, लोकाश्चर्यकारी प्रतिभा विद्यमान है।[3]

महाकवि ने 'एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराशतान्यपि' के अनुसार एक ही लोक-विश्रुत कृति को पर्याप्त माना है। भारवि के एक श्लोक के आधार पर उन्हें 'आतपत्रभारवि' से संस्कृत साहित्य में समलंकृत किया गया है जो किरातार्जुनीय[4] में उपलब्ध है। इससे किरातार्जुनीय भारवि की कृति सिद्ध होती है।

भारवि की रचनाओं के परिज्ञान का आधार इनसे परवर्ती महाकवि माघ को माना जा सकता है क्योंकि भारवि का प्रभाव माघ पर स्पष्ट लक्षित होता है। माघ का जो काव्य-शैलीगत अनुकरण है, वह किरातार्जुनीय के अनुरूप है। अतः किरातार्जुनीय ही भारवि का एकमात्र ऐसा महाकाव्य था जिसे एक आदर्श मानकर माघ ने स्पर्धा की होगी।

संस्कृत के विभिन्न सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की टीका मल्लिनाथ ने की है। 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य की टीका भी 'घण्टापथ' (मल्लिनाथी) सुविख्यात है। इन्होंने किरात-काव्य को 'नारिकेलफलसम्मितं

१. 'अन्यदोषमिव स्वकं गुणं ख्यापयेत् कथं धृष्टता जडः।' (१३।४८)

२. किरातार्जुनीयम्, ११।६२

३. वही, १४।५८

४. वही, ५।३९

वचः'[१] की संज्ञा दी है। प्रसिद्ध व्याख्याकार मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीय के प्रथमसर्ग के अन्तिम श्लोक[२] की व्याख्या में उक्त महाकाव्य के नेता एवं रसादि का तथ्यपरक निर्णय दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि महाकवि भारवि की एक ही कृति 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य है अन्यथा भारवि जैसे महाकवि की अन्य कृति पर मल्लिनाथ टीका अथवा व्याख्या करने में मौन न रहते।

दशरूपककार धनञ्जय ने भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य से रसविमर्श के अन्तर्गत 'मति' व्यभिचारी भाव का उदाहरण दिया है।

**'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।**
**वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥'[३]**

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में किरातार्जुनीय के विभिन्न श्लोक उद्धृत किये हैं।[४] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि ने एकमात्र 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य से अपने यशः शरीर को सहस्रों युगों तक के लिये अमर कर दिया है।

कृष्ण कवि ने अपने भरतचरित काव्य में महाकवि भारवि को प्रशंसा इस प्रकार की है—

**'प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।**
**सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या॥'**

इसके द्वारा भारवि की एकमात्र कृति किरातार्जुनीय के उत्तरवर्ती कवियों का उपजीव्यत्व सूचित होता है।

---

१. "नारिकेलफल-सम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥"
(मल्लिनाथ घण्टापथः)

२. नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजः। (किरात, १।४६)

३. किरातार्जुनीय, २।३०

४. काव्यमीमांसा, ७ वां अध्याय, पृ० १८
,, ११ वां अध्याय, पृ० १४४
,, १३ वां अध्याय, पृ० १७४
,, १५ वां अध्याय, पृ० २१४

## महाकवि माघ

### जीवन-वृत्त

महाकवि माघ ने अपना संक्षिप्त जीवन परिचय शिशुपालवध के अन्तिम पाँच श्लोकों में दिया है। माघ सुप्रभदेव के पौत्र थे। सुप्रभदेव राजा श्रीवर्मल के सर्वाधिकारप्राप्त महामन्त्री थे। सुप्रभदेव का राजा श्रीवर्मल के यहाँ बड़ा सम्मान था। इन्हीं सुप्रभदेव का सरल-स्वभाव, धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर के समान धर्मपरायण दत्तक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इनका दूसरा नाम सर्वाश्रय भी था। इन्हीं दत्तक के पुत्र 'शिशुपालवध' के कर्त्ता माघ कवि थे।[१] इस संक्षिप्त वर्णन से महाकवि के समग्र जीवन का सम्यक् परिज्ञान नहीं हो पाता है। इसके लिए विभिन्न अन्य साक्ष्यों का आश्रय लेकर ही ज्ञान किया जा सकता है।

जैनकवि चन्द्रप्रभसूरि ने अपने प्रभावकचरित (१३३४ वि०) में महाकवि माघ का नामोल्लेख किया है। गुजरात में श्रीमाल (भीनमाल) नामक एक समृद्धिशाली नगर था।[२] उस श्रीमाल के राजा वर्मलात का मन्त्री सुप्रभदेव था।[३] इनके दो पुत्र दत्तक और शुभंकर हुये।[४] दत्तक के पुत्र माघ हुए, जिसके बालसखा राजा भोज थे जो अत्यन्त विद्वान् थे।[५] इस ग्रन्थ में माघ के पितृव्य शुभंकर को श्रेष्ठी लिखा गया है।[६]

उन शुभंकर श्रेष्ठी के सिद्धनायक नामक अत्यन्त दुराचारी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बाद में जैन-धर्म में दीक्षित हो गया और उपमितिभव-

---

१. 'शिशुपालवध, कविवंश वर्णनम्'

२. अस्ति गुर्जरदेशोऽन्यसज्जराजन्यदुर्जरः।
तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुरं मुखमिव क्षितेः॥ प्रभावकचरित, ५–६

३. नृपः श्रीवर्मलाताख्यः शत्रुमर्मभिदक्षमः।
तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मन्त्री मित्रं जगत्यपि॥ वही, ९–१०

४. तस्य पुत्रावुभावंसाविव विश्वभरक्षमौ।
आद्योदत्तः स्फुरद् वृत्तो द्वितीयश्च शुभंकरः॥

५. तस्य श्रीभोजभूपालबालमित्रं कृतीश्वरः।
श्रीमाघो नन्दनो ब्राह्मीस्यंदनः शीलचन्दनः॥ वही, १५

६. तथा शुभंकरः श्रेष्ठी विश्वविश्वप्रियंकरः।
तस्य दानाद्भुतैगीतैर्हर्यश्वो हर्षभूरभत्॥ वही, १८

प्रपंच कथा लिखी।[1] उस समय 'श्रेष्ठी' सम्भवतः जैनों और वैश्यों दोनों का सम्बोधन था। वैश्य न होते हुए भी जैनियों को भी 'श्रेष्ठी' कहा जाता था। शुभंकर के पुत्र सिद्ध के 'उपमितिभवप्रपंच कथा' में जिनेश्वर की वन्दना करने से प्रतीत होता है कि माघ के पितृव्य शुभंकर तथा चचेरे भाई सिद्धर्षि जैन रहे होंगे। माघ काव्य का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि वह ब्राह्मण ही रहे होगें। प्रायः कवि समाज की एवं निज की मान्यताओं का यथावसर वर्णन अवश्य करता है। उन सिद्धान्तों एवं नियमों का पुनः पुनः प्रतिपादन करके कवि अपने स्वभाव जात्यादि का अप्रत्यक्ष वर्णन अथवा संकेत किये बिना नहीं रह सकता। माघ के शिशुपालवध में ब्राह्मणत्व का पुनः पुनः कतिपय स्थलों पर दिग्दर्शन कराया है। जिससे उनका ब्राह्मण होना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद का वर्णन करते हुये उनके यज्ञोपवीत का जो स्वाभाविक वर्णन किया है उससे प्रतीत होता है कि माघ ब्राह्मण कुल में अवतीर्ण हुये होंगे।[2] इस प्रकार के ब्राह्मणोचित कर्मों का समुचित वर्णन करने से उनका ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है अन्यथा जैन अथवा अन्य धर्मावलम्बी या अन्य वर्ण का वैष्णव ही इतनी सूक्ष्मता एवं पटुता से ब्राह्मणोचित यज्ञोपवीत यज्ञ, कुश, मन्त्रोच्चारण नियम, ब्राह्मण, सत्कारादि[3] का वर्णन नहीं कर सकता। इससे महाकवि का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है, माघ उच्चकुलोत्पन्न थे। माघ के ब्राह्मण होने का अनुमान 'कविवंशवर्णन' के प्रथम श्लोक से भी किया जा सकता है जिसमें 'देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा' दूसरे देवता के रूप में सुप्रभदेव को कहा गया है। दूसरे देवता या पृथ्वी के देवता ब्राह्मण माने जाते हैं। अतः सम्भव है कि माघ ने इसके द्वारा अपने पितामह के ब्राह्मण होने का संकेत किया है, जिससे उनका ब्राह्मण होना सिद्ध होता है।

'प्रबन्धचिन्तामणि' के आधार पर भी माघ का ब्राह्मण होना स्पष्ट होता है। इसमें माघ से सम्बद्ध वर्णन के अन्त में—

---

१. 'रम्यामुपमितभवप्रपंचाख्याम् महाकथाम्।'

(प्रभावकचरित, ९६)

२. शिशुपालवधम्, १।७

३. वही, ११।१४, १४-२२, २३, २४,

'श्रीमालेषु सजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन् पुरुषरत्ने विनष्टे क्षुधा
बाधिते सति भिल्लमाल इति तज्ज्ञातं नाम निर्ममे ।
एतदतिरिक्तं न भिक्षा दुर्भिक्षे जाति दुरवस्था कथमृणं
लभन्ते कर्माणि क्षितिपरिवृढान् कारपतिकः' ।

'इस अकाल में कौन कर्मकाण्ड करायेगा'' वर्णन से उनका कर्मकांडी ब्राह्मण होना तर्कसंगत प्रतीत होता है । माघ का जीवन सम्पन्नता एवं सुख में बीता था । माघकृत वर्णनों से प्रतीत होता है कि वे धनाढ्य एवं पैतृक सम्पत्ति से पूर्ण थे । महाकवि ने देवर्षि नारद के सत्कारादि के पश्चात् उनके ब्रह्मा से विद्या एवं ज्ञान प्राप्ति की उपमा सुसम्पन्न पिता द्वारा पुत्र को दी जाने वाली प्रचुर सम्पत्ति से दी है।[1] पंचम सर्ग में रैवतक पर्वत पर ठहरी हुई सेना का वर्णन करते हुए हाथियों के खाद्यादि का जो वर्णन किया है, उसे देखकर महाकवि माघ के विपुल वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है ।

**जन्मस्थान**

महाकवि माघ के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं । उनका जन्म गुजरात प्रान्त के भीनमाल नामक नगर में हुआ था । शिशुपाल-वध की कुछ प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों के अन्त में—इति श्रीभिन्न-मालवास्तव्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ 'शिशुपालवधे' महाकाव्ये.........लिखा मिलता है ।

इससे स्पष्ट होता है कि माघ भिन्नमाल नगर के निवासी अवश्य रहे होंगे । यही भिन्नमाल या भीनमाल कुछ काल के बाद श्रीमाल हो गया । प्रभावकचरित में श्रीमाल के राजा का नाम वर्मलात तथा मन्त्री सुप्रभदेव का उल्लेख है ।[2] यद्यपि महाकवि ने अपने जन्मस्थान का उल्लेख स्वयं नहीं किया है तथापि उनके महाकाव्य के अनुशीलन से

---

१. कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना ।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ।।
(शिशुपाल० १--२८)

२. अस्ति गुर्जरदेशोऽन्य.... ...तस्य सुप्रभदेवोऽस्ति मन्त्री ... ...
(प्रभावकचरित १४--५--१०)

अनुमान लगाया जा सकता है। मनुष्य का अपने वातावरण, देश एवं काल से प्रभावित होना स्वाभाविक होता है। जिस वस्तु अथवा स्थान का कवि विशेष रुचिपूर्वक वर्णन करता है, उससे उसका वैयक्तिक अनुराग प्रतीत होने लगता है। यद्यपि कवि निजत्व से बहुत ऊपर एवं सार्वजनीन होता है तथापि निकटस्थ वस्तु सर्वाधिक प्रभावित करती है।

इस आधार पर हम देखते हैं कि माघ ने रैवतक पर्वत का अत्यधिक अनुराग से वर्णन किया है। रैवतक पर्वत का वर्णन सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग में महाकवि ने विभिन्न रूपकों एवं उपमाओं के साथ किया है। यह पर्वत गुजरात के ही अन्तर्गत है जिससे महाकवि माघ का गुजरात प्रान्तस्थ भीनमाल या भिन्नमाल का निवासी होना स्पष्ट होता है।

शिशुपालवध के १९वें सर्ग के अन्तिम (१२०) चक्रबन्ध श्लोक का अध्ययन करने से उनके जन्म-स्थान का संकेत प्राप्त होता है। इसमें यद्यपि भगवान् कृष्ण के दिव्य एवं पराक्रमी रूप को प्रदर्शित किया गया है किन्तु सम्भवतः कवि ने इसी व्याज से स्ववर्णन भी कर दिया है। कवि ने इसमें गुर्जर प्रतिहार 'श्रीवत्सभूमिमुंदा' राजा की ओर संकेत किया है।[1] गुर्जर प्रतिहार का प्रभाव ७५५ से ८०० ई० तक भीनमाल और मालवा पर था। इससे माघ का भीनमाल निवासी होना सिद्ध होता है। भोजप्रबन्ध में भी माघ का गुजरात निवासी होना वर्णित है। माघपत्नी के दरबार में पहुँचने पर द्वारपाल ने राजा से कहा—हे स्वामिन् ! गुजरात से माघ नामक पण्डित वर नगर के बाहर पधार चुके हैं।[2] इससे महाकवि का श्रीमाल या भीनमाल निवासी होना प्रतीत होता है। भीनमाल या श्रीमाल गुजरात की प्रथम राजधानी थी। शिशुपालवध के विभिन्न वर्णनों से प्रतीत होता है कि माघ पर्वतों एवं जंगलों के निकटस्थ क्षेत्र के निवासी रहे होंगे।

**समय**

महाकवि माघ के जीवन काल के सम्बन्ध में यद्यपि विभिन्न विद्वानों में मतैक्य नहीं है तथापि कुछ निश्चित साक्ष्यों के आधार पर उनका समय-निर्धारण किया जा सकता है। महाकवि भारवि का माघ कवि पर स्पष्ट प्रभाव होने से माघ भारवि से उत्तरवर्त्ती सिद्ध होते हैं।

---

१. शिशुपालवध, १९।१२०

२. देव ! गुर्जरदेशान्माघनामा पण्डितवर आगत्य नगराद्बहिरास्ते।

बल्लालकृत भोजप्रबन्ध में महाकवि माघ की दानशीलता का वर्णन किया गया है। भोज के राज्य में पहुँचकर माघ ने अपनी पत्नी को एक श्लोक[1] जो शिशुपालवध में उपलब्ध है, देकर दरबार में भेजा। उक्त श्लोक की चारुता तथा लोक-सत्यता की व्यंजना का अनुभव कर गुण-ग्राही विद्वान् राजा ने प्रभूत धन प्रदान किया, जिसे माघ-पत्नी ने पति का गुणानुवाद करने वाले भिक्षुकों को दान कर दिया। याचकों को आता देखकर तथा स्वयं को धनहीन समझकर महाकवि ने प्राणत्याग कर दिये। इस कथा के अनुसार माघ राजा भोज के समकालिक सिद्ध होते हैं। भोज का समय ११वीं शताब्दी होने से माघ का भी यही समय होना चाहिए। इस वर्णन के आधार पर तो माघ का भोज के सम-कालिक होना सिद्ध है किन्तु भोजप्रबन्ध की प्रामाणिकता पर विश्वास न होने से यह समय उपयुक्त नहीं माना जा सकता है। किसी प्रख्यात कवि के समय परिज्ञान में उससे उत्तरवर्ती लक्षणग्रन्थकारों का विशेष महत्त्व माना जा सकता है क्योंकि ये ग्रन्थकार अपने पूर्ववर्ती कवियों के गुण-दोषों का यथास्थान उल्लेख अवश्य करते हैं। इस दृष्टि से हम ध्वनि-वादी आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक का आश्रय ले सकते हैं। आनन्दवर्धन ने माघ के दो श्लोकों[2] को अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक की कारिका[3] की वृत्ति में उद्धृत किया है। आचार्य आनन्दवर्धन का समय ईसवीय नवम शताब्दी का मध्य माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि महाकवि माघ इससे पूर्व के होंगे। इस काल तक 'शिशुपालवध' विद्वत्समाज में प्रतिष्ठित हो चुका था। आचार्य वामन ने भी काव्या-लंकारसूत्रवृत्ति में एक सूत्र[4] के उदाहरण में शिशुपालवध[5] का श्लोक दिया है। तुल्ययोगिता का उदाहरण भी इसी काव्य से दिया है।[6] वामनाचार्य का समय ८वीं शताब्दी का अन्त या नवम शताब्दी का प्रारम्भ मान्य है। इस दृष्टि से महाकवि माघ ८वीं शताब्दी से बहुत पूर्व के सिद्ध होते हैं। इन निश्चित प्रमाणों से इतना अवश्य स्पष्ट है कि माघ

१. शिशुपालवध, ११-६४

२. शिशुपालवध ३।५३ तथा ५।२६

३. ध्वन्यालोक, २।२६ अलंकारान्तरस्यापि।

४. सम्भाव्यधर्मस्य तदुत्कर्षकल्पनातिशयोक्तिः।—काव्यालंकारसूत्र वृत्ति, ४।३।१०

५. शिशुपालवध ३।८

६. वही, ५।५३

८वीं शताब्दी के पश्चात् कदापि नहीं माने जा सकते। दक्षिण देशीय सुविख्यात राजा अमोघवर्ष के समकालिक कवि नृपतुंग विरचित कन्नड़-ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में माघ का नामोल्लेख हुआ है। अमोघवर्ष का समय ८१४ ई० समझा जाता है। अतः माघ इससे पूर्व अवश्य रहे होंगे। इस प्रकार माघ को नवम शताब्दी के बाद नहीं माना जा सकता।

इसके अतिरिक्त बाणभट्ट ने अपनी कृतियों में माघ का कोई उल्लेख नहीं किया। जबकि हर्षचरित में उन्होंने कालिदास, भास, सुबन्धु भट्टहरिश्चन्द्र आदि का नाम गिनाया है। बाण हर्ष के (समय ६०६ ई० से ६४८ ई०) सभापण्डित थे। इस प्रकार माघ ६०६ ई० से पूर्व नहीं रहे होंगे अन्यथा बाणभट्ट माघ जैसे लब्ध प्रतिष्ठ एवं क्लिष्ट कवि का, रचनाशैलीगत स्वाभाविक मेल होने से अवश्य ही उल्लेख करते। अतः महाकवि माघ को ६०६ ई० पूर्व का नहीं माना जा सकता। जहाँ तक माघ को ग्यारहवीं शताब्दी में मानने का प्रश्न है वह एक तो भोजप्रबन्ध को अप्रमाणिकता तथा दूसरे सोमदेव कृत (९५९ ई०) यशस्तिलकचम्पू में माघ का उल्लेख होने से अमान्य है।

माघ के काल-निर्धारण में वसन्तगढ़ के शिलालेख को प्रमुख आधार माना जाता है। डॉ० कीलहार्न को राजस्थान के वसन्तगढ़ नामक स्थान से शिलालेख प्राप्त हुआ है। यह वर्मलात नामक किसी राजा का है। जिसका समय वि० सं० ६८२ अर्थात् ६२५ ई० है। माघ ने शिशुपाल-वध के अन्तिम पाँच श्लोकों में जो वंश वर्णन किया है उनमें अपने पितामह सुप्रभदेव को श्रीवर्मल नामक राजा का मंत्री बताया है।[1]

भीनमाल के निकटस्थ प्रदेश में इस शिलालेख के प्राप्त होने से डॉ० कीलहार्न राजा वर्मलात को ही माघ के पितामह सुप्रभदेव को आश्रय देने वाला मानते हैं। यह तर्क अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है, जिससे सुप्रभदेव को लगभग ६२५ ई० का तथा माघ का समय लगभग ५० वर्ष बाद अर्थात् ६७५ ई० से ७०० ई० तक निर्धारित करना समीचीन प्रतीत होता है। विभिन्न बाह्य साक्ष्यों के आधार पर तो माघ का समय

१. सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेव - नामा॥

(कविवंशवर्णनम्)

७ वीं शताब्दी ही उचित प्रतीत होता है तथापि प्राप्त अन्तःसाक्ष्य पर भी कालनिर्णयार्थ विचार करना आवश्यक है। द्वितीय सर्ग के एक श्लोक[1] में उद्धव ने कार्यद्वयाकुल श्रीकृष्ण को राजनीति के साथ ही शब्द-विद्या से सम्पन्न वर्णन किया है।

ऐसी राजनीति जिसमें नीतिशास्त्र के प्रतिकूल एक पग भी नहीं रखा जाता, कार्य सुसम्पन्न करने वाले भृत्यादिकों को पुरस्कृत किया जाता हो, तथापि बिना गुप्तचर व्यवस्था के वह राजनीति वैसे ही नहीं सुशोभित होती जिस प्रकार पाणिनि प्रणीत सूत्रार्थप्रतिपादक न्यास ग्रन्थयुक्त सुन्दर वृत्ति तथा काशिका सूत्रों के व्याख्यानात्मक ग्रन्थ व श्रेष्ठ निबन्धन ( पतंजलि–महाभाष्य ग्रन्थावली ) वाली व्याकरण विद्या भी पस्पशाह्निक ( महाभाष्य का प्रथम अध्याय का प्रथम आह्निक ) के बिना सुशोभित नहीं होती है।

इस श्लोक में प्रधान रूपेण तो राजनीति वर्णित है किन्तु श्लेष द्वारा व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी अर्थ स्पष्ट हुआ है। इसमें न्यास और वृत्ति का उल्लेख हुआ है जिसमें वृत्ति का तात्पर्य पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी पर जयादित्यकृत काशिका वृत्ति से है। जयादित्य का समय ६५० ई० है। अतः माघ का समय ६५० ई० के पश्चात् ही होना चाहिए।

मल्लिनाथ ने यहाँ 'न्यास' का अर्थ जितेन्द्रबुद्धि कृत न्यास ही माना है, जिसको रचना ७०० ई० के लगभग हुई थी। इस प्रकार माघ का समय आठवीं शताब्दी का मध्य निश्चित होता है। इस सम्बन्ध में एम० एस० भण्डारी ने माघ काव्य के श्लोकों में न्यासकार का प्रभाव दृष्टिगत होने से जिनेन्द्रबुद्धि कृत न्यास को ही तर्क संगत माना है। न्यास में परिभाषा[2] को जिस रूप में परिभाषित किया है, उसी का अनुसरण माघ ने शिशुपालवध में करते हुये लिखा है—

**परितः प्रमिताक्षरापि सर्वविषयं प्राप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।**
**न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा॥**[3]

---

१. अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥——२।११४

२. परितो व्यापृता परिभाषा।
परिभाषा त्वेकदेशस्थापि सर्वत्रशास्त्रे व्याप्रियते॥— न्यास २।१-१

३. शिशुपालवध १६।८०

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर महाकवि माघ का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

**रचना—**

महाकवि भारवि की ही भाँति महाकवि माघ की भी एक ही कृति शिशुपालवध समुपलब्ध है। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि माघ जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि ने क्या एक ही ग्रन्थ का प्रणयन किया होगा। यद्यपि उनकी एक ही कृति उनके अक्षय यश को आसृष्टि बनाये रखने में सक्षम है। 'शिशुपालवध' के अतिरिक्त अन्यत्र भी माघ के नाम से उद्धृत श्लोक प्राप्त होते हैं जो वस्तुतः माघ की ही उदात्त शैली के प्रतीत होते हैं। सुभाषितरत्नभाण्डागार तथा क्षेमेन्द्रकृत औचित्य-विचारचर्चा आदि ग्रन्थों में 'शिशुपालवध' महाकाव्य से इतर अन्य श्लोक प्राप्त होते हैं। सुभाषितरत्नभाण्डागारम् में प्राप्त श्लोक इस प्रकार हैं—

**'अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा।**
**त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे।**
**याञ्चा च लाघवकारी, स्ववधे च पापम्।**
**प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलंबितेन॥'**[1]

इसके अतिरिक्त काश्मीरी कवि श्री वल्लभदेव द्वारा संकलित सुभाषितावलिः में भी माघ के नाम से कुछ श्लोक[2] प्राप्त होते हैं।

औचित्यविचारचर्चा में क्षेमेन्द्र ने तत्त्वौचित्य के उदाहरणमें माघकृत श्लोक को उद्धृत किया है—

**बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते न पीयते काव्यरसः पिपासितैः।**
**न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः॥**

इस प्रकार विभिन्न स्थलों पर माघ के नाम से श्लोक उद्धृत होने से सहज ही अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवतः महाकवि ने 'शिशुपालवध' के अतिरिक्त भी किसी ग्रन्थ की रचना की होगी। शिशुपालवध के अतिरिक्त और कोई माघ कृत ग्रन्थ नहीं उपलब्ध है। इस महाकाव्य में बीस सर्ग हैं। माघ ने महाभारत की कथा को आधार बना-

---

१. सुभाषितरत्नभाण्डागार श्लोक सं० ५०
२. सुभाषितावलिः, श्लोक सं० १५६१ तथा ३०७३,

कर संक्षिप्त मूल कथा को अपनी काव्य प्रतिभा से विस्तृत कलेवर प्रदान किया है। इस महाकाव्य में काव्यशास्त्रों में प्रतिपादित रस, गुण, अलंकारादि काव्यतत्त्व सम्यक् प्रतिष्ठित दिखायो देते हैं। महाकवि ने भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवाद यशः प्राप्ति हेतु किया है।[1] माघ भगवान् कृष्ण के आराधक थे। माघ के काव्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि माघ वेद, व्याकरण, पुराण, वेदान्त, बौद्ध दर्शन, राजनोति, कामशास्त्र, संगोत, अश्वविद्या, हस्तिविद्या आदि सभी विषयों में निष्णात थे। इस काव्य की सर्वाधिक विशेषता एक भक्त कवि हृदय द्वारा बहुक्षेत्रोय लोकानुकरणीय आदर्श को प्रतिष्ठापना है। इस काव्य में रामायण गीता जैसे पवित्र ग्रन्थों के उद्देश्यों का अनुपालन किया है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' के अनुसार लोकोत्पीड़कों का विनाश तथा सज्जनों के परित्राणार्थ शिशुपाल एवं श्रीकृष्ण की कथा को काव्य का विषय बनाया है। इस काव्य का अध्ययन कर इसको काव्यगुरुता का अनुभव करते हुए विद्वानों में—

'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' तथा 'मेघे माघे गतं वयः' आदि प्रशस्त सूक्तियाँ प्रचलित हैं।

इस महाकाव्य की उदात्तता का अनुभव करते हुये विभिन्न लक्षण-ग्रन्थकारों—आनन्दवर्धन, धनंजय, राजशेखर आदि ने अपने मत को पुष्टि में इसके अनेक श्लोक उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये हैं।

---

१. 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारुमात्र······

तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः॥—कविवंशवर्णन श्लोक, ५

: २ :

## किरातार्जुनीय महाकाव्य की कथा का स्रोत

कवि अपनी काव्य-प्रतिभा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये यथारुचि किसी कथा अथवा आख्यान को आधार बनाता है और जिसके अनुसार ही वह अपनी कथावस्तु का विधान करता है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में दण्डी,[1] विश्वनाथ[2] आदि आचार्यों ने महाकाव्य रचना के लक्षणों में यह निर्देश किया है कि महाकाव्य में लोकप्रसिद्ध प्रख्यात सज्जनाश्रित ऐतिहासिक इतिवृत्त का वरण करना चाहिये। लक्षण ग्रन्थोक्त इन निर्देशों का प्रायः कालिदास, भारवि, माघ आदि विदग्ध महाकवियों ने सम्यक् रूप से पालन किया है।

इस दृष्टि से महाभारत तथा शिवमहापुराण किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रमुख रूप से उपजीव्य हैं एवं महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराण शिशुपाल-वध के प्रमुख कथास्रोत हैं।

इतिवृत्त के चयन में कवि को यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि वह रसोत्कर्षक हो, क्योंकि रस ही काव्य का जीवातु है। इस सम्बन्ध में ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन ने इसका भी उल्लेख किया है कि इतिवृत्त में रसापघातक अवस्था होने पर उसमें परिवर्तन परिवर्धन भी कर लेना चाहिये।[3] कवि मात्र इतिहास का पोषक नहीं होता अपितु वह आदर्श समाज का स्रष्टा होता है। अतः यथारुचि परिवर्तन करने के लिये वह सर्वथा स्वतन्त्र है।[4] इसके लिये काव्यगत रसौचित्य एवं सामाजिक आदर्श का ध्यान रखना आवश्यक होता है। आचार्य धनंजय ने दशरूपक में कहा है कि प्रख्यात इतिवृत्त में जो कुछ नायक के लिये अनुचित तथा रसविरोधी हो उसे त्याग देना चाहिये अथवा अन्य प्रकारेण उसकी कल्पना कर लेनी चाहिए।[5]

---

१. इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।—काव्यादर्श, १।१५

२. इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।—साहित्यदर्पण, ६।३१८

३. इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाननुगुणां स्थितिम्।
उत्प्रेक्ष्याऽप्यन्तराभीष्ट-रसोचितकथोन्नयः॥—ध्वन्यालोक, ३।११

४. यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।—अग्निपुराण, ३३९।१०

५. यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥—नाट्यशास्त्र, ३।२४

आचार्य रुद्रट ने इतिवृत्त के आधार पर महाकाव्य के उत्पाद्य एवं अनुत्पाद्य नाम से दो भेद किये हैं। रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु के अनुसार किरातार्जुनीय अनुत्पाद्य महाकाव्य है क्योंकि वह इतिहासप्रसिद्ध वृत्त पर आधारित है।[१]

कवि ने महाभारत तथा शिवपुराण की कथा में यथास्थान परिवर्तन कर उसे सरस एवं रोचक बना दिया है। यह कथा वनपर्व के २७ से ४१वें अध्याय तक वर्णित है।

महाभारत में इस कथा का आरम्भ इस प्रकार होता है—एक दिन सायंकाल वनवासी पाण्डव शोकग्रस्त होकर द्रौपदी के साथ वार्तालाप कर रहे थे। इसी वार्तालाप के मध्य द्रौपदी ने अपनी हृद्‌गत पीड़ा एवं पाँचों पतियों की दयनीय दशा का संकेत कर युधिष्ठिर से कहना प्रारम्भ किया।[२] द्रौपदी ने कहा कि दुर्योधन वज्र क्रूर और दुरात्मा है। हम लोगों को दुःखित देखकर उसे किंचित् कष्ट नहीं हुआ। उसने हम लोगों को मृगचर्म धारण करा कर वन भेज दिया। द्यूत में कपटपूर्वक जीतकर आप जैसे (युधिष्ठिर) सरल एवं धर्मात्मा पुरुष को भरी सभा में उसने कटु वचन कहे। मुनिवेश में मृगचर्म धारण किये आपके वन-प्रस्थान काल में पापात्मा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन के नेत्रों में आँसू नहीं आये, जबकि अन्य कौरव अश्रुपूरित हो रहे थे। तदनन्तर द्रौपदी पाण्डवों के पूर्वकालिक राज्य-वैभव का स्मरण दिलाती है। आप लोगों को सुनहले पर्यङ्क छोड़कर कुश-कास के विस्तर पर शयन करते देखकर मुझे हाथी दाँत का सिंहासन स्मरण हो जाता है।[३] बड़े-बड़े राजाओं से आप सदैव सेवित थे। आप लोगों का शरीर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से चर्चित रहता था। वही आप आज मलिन वस्त्र धारण किये हुये जंगलों में भटक रहे हैं। आपके महलों में प्रतिदिन हजारों ब्राह्मणों को इच्छित भोजन कराया जाता था तथा उन्हें अभीप्सित वस्तुयें प्रदान कर आदर किया जाता था। इन सबका अभाव देखकर अब मेरा मन कैसे शान्त हो सकता है?[४] इसके

१. काव्यालंकार ( रुद्रट ) १६।४ पर टीका।

२. महाभारत, वनपर्व, २७।१-९

३. वही, २७।११

४. वही, २७।१५-१८

पश्चात् द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध करने के लिए उत्तेजक वचन कहती हैं—"स्वामिन्! भीम को वनवासी और शोकग्रस्त देखकर आपके चित्त में क्रोध क्यों नहीं उमड़ता ? अर्जुन दो बाँहों के होने पर भी सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन के समान पराक्रमी हैं। देवताओं और दैत्यों के पूजनीय पुरुषसिंह अर्जुन आज वनवासी हो रहे हैं।[१] आपके चित में क्रोध का उदय क्यों नहीं होता ? श्यामवर्ण, विशाल शरीर नकुल ?[२] और सहदेव जैसे अप्रतिम वीर को वनवासी देखकर आप क्यों मौन हो रहे हैं ? आपकी सहन शक्ति धन्य है। उचित ही है कि आप में क्रोध नहीं है, वह क्षत्रिय कैसा जो यथावसर अपना क्रोध व्यक्त नहीं कर सकता, वह समस्त प्राणियों से तिरस्कृत होता है। शत्रुओं से क्षमा का नहीं पौरुष का व्यवहार करना चाहिये।" द्रौपदी विरोचन पुत्र बलि तथा उनके पितामह की कथा द्वारा अपने मत की पुष्टि करती है—पूर्वकाल में बलि के द्वारा प्रह्लाद से क्षमा और क्रोध के सम्बन्ध में पूछने पर प्रह्लाद ने दोनों (क्षमा-क्रोध) को यथावसर प्रयोग करना सफलता का साधक बताया है। युधिष्ठिर पुनः क्षमा को महत्त्वपूर्ण बताते हुये कहते हैं—"मनुष्य को स्वयं क्रोध के वशीभूत न रहकर क्रोध को स्वयं वश में रखना चाहिये। क्रूरता की कोमलता उत्तम है। क्रोध की क्षमा उत्तम है।" इस प्रकार युधिष्ठिर ने क्षमा के माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। धर्मराज की बात सुनकर द्रौपदी ने कहा—"इस जगत् में धर्माचरण, दयाभाव, क्षमा, सरलता, लोकापवाद के भय से राजलक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती है। द्रौपदी ईश्वर के प्रति अपनी अनास्था भी व्यक्त करती है। आप धर्म के लिये भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और मुझे भी छोड़ सकते हैं। परन्तु वह धर्म भी आपकी रक्षा नहीं करता। जब मैं देखती हूँ आप जैसे सदाचार परायण आर्यजन सुखेन जीवन निर्वाह भी नहीं कर सकते, चिन्तामग्न रहते हैं और अनार्यजन सुख भोग करते हैं, तब मुझे बड़ा दुःख होता है। आपकी यह विपत्ति और दुर्योधन की सम्पत्ति देखकर मैं ईश्वर की निन्दा करती हूँ।" युधिष्ठिर धर्म के प्रति आस्था के सम्बन्ध में द्रौपदी को समझाते हैं—"तुम अपने मूढ़ मन से ईश्वर और धर्म पर आक्षेप मत करो और न कोई शंका ही करो।" युधिष्ठिर की बातों को सुनकर

---

१. महाभारत वनपर्व, २७।२८ का उत्तरार्द्ध

२. वही, २७।३१ का उत्तरार्द्ध

द्रौपदी कहती हैं कि मैं धर्म अथवा ईश्वर की अवमानना कभी नहीं करती। इसके साथ ही द्रौपदी बृहस्पति द्वारा उपदिष्ट नीतिशास्त्र का वर्णन प्रस्तुत करती है। इस नीति के अनुसार विभिन्न उदाहरणों द्वारा कर्मवाद का उल्लेख करते हुये कहती है—जो भाग्य का भरोसा करके निष्क्रिय बैठे रहते हैं, हठवादी हैं। वीर पुरुष को अपनी बुद्धि के अनुसार देश, काल, शक्ति और उपायों का सम्यक् विचार कर अपना काम करना चाहिये। द्रौपदी की उत्तेजक बातें सुनकर भीम के मन में क्रोध जाग गया और उन्होंने लम्बी साँस लेते हुये कहा—दुर्योधन ने हमारा राज्य सरलता से नहीं प्राप्त किया है अपितु उसने कपटपूर्वक द्यूत के सहारे छल लिया है।[1] जितना ही हम सब उन्हें क्षमा करते हैं, वे सब असमर्थ मानकर कष्ट देते हैं। अतः युद्ध करना ही श्रेयस्कर है। भीम ने कहा कि आपके ही प्रभाव के कारण शत्रुओं ने हमारा राज्य हमसे छीन लिया है। जिससे हम सब पशु-सदृश जंगली जीवन व्यतीत कर रहे है।[2] युधिष्ठिर ने भीम के उत्तेजित विचारों को शान्त करते हुए कहा कि एक बार प्रतिज्ञा करके उसके विमुख होना कुलीन मनुष्य का काम नहीं है। भीम ने पुनः युधिष्ठिर को युद्धार्थ प्रेरित करते हुए कहा कि मनुष्य की आयु पल-पल व्यतीत हो रही है, मृत्यु सिर पर सवार है। इससे पहले ही राज्य प्राप्ति का उपाय करना चाहिये। इस पर युधिष्ठिर भीम को समझाते हैं कि एकाएक कौरवों से युद्ध करना समयोचित नहीं है। इस प्रकार युधिष्ठिर भीमसेन के साथ बात कर ही रहे थे कि भगवान् कृष्ण इसी मध्य कृष्णद्वैपायन वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे। पाण्डवों ने आगे बढ़कर वेदव्यास का स्वागत किया तथा उन्हें आसन पर बैठाकर विधिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर वेदव्यास ने युधिष्ठिर से कहा—"मैं तुम्हारे समस्त मनोरथों को जानता हूँ, इसी से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारे शत्रुजन्य समस्त दुःखों का शास्त्रोक्त रीति से विनाश करूँगा। मैं तुम्हें मूर्तिमान् सिद्धि के समान 'प्रतिस्मृति' नाम की विद्या प्रदान करता

---

१. महाभारत, वनपर्व ३३।९--३

२. भवतोऽनवधानेन राज्यं नः पश्यतां हृतम्।
अहार्यमपि शक्रेण गुप्तं गाण्डीवधन्वना॥
कुणीनामिव विल्वानि पङ्गूनामिव धेनवः!
हृतमैश्वर्यमस्माकं जीवतां भवतः कृते॥'—वही, ३३।६–७

हूँ। तुम यह विद्या अर्जुन को सिखा देना जिसके बल से यह तुम्हारा राज्य शत्रुओं से हस्तगत कर लेगा। वेदव्यास ने यह भी बतलाया कि अर्जुन अच्युतस्वरूप और अजेय है। तुम इसे अस्त्र विद्या प्राप्ति के लिए यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण और धर्मराज के पास भेजो। व्यास ने पाण्डवों को द्वैतवन से काम्यकवन में जाकर रहने की सम्मति दी। तत्पश्चात् युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या का उपदेश[1] किया और वे उनसे अनुमति प्राप्त कर वहीं अन्तर्धान हो गये। युधिष्ठिर वेदव्यास के उपदेशानुसार मन्त्र का मनन और जप करने लगे।[2]

यह 'प्रतिस्मृति' विद्या क्या है? युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन को उक्त विद्या सिखाते समय इसका भी उत्तर प्राप्त हो जाता है कि भगवान् वेद-व्यास ने मुझे एक गुप्त विद्या का उपदेश किया है जिसके प्रयोग से समस्त जगत सम्यक् दृष्टिगत होने लगता है। इस विद्या को तुम मुझसे सीखकर यथावसर देवानुग्रह प्राप्त करो।[3] एतदर्थ तुम दृढ़ ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर धनुष, बाण, कवच और खड्ग लेकर साधुओं की तरह मार्ग में किसी को अवकाश दिये बिना उत्तर दिशा की ओर यात्रा करो। युधिष्ठिर ने अर्जुन को शास्त्रोक्त विधि से मन्त्र दीक्षा देकर इन्द्रकील जाने की आज्ञा दी।[4] अर्जुन युधिष्ठिर से उपदिष्ट हो, गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस और कवच से सुसज्जित होकर चलने को तैयार हो गये। अर्जुन के प्रस्थान-काल में द्रौपदी ने उनके पास आकर दुर्योधनकृत अप-मान का स्मरण कराया तथा जाने की सम्मति देती हुई अर्जुन के कल्याण की कामना से देवी देवताओं की प्रार्थना की।[5] अर्जुन तीव्र गति से चल-कर देवसेवित हिमालय पर्वत तथा गन्धमादन पर्वत से होते हुए इन्द्रकील के निकट पहुँच गये।[6] वहीं पर जटाधारी तपस्वी के रूप में इन्द्र ने प्रश्न किया। शस्त्रादि (धनुष, बाण, कवच) से युक्त तुम कौन हो? तुम्हारा यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? यहाँ शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

१. महाभारत, वनपर्व, ३६।३८–३९

२. वही, ३६।४०–४२

३. वही, ३७।१०–१२

४. वहीं, ३७।१६–१७

५. वही, ३७।४१–५४

६. महाभारत वनपर्व, ३७।३९–४२

किन्तु अर्जुन को किञ्चित् विचलित होता हुआ न देखकर उस तपस्वी ने कहा—"मैं इन्द्र हूँ। यथेच्छ वर प्राप्त करो"।[१] अर्जुन ने इन्द्र को प्रणाम किया तथा अपना प्रयोजन बताया। इन्द्र ने अर्जुन को समझाकर कहा—"वत्स! तुम्हें भगवान् शंकर का दर्शन होने पर मैं भी दिव्य अस्त्र दे दूँगा।[२] तुम उनके दर्शन करने के लिए प्रयत्न करो। अर्जुन इन्द्र के आदेशानुसार भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप करने लगे।[३] अर्जुन की कठोर तपस्या को देखकर ऋषिमुनिगण भगवान् शंकर के पास गये और निवेदन किया कि भगवन्! "अर्जुन के तप और तेज से दिशायें मलिन हो गयो हैं। भगवान् शंकर ने कहा—"मैं आज अर्जुन की इच्छा पूर्ण करूँगा"।[४] ऋषियों के जाने के बाद भगवान् शिव ने स्वर्ण कान्ति सदृश देदीप्यमान भील का रूप ग्रहण किया और धनुषबाण लेकर पार्वती सहित अर्जुन के पास पहुँचे। उस समय शंकर जी के गण भूत-प्रेतादि भी भील-भीलनियों के वेष में उनके साथ थे। भीलवेषधारी भगवान् शंकर ने अर्जुन के निकट आकर देखा कि मूक दानव जंगली शूकर का रूप धारण कर अर्जुन को मार डालने के लिए प्रयत्नशील है। अर्जुन ने भी उस शूकर रूपधारी दानव को देखकर कहा—"तू मुझ निर-पराध को मार डालना चाहता है, इसलिए मैं ही पहले तुझे यमलोक पहुँचाता हूँ।" यह कहकर ज्यों ही अर्जुन ने बाण छोड़ना चाहा, भीलवेषधारी शिव ने बीच में ही रोककर कहा—"मैंने इसे पहले मारने का निश्चय किया है अतः तुम इसे मत मारो।" किन्तु अर्जुन ने भील के इन वचनों का बिना विचार किये ही अपना बाण छोड़ दिया। साथ ही शिवजी ने भी अपना वज्र-तुल्य बाण चलाया। दोनों के बाणों से आहत होकर वह शूकर भयंकर ध्वनि करता हुआ दानवरूप में प्रकट होकर प्राणहीन हो गया। वराह का वध करने के अनन्तर अर्जुन ने किरात (शंकर) को स्त्री (पार्वती) सहित समक्ष उपस्थित देखा। अर्जुन ने कहा—"तुम कौन हो? यह शूकर मुझे तिरस्कृत करने के लिए यहाँ आया था अतः इसके वधार्थ मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था फिर तूने इसका

१. महाभारत, वनपर्व, ३७।४२--४९

२. वही, ३७।५७--५८

३. वही, ३८।२३--२६

४. वही, ३८।२८--३४

वध क्यों किया ?'' इस प्रकार दोनों में बड़ी देर तक विवाद होता रहा। किरात ने अर्जुन को युद्धार्थ ललकारते हुए कहा—''मैं बाण चलाता हूँ, शक्ति हो तो सहन करो।'' इस पर अर्जुन क्रुद्ध हो गये और दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया।[१]

अर्जुन के बाणों का किरात पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। धीरे-धीरे अर्जुन के सभी बाण समाप्त हो गये। सभी अस्त्रों के समाप्त हो जाने पर अन्त में अर्जुन ने किरात पर घूसे से प्रहार किया। इसके प्रत्युत्तर में किरात ने जो प्रहार किया उससे अर्जुन अचेत हो गये। चेतना आने पर अर्जुन मिट्टी की एक वेदी बनाकर उस पर भगवान् शंकर की स्थापना कर शरणगत भाव से पूजा करने लगे। जो पुष्पादि अर्जुन उस मृत्तिकामूर्ति पर चढ़ाते थे, वे सभी उस भील के सिर पर चढ़ते थे। यह देखकर अर्जुन को कुछ सान्त्वना हुयी और शान्त होकर उन्होंने भील के चरणों मे प्रणाम किया। भगवान् शंकर ने अर्जुन की वीरता, कर्त्तव्य दृढ़ता और भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर उन्हें दर्शन दिया।[२] तदनन्तर अर्जुन भक्तिभाव में विभोर होकर भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे[३] और अज्ञानतावश युद्ध करने को क्षमा माँगी। इस पर शंकर ने उन्हें क्षमाकर गले से लगा लिया और प्रसन्न होकर अर्जुन से वर माँगने को कहा।[४] इस पर अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र माँगा।[५]

अन्त में शिव जी ने स्नानादि से पवित्र हुये, अर्जुन को पाशुपतास्त्र के प्रयोगादि सम्बन्धी आवश्यक बातों को बतलाकर वह पाशुपत अस्त्र उन्हें प्रदान किया।[६] भगवान् शंकर अर्जुन को स्वर्ग में जाने की आज्ञा देकर,[७] उन्हें गाण्डीव धनुष देते हुये आकाश मार्ग को चले गये।[८]

---

१. महाभारत, वनपर्व, ३९।१७–३२

२. वही, ३९।६५–६७

३. वही, ३९।७४–८२

४. वही, ४०।६–७

५. वही, ४०।८–१४

६. वही, ४०।१५-२१

७. वही, ४६।२६

८. वही, ४०।२८

तदनन्तर जलधिप वरुण, धनाधिप कुबेर, सूर्यपुत्र यमराज, गुह्यक गन्धर्व, समस्त दिक्पालों एवं इन्द्राणी सहित समागत इन्द्र ने वहाँ आकर अर्जुन को वरदान पूर्वक अस्त्र प्रदान किया और अपने-अपने धाम को चले गये ।[1]

## शिवपुराण में वर्णित किरात (शंकर) और अर्जुन की कथा

किरातार्जुनीय की कथावस्तु का स्रोत शिवपुराण भी है । शिवपुराण में यह कथा इस प्रकार प्राप्त होती है—

दुर्योधन से द्यूतक्रीडा में हारकर पाण्डवों ने द्वैतवन में रहते हुये उसके (दुर्योधन के) वृत्तान्त को जानने के लिये एक भील को भेजा । वह समग्र शत्रु-नीति का परिज्ञान कर पाण्डवों के पास वापस आ गया ।[2] इस शत्रु-वृत्तान्त को जानकर पाण्डव अत्यन्त चिन्तित होकर शत्रु-प्रतीकार का उपाय सोचने लगे । इसी मध्य महर्षि व्यास आ गये । पाण्डवों ने उनका विधिवत् स्वागत किया और अपने शत्रु कृत क्लेश के विनाश का उपाय पूछा । इस पर वेद-व्यास ने कहा, सभी दुःख भगवान् शिव की सेवा न करने से होते हैं । तदन्तर उन्होंने कहा तुममें से (पाण्डवों में) तृतीय पाण्डव (अर्जुन) ही इस कार्य के लिये सुयोग्य हैं । उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि भगवान् शंकर सभी दुःखों के विनाशक हैं तथापि इन्द्र का जप करो । वे परीक्षा के अनन्तर प्रसन्न होकर शिवमंत्र देंगे । तत्पश्चात् व्यास ने स्नानादि से पवित्र हुये प्राङ्मुख अर्जुन को वह विद्या प्रदान कर दी । जिससे इन्द्र प्रसन्न हों । तदनन्तर पूजन का विधान उपदिष्ट कर इन्द्रकील पर्वत पर जाने का आदेश दिया । अर्जुन के वियोग से दुःखी पाण्डवों ने मनोरथ पूर्ति की आशा में दिन व्यतीत किये ।

यक्ष के साथ जाते हुये अर्जुन ने मार्ग में लुण्ठकों का विनाश किया ।[3] इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन ने इन्द्रियनिग्रह पूर्वक व्यास के निर्देशानुसार इन्द्र की अराधना की । अर्जुन के असह्य तेज से भयभीत चर इन्द्र के पास गये । इन्द्र अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये अर्जुन के पास आये और उन्होंने अर्जुन को अपने कर्त्तव्य व्यापार से

---

१. वही, ४१।५-४९

२. सोऽपि सर्वं च तत्रत्यम् दुर्योधनगुणोदयम् ।
समीचीनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून् प्रति ॥—शतरुद्र संहिता, ३७।६४

३. अर्जुनोऽपि स्वयं गच्छन् दुर्गाद्रिषु दृढव्रतः ।
यक्षं लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघ्ननेकशः ॥—वही, ३७।६४

विरत करने का यत्न किया किन्तु अर्जुन किञ्चित् मात्र विचलित नहीं हुये। तत्पश्चात् इन्द्र ने प्रसन्न होकर अपना स्वरूप प्रकट कर अर्जुन से यथेच्छ वर मांगने को कहा। अर्जुन ने वरदान के रूप में शत्रु-विजय की याचना की। इन्द्र ने उन्हें भगवान् शिव के पूजन का आदेश दिया।[१] तथा चरों को उनकी रक्षा में नियुक्त कर वे अपने स्थान को चले गये। तदनन्तर अर्जुन एक पैर पर आश्रित होकर तप करने लगे। उनकी तपस्या से विस्मित होकर देवगण भगवान् शिव के पास गये। शंकर ने उन्हें (देवों को) आश्वस्त कर भेज दिया। इसी मध्य दुर्योधन की प्रेरणा से शूकर का रूप धारण कर मूक दानव अर्जुन के समक्ष पहुँचा।[२] अर्जुन ने विभिन्न तर्कों के द्वारा उसे अपना शत्रु निश्चय कर मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ा लिया। इसी बीच किरात वेषधारी भगवान् शिव अर्जुन की परीक्षा तथा सूकर से रक्षा करने के लिये आ पहुँचे। अर्जुन और किरात दोनों का बाण एक साथ शूकर पर लगा तथा दोनों के बाण कहीं छिप गये। शिव ने बाण लेने के लिये अपने भृत्य को भेजा, उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेने पहुँचे। शिव के भृत्य तथा अर्जुन में बड़ी देर तक वाद-विवाद हुआ और अन्त में भृत्य अर्जुन से युद्ध के लिये घोषणा कर अपने स्वामी (किरातपति शंकर) के पास गया। किरातपति ने सेना सहित वहाँ आकर पुनः अपने अनुचर को भेजा। किन्तु अर्जुन ने सिंह और शृंगाल की मैत्री के सदृश अपने और किरात के सम्बन्ध को कहकर उस अनुचरको उपेक्षित कर दिया। उसने समग्र वृत्तान्त अपने स्वामी को बताया, इस पर अर्जुन और किरात सेना का युद्ध प्रारम्भ हो गया। अर्जुन के बाणों से पीड़ित पलायमान किरात सैन्य को गणेश जी ने रोका तथापि वे सब पुनः नहीं लौटे। तदनन्तर अर्जुन और शिव का युद्ध प्रारम्भ हो गया। किरातपति शंकर ने अर्जुन के सभी बाणों को काट दिया। अन्त में दोनों में मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया। भगवान् शिव अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये। अर्जुन शिव के चरणों पर गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे। भगवान् शंकर ने अर्जुन को उठाकर वर माँगने को कहा। अर्जुन ने कहा—"भगवन् ! आपके दर्शन मात्र से शत्रु समूह नष्ट हो गया।

१. शतरुद्र संहिता ३८।६०

२. वही, ३९।१०

आप मुझे लौकिक सम्पत्ति प्रदान करें। प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें पाशुपतास्त्र प्रदान किया। आशीर्वाद दिया तथा यह भी कहा कि श्रीकृष्ण भी तुम्हारी सहायता करेंगे। तत्पश्चात् शिवजी अर्जुन के मस्तक पर हाथ फेरकर अन्तर्धान हो गये। अर्जुन अपने भाइयों के निकट आकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।[1]

## शिवपुराण और किरातार्जुनीय की कथा में अन्तर

भारवि ने अपनी शैव आस्था के अनुरूप शिव सम्बन्धी कथा को अपने महाकाव्य-प्रणयन का आधार बनाया है। उन्होंने इस कथा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भो किया है। प्रायः कवि ने अपनो कृति में महाभारत की अपेक्षा शिवपुराण का अधिक आश्रयण किया है, अतः किरात और शिवपुराण को कथा में पर्याप्त साम्य है।

यहाँ उन्हीं तथ्यों की ओर संकेत किया जा रहा है जो किरातकाव्य में शिवपुराण से भिन्न हैं।

शिवपुराण में वनेचर के पुरस्कार प्रदान का कोई उल्लेख नहीं हुआ है जबकि भारवि ने समग्र शत्रु-वृत्तान्त श्रवणानन्तर युधिष्ठिर के द्वारा उसे पारितोषिक प्रदान कर विदा करने का वर्णन किया है।[2] शिवपुराण में वेदव्यास पाण्डवों के पास दो बार आते हैं किन्तु किरात में केवल एक बार ही आते हैं। पुराण कथा के अनुसार इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन मार्ग में लुण्ठकों का वध करते हैं किन्तु किरात में ऐसा कोई उल्लेख नहीं हुआ है। इस स्थल पर भारवि ने महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार प्राकृतिक दृश्यों की योजना की है जो शिवपुराण में अनुपलब्ध है। शिवपुराण में द्रौपदी और भीम में शत्रु-अभ्युदय सुनने के पश्चात् किरात जैसा आक्रोश नहीं है।

शिवपुराण में अप्सराओं का भी कोई वर्णन नहीं किया गया है जब कि भारवि ने इस प्रसंग को विस्तृत रूप से उपन्यस्त किया है। किरात-काव्य में इन्द्र आदि लोकपालों द्वारा शस्त्र प्रदान करने का वर्णन प्राप्त होता है जो शिवपुराण में नहीं है।

---

१. शतरुद्र संहिता, ४१।७०

२. किरातार्जुनीय, १।२६ पूर्वार्द्ध

## मूलकथा में परिवर्तन एवं परिवर्धन

महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य में मूलकथा में आवश्यकतानुसार कल्पना का भी संमिश्रण किया है। कथा का प्रारम्भ वनेचर के आगमन से होता है। पाण्डवों के द्वैतवन में रहते हुए दुर्योधन की शासन-व्यवस्था को जानने के लिए ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर (गुप्तचर) दुर्योधन की शासन पद्धति को सम्यक् प्रकार से जानकर युधिष्ठिर के पास द्वैतवन में लौट आता है[1] तथा युधिष्ठिर से दुर्योधन की साम, दाम, दण्ड और भेद के अनुसार चल रही शासन-पद्धति का यथावत् निवेदन करता है।[2] साथ ही इस रहस्य का भो उद्घाटन करता है कि दुर्योधन के व्यवहार में प्रदर्शन की भावना ही अधिक है। वह आपकी ओर से उत्पन्न होने वाले भय का निरन्तर चिन्तन करता रहता है।[3] तदनन्तर वनेचर द्वारा निवेदित वृत्तान्त को युधिष्ठिर, द्रौपदी के कुटीर में जाकर भाइयों के समीप कह सुनाते हैं।[4] कवि ने इस परिवर्धन के द्वारा काव्य-कथा को एक उच्चकोटिक राजनीतिक मोड़ दिया है क्योंकि शत्रुकृत अपमान का प्रतीकार राजोचित ढंग से करना है। इससे युधिष्ठिर के चरित्र में औदात्य का बोध होता हैं। साथ ही कथा के प्रति पाठक का कौतूहल भी संवर्धित होता है।

द्रौपदी पाण्डवों की दशा से क्षुब्ध होकर युधिष्ठिर को उत्तेजनापूर्ण वाणी से प्रेरित करती हैं। द्रौपदी के क्षोभ और उत्तेजना का महाभारत और किरातार्जुनीय में प्रायः समान वर्णन है। इस प्रसंग में महाकाव्यकार का परिवर्तन द्रौपदो की नीतिपटुता को प्रकाशित करने की दृष्टि से अधिक हुआ है। महाभारत की द्रौपदी में दैन्य है किन्तु भारवि की द्रौपदी में शत्रु के प्रति क्रोध एवं स्वाभिमान की जागृति है। वह महाभारत की तरह यह नहीं कहती कि पापात्मा दुर्योधन को हम लोगों को दुःखी देखकर दुःख नहीं हुआ, आँखों में आँसू नहीं आये।[5] वह शमीलता में

---

१. किरातार्जुनीय, १।१

२. वही, १।१२

३. वही, १।८

४. वही, १।२६

५. महाभारत वनपर्व, २७।३--९

स्थित अग्नि की भाँति युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करना चाहती है, क्योंकि पाण्डवों में शक्ति होते हुए शत्रु से अपमानित होना पड़ा है।[1]

यद्यपि दोनों ही ग्रन्थों में द्रौपदी पूर्व वैभव का स्मरण दिलाती है किन्तु किरात की द्रौपदी में पूर्व वैभव के साथ वर्तमान स्थिति से तुलना तथा करणीय प्रतीकार का भी संकेत है। महाभारत में यह प्रसंग विस्तृत है, परन्तु किरातार्जुनीय में इस प्रकरण में स्वल्पता और भावगम्भीरता है। किरात में इस परिवर्तन का कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि काव्य में कथा का प्रवाह मन्द न हो।

महाभारत में द्रौपदी और युधिष्ठिर के मध्य पाँच अध्यायों में दो बार पारस्परिक संभाषण होता है,[2] किन्तु किरातार्जुनीय में केवल प्रथम सर्ग में ही द्रौपदी युधिष्ठिर को उत्तेजित करती हैं। भारवि की द्रौपदी के वचनों में "स्वल्पा च मात्रा बहुलो गुणश्च" का भाव विद्यमान है।

महाभारत में भीम के वक्तव्य का प्रारम्भ ३३वें अध्याय से होता है तथा चार अध्यायों में युधिष्ठिर और भीम के मध्य दो बार संवाद उपन्यस्त हुआ है।[3] किरातार्जुनीय में द्रौपदी के वचनों के अनन्तर द्रौपदी का समर्थन करते हुये[4] भीम उत्साह भावोद्दीपक वाणी में बोलने लगते हैं। भारवि कृत परिवर्तन के सम्बन्ध में शैली की दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि महाभारत में एक वक्ता के सम्पूर्ण वक्तव्य के समाप्त होने से पूर्व ही दूसरा बोलने लगता है, किन्तु किरातार्जुनीय में ऐसा नहीं है। सर्वप्रथम युधिष्ठिर की बात को द्रौपदी सुनती है, तदनन्तर द्रौपदी के संपूर्ण कथ्य को युधिष्ठिर सुनते हैं तथा द्रौपदी के समर्थन में भीम के सम्पूर्ण वचनों को भी सुनने के पश्चात् ही युधिष्ठिर अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। महाभारत के भीम अपने जिस कथन को चार अध्यायों में व्यक्त करते हैं उसे भारवि के भीम द्वितीय सर्ग के मात्र बाईस श्लोकों में कर देते हैं।[5]

---

१. भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हितं विवर्त्तमानं नरदेव! वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः॥
किरातार्जुनीय, १।३२

२. महाभारत वनपर्व, २७-३१

३. वही, ३३-३६

४. किरातार्जुनीय, २।१

५. वही, २।३-२४

किरातार्जुनीय के भीम में उच्छृखलता नहीं है। ये युधिष्ठिर को अपनी (पाण्डवों) दुर्दशा का दोषी नहीं ठहराते, अपितु वे अपने पक्ष को, जो युद्ध करना ही है, नीतिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं। वे युधिष्ठिर से कहते है कि आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति चारों विद्याओं के याथातथ्य विवेचन की बुद्धि क्षमता आप में है, तथापि आप दलदल में हथिनी की भाँति विपद्ग्रस्त हैं।[1] अन्त में भीम युद्धार्थ अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि उत्साह और पराक्रम ही प्रधान हैं, अतः हे महाराज ! अनवधानता के अन्धकार को दूर कीजिये तथा पराक्रमावलम्बी होने का विचार कीजिये क्योंकि शत्रुओं की विपत्ति केवल आपके अनुत्साह के कारण दूर है। आपके उत्साहित हो जाने पर शत्रु अतिशीघ्र आपद्ग्रस्त हो जायेंगे।[2]

यहाँ कवि ने भीम के वचनों में मर्यादा की दृष्टि से पर्याप्त परिवर्तन किया है। महाभारत के भीम के कथन में अशिष्टता द्योतित होती है; जब वे कहते हैं कि आपके अनवधान के कारण यह दुर्दशा हो रही है। भारवि के भीम में संयम एवं मर्यादा है।

किरातार्जुनीय में भीम के वचनों के सुनने के अनन्तर युधिष्ठिर उन्हें शान्त करते हैं। वे भीम की वाणी की सराहना करते हुये समझाते हैं कि प्रत्येक कार्य विचार पूर्वक करना चाहिये। युधिष्ठिर शान्ति को ही उचित बताते हैं। वे वनवास की निर्धारित त्रयोदश वर्षीय अवधि को उचित बताते हैं।[3] महाभारत और किरातार्जुनीय दोनों के प्रस्तुत प्रसंग में परिवर्तन यह है कि महाभारत के युधिष्ठिर धर्म पर अधिक बल देते हुये अवधि की प्रतीक्षा करना उचित बताते हैं, जबकि किरातार्जुनीय में अवधि परिपालन के साथ राजनीतिक दृष्टिकोण से भी विचार करते हैं। दुर्योधन ने जो तेरह वर्ष के वनवास का समय निश्चित किया है,

१. वही, २।६

२. कुरु तन्मतिमेव विक्रमे नृप ! निर्धूय तमः प्रमादजम्।
ध्रुवमेतदवेहि विद्विषां त्वदनुत्साहहता विपत्तयः॥
—किरातार्जुनीय, २।२२

३. प्रणतिप्रवणाान्विहाय नः सहजस्नेहनिबद्धचेतसः।
प्रणमन्ति सदा सुयोधनं प्रथमे मानभृतां न वृष्णयः॥
—वही, २।४४

उससे यदि आप विग्रह करेंगे तो वह अभियोग यदुवंशियों को वैसे ही छिन्न भिन्न कर देगा जैसे सूर्य कमल-समूह की पंखुड़ियों को उद्भिन्न कर देता है। पुनः युधिष्ठिर पौरुष-प्रयोग से पूर्व दुर्विनीत शत्रु के अपने दोष वश स्वतः नष्ट होने की प्रतीक्षा करने को कहते हैं।[1]

महाभारत में युधिष्ठिर, द्रौपदी और भीम के साथ अलग-अलग विस्तृत वार्ता करते हैं, किन्तु किरात में युधिष्ठिर वनेचर से प्राप्त सूचना द्रौपदी एवं भाइयों को अवगत कराने के पश्चात् मौन श्रोता के रूप में आते हैं। वे द्रौपदी की वाणी जिसमें भीमकृत समर्थन है[2] के श्रवण के पश्चात् भीम को समझाते हैं। इसी मध्य कृष्ण द्वैपायन व्यास का आगमन दोनों ही ग्रन्थों में समान रूपेण दिखाया गया है। महाभारत में व्यास के आगमन पर पाण्डव उनका सत्कार कर आसन पर बैठाते हैं तथा वेद-व्यास स्वयं अपना आगमन प्रयोजन कह देते हैं।[3]

किरातार्जुनीय में वेद-व्यास के आगमन पर पाण्डव उनका पर्याप्त सत्कार करते हैं। इस प्रसंग में व्यास के प्रभावशाली तेजोमय व्यक्तित्व का भी वर्णन किया गया है—उनका आकार शान्त है अन्तःकरण की सौम्यता के भाव स्पष्ट लक्षित हो रहे हैं।[4] युधिष्ठिर दुष्कृतों के विनाशक व्यास के आगमन प्रयोजन को जानने की इच्छा से अपने ऊपर उनकी अहैतुकी कृपा का निवेदन करते हुये बहुत ही विनम्रता पूर्वक पूछते हैं।[5] तदनन्तर व्यास अपना प्रयोजन कहते हैं। महाभारत के उक्त प्रसंग में स्वाभाविकता नहीं है, एक आदर्श व्यवहार परम्परा का अभाव है जबकि किरात में स्वाभाविकता है। क्रमशः आतिथ्य और आगमन प्रयोजन वर्णित है। महाभारत और किरातार्जुनीय दोनों ही ग्रन्थों में व्यास द्वारा विद्या प्रदान करने का वर्णन है किन्तु महाभारत में उस विद्या का नाम प्रतिस्मृति है तथा किरात में मन्त्रविद्या व्यास युधिष्ठिर को महाभारत में

१. मतिमान्विनयप्रयाधिनः समुपेक्षेत समुन्नतिं द्विषः।
सुजयः खलु तादृगन्तरे विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः॥
—किरातार्जुनीय, २।५२

२. किरातार्जुनीय, २।१

३. महाभारत, वनपर्व, ३६।३८-२९

४. किरातार्जुनीय, ३।३

५. वही, ३।४-९

प्रतिस्मृति विद्या प्रदान करते हैं किन्तु किरातार्जुनीय में व्यास सीधे अर्जुन को उपदिष्ट करते हैं।[1] महाभारत में वेदव्यास मात्र युधिष्ठिर से ही बात करते हैं किन्तु किरात में युधिष्ठिर और अर्जुन से पृथक्-पृथक् वार्ता करते हैं। इससे अर्जुन के नायकत्व की गरिमा में वृद्धि हुयो है।

महाभारत में अर्जुन के इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचते ही इन्द्र के दर्शन हो जाते हैं और वे वर प्रदान करते हैं जो नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि इससे तपस्या का कोई औचित्य ही नहीं रह जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारतकार ने इसे एक दैवीरूप ही प्रदान किया है क्योंकि वेदव्यास भी स्वयं आकर अपना प्रयोजन बताने लगते हैं।

भारवि ने ऐसे स्थलों पर बड़ी ही सतर्कता के साथ स्वाभाविकता का सन्निवेश किया है। इस मध्य कवि को काव्यशास्त्रीय नियमों का प्रदर्शन करने का भी अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है।

किरातार्जुनीय में अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में उग्र तपस्या करते हैं।[2] भारवि अर्जुन के आहार आदि के सम्बन्ध में मौन हैं। शिवजी के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के समय अर्जुन की दुर्बलता की ओर केवल संकेत किया है। तीन ऋतु पर्यन्त वायु भक्षण के द्वारा प्राणरक्षा करते हुए दुर्बल किन्तु संग्राम करने के लिए उत्साहित अर्जुन का शरीर वृद्धि प्राप्त करने लगता है।[3]

किरात में इन्द्र अर्जुन की परीक्षा के लिए विघ्न स्वरूप अप्सराओं को भेजते हैं जो उन्हें किञ्चित् विचलित नहीं कर पातीं, किन्तु महाभारत में ऐसा कोई वर्णन नहीं है।

महाभारत की भाँति किरात में भी ऋषिगण अर्जुन के असह्य तेज से प्रभावित होकर भगवान् शिव के पास जाते हैं। भारवि ने शंकर के स्वरूप का भी आठ श्लोकों[4] में वर्णन किया है जो महाभारत में नहीं है।

---

५. वही ३।२५-२६

१. किरातार्जुनीय, ६।१--१९

२. 'त्रयीमृतूनामनिलाशिनः ततः प्रयाति पोषं वपुषि प्रहृष्यतः।
रणाय जिष्णोर्विदुषेव सत्वरं घनत्वमीये शिथिलेन वर्मणा॥'

किरातार्जुनीय, १४।४८

३. किरातार्जुनीय, १४।१७--२४

किरातार्जुनीय में भगवान् शंकर अपनी योजना और अर्जुन का परिचय ऋषियों से देते हैं तथा यह भी बताते हैं कि यह नारायण का अंश है और अखिल विश्व के संतापदायक शत्रुओं को पराजित करने की इच्छा से मेरी उपासनारूप उग्र तपश्चर्या कर रहा है।[1]

भारवि ने इस प्रसंग में परिवर्तन करके कथानक में स्वाभाविकता ला दी है जो महाभारत में नहीं है। महाभारतकार ने ऋषियों को अर्जुन के सम्बन्ध में कुछ नहीं बताया है।

किरात में शंकर ने यह भी बताया कि किस प्रकार अर्जुन के तपः स्वरूपदेव कार्य में विघ्न डालने के लिए मूकदानव कपट पूर्वक वाराह का रूप धारण कर उसे मारना चाहेगा और वह मेरे द्वारा वध को प्राप्त होगा और हम दोनों (अर्जुन-शंकर) के मध्य मृगयाकलह प्रारम्भ हो जायेगा।[2]

दोनों ही ग्रन्थों में किरात रूप धारण कर ससैन्य अर्जुन के आश्रम में आने का वर्णन है। महाभारत में पार्वती भी स्त्री का तेज धारण कर शंकर के साथ आती हैं[3], किरात में नहीं।

महाभारत में अर्जुन वराह रूपधारी मूकदानव को मारने का निश्चय करते हैं।[4] किरातार्जुनीय में अर्जुन वराह को देखकर विभिन्न प्रकार के तर्क-वितर्क करते हैं।[5] तदनन्तर उसे मारने का निश्चय करते हैं।[6]

महाभारत में पहले अर्जुन वराह पर प्रहार करते हैं, किरात में पहले शंकर प्रहार करते हैं।

इस प्रसंग में किरातार्जुनीय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है।

महाभारत में वराह के प्राणान्त के अनन्तर अर्जुन स्त्री सहित किरात (शिव) को देखकर पूछते हैं कि जब मैं पहले इसको मारने का निश्चय कर चुका था, तब आपने इस पर क्यों बाण चलाया और इस पर दोनों में वाद-विवाद के पश्चात् युद्ध प्रारम्भ हो जाता है।[7]

इस स्थल पर भारवि ने पर्याप्त परिवर्तन किया है। किरात में वराह के वध के अनन्तर अर्जुन अपना बाण लेने के लिए वराह के निकट जाते

---

१. २. किरातार्जुनीय, १४।३४--३५, १४।३६-३८

३. ४. महाभारत, वनपर्व, ३९।४--५, ३९।७--१०

५. ६. किरातार्जुनीय, १३।३-१२, १३।१--१२

७. महाभारत, वनपर्व, ३९।१७--३२

हैं, तभी किरातपति प्रेषित वनेचर अर्जुन के पास आकर कहता है[1] कि वराह को मेरे स्वामी ने मारा है। मेरे स्वामी के बाण से आपका बाण मिलता-जुलता है। यही आपके संशय का कारण है। अनेक तर्क देने के पश्चात् वनेचर अर्जुन से बाण लौटाने को कहता है।[2] वह यह भी कहता है कि आप मेरे स्वामी से मित्रता कर लें।[3] किरात के कथन के अनन्तर अर्जुन उसके एक-एक तर्क को खण्डित करते हुए कहते हैं कि हाथियों और शृंगालों की मैत्री की भाँति जातिहीन भील से मैं मित्रता कैसे कर सकता हूँ।[4] यदि तुम्हारे स्वामी बाण लेने की इच्छा से यहाँ आयेंगे तो अवश्य ही उनकी वही गति होगी जो सर्प की मणि को लेने वाले की होती है। तदनन्तर वह वनेचर किरातपति शंकर के पास जाता है। पुनः किरातपति (शंकर) और अर्जुन में युद्ध प्रारम्भ होता है।

महाभारत में अर्जुन और वनेचर के मध्य कोई वार्तालाप नहीं होता क्योंकि वहाँ स्वयं किरातपति अर्जुन के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं।

भारवि ने युद्ध से पूर्व जो वनेचर और अर्जुन के मध्य संवाद-योजना उपन्यस्त की है, उससे काव्य में सरलता आ गयी है। इस मध्य पाठक को कवि के वाक् कौशल का भी परिचय मिलता है। वस्तुतः महाभारत की कथा में शुष्कता का आभास होता है किन्तु किरातार्जुनीय में उत्सुकता बनी रहती है कि कौन पक्ष अपना तर्क देने में असफल हो जायेगा। इसके साथ ही नायक के अदम्य उत्साह का प्रख्यापन भी यथावसर हो जाता है। इस क्षेत्र में भारवि कालिदास के ऋणी प्रतीत होते हैं। इस पर रघुवंश महाकाव्य के दिलीप और सिंह-संवाद का प्रभाव प्रतीत होता है।

शिव और अर्जुन के मध्य युद्ध का वर्णन दोनों ही ग्रन्थों में हुआ है। महाभारत में इस युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है जबकि किरात में विस्तृत रूप से चित्रण हुआ है।[5]

---

१. किरातार्जुनीय, १३।३२--३५
२. वही, १३।४१--५६
३. वही, १३।५७
४. वही, १४।२२
५. महाभारत, वनपर्व, ३९।३१--६४

महाभारत तथा किरातार्जुनीय दोनों ही ग्रन्थों में भगवान् शिव, अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं और दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं किन्तु किरातार्जुनीय में शंकर के प्रकट होने की घटना में अन्तर है।

किरातार्जुनीय में भगवान् शंकर द्वारा अर्जुन के समस्त बाण समाप्त कर दिये जाने पर अर्जुन मुष्टि-प्रहार प्रारम्भ करते हैं।[1] दोनों ही उछल-उछल कर युद्ध करते हैं। जैसे ही शंकर ऊपर उछलते हैं, अर्जुन उनको पटकने की इच्छा से पैर पकड़ते हैं। भगवान् शंकर प्रकट होकर हृदय से लगा लेते हैं।[2]

महाभारत में शिव अर्जुन से वर माँगने को कहते हैं और अर्जुन पाशुपतास्त्र माँगते हैं तथा अर्जुन को उसके प्रयोगादि के सम्बन्ध में समझाकर प्रदान कर देते हैं।

किरातार्जुनीय में अर्जुन शिव-स्तुति करते हुये कहते हैं कि जिस शस्त्र सम्पत्ति से मैं विजयी बन सकता हूँ, उस विद्या को प्रदान कीजिये।[3] भगवान् शंकर पाशुपतास्त्र प्रदान करते हुये धनुर्वेद पढ़ाते हैं।[4] तदनन्तर शंकर के आदेश से इन्द्रादि लोकपाल अनेक प्रकार के अस्त्र प्रदान करते हैं।[5]

महाभारत में पाशुपतास्त्र प्रदान करने का विस्तृत वर्णन है जबकि भारवि काव्य में यह वर्णन अति संक्षिप्त है। वस्तुतः कार्य व्यापार के श्रमादि में विलम्ब होना तो स्वाभाविक है किन्तु उसके फलागम या परिणाम में विलम्ब स्वभाविक नहीं होता।

महाभारत में शंकर पाशुपतास्त्र के प्रयोग से उपसंहार तक की शिक्षा देते हैं तथा गाण्डीव धनुष भी प्रदान करते हैं और आकाशमार्ग से चले जाते हैं।[6]

---

१, २, ३. किरातार्जुनीय, १८।५, १८।१३, १८।४३

४. इति निगदितवन्तं सूनुमुच्चैर्मघोनः प्रणतशिरसमीशः सादरं सान्तयित्वा।
ज्वलदनलपरीतं रौद्रमस्त्रं दधानं धनुरुपमदमस्मै वेदमभ्यादिदेश॥
किरातार्जुनीय, १८।४४

५. वही, १८।४६

६. महाभारत वनपर्व, ४०।२८

किरातार्जुनीय में शिव अर्जुन को शत्रु-विजय का आशीष देते हैं और अर्जुन उन्हें प्रणामकर अपने ज्येष्ठ भ्राता के पास आकर प्रणाम करते हैं—

**व्रज जय रिपुलोकं पादपद्मानतःसन् गदित इति शिवेन श्लाघितो देवसंघैः ।**
**निजगृहमथ गत्वा सादरं पाण्डुपुत्रो धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम ॥**[१]

## शिशुपालवध की कथा का स्रोत

शिशुपालवध की कथा विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित है। विशेषकर यह कथा महाभारत के सभापर्वान्तिर्गत ३३ से ४५ अध्याय तक तथा श्रीमद्भागवत में दशमस्कन्ध के ६९ से ७४ अध्यायों तक प्राप्त होती है। महाकवि माघ के 'शिशुपालवध' प्रणयन के यही दो मुख्य उपजीव्य हैं। महाभारत में इस कथा का आरम्भ इस प्रकार होता है—

## महाभारत-सभापर्व

एक बार नारद अनेक ऋषियों सहित सभी लोक मण्डल में विचरण करते हुये मयदानव निर्मित युधिष्ठिर के सभाभवन में आये। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपने भ्राताओं सहित नम्रता पूर्वक प्रणाम कर यथोचित आसन दिया और उनकी रत्नादि से पूजा की। तदनन्तर युधिष्ठिर ने विनम्रतापूर्वक देवर्षि नारद से पूछा कि क्या आपने ऐसी सभा देखी है जो मेरी इस सभा के समान अथवा इससे भी श्रेष्ठ हो। इस पर देवर्षि नारद ने हँसकर कहा, हे तात! तुम्हारी इस मणिनिर्मित सभा के समान दूसरी सभा न तो देखी है और न सुनी है। इसके साथ ही नारद जी ने यमराज, वरुण, इन्द्र, कुबेर और ब्रह्मा की सभा का वर्णन किया। देवर्षि नारद ने इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुये राजा हरिश्चन्द्र की विशेष चर्चा की।[२] इस पर युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि क्या कारण है जो आपने इन्द्र की सभा में अन्य राजाओं को छोड़कर हरिश्चन्द्र के ही वहाँ होने का वर्णन किया है तथा हरिश्चन्द्र ने कौन-सा पुण्य कर्म किया है जिससे वह इन्द्र के साथ स्पर्धा किया करते हैं। तदनन्तर युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के सम्बन्ध में भी पूछा,

१. किरात०, १८।४८

२. महाभारत, सभापर्व, ११।४८

"हे विप्रवर ! त्रिलोक में स्थित बड़े भाग्यवान् मेरे पिता पाण्डु के साथ आपकी भेंट कैसे हुयी और उन्होंने आपसे क्या कहा ?" इस पर नारद को राजसूय यज्ञ करने का सन्देश देने का अच्छा अवसर मिल गया। इसके उत्तर में नारद ने कहा—"राजा पाण्डु ने राजा हरिश्चन्द्र के सौभाग्य को देखकर तुमसे कहा है कि तुम्हारे सभी भाई आज्ञापालक हैं। अतः तुम सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने में समर्थ हो। इससे तुम यज्ञ-श्रेष्ठ राजसूय करो क्योंकि जो राजा राजसूय यज्ञ करते हैं, वे इन्द्र के साथ सानन्द रहते हैं। इससे आप अपने पूर्वजों सहित इन्द्रलोक में स्थान प्राप्त करेंगे।"[1] तदनन्तर नारद ने युधिष्ठिर से अनुमति प्राप्तकर ऋषियों सहित द्वारिकापुरी की ओर प्रस्थान किया।

देवर्षि नारद के प्रस्थानानन्तर यज्ञ-प्रभाव से कीर्ति युक्त हरिश्चन्द्र के वैभव से यज्ञ करने की अभिलाषा वाले युधिष्ठिर ने भाइयों और मन्त्रियों को बुलाकर उनसे राजसूय यज्ञ का परामर्श किया।[2] सभी ने राजसूय यज्ञ की सम्मति दी। तत्पश्चात् उन्होंने (युधिष्ठिर) श्रीकृष्ण का मन ही मन स्मरण कर बुलाने के लिये इन्द्रसेन नामक दूत को द्वारिकापुरी भेजा। सन्देश पाकर श्रीकृष्ण दूत के साथ ही इन्द्रप्रस्थ चल दिये और शीघ्र ही युधिष्ठिर के निकट पहुँच गये।[3] वहाँ युधिष्ठिर ने भाइयों सहित उनका पूजन किया। पुनः युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से अपना यज्ञ-प्रयोजन बताते हुये कहा कि मैं इस राजसूय यज्ञ के करने में अपनी पात्रता अथवा अपात्रता जानना चाहता हूँ। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि आपका विचार उत्तम है और आप इस कार्य के अधिकारी भी हैं किन्तु आप अति पराक्रमी जरासन्ध के जीवित रहते यह महायज्ञ नहीं पूरा कर सकेंगे,[4] क्योंकि उसने समस्त राजाओं को अपने वश में

---

१. महाभारत सभापर्व, ११।६५–६७

२. स भ्रातृभिः पुनर्धीमानृत्विग्भिश्च महात्मभिः।
धौम्यद्वैपायनाद्यैश्च मन्त्रयामास मन्त्रिभिः॥
—वही, १२।१८

३. वही, १२।३०-३१

४. न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले।
राजसूयस्त्वया प्राप्तुमेषा राजन्मतिर्मम॥
—वही, ३।६१ तथा ६८

कर लिया है अतः उन्हें मुक्त करना परमावश्यक है। इस सम्बन्ध में आप देश, काल और परिस्थिति का विचार करके यथोचित कार्य करें। परामर्श के पश्चात् यह निर्णय हुआ है कि अर्जुन, भीम और श्रीकृष्ण जरासन्ध पर विजय के लिये मगध जाँय। मगध जाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम द्वारा जरासन्ध का वध करवा दिया। बन्दी राजाओं को मुक्त कर जरासन्ध के पुत्र सहदेव को अभिषिक्त कर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये लौट आये। सभी भाइयों ने समस्त दिशाओं को भी जीत लिया। इस विजय से युधिष्ठिर के राजकोष में भी वृद्धि हुयी। राजसूय यज्ञ की तैयारी होने लगी।

उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—"आप सम्राट् एवं राजसूय यज्ञ के अधिकारी हैं। अपनी इच्छानुसार यज्ञ करें और मुझे भी किसी कार्य में नियुक्त करें। आपकी आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न होगा।"[१] शुभमुहूर्त में ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने की दीक्षा दी।

इस यज्ञ में अनेक ब्राह्मण, राजा आदि अतिथि आये। यज्ञ में शिशुपाल भी अपने पुत्र सहित आया।[२] बलराम, अनिरुद्ध, दभ्रु, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, वीर्यवान्, चारुदेव, उल्मुक, निशठ तथा अन्य राजा आये।

भीष्म ने युधिष्ठर से कहा कि हे भरतवंशी युधिष्ठर! सत्कार के योग्य[३] आचार्य, ऋत्विक्, स्नातक, नृप और प्रिय में से जो श्रेष्ठ हो उसे प्रथम अर्घ्य प्रदान करो। पुनः युधिष्ठिर के द्वारा भीष्म से पूछे जाने पर उन्होंने श्रीकृष्ण को ही प्रथम अर्घ्य के योग्य बताया और सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया।

इस श्रीकृष्ण की पूजा को शिशुपाल नहीं सहन कर सका अतः उसने भीष्म एवं युधिष्ठिर को फटकार कर श्रीकृष्ण की निन्दा करना प्रारम्भ किया।[४] उसने श्रीकृष्ण को हवि के भाग को खाने वाले श्वान आदि अनुचित वचन कहना प्रारम्भ किया। वह इस प्रकार अपशब्द कहकर

---

१. महाभारत, सभापर्व, ३३।२३-२४

२. वही, ३१।१४

३. वही, ३३।२३

४. प्रतिजग्राह तत्कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न चक्षमे ॥—वही, ३३।३१

अपने आसन से उठा और अन्य राजाओं के साथ बाहर चला गया।[१] इस पर युधिष्ठिर ने मधुर वचनों में उसे समझाया। अन्त में शिशुपाल के विरोध करते रहने पर सहदेव ने कहा—"जो श्रीकृष्ण की पूजा नहीं सहन कर सकता उसके मस्तक पर मेरा यह चरण है ?" इस पर शिशुपाल पक्षीय राजागण क्रुद्ध हो गये। चेदिराज शिशुपाल आँखें लाल कर राजाओं से कहने लगा कि मैं सेनापति रूप में अवस्थित हूँ आप लोग निश्चिन्त रहें। वह यज्ञ में विघ्न डालने का प्रयास करने लगा। इस स्थिति को देखकर युधिष्ठिर ने भीष्म से कोई उपाय बताने को कहा। इस पर भीष्म ने कहा, जब तक श्रीकृष्ण रूपी सिंह सो रहा है तब तक ही ये राजा और शिशुपाल श्वान रूप में भौंक रहे हैं[२], तुम्हें चिन्तित नहीं होना चाहिये। यह सुनकर शिशुपाल ने भीष्म को नपुंसक, बुद्धिहीन, आदि निन्दित वचन कहे। इससे भीम क्रुद्ध हो गये किन्तु भीष्म ने उन्हें रोककर शिशुपाल के जन्म-वृत्तान्त की ओर संकेत किया। यह शिशुपाल चार भुजाओं और तीन नेत्रों वाला पैदा हुआ था और इसे श्रीकृष्ण की गोद में रखने से दो भुजायें और दो आँखें हो गयी थीं। इसकी माता ने यह भविष्यवाणी सुनी कि जिसकी गोद में रखने से यह दो भुजा एवं दो नेत्रों वाला होगा, उसी के द्वारा इसका वध होगा।[३] अतः उसने श्रीकृष्ण से १०० अपराध क्षमा करने की याचना की थी। इस पर वह पुनः भीष्म को कटु वचन कहने लगा। भीष्म ने कहा, मैंने गोविन्द की पूजा की है, जो इसे न सहन करता हो, मृत्यु का वरण करना चाहता हो, वह श्रीकृष्ण को ललकारे।[४] तदनन्तर शिशुपाल श्रीकृष्ण को कटु वचन कहने लगा। पुनः १०० अपराध पूरे होने पर श्रीकृष्ण ने चक्र से उसका सिर पृथक् कर दिया और उसकी देह से निकला हुआ तेज कृष्ण की देह में मिल गया।[५]

---

१. महाभारत, सभापर्व, ३४।२५

२. वही, ३७।८

३. वही, ४०।१० ४. वही, ४१।३२-३३

५. तथा ब्रुवत एवास्थ मानवान्मधुसूदनः।
व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः॥
ततः कमलपत्राक्षं कृष्णं लोकनमस्कृतम्।
ववन्दे तत्तदा तेजो विवेश च नराधिप॥'—वही, ४२।२१,२३

## श्रीमद्भागवत में वर्णित शिशुपालवध कथा

श्रीमद्भागवत में शिशुपाल सम्बन्धी कथा दशम-स्कन्ध के ७०वें अध्याय से ७४वें अध्याय तक वर्णित है। काव्य की प्रधान घटनाका आधार यही पुराण है।

एक बार नारद के आगमन से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण अपने नित्य कर्म में लग्न थे। इतने में ही जरासन्ध द्वारा बन्दी राजाओं का दूत उपस्थित हुआ। उसने अनेक राजाओं के दुःख का श्रीकृष्ण से निवेदन किया।[१] जिन राजाओं ने उसे कर नहीं दिया था, उन्हें उसने बन्दी बना लिया था। उसने कहा, हे भगवन् ! जगत् के ईश्वर आप इस संसार में साधु पुरुषों की रक्षा, दुष्टजनों को दण्ड देने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। आप हम आर्तजनों को जरासन्ध के ब्रन्धन से मुक्त कराइये। इस प्रकार राजाओं का दूत कह ही रहा था कि श्रेष्ठ कान्ति वाले, पीली जटायें धारण किये नारद जी सूर्यसदृश वहाँ प्रकट हुए। देखते ही श्रीकृष्ण ने सभासदों सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया, यथाविधि आसनादि देकर उनका स्वागत किया।[२]

सत्कारादि के अनन्तर श्रीकृष्ण ने नारद से यह जिज्ञासा व्यक्त की कि वे (पाण्डव) अब क्या करना चाहते हैं।[३] नारद ने कहा—"प्रभु ! आप अन्तर्यामी, सर्वव्यापी हैं। आप से कुछ अविदित नहीं है। आप ब्रह्म हैं किन्तु मानवलीला कर रहे हैं। अतः पाण्डवों के करने की जो अभिलाषा है उसे मैं आपसे कहता हूँ। चक्रवर्ती राज्य की इच्छा करने वाले पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूय यज्ञ करके आपका पूजन करना चाहते हैं, इसका आप अनुमोदन करें।[४] अब श्रीकृष्ण के सम्मुख दो कार्य थे—जरासन्ध का बध तथा युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थिति। यादव नृपतियों की इच्छा है कि प्रथम जरासन्ध का वध हो। इस पर श्रीकृष्ण ने उद्धव से

---

१. श्रीमद्भागवत, १०।७०।२१--२५

२. राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ।
विभृत्पिशंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥
तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।
ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥
—वही, १०।७०।३३

३–४. वही, १०।७।३५--३६, १०।७०।४१

मुस्कराकर कहा—"उद्धव ! तुम प्रत्येक बात को यथातथ्य समझने वाले हो अतः तुम मेरे वर्तमान करणीय-कार्य के सम्बन्ध में बताओ।"

पाण्डवों के यज्ञ में सम्मिलित होना चाहिये अथवा जरासन्ध के कारागार में बन्दी राजाओं को मुक्त कराना चाहिये। इस पर उद्धव ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये नारद के विचार का समर्थन किया। उन्होंने यह भी कहा कि बन्दी राजाओं को मुक्त कराना भी आवश्यक है किन्तु राजसूय यज्ञ सम्पादन हेतु दिग्विजय भी आवश्यक है, अतः यज्ञ में सम्मिलित होने से दिग्विजय प्रसंग में जरासन्ध का वध भी हो जायेगा और यज्ञ भी सम्पन्न हो जायेगा।

उद्धव की इस बात का सभी ने समर्थन किया।[1] श्रीकृष्ण जब यज्ञ में जाने को तैयारी करने लगे तभी नारद आकाश मार्ग से चले गये। भगवान् ने दूत को यह आश्वासन देकर विदा किया कि शीघ्र ही जरासन्ध का वध होगा। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने सुन्दर वस्त्र, आभूषण, चन्दन माला धारण किया और हाथ में ढाल, तलवार लेकर चल पड़े। उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं। वे आनर्त, सौवीर, मरु तथा कुरुक्षेत्र को लाँघकर पर्वत, नदी, पुर, ग्राम आदि पार कर इन्द्रप्रस्थ के निकट पहुँचे।[2]

श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर युधिष्ठिर ने उपाध्यायों सहित नगर के बाहर आकर उनकी अगवानी की। कृष्ण के आगमन को सुनकर घर की स्त्रियाँ गृहकार्य एवं पतियों को त्याग कर उनके दर्शनार्थ राजमार्ग में आ गयीं। तदनन्तर भवन में प्रवेश कर श्रीकृष्ण सबसे मिले। युधिष्ठिर ने उनको सेना सहित सुखकर, मनोरम स्थान पर ठहराया।

एक दिन युधिष्ठिर ने सबके समक्ष श्रीकृष्ण से अपना राजसूय यज्ञ करने का विचार प्रकट किया। इस पर श्रीकृष्ण ने उनके विचार को उत्तम बताया और कहा कि समस्त राजाओं को विजितकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना एकछत्र अधिकार करते हुये यज्ञ-सामग्री एकत्र कीजिये। युधिष्ठिर ने इस दिग्विजय के लिये अपने भाइयों को नियुक्त किया। उन सभी भाइयों ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय कर ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को प्रचुर धन प्रदान किया। किन्तु इस समय भी जरासन्ध नहीं जीता जा सका था जिसे जीतने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने उपाय

---

१. श्रीमद्भागवत, १०।७१।३-४

२. वही, १०।७१।२०-२२

बताया। उसे जीतने के लिये श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन निकले। श्रीकृष्ण ने भीम द्वारा जरासन्ध का वध कराकर बन्दी राजाओं को मुक्त कराया तथा इन्द्रप्रस्थ आकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुये।

युधिष्ठिर यज्ञ हेतु दीक्षित हुये किन्तु अब श्रेष्ठता के आधार पर यज्ञ में समागत राजाओं का सत्कार करने का प्रश्न था क्योंकि वहाँ सभी अपने को श्रेष्ठ समझते थे जिससे एक निश्चय नहीं हो पा रहा था। इस स्थिति में सहदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण की अतिशय प्रशंसा की और श्रीकृष्ण की पूजा को वरेण्य बताया क्योंकि उनकी पूजा करने से सभी प्राणियों की पूजा हो जाती है। सभा में उपस्थित समस्त श्रेष्ठजनों ने इसका समर्थन किया और युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का पूजन किया।

श्रीकृष्ण की पूजा को दमघोष का पुत्र शिशुपाल नहीं सहन कर सका और कठोर वचनों से उनकी निन्दा करने लगा। शिशुपाल ने बहुत अपशब्द कहे किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण सब सुनते रहे।

इनमें पाण्डु पुत्र, मत्स्य देश के राजा, शिशुपाल को मारने के लिये सन्नद्ध हो गये। श्रीकृष्ण ने यह सोचकर कि यह अत्यन्त बलवान है जिससे सभी राजा मारे जा सकते हैं। अतः उन्होंने अन्य समस्त राजाओं को रोककर शिशुपाल का सिर चक्र से विच्छिन्न कर दिया। शिशुपाल की ज्योति श्रीकृष्ण में समाहित हो गयी। सनकादि के शाप के कारण जय विजय को तीन जन्मों में विचरना पड़ा। पहले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप, दूसरे जन्म में रावण, कुम्भकर्ण तथा तीसरे जन्म में शिशुपाल–दन्तवक्र होना पड़ा था। अन्त में श्रीकृष्ण में मिलकर वे पार्षद हो गये। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दक्षिणा दी तथा यथा-विधि सबका सत्कार कर यज्ञान्त स्नान किया।

## स्रोतों से प्राप्त कथा की शिशुपालवध से तुलना

प्रस्तुत प्रसंग में 'शिशुपालवध' महाकाव्य के मुख्य स्रोत महाभारत एवं श्रीमद्भागवत के उन स्थलों का विवेचन करना है जिनमें कवि ने परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है।

'शिशुपालवध' महाकाव्य में, जगत् का शासन करने के लिए लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण जब वसुदेव के सद्म द्वारिकापुरी में निवास कर रहे

हैं, तभी देवर्षि नारद वहाँ आकाश मार्ग से आते हैं।[१] आकाशगामी देवता द्वारिकापुरी के ऊपर उन्हें पहुँचाकर चले जाते हैं। तब देवर्षि नारद श्रीकृष्ण के गृह पहुँचते हैं।[२]

इस प्रसंग में कवि ने यह परिवर्तन किया है कि नारद अकेले ही श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं। आकाशमार्ग से उनके (नारद जी) उतरने से पहले ही भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें नारद जानकर खड़े हो जाते हैं, तत्पश्चात् उनका सम्यक् अर्घ्यादि से सत्कार करते हैं।

तीनों ग्रन्थों में देवर्षि नारद एक सन्देश-वाहक के रूप में आते हैं।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण पूछते हैं कि आप त्रिलोक में विचरण करते हैं, अतः आप से कुछ अविदित नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि पाण्डवगण अब क्या करना चाहते हैं।[३] जरासन्ध के कारावास में बन्द राजाओं ने श्रीकृष्ण के पास दूत भेजा है, जो सन्देश निवेदन के बाद उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा है। इसी मध्य नारद और श्रीकृष्ण का वार्तालाप चल रहा है। देवर्षि नारद युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ करने की इच्छा को श्रीकृष्ण से निवेदित करते हैं।

शिशुपालवध में शिशुपाल के वध रूप इन्द्र के सन्देश को देवर्षि नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं। इस सम्बन्ध में कवि ने पर्याप्त परिवर्तन भी किया है--शिशुपालवध में देवर्षि नारद मुख्यरूपेण इन्द्र के सन्देशवाहक के रूप में ही उपस्थित होते हैं।[४] वे शिशुपाल के वधार्थ उसके जन्मान्तरीय औद्धत्य का[५] तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण का प्रयोजन व्यक्त करते हैं। यद्यपि इसकी भूमिका श्रीमद्भागवत के आधार पर ही गठित की गयी है क्योंकि वहाँ भी वर्णन है कि श्रीकृष्ण ने सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के संहार अथवा दण्ड के लिये अवतार धारण किया है। माघ ने इस सन्देश को सीधे ही नहीं कहा, अपितु वे पहले श्रीकृष्ण के महत्त्व का वर्णन करके उन्हें मुख्य कार्य हेतु प्रेरित करते हैं।

---

१. शिशुपालवध, १।१

२. वही, १।११

३. श्रीमद्भागवत, १०।७०।३५-३६

४. तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र ! यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम् ॥'
—शिशुपालवध १।४१

५. शिशुपालवध, १।४२-७२

महाभारत में देवर्षि नारद के चले जाने के बाद युधिष्ठिर परामर्श (मन्त्रणा) का कार्य आरम्भ करते हैं। महाभारत की कथा के अनुसार श्रीकृष्ण युधिष्ठिर का आमन्त्रण पाकर तुरन्त चल देते हैं क्योंकि उन्हें केवल राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने का ही कार्य है, किन्तु श्रीमद्भागवत में नारद के सम्मुख ही मन्त्रणा होती है।

शिशुपालवध में देवर्षि नारद के चले जाने पर श्रीकृष्ण कार्यद्वयाकुल हैं। क्योंकि राजसूय यज्ञ में भी आहूत हैं और शिशुपाल का वध सम्बन्धी इन्द्र-सन्देश नारद देकर गये हैं। श्रीकृष्ण के मत से शिशुपाल का वध-विषयक-कार्य भी उपेक्षणीय नहीं है क्योंकि वह भी लोक में अव्यवस्था उत्पन्न कर रहा है।

ऐसी स्थिति में रत्नजटित खम्भों से सुशोभित सभाभवन में श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम प्रवेश कर मन्त्रणा करते हैं। इस अवसर पर महाकवि माघ ने अपने विस्तृत राजनीतिक ज्ञान का परिचय दिया है जो अन्य स्रोतोभूत ग्रन्थों में इतने विस्तृत रूप में उपलब्ध नहीं है। सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में मन्त्रणा का कार्य चलता है। बलराम का विचार है कि पहले शिशुपाल का वध किया जाय।

बलराम के पश्चात् उद्धव अपना मत व्यक्त करते हुये यज्ञ में सम्मिलित होने की सम्मति देते हैं। उद्धव शिशुपाल के साथ युद्ध करने को कालोचित नहीं मानते।[१] क्योंकि इस समय कालयवन, शाल्व, रुक्मी, आदि राजा भी उसका अनुगमन करेंगे।[२]

माघ का यह वर्णन पूर्णरूपेण श्रीमद्भागवत से सम्बद्ध है। शिशुपाल-वध में जरासन्ध के वध के स्थान पर शिशुपालवधरूप-कार्य का वर्णन है। परिस्थितियाँ समान हैं। श्रीमद्भागवत में जो मन्त्रणा कुछ श्लोकों में होती है, वही शिशुपालवध में सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में चलती है। इससे माघ की राजनीतिक प्रतिभा का परिज्ञान होता है।

सारांश में हम कह सकते हैं कि तीनों ही ग्रन्थों में मन्त्रणा का वर्णन है किन्तु सदस्यों की संख्या में अन्तर है। महाभारत में युधिष्ठिर, ब्राह्मण, ऋत्विक एवं ऋषिगण मन्त्रणा करते हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण, देवर्षि

१. शिशुपालवध, २।९५
२. वही, २।९९

नारद एवं यादवगण भी उपस्थित हैं किन्तु उद्धव के साथ ही मन्त्रणा होती है। शिशुपालवध में श्रीकृष्ण, बलराम एवं उद्धव की उपस्थिति है। तीनों ही ग्रन्थों में सर्वाधिक विस्तृत एवं राजनीति युक्त मन्त्रणा शिशुपालवध में ही होती है। शिशुपालवध में कार्य की युक्तियुक्त मीमांसा की गयी है।

महाभारत में श्रीकृष्ण इन्द्रसेन (दूत) के साथ ही इन्द्रप्रस्थ चल देते हैं और विविध देशों को पारकर हस्तिनापुर पहुँच जाते हैं।[1]

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण जरासन्ध से पीड़ित राजाओं द्वारा प्रेषित दूत को जरासन्ध से मुक्तिरूप-कार्य की स्वीकृति प्रदान कर स्वयं प्रस्थान की तैयारी कर देते हैं। उनके साथ वस्त्राभूषणों से समलंकृत रमणियाँ भी हैं। श्रीमद्भागवत में मार्ग में पड़ने वाले आनर्त, सौवीर आदि देशों, नदी, नगर, ग्राम, रैवतक आदि पर्वतों का भी वर्णन है।

इस प्रसंग में महाकवि माघ ने अति विस्तृत चित्रण किया है। शिशुपालवध में इस विस्तार का प्रमुख कारण सम्भवतः कवि के द्वारा काव्यशास्त्रीय नियमों का अनुपालन है।

कवि ने श्रीकृष्ण के द्वारिकापुरी से चलने की तैयारी, प्रस्थान मार्ग आदि का तीसरे सर्ग से बारहवें सर्ग तक विस्तृत वर्णन किया है। तीसरे सर्ग में श्रीकृष्ण की तैयारी का विशद् वर्णन है। वे छत्र, चामर, कुण्डल, केयूरक, मुक्ताहार, कौस्तुभमणि, करधनी धारण कर[2] समस्त पत्नियों के साथ[3] दिव्यास्त्रों[4] सहित शोभायमान हो रहे हैं। श्रीकृष्ण सेना सहित प्रस्थान करते हैं तथा नगरवासियों के द्वारा उत्सुकतापूर्वक देखे जाते हुए नगर के बाहर समुद्रतट पर आ पहुंचते हैं।[5] इस प्रसंग में कवि ने समुद्र तथा द्वारिकापुरी का विस्तृत वर्णन किया है।

चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। कवि ने रैवतक पर्वत के सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनायें की हैं। कहीं

१. महाभारत, सभापर्व, १२।३०--३१
२. शिशुपालवध, ३।२--१०
३. वही, ३।१४
४. वही, ३।१७--२१
५. वही, ३।७०

रैवतक विन्ध्यपर्वत के समान आचरण करता हुआ दिखायी देता है और कहीं वह सूर्यचन्द्र रूप नेत्रों से हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (पुरुष) के समान प्रतीत होता है।[1]

पंचम सर्ग में सूतपुत्र दारुक की रैवतक शोभा-सम्बन्धी मनोहारिणी वाणी को सुनकर श्रीकृष्ण वहाँ रमण करने की इच्छा करते हैं।[2] वहीं विभिन्न प्रकार के तम्बू, खेमे लगाकर सभी विश्राम करते हैं।

षष्ठ सर्ग में छहों ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है, वे श्रीकृष्ण की सेवा करती हैं। सप्तम सर्ग में यादव रमणियों का उपवन विहार तथा अष्टम सर्ग में जलकेलि का विस्तृत शृंगारिक वर्णन मिलता है। जलविहार के अनन्तर जब रमणियाँ अपने-अपने भवनों में पहुँचती हैं, उस समय दिन समाप्त हो जाता है। पुनः नवम सर्ग में रतिकेलि के वर्णन से पूर्व मद्य-पान का सुन्दर चित्रण हुआ है। तदनन्तर प्रभात हो जाता है। इस प्रसंग में कवि का प्रभातकालिक प्राकृतिक चित्रण अतीव सुन्दर एवं मनोहारी है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से मानवीय उत्थान-पतन का भी संकेत किया है।[3]

बारहवें सर्ग में प्रातः काल सूर्योदय हो जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न सुन्दर रथ पर आरुढ़ होकर शिविर से बाहर निकलते हैं और उनके पीछे हाथी, घोड़े आदि पर शस्त्रादि से सुसज्जित होकर राजा लोग निकल पड़ते हैं।[4] सेना प्रयाण के समय भयंकर शंख एवं मृदंग आदि की ध्वनि से विपक्षी राजाओं का हृदय पराजय की आशंका से भयभीत हो रहा है।[5] उस सेना के रथ एवं हाथियों के शब्द परस्पर मिश्रित हो रहे हैं जिससे कोई स्वर स्पष्ट सुनाई नहीं देता।

बहुत से राजा छत्र धारण किये हुए हैं, इससे छत्र ही छत्र दिखाई पड़ रहे हैं। रास्ते में श्रीकृष्ण ग्राम्य गोपों को देखते हैं जो मद्य-पीकर उछल कूद रहे हैं।[6] मार्ग में सेना नदी पार करती है। विभिन्न नगरों

---

१. शिशुपालवध, ४।२, ४

२. वही, ४।१ ३. वही, ११।

४. वही, १२।१--३ ५. वही, १२।१३

६. 'गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनात्सनादमुत्थाय मुहुः स वल्गतः।
ग्राम्यानपश्यत्कपिशं पिपासतः स्वगोत्रसंकीर्तनभावितात्मनः ॥'
—शिशुपालवध, १२।३८

को पार कर सेना अथाह यमुना नदी के तट पर आकर रुक जाती है। कुछ लोग तैरकर और कुछ नावों के द्वारा यमुना पार कर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान करते हैं।

महाभारत में इन्द्रप्रस्थ-प्रस्थान एवं वहाँ पहुँचने का दो श्लोकों में उल्लेख हुआ है[1] तथा श्रीमद्भागवत में दस श्लोकों में वर्णन किया है[2] किन्तु माघ ने उसी वर्णन को दश सर्गों में चित्रित कर स्रोतोभूत ग्रन्थों में चित्रित वस्तु का कलेवर ही परिवर्तित कर दिया है।[3] शिशुपालवध का यह प्रसंग श्रीमद्भागवत से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है क्योंकि दोनों ग्रन्थों में प्रस्थान-काल में वाद्यों, शंख, मृदंगादि का वर्णन हुआ है तथा श्रीकृष्ण के साथ यादव रमणियों, अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ जाने का वर्णन हुआ है। तृतीय सर्ग से द्वादश सर्ग तक का वर्णन कवि की कल्पना-प्रवणता का द्योतक है।

इस परिवर्तन का मुख्य कारण कवि द्वारा काव्यशास्त्रीय नियमों का परिपालन तथा अपनी सर्वत्रव्यापी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देना भी है।

श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर वहाँ उनका स्वागत होता है। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर और भीम उनका पूजन करते हैं। नकुल और सहदेव गुरु के सदृश अर्चना करते हैं। विश्राम के पश्चात् युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से अपना प्रयोजन निवेदित करते हैं।[4]

श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार जानकर उनके स्वागत के लिए युधिष्ठिर नगर से बाहर आ जाते हैं। वे श्रीकृष्ण से मिलकर अत्यन्त हर्षित होते हैं। भीम तथा अर्जुन भी उनका आलिंगन करते हैं।[5]

---

१. 'दर्शनाकाङ्क्षिणं पार्थं दर्शनाकाङ्क्षयाच्युतः।
इन्द्रसेनेन सहितं इन्द्रप्रस्थं ययौ तदा॥
व्यतीत्य विविधान्देशांस्त्वरावान्क्षिप्रवाहनः।
इन्द्रप्रस्थगतं पार्थमभ्यगच्छज्जनार्दनः॥ महा० सभापर्व, १२।३०--३१

२. श्रीमद्भागवत, १०।७१।१२--२२

३. शिशुपालवध, ३।१२ सर्ग

४. महाभारत सभापर्व, १२।३३--३४

५. श्रीमद्भागवत, १०।७१।३७-४३

महाभारत तथा श्रीमद्भागवत के साथ शिशुपालवध महाकाव्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि महाकवि ने अपना कथानक अपेक्षा कृत श्रीमद्भागवत के आधार पर काव्यबद्ध किया है। शिशुपालवध के तेरहवें सर्ग में युधिष्ठिर तथा उनके भाइयों द्वारा श्रीकृष्ण के सत्कार एवं इन्द्रप्रस्थ नगर में प्रवेश करने का चित्रण है। शिशुपालवध के युधिष्ठिर भी श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुनकर पाण्डवों सहित स्वागत के लिए चल पड़ते हैं।[१]

माघ ने व्यावहारिक शिष्टता को विशेष ध्यान में रखा है। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर जब एक दूसरे के समक्ष दूर से ही दिखाई देते हैं तब युधिष्ठिर के रथ से उतरने के पहले ही श्रीकृष्ण रथ से उतरकर विनम्रतापूर्वक प्रणाम करते हैं।[२]

इस प्रसंग में माघ एवं भागवतकार के वर्णनों में पर्याप्त साम्य है किन्तु उनके विस्तार में अन्तर है। जिस बात को भागवत में स्वल्प श्लोकों में रखा गया है। उसे माघ ने और अधिक मण्डित कर प्रस्तुत किया है। जैसे—श्रीकृष्ण के नगर में प्रवेश करने पर रमणियाँ गृह-कार्य छोड़कर दर्शनार्थ मार्गों में एकत्र होने लगती हैं। यह वर्णन श्रीमद्भागवत में भी है किन्तु माघकाव्य में विस्तृत है, जो अधिक शृंगारिक बन पड़ा है।[३]

कवि ने इन्द्रप्रस्थ नगरी के वर्णन के साथ ही युधिष्ठिर की सभा का भी अतीव सुन्दर वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत में कुन्ती के आदेश से द्रौपदी यादव रमणियों की सम्यक् पूजा करती हैं तथा शिशुपालवध में यादव एवं पाण्डव रमणियों के परस्पर आश्लेष का वर्णन मिलता है।[४]

महाभारत में युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से मिलने के पश्चात् अपना राजसूय यज्ञ करने का प्रयोजन बताते हैं।[५] श्रीकृष्ण उन्हें राजसूय यज्ञ का अधि-

१ शिशुपालवध, १३।२

२. वही, १३।७

३. वही, १३।३१,४८

४. शिशुपालवध, १३।१६

५. महाभारत, सभापर्व, १३।३५–३७

कारी बताते हैं तथा जरासन्ध के वध का निर्देश करते हैं। तदनन्तर भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण जरासन्ध पर विजय प्राप्त करने के लिए मगध जाते हैं। वहाँ श्रीकृष्ण भीम द्वारा जरासन्ध का वध कराकर यज्ञ में सम्मिलित होने इन्द्रप्रस्थ वापस आ जाते हैं।

भागवत में भी पहले जरासन्ध का वधरूप-कार्य होता है तत्पश्चात् युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारी होती है।

इस प्रसंग में महाकवि माघ ने परिवर्तन किया है। उन्होंने दिग्विजय की कोई चर्चा नहीं की है। शिशुपालवध में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ही शिशुपाल का वध होता है। महाकाव्य में राजसूय यज्ञ की बात कही गयी है, दिग्विजय की नहीं।[1] इससे प्रतीत होता है कि युधिष्ठिर पहले ही दिग्विजय कर चुके हैं। क्योंकि द्वितीय सर्ग के प्रथम श्लोक में यज्ञ में सम्मिलित होने के सन्देश का संकेत मात्र मिलता है।[2]

यहाँ पर महाकवि माघ ने दिग्विजय का प्रसंग महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत के अनुसार इस लिए रखा क्योंकि कवि का अभीष्ट प्रतिपाद्य शिशुपाल का वध करना है। यही फलागम है।

महाभारत में राजसूय यज्ञ में राजाओं के आमन्त्रण का विस्तृत वर्णन है।[3] श्रीमद्भागवतकार ने भी यज्ञ में सम्मिलित होने वाले ऋषियों एवं राजाओं का नामोल्लेख किया है।[4] महाकवि माघ ने निमन्त्रण का कोई उल्लेख नहीं किया है। इस प्रसंग में कवि ने स्रोतोभूत ग्रन्थों से बिल्कुल पृथक् अपना चित्रण किया है। मात्र श्रीकृष्ण के बुलाने का 'यियक्षमाणेनाहूतः' कहकर संकेत कर दिया है।

महाकाव्य में भिन्न-भिन्न स्थानों पर राजाओं के नाम आने से यज्ञ में सम्मिलित होने वाले राजाओं का पता चल जाता है।

श्रीकृष्ण के साथ चतुरंगिणी सेना, सारथि (दारुक) यादवनृपति, रमणियाँ, दासियाँ एवं सेना में रथ, गज आदि वाहनों पर आरूढ़ राज-

१. मन्यसेऽरिवधः श्रेयात् प्रीतये नाकिनामिति ।
पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलन्तराम् ॥
— शिशुपालवध, २।१०६

२. 'यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथद्विषन्मुरम्' शिशुपालवध, २।१ पूर्वार्द्ध

३. महाभारत, सभापर्व, ३४।१--१८

४. श्रीमद्भागवत, १०।७४।६--११

समूह है। यज्ञ में उद्गाता, होता, अध्वर्यु तथा ऋत्विज्गण भी हैं।[१] देवताओं की भी यज्ञ में उपस्थिति है।[२] शिशुपाल भी अपने पक्ष के राजाओं सहित यज्ञ में आता है। पन्द्रहवें सर्ग में प्रत्येक राजा का एक-एक श्लोक में वर्णन हुआ है।[३] इसमें बाणासुर, द्रुम, नरकासुर, पुत्र, उत्तमौजा, दन्तवक्र, रुक्मी, सुबल, आहुकि, कालयवन एवं वसु का नाम गिनाया गया है।

अन्य शिशुपाल-पक्षीय वेणुदारी एवं शाल्व राजाओं का नाम उन्नीसवें सर्ग में युद्ध के अवसर पर आया है। राजाओं के साथ उनकी पत्नियाँ भी हैं क्योंकि युद्ध के पूर्व उनसे विदा लेने का वर्णन मिलता है।[४]

सत्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण पक्षीय राजाओं का भी उल्लेख है। सात्यकि श्रीकृष्ण के संकेत पर शिशुपाल को उत्तर देना प्रारम्भ करता है।[५] श्रीकृष्णपक्षीय राजाओं के नाम काव्य में इस प्रकार यथाक्रम वर्णित हुए हैं—उलमुक, युधाजित, निषध, सुधन्वा, मन्मथ, पृथु, अक्रूर, प्रसेनजित, गवेषण, शिनि, शारण और विदूरथ।[६] श्रीकृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न भी उनके साथ है।[७]

इस प्रसंग में महाकवि माघ ने बड़ी कुशलतापूर्वक उपस्थित राजाओं का उल्लेखकर काव्य में निमन्त्रण आदि का अनपेक्षित विस्तार नहीं है। वस्तुतः कवि का यह उपस्थापन नितान्त नवीन एवं मौलिक है।

महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा शिशुपालवध तीनों ही ग्रन्थों में राजसूय यज्ञ का वर्णन है किन्तु 'शिशुपालवध' में माघ ने जैसा विस्तृत वर्णन किया है वैसा अन्य ग्रन्थों में सुलभ नहीं है।

महाभारत में वर्णन है कि श्रीकृष्ण की आज्ञा से युधिष्ठिर यज्ञीय सामग्रियों को एकत्र कर समागत राजाओं को यथोचित कार्य में नियुक्त

१. शिशुपालवध, १४।२०--२४
२. वही, १४।३०
३. वही, १५।४८--५७
४. शिशुपालवध, १५।८१--९६
५. वही, १६।१६
६. वही, १७।५--१७
७. वही, १९।११--१३

करते हैं। विभिन्न देशों से आये हुए राजा उपहार हेतु हजारों स्वर्ण मुद्रायें, रत्नादि लाते हैं। देवता लोग भी विमानों से यज्ञ देख रहे हैं।

श्रीमद्भागवत में भो संकेत में यज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है। जरासन्ध के बध से प्रसन्न हुए युधिष्ठिर यज्ञीय सामग्रियों को जुटाकर सुयोग्य ब्राह्मणों को विभिन्न होता पदों पर नियुक्त कर वैदिक विधान के अनुसार यह कार्य सम्पन्न करते हैं।[२]

महाकवि माघ ने अपने काव्य में राजसूय यज्ञ का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रसंग में कवि ने यज्ञ में कर्मकाण्ड-विधि सम्बन्धी बातों का विशेष रूप से सविस्तर चित्रण किया है। जो कवि के असाधारण वैदिक ज्ञान का सुस्पष्ट परिचायक हैं।

यज्ञ की समाप्ति पर अर्घ्य-पूजा का प्रश्न उपस्थित होता है। इस सम्बन्ध में तीनों ही ग्रन्थों में समानता है। युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य के योग्य बनाते हैं तदनुसार सहदेव सविधि उन्हें (श्रीकृष्ण को) प्रथम अर्घ्य प्रदान करते हैं।[३]

श्रीमद्भागवत में सहदेव सर्वप्राणियों में श्रीकृष्ण का अधिवास बताकर उनकी पूजा को वरीयता देते हैं और सभी अनुमोदन करते हैं। श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य प्रदान किया जाता है।[४]

तीनों ग्रन्थों में साम्य यही है कि श्रीकृष्ण हो प्रथम अर्घ्य के अधिकारी हैं।

शिशुपालवध में युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामाता एवं नृपति इन छः लोगों को अर्घ्यदान के योग्य बताते हुए असुरारि श्रीकृष्ण के अर्घ्यदान हेतु अपना अभिमत व्यक्त करते हैं।[५]

महाभारत में भीष्म के परामर्श के अनुसार युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण का पूजन करते हैं जिससे आत्मश्लाघाप्रिय, दर्पयुक्त शिशुपाल संक्रुद्ध हो जाता है। वह भीष्म और युधिष्ठिर को अनुचित बचन कहने लगता है।[६]

१. महाभारत सभापर्व, ३५।११--१९

२. श्रीमद्भागवत, १०।७४।६--१७

३. महाभारत, सभापर्व ३३।३०

४. श्रीमद्भागवत, १०।७४।१८--२८

५. शिशुपालवध, १४।५८

६. महाभारत, ३७।१--२९

शिशुपालवध में वर्णन है कि जब युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं तब शिशुपाल श्रीकृष्ण के सम्मान को नहीं सहन करता।[1] वह पहले से भी श्रीकृष्ण से क्रुद्ध है और पुनः उनके सत्कार को देखकर क्रोधोन्मत्त हो उठता है। वह श्रीकृष्ण, भीष्म और युधिष्ठिर को अपशब्द कहने लगता है। यद्यपि इससे श्रीकृष्ण को कोई विकार नहीं उत्पन्न होता है।[2] किन्तु भीष्म इस अपमान को न सहकर युद्धार्थ यह कहकर घोषणा करते हैं कि सभी विरोधी राजाओं के मस्तक पर मेरा पैर रखा जा रहा है।[3]

शिशुपाल भी राजाओं सहित कटुवचन कहता हुआ सभा से बाहर आ जाता है और शिविर में पहुँचकर युद्ध की तैयारी करने लगता है। युद्ध के लिए ज्यों ही तैयार होकर वीर बाहर आने लगते हैं त्यों ही अपशकुन होते हैं।

युद्ध की तैयारी हो जाने पर शिशुपाल का दूत भगवान् श्रीकृष्ण के समीप जाकर द्व्यर्थक (प्रिय-अप्रिय) वाणी में बोलने लगता है। तदनन्तर श्रीकृष्ण के संकेत से उनका दूत सात्यकि दूत से पूछता है कि यदि शिशुपाल श्रीकृष्ण से सन्धि करना चाहता है तो युद्ध की तैयारी का क्या प्रयोजन ?[4] अथवा उन्हें श्रीकृष्ण को भयाक्रान्त करने की इच्छा से ऐसा किया है तो वह भी व्यर्थ है क्योंकि श्रीकृष्ण इससे नहीं भयभीत होंगे। जहाँ तक सौ अपराधों की बात है, वह भी पूरे हो चुके हैं। यदि आगे अप्रिय या कटुवाणी प्रयोग की तो दण्ड मिलेगा।[5]

शिशुपाल का दूत जो अत्यन्त निर्भय है पुनः अपने स्वामिपक्ष का प्रबल समर्थन करता हुआ कहता है कि युद्धार्थ यादव नृपतियों को ललकारने के लिए ही शिशुपाल ने मुझे भेजा है क्योंकि शूरवीर कपट

---

१. शिशुपालवध, १५।१

२. 'कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः।
सत्यनित्यवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते॥'

—शिशुपालवध, १५।४०

३. विहितं मयाद्य सदसीदमपमृषितमच्युतार्चनम्।
यस्य नमयतु स चापमयं चरणः कृतः शिरसि सर्वभूभृताम्॥—वही, १५।४६

४ शिशुपालवध, १६।३४

५. वही, १६।३७

पूर्वक छिपकर आक्रमण नहीं करते।[1] युद्ध के प्रबल-वेग के समान वह शिशुपाल ससैन्य बढ़ता आ रहा है। अतः हे कृष्ण ! तुम अपनी रक्षा करो।[2] दूत के मुख से इस प्रकार कठोर घोषणापूर्ण वाणी को सुनकर श्रीकृष्ण भी युद्ध के लिए तैयारी की आज्ञा दे देते हैं। तत्पश्चात् दोनों सेनायें आमने-सामने आ पहुँचती हैं। पैदल-पैदल से, हाथी-हाथी से, घोड़े-घोड़े से तथा रथी-रथी से लड़ने लगते हैं।[3] श्रीकृष्ण के पराक्रम को न सहन कर सकने के कारण शिशुपाल क्रुद्ध होकर धनुर्युद्ध करने लगता है, किन्तु श्रीकृष्ण के सम्मुख नहीं रुक पाता।[4]

प्रायः महाभारत, श्रीमद्भागवत एवं शिशुपालवध तीनों ही में शिशुपाल की क्रोधपूर्ण वाणी का समान वर्णन है। इस प्रसंग में माघ ने पर्याप्त अन्तर किया है। महाभारत और श्रीमद्भागवत में कटूक्तियों के बाद श्रीकृष्ण द्वारा युद्ध में उसके मारे जाने का वर्णन है किन्तु शिशुपाल वध में कवि ने शिशुपालवध और श्रीकृष्ण दोनों के मध्य होने वाले युद्ध का भी वर्णन किया है। इस युद्ध का एक चित्र द्रष्टव्य है—

शूर युद्ध रूपी बाजार में जाकर देहस्थ प्राणों के मूल्य से स्थिर कीर्ति खरीदते हैं।[5]

महाकवि ने युद्ध का विस्तरपूर्वक वर्णन किया है जो अन्य एतद्-विषयक उपजीव्य ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि कवि ने नायक का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रतिनायक का पौरुष चित्रित किया है। यदि कलापक्ष की दृष्टि से विचार किया जाय तो महाकवि ने 'वीररसोचित स्थलों पर वीभत्स, श्रृंगार आदि रसों के वर्णन अथवा समुपस्थापन से अपना वैदुष्य प्रदर्शित किया है।

महाभारत में शिशुपाल के सौ अपराध पूरे हो जाने पर श्रीकृष्ण उसे अपने सुदर्शन चक्र से शिरोहीन कर देते हैं तथा उसका शिशुपाल

---

१. शिशुपालवध, १६।५२

२. वही, १६।५३ ३. शिशुपालवध, १८।२

४. महाकवि माघ—डॉ० मनमोहनलाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ३०६

५. रोदोरन्ध्रं व्यश्नुवानानि लोलैरंगत्यान्तर्मार्पितैः स्थावराणि।
केचिदगुर्वीमित्य संयन्निषद्यां क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि॥

शिशुपालवध, १८।१५

का तेज श्रीकृष्ण में समाहित हो जाता है।[1] तदनन्तर उचित रीति से उसका दाह-संस्कार भी होता है।

भागवतकार के इस प्रसंग में कुछ परिवर्तन है। वहाँ श्रीकृष्ण अपने पक्ष के राजाओं को शस्त्र लेकर शिशुपाल को मारने से यह सोचकर रोकते हैं कि वह शिशुपाल बलवान् है। कहीं स्वपक्ष के राजाओं को मार न दे। श्रीकृष्ण स्वयं उसका शिर चक्र से छिन्न कर देते हैं। इसके पश्चात् शिशुपाल के जन्म-जन्मान्तर का वर्णन हुआ है। शिशुपाल तीन जन्मों से चले आ रहे वैर का स्मरण कर श्रीकृष्ण की याद करता है और उन्हीं में समाहित हो जाता है। तदनन्तर युधिष्ठिर ब्राह्मणों को यथोचित दक्षिणा देकर यज्ञान्त स्नान करते हैं।

तीनों ही ग्रन्थों में शिशुपाल के युद्ध और श्रीकृष्ण के शरीर में जा मिलने का वर्णन है किन्तु उसके अन्तिम-संस्कार का वर्णन केवल महाभारत में ही है। शिशुपाल के अपराधों के सम्बन्ध में भी किसी अपराध अथवा उसके स्वरूप का वर्णन नहीं हुआ है। सम्भवतः सौ अपशब्द ही उसके अपराध हैं।

इस प्रकार महाकवि माघ ने अपने कथानक का निर्वाह अपने काव्य नायक श्रीकृष्ण के नायकत्व का ध्यान रखकर भी किया है। श्रीकृष्ण के पूर्व प्रतिज्ञात शतापराध-क्षमा का निर्वाह तथा दुष्ट शिशुपाल का वध एवं सज्जनों के रक्षणार्थ मानव रूप में अवतरित होने आदि की विभिन्न काव्यशास्त्रीय नियमों के आधार पर सफल वर्णना हुयी है। काव्य अथवा नाटक में मञ्च पर मरने या शव उठाकर ले जाने का वर्णन अनुचित होने से कवि ने इसका वर्णन नहीं किया है। अतः कविवर माघ ने पुष्पवृष्टि, वाद्य-ध्वनि के साथ श्रीकृष्ण के तेजोपुञ्ज में विलीन होते दिखाकर सुन्दर रूप में काव्य का पर्यवसान किया है।

---

१. महाभारत, ४५।२३--२८

: २ :

## काव्यस्वरूप

कवि कर्म ही काव्य है। भानुजी दीक्षित ने कवि शब्द की व्युत्पत्ति—'कवते श्लोकान् ग्रथते, वर्णयति वा कविः' इस प्रकार की है। कवि क्रान्तदर्शी होता है।[1] वह अपने इच्छानुकूल विश्व वाङ्मय का सर्जन करता है।[2] शब्द और अर्थ से ही काव्य बनता है तथा दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस तथ्य को महाकवि कालिदास ने भी स्वीकार करते हुये शिव और पार्वती की वन्दना की है।[3] काव्य का मौलिक स्रष्टा शब्द और अर्थ ही है। मूलतः इन्हीं शब्द और अर्थ पर ही काव्य की सत्ता है। किन्तु सभी विद्वान् काव्य के स्वरूप पर एकमत नहीं है। कोई रीति को, कोई रस को, कोई ध्वनि को तथा कोई वक्रोक्ति को काव्य का प्राणतत्त्व मानते हैं। विभिन्न आचार्यों ने काव्य को भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' कहकर काव्य को परिभाषित किया है। आचार्य वामन ने रीति को काव्य का आत्मा माना है—रीतिरात्मा काव्यस्य। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य का आत्मा ध्वनि माना है।[4] आचार्य मम्मट ने ऐसे शब्द और अर्थ को काव्य कहा है जो दोषों से रहित गुणों से युक्त एवं अलंकारों से समन्वित ही कहीं पर स्फुटालंकार से युक्त न भी हो।[5]

अग्निपुराण में अभीप्सित अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाला तथा दोषमुक्त गुण सहित वाक्य विधान को काव्य कहा गया है।[6]

---

१. कवयः क्रान्तद्रष्टारः।

२. यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।—अग्निपुराण, ३३९।१०

३. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरो॥—रघुवंश, १।१

४. ध्वन्यालोक, १।१

५. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।' —काव्यप्रकाश-सूत्र १

६. संक्षेपाद्वाक्यभिष्टार्थव्यच्छिन्ना पदावली।—अग्निपुराण

आचार्य विश्वनाथ ने गुणालंकार युक्त तथा दोषरहित शब्दार्थ को काव्य की संज्ञा दी है।[1]

पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है।[2]

उपर्युक्त आचार्यों के मतों की समीक्षा से निष्कर्ष स्वरूप ज्ञात होता है कि रमणीय, रसात्मक, गुणालंकार युक्त निर्दोष वाक्य को काव्य कहते हैं।

## महाकाव्य-लक्षण

भामह, दण्डी, रुद्रट, अग्निपुराणकार, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में महाकाव्य के लक्षण का सम्यक् प्रतिपादन किया है। आचार्य विश्वनाथ को छोड़कर उत्तरवर्ती आचार्यों ने प्रायः भामह-प्रतिपादित लक्षण का ही समर्थन किया है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में अपनी समन्वयवादी, सारग्राही प्रतिभा से अपने पूर्ववर्ती समस्त लक्षण ग्रन्थों में निरूपित महाकाव्य लक्षण का एक में समावेश कर सर्वमान्य सांगोपांग महाकाव्य लक्षण किया है। प्रस्तुत प्रसंग में महाकाव्य के लक्षण प्रस्तुत कर 'किरातार्जुनीयम्' का परीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है।

### भामह

लक्षण ग्रन्थों में भामह का काव्यालंकार प्रमुख है। इसमें काव्य भेदों के साथ महाकाव्य की परिभाषा एवं स्वरूप विवेचन हुआ है। भामह के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध तथा उसका प्रतिपाद्य गम्भीर होता है। उसका नायक धीरोदात्तादि गुणों से युक्त होता है।

महाकाव्य की भाषा अलंकार युक्त होने के साथ निरर्थक नहीं होती।[3] इसके द्वारा भामह ने महाकाव्य की उत्कृष्टता की ओर संकेत किया है। वे कृत्रिम अलंकरण के पक्षपाती नहीं हैं। इससे महाकाव्य के बाह्य एवं आन्तरिक उभय पक्षों का निर्धारण होता है। नायक की

---

१. गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ ॥--विद्यानाथ--प्रतापरुद्रीयम्, पृ० ४२

२. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

३. सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थं च सालंकारं सदाश्रयम् ॥ (भामह-काव्यालंकार)

उदात्तता से आन्तरिक गुरुता एवं सर्गबद्धता से बाह्य स्वरूप की अपेक्षा व्यक्त की है। उसमें मंत्र, दूत, प्रयाण, युद्ध तथा नायक का उत्कर्ष प्रदर्शित किया जाता है तथा ऋतु, चन्द्रोदय, पर्वत, उद्यान आदि का मनोहारी वर्णन होता है। इन वर्णनों से युक्त होते हुये महाकाव्य दुर्बोध नहीं होता चतुर्वर्गों के वर्णन के साथ ही उसका उपदेश अर्थोपदेश होता है। नाटकों में वर्णित पंचसन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, सावमर्श एवं उपसंहृति) अपेक्षित हैं। उसमें लोकस्वभाव एवं सभी रसों का वर्णन होता है। नायक का अभ्युदय बताकर किसी अन्य पात्र के उत्कर्ष हेतु उसका वध वर्णित नहीं होता। नायक कथानक में सर्वव्यापी होना चाहिये अन्यथा प्रारम्भ में की गयी उसकी स्तुति निरर्थक होती है।[1]

आचार्य भामह की महाकाव्य-परिभाषा को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने महाकाव्य में सर्गबद्धता तो बतायी किन्तु संख्या आदि का अथवा स्वल्पता एवं दीर्घता का निर्देश नहीं किया। उन्होंने मंगलाचरण का भी उल्लेख नहीं किया। महाकाव्य में अलंकार एवं छन्द की आवश्यकता व्यक्त की किन्तु उसके परिवर्तन आदि की व्यवस्था पर कोई प्रकाश नहीं डाला। भामह निरूपित महाकाव्य लक्षण का सार इस प्रकार समझा जा सकता है—(१) महाकाव्य की सर्गबद्धता (२) प्रतिपाद्य विषय की गुरुता (३) नायक की उदात्तता (४) नायक का उत्कर्ष (५) चतुर्वर्ग (६) सदाश्रय (७) लोकस्वभाव तथा रस वैविध्य (८) पंचसन्धि (९) समृद्धि में प्राकृतिक उपादान, ऋतुवर्णन, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि।

### दण्डी

संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में आचार्य दण्डी का प्रमुख स्थान है। इन्होंने काव्य के तीन भेद (गद्य-पद्य और मिश्र) करते हुए पद्य काव्य

---

१. पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥
चतुवर्गाभिधो नापि भूयसार्थोपदेशकृत्-
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः
न तस्येव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते
न चाभ्युदय--भाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवो ॥—भामह काव्यालंकार पृ० ५०

के अन्तर्गत महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण किया है। दण्डी के अनुसार महाकाव्य सर्गों में निबद्ध रचना होती है। उसका प्रारम्भ आशीर्वचन, नमस्कार अथवा वस्तुनिर्देश द्वारा किया जाता है। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक कथा पर अथवा उत्कृष्ट कोटि की कथा या पात्र पर आश्रित होता है। चतुर्थं वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) के वर्णन से युक्त, कुशल एवं उदात्त नायक से समन्वित होता है। महाकाव्य नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान क्रीडा, जलविहार, मदिरापान, सम्भोग, शृंगार, वियोग शृंगार, विवाह, पुत्रजन्म, राजनीतिक मंत्रणा, दूत (संप्रेषण), विजय यात्रा, युद्ध, नायक के उत्कर्ष आदि के वर्णनों से समलंकृत होता है। उसमें सर्ग न अधिक विस्तृत होते हैं और न ही अधिक संक्षिप्त। सर्गान्त में आगामी कथा की सूचना होती है। प्रत्येक सर्ग में एक प्रकार के छन्द होते हैं पर सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होता है। इसमें विभिन्न प्रकार की लोकरंजक, सहृदय-हृदयहारी घटनायें उपन्यस्त होती हैं। ऐसा ही महाकाव्य चिरस्थायी एवं अक्षय कीर्ति वाला होता है।[1] भामह की अपेक्षा आचार्य दण्डी का महाकाव्यलक्षण अधिक स्पष्ट है। उन्होंने भामह के लक्षणों को समेटकर और उसे अभिव्यक्त रूप दिया है। आचार्य दण्डी ने प्रारम्भ में मंगलाचरण का विधान आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक रूप में किया है। महाकाव्य में भिन्न वृत्तादि का उल्लेख कर उन्होंने एक नयी दिशा दी है।

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्॥
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रवणवृत्तैः सुसंधिभिः।
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति॥

—दण्डी, काव्यादर्श, १।१४--१९

**रुद्रट**

आठवीं शती की कश्मीरी काव्यशास्त्रीय परम्परा में आचार्य रुद्रट कृत काव्यालंकार का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने पूर्वाचार्यों की अपेक्षा और अधिक व्यापक महाकाव्य लक्षण प्रस्तुत किया है। इनकी समन्वयात्मक पद्धति में संस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रंशादि काव्य भी आ जाते हैं। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य काव्यबद्ध कथा रहती है। मूलकथा को गति प्रदान करने की दृष्टि से कुछ अवान्तर कथायें भी होती हैं। इसमें कथा सर्गानुसार एवं नाट्य तत्त्वों से समन्वित होती है। इसमें किसी प्रधान घटना के आधार पर सम्पूर्ण जीवन का चित्र दिग्दर्शित कराया जाता है। इसमें प्रकृति वर्णन, नगर वर्णन, वाटिका वर्णन होता है। महाकाव्य का नायक सर्वगुणोपेत, विदितकुलोत्पन्न एवं विजिगीषु होता है। नायक के साथ ही प्रतिनायक का भी वर्णन होता है जिसमें नायक की विजय एवं प्रतिनायक की पराजय वर्णित होती है। चतुर्वर्ग वर्णन के साथ एक की फल प्राप्ति अपेक्षित होती है। महाकाव्य में सभी रसों का संचरण प्रदर्शित किया जाता है। अलौकिक एवं प्राकृतिक तत्त्वों के वर्णन में अस्वाभाविकता वर्जित है।[1]

आचार्य रुद्रट ने रस पर विशेष बल दिया जो उनकी सर्वाधिक विशेषता है। इन्होंने अनावश्यक तत्त्वों को अपने लक्षण में स्थान नहीं दिया है। इसमें काव्य का आलंकारिक पक्ष गौण हो गया है। उन्होंने ऋतु, नगर, उद्यान आदि वर्णनों को सार्वभौम रूप से स्वीकार किया है।

**आचार्य विश्वनाथ**

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थकारों में आचार्य विश्वनाथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने साहित्यदर्पण में काव्य लक्षणों का सुन्दर एवं स्पष्ट शैली में

१. सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥
तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कविः सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्तिनायकमपि कुत्रचित्कुर्यात्॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवात् प्रकरणानि कुर्वीत।
संधीनपि संश्लिषंस्तेषामन्योन्य सम्बन्धात्॥
(रुद्रट काव्यालंकार, १६वां अध्याय)

वर्णन किया है। उनके अनुसार महाकाव्य लक्षण इस प्रकार हैं—महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिये और उसका नायक देव अथवा प्रख्यात वंश में उत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिये जो धीरोदात्त गुणों से युक्त हो। एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं शृंगार, वीर, शान्त में से एक रस मुख्य (अंगी) तथा शेष अन्य रसों का अंग रूप में वर्णन होना चाहिये। सभी नाट्य-सन्धियां (भुज, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श, उपसंहृति) का वर्णन अपेक्षित है। कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा विश्वविश्रुत किसी सज्जन से सम्बद्ध होनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों का वर्णन होना चाहिये तथा इनमेंसे किसी एक की प्राप्ति महाकाव्य का प्रयोजन होना चाहिये। महाकाव्य के आदि में नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिये। यत्र तत्र काव्य में खलों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिए। सर्गों की संख्या ८ से अधिक होनी चाहिये जो न तो अधिक लघु आकार के हों और न अधिक विस्तृत। एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का विधान होने के साथ सर्ग के अन्त में छन्द भिन्न होना चाहिये किन्तु कभी-कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी हो सकते हैं। सर्ग के अन्तिम श्लोक द्वारा अग्रिम सर्ग की कथा की सूचना अपेक्षित होती है। यथा-प्रसंग सन्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, सायं, मृगया, ऋतु, वन, पर्वत, नदी, समुद्र, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, विवाह, पुत्रजन्म, संयोग-वियोग, रण-प्रयाण इत्यादि का वर्णन होना चाहिये। महाकाव्य का नाम कवि, वर्ण्यविषय, नायक अथवा नायकेतर व्यक्ति के नाम पर होना चाहिये तथा सर्गों की संख्या उनमें वर्णित कथाओं के आधार पर होनी चाहिए।[१]

---

१. सर्गाबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्दशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूयाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृंगारवीरशान्तानामेकोंऽगी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिचनिन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥

आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य लक्षण में जो अस्पष्टता अथवा सन्दिग्धता थी उसका निराकरण करके स्पष्ट एवं सुबोध कर दिया। भामह, दण्डी, रुद्रट आदि पूर्ववर्त्ती आचार्यों ने सर्गों की संख्या निश्चित नहीं की थी। आचार्य विश्वनाथ ने उसका निश्चय अष्टाधिक कहकर कर दिया। उन्होंने एक ही वंश के कई राजाओं के नायक होने का विधान किया। उनके अनुसार शृंगार, वीर, शान्त में-से ही कोई एक, महाकाव्य का अंगीरस होना चाहिये। मंगलाचरण, सज्जन स्तुति, दुर्जन-निन्दा जैसी नवीन बातें जोड़ दी।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ के महाकाव्य लक्षणों का अनुशीलन करने से विदित होता है कि उनके महाकाव्य लक्षण में समस्त पूर्वाचार्यो के महाकाव्य लक्षण समाहित हैं तथा वह उनकी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा स्पष्ट होने से सर्वमान्य है।

**महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर किरातार्जुनीय का परीक्षण**

किरातार्जुनीय अठारह सर्गों की रचना है और इसके नायक धीरोदात्त गुणों से समलंकृत नारायण के अंश उत्तम क्षत्रियवंशोत्पन्न वीर अर्जुन हैं। अर्जुन में धीरोदात्त नायक के समस्त गुण विद्यमान हैं।[1] वह उच्चतम अन्तःकरण वाले, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान, आत्मप्रशंसा रहित, अहंभाव को गुह्य रखने वाले एवं दृढ़संकल्पी हैं। किरात में भीम

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकं ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृया शैलर्तुवनसागराः ॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयमन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथा सर्गनाम तु ॥
साहित्यदर्पण, ३।१५-२९

१. दशरूपक, २।४

द्रौपदी आदि पात्र उत्तेजित हो जाते हैं और दुर्योधन के विपरीत युधिष्ठिर को उद्दीप्त करते हैं किन्तु अर्जुन कहीं पर भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करते हुए अर्जुन के तेज एवं अन्तः शक्ति से सभी वन्यजीव अभिभूत होकर उनकी सेवा करने लगते हैं।[१] इन्द्र के अनुचर देवराज इन्द्र के पास जाकर अर्जुन की तेजस्विता की सर्वथा प्रशंसा करते हैं।[२] अर्जुन यद्यपि शारीरिक रूप से कृश हैं किन्तु उनका तेज एवं पराक्रम विरोधियों के लिए असह्य है।

अर्जुन अहंकार को दबाकर रखने वाले हैं, उनका स्वाभिमान जब तिरस्कृत होने लगता है तभी वे अपने गौरव का उल्लेख करते हैं। उनका वैशिष्ट्य तो यह है कि वे अपने गौरव का समुचित प्रदर्शन बिना किसी उत्तेजना के करते हैं जिससे उनका गाम्भीर्य झलकने लगता है। किरातपति के अनुचर से जब अपनी विशेषताओं को सुनते हैं तब वे अनुचर के वाग्वैभव की प्रशंसा करते हैं जिससे उनकी उच्चकुलीनता का द्योतन होता है।[३]

उदात्त गुणों से युक्त अर्जुन क्षमावान् है। उनमें अतिशीघ्र क्रोध नहीं उत्पन्न होता है। शूकर का वध हो जाने पर किरातपति शंकर का अनुचर अर्जुन के पास बाण लेने आता है और वह विभिन्न प्रकार के व्यंग्य वाक्यों का प्रयोग करता है किन्तु अर्जुन वह सब सुनते रहते हैं तथा पर्वत के सदृश अटल बने रहते हैं।[४]

अर्जुन के नायकत्व की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे अभिमानरहित एवं स्वाभिमान युक्त हैं किन्तु उन्हें अपने कर्त्तव्य मार्ग में आने वाला अवरोध सह्य नहीं है।[५] अर्जुन में उदात्त नायक का दृढ़व्रती

---

१ किरातार्जुनीय, ६।३४

२. वही, ६।३१

३. वही, १४।२--३

४. ततः किरातस्य वयोभिरुद्धतैः पराहता शैल इवार्णवाम्बुभिः।
जहौ न धैर्यं कुपितोऽपि पाण्डवःसुदुर्ग्रहान्तःकरणा हि साधवः॥

—किरातार्जुनीय, १४।१

५. वलशालितया यथा तथा वा धियमुच्छेदवरामयं दधानः।
नियमेन मया निवर्हणीयः परमं लाभमरातिभंगमाहुः॥

—किरातार्जुनीय, १३।१२

गुण विद्यमान है। उनका संकल्प है कि या तो अपनी जीवनलीला समाप्त कर दूँगा अथवा वेदव्यास के निर्देशानुसार इन्द्र को प्रसन्न कर शत्रु-विनाश का उपाय ज्ञात कर यश प्राप्त करूँगा।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त के समस्त अपेक्षित गुणों से परिपूर्ण हैं।

आचार्य दण्डी एवं आचार्य विश्वनाथ दोनों ने ही महाकाव्य के प्रारम्भ में तीन प्रकार के मंगलाचरण का विधान किया है। उनके अनुसार महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण से होना चाहिये। इस दृष्टि से देखने पर किराता-र्जुनीय का प्रारम्भ वस्तुनिर्देश से होता है। द्वैतवन में निवास करते हुए युधिष्ठिर ने जिस वनेचर को दुर्योधन का वृत्तान्त ज्ञात करने के लिये भेजा था, वह समस्त सूचनायें लेकर वापस आता है।[2]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में कहीं खलों की निन्दा तथा सज्जनों के गुणों का वर्णन होता है। इस दृष्टि से किरात में खल के रूप में दुर्योधन की निन्दा और उसके अपकर्ष का वर्णन प्राप्त होता है तथा सज्जनों की प्रशंसा के रूप में पाण्डवों के उदात्त मानवीय गुणों का संकीर्तन मिलता है।

प्रथम सर्ग में वनेचर युधिष्ठिर से दुर्योधन का वृत्तान्त निवेदन करते हुए उसे (दुर्योधन को) 'जिह्म' कहता है।[3] द्रौपदी युधिष्ठिर से मायावियों के साथ माया का व्यवहार करने का जो अपना विचार व्यक्त करती है, उसमें भी दुर्योधन को ही लक्ष्य कर 'मायावी' कहा गया है।[4] द्वितीय सर्ग में निःस्पृह वेदव्यास भी धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि कौरवों की अनैतिकता का उल्लेख करते हुये उन्हें 'पथभ्रष्ट' संज्ञा से अभिहित करते हैं क्योंकि उन्होंने द्रौपदी का वस्त्रापहरण रूप गर्हित कार्य किया है।[5]

यद्यपि काव्य में दुष्ट पात्र का प्रतिनिधित्व दुर्योधन करता है तथापि उसके माध्यम से सामान्यतया खलों, दुराचारियों की निन्दा का वर्णन प्राप्त होता है। तेरहवें सर्ग में अपने ऊपर आक्रमण करने की इच्छा से आते हुये शूकर को देखकर अर्जुन विभिन्न प्रकार के तर्क करते हुये

१. किरातार्जुनीय, ११।७९
२. वही, १।१ ३. वही, १।८
४. वही, १।३० ५. वही, १।१५

कहते हैं कि दूसरे की उन्नति में जलने वाले दुर्जनों के लिये कौन ऐसी सीमा है जिसका उल्लंघन वे नहीं कर सकते ।[1]

वस्तुतः महाकाव्य में खलों की निन्दा एवं उनके अपकर्ष तथा सज्जन-गुणानुवाद एवं उनके उत्कर्ष के माध्यम से सत्य, सदाचार एवं धर्म की विजय, छल- छद्म की पराजय के शाश्वत नियम की परिपुष्टि होती है।

किरात में सज्जनों की प्रशंसा की दृष्टि से पाण्डवों के धैर्य, न्याय-पथावलम्बन आदि गुणों का उन्मुक्त रूप से वर्णन प्राप्त होता है। वनेचर जहाँ एक ओर दुर्योधन की निन्दा करता है वहीं दूसरी ओर युधिष्ठिर आदि की साधुता का ज्ञान करता है । वनेचर के "वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः" इस सूक्ति परक कथन में "महात्मभिः" युधिष्ठिर जैसे महात्मा को लक्ष्य कर कहा गया है। पाण्डवों की सज्जनता अथवा भव्यता से प्रभावित होकर ही वेदव्यास उनके निकट आते हैं।[2]

इस प्रकार कवि ने खल निन्दा तथा सुजन गुण कीर्तन रूप शास्त्रीय नियम का सम्यक् अनुपालन किया है।

काव्यशास्त्रीय नियम के अनुसार किरात महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास तथा पुराण-प्रसिद्ध वृत्त किरात वेशधारी शंकर और अर्जुन के युद्ध पर आश्रित है जो महाभारत एवं शिवपुराण का उपजीवी है।

आचार्य विश्वनाथ, दण्डी तथा भामह के अनुसार महाकाव्य में पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन अपेक्षित होता है। इसके साथ ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, में से एक के फल का प्रधान रूप से वर्णन होता है। उक्त लक्षण के अनुसार भारवि ने अपने काव्य में पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन किया है। भारवि की दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का पालन ही सबसे बड़ा धर्म है। वेदव्यास अर्जुन को अपने तपोरूप व्यापार में संलग्न रहने का उपदेश करते हैं जिसके द्वारा ही वे शत्रु उन्मूलन हेतु पाशुपतास्त्र प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं।[3] कवि ने इन्द्र के माध्यम से अर्थ, काम और मोक्ष का भी चित्रण किया है। तपोनिरत अर्जुन की परीक्षा के लिये

---

१. "परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् ।"

( किराता, १३।७ )

२. ३. किरातार्जुनीय, ३।१२, १३।१३,

समागत ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र अर्जुन से कहते हैं कि युवावस्था की शोभा शारत्कालिक मेघ की तरह चंचल है। सम्पूर्ण जगत् दुःखमय है, अतः मोक्ष ही सज्जनों का परम प्राप्तव्य है।[1] इसी प्रसंग में अर्थ और काम की ओर भी संकेत मिलता है। कवि की दृष्टि में अर्थ तथा काम हिंसादिक अवगुणों के मूल हैं, अतः इनकी पुष्टि नहीं करनी चाहिये। ये तत्त्व ज्ञान में सर्वथा बाधक हैं।[2]

अर्जुन इन्द्र से अपना तपोरूप उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं—

**न सुखं प्रार्थये नार्थमुदन्वद्वीचिचञ्चलम्।**
**नानित्यताशनेस्त्रस्यन् विविक्तं ब्रह्मणः पदम्॥**
**प्रमार्ष्टुमयशः पंकमिच्छेयं छद्मना कृतम्।**
**वैधव्यतापितारातिवनितालोचनाम्बुभिः ॥**[3]

अर्जुन के समस्त व्यापार पाशुपतास्त्र रूप दिव्यास्त्र की प्राप्ति हेतु हैं। दिव्यास्त्र प्राप्ति ही फल है।[4]

शृंगार, वीर तथा शान्त रसों में एक अंगी रस होना चाहिये तथा शेष का अंग रूप में वर्णन अपेक्षित होता है।[5] किरातार्जुनीय वीर रस प्रधान महाकाव्य है। रस की उपकारक स्थिति में ही अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार, अलंकारत्व को कृतार्थ कहते हैं।[6] विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।[7] किरात का अंगीरस वीर है जिसका स्थायी भाव उत्साह है। महाकाव्य के नायक अर्जुन में उत्साह स्थायीभाव, किरातपति के अनुचर द्वारा कथित वचन उद्दीपन विभाव तथा नायक-प्रतिनायक द्वारा धनुष आदि अस्त्रों का आकर्षण अनुभाव एवं धैर्य, क्षमा आदि व्यभिचारी भाव हैं। महाकाव्य में वीररस का सुन्दर परिपाक हुआ है। द्रौपदी की वाणी में ओज है।

---

१. किरातार्जुनीय, ११।१२-१३

२. मूलं दोषस्य हिंसादेरर्थकामौ स्म मा पुषः।
तौ हि तत्वावबोधस्य दुरुच्छेदावुपप्लवौ॥—वही, ११।२०

३. वही, ११।६६-६७

४. दिव्यास्त्रः फलम् ( मल्लिनाथ )

५. साहित्यदर्पण, पृ० ६

६. काव्यप्रकाश, ८।२

७. नाट्यशास्त्र, ६।३२

वह विभिन्न ओजस्वी वक्तव्यों से युधिष्ठिर को शत्रुओं के विरुद्ध उद्दीप्त करती है।[1] द्रौपदी के वचनों का समर्थन करते हुये भीम भी उत्तेजक एवं उत्साहवर्धक वाणी बोलते हैं।[2] यद्यपि वीर रस ही महाकाव्य का प्रधान रस है तथापि अन्य रसों का अभाव नहीं दिखाई पड़ता अपितु वे समस्त शृंगार, वीर, शान्त आदि सफल एवं सम्यक् रूप से यथावसर चित्रित हुये हैं जो मुख्यरस में सहायक ही सिद्ध होते हैं। शृंगार रस का वर्णन उस समय हुआ है जब तपोनिरत अर्जुन को सम्मोहित करने के लिये इन्द्र के आदेश से अप्सरायें उनके निकट आती हैं। अप्सरायें अर्जुन को पथविचलित करने के लिये इन्द्र से प्रशंसित होकर इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचती हैं। इसमें सम्भोग शृंगार का प्राधान्य है। अप्सरायें और गन्धर्व रति के आलम्बन हैं। उद्दीपन रूप में रजनी, चन्द्रोदय, षड्ऋतुयें आयी हैं। शृंगार का प्रारम्भ षष्ठ सर्ग के अन्त से ही हो जाता है। सप्तम सर्ग में अप्सराओं के सविलास इन्द्रकील पर्वत के प्रति प्रस्थान का वर्णन है। शृंगार रस का पूर्ण परिपाक अष्टम सर्ग में हुआ है। वनविहार करती हुई अमरललनाओं के विलासपूर्ण शृंगारिक वर्णनों में शृंगार रस की व्यंजना हुई है।

महाकाव्य में शान्त रस का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। व्यास का सौम्य रूप शान्त रस का प्रतिनिधित्व करता है।[6] इसमें उनके सौम्य एवं सभी प्राणियों पर प्रभाव डालने वाले तेजस्वी स्वरूप का निदर्शन हुआ है। इन्द्रकील पर्वत पर तपस्यारत अर्जुन का शान्त रूप वर्णित है।[7] इस प्रकार किरात में अंगीरस वीर के अतिरिक्त अन्य शृंगार, रौद्र, भयानक, शान्त आदि रसों का सफल एवं स्वाभाविक चित्रण मिलता है। रस का विस्तृत विवेचन रस अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा। महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर किरात-काव्य रस की दृष्टि से खरा उतरता है।

१. किरातार्जुनीय, १।३२
२. वही, २।१८, २०--२१
३. वही, १७।३१, ५१
४. वही, ७।१४
५. वही, ८।१५--१७; १९
६. वही, २।५५-५६
७. वही, ६।२१--२२, ३२--३३

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित महाकाव्य लक्षणों में नाट्य-सन्धियों के सम्बन्ध में मतवैविध्य हैं। यद्यपि आचार्य विश्वनाथ 'सर्वे नाटकसन्धयः' लिखकर महाकाव्य लक्षण में अन्य शर्तों के साथ इसे भी आवश्यक मानते हैं। आचार्य दण्डी भी 'सुसन्धिभिः'[1] पद का प्रयोग करते हैं। भामह ने भी काव्य में सन्धियों को मान्यता दी है।[2] पाँच सन्धियां ये हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ अवमर्श और उपसंहृति।

कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक भेदों से दो प्रकार की होती है। इस महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु अर्जुन द्वारा तपस्यापूर्वक दिव्यास्त्र प्राप्त करना है। इन्द्र द्वारा अर्जुन के परीक्षणार्थ अप्सराओं का भेजना, इन्द्र का स्वयं उपस्थित होकर भगवान् शंकर की आराधना करने का निर्देश देना तथा पुनः किरातपति के अनुचर का सम्भाषण प्रासंगिक वृत्त है। कार्यावस्थाओं[3] एवं अर्थप्रकृतियों[4] के संयोग से ही सन्धियों की रचना होती है।

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये—अर्थप्रकृतियाँ फलसिद्धि के उपाय हैं। कार्य का अर्थ होता है—नायक का व्यापार। फल प्राप्ति के उद्देश्य से किये गये कार्य या नायक-व्यापार को पाँच अवस्थायें ही कार्यावस्थायें होती हैं। भरत मुनि ने लिखा है—'इतिवृत्त नाट्य का शरीर है, उसका विभाग पाँच सन्धियों के द्वारा किया जाता है।' सन्धि का अर्थ होता है मिश्रण या उचित ढंग से मिलना। इसका सम्बन्ध कथावस्तु के विभाजन को संश्लिष्ट रूप प्रदान करना है।[5] कथावस्तु चाहे नाटक की हो अथवा महाकाव्य की।

बीज अर्थप्रकृति और आरम्भ कार्यावस्था के संयोग से मुख सन्धि होती है। किरातार्जुनीय के प्रथम से तृतीय सर्ग तक बीज और आरम्भ का संयोग हुआ है। महर्षि वेदव्यास अपने आगमन का प्रयोजन बताते हुये कहते हैं कि जिस मन्त्रविद्या से अर्जुन तपस्या पूर्वक पाशुपतास्त्र प्राप्त कर द्रोण,

१. काव्यादर्श, १।११८

२. पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।—काव्यालंकार, १।२०

३. अवस्था पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः॥—दशरूपक, १।१९

४. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः॥—( दशरूपक, १।१८ )

५. अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।—वही, १।३५

कर्णादि वीरों का विनाश करने में सक्षम हो सकेंगे, वह मन्त्रविद्या बताने मैं आया हूँ।[1] पुनः इसी सर्ग के २४वें श्लोक में औत्सुक्य प्रदर्शन हुआ है जिसमें युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन वेदव्यास के सम्मुख शिष्य की भाँति समुपस्थित होते हैं।[2] अतः यहाँ मुख सन्धि स्पष्ट लक्षित होती है।

इस महाकाव्य की मुख्य कथा दिव्यास्त्रप्राप्ति हेतु अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करना है। किन्तु अर्जुन के इन्द्रकील-प्रस्थान काल में पाण्डवों में अर्जुन के विश्लेषजन्य दुःख से मुख्य कथा बाधित होती है।[3] पुनः अर्जुन का फलसिद्धि ( दिव्यास्त्र प्राप्ति ) के लिये इन्द्रकील पहुँचकर कठोर तप करना, यत्न कार्यावस्था है। इससे प्रतिमुख सन्धि स्पष्ट होती है। यह सन्धि तृतीय सर्ग के २९वें श्लोक से षष्ठ सर्ग के २८वें श्लोक तक है। अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर कठोर तप में रत हैं। उनके तेज से समस्त प्राणिवर्ग प्रभावित हैं। इसकी सूचना वनेचर, इन्द्र को देता है तथा इन्द्र तप में विघ्न डालनें के लिये अप्सराओं एवं गन्धर्वों को अनेकविध प्रबोधित एवं प्रशंसित कर भेजते हैं किन्तु अर्जुन विचलित नहीं होते जिससे वे इन्द्र का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर उनसे भगवान् शंकर की आराधना करनें का निर्देश, प्राप्त करते हैं। यह पताका अर्थप्रकृति है। साथ ही विभिन्न विघ्न बाधाओं–सुरतकेलि, पानगोष्ठी आदि से कार्यसिद्धि व्यवधान युक्त हो जाती है। किन्तु इन्द्र के आगमन से पुनः कार्य-सिद्धि लक्षित होने लगती है। यहाँ प्राप्त्याशा है। इस प्रकार यहाँ गर्भ सन्धि की स्थिति है।

किरातवेशधारी भगवान् शिव और अर्जुन शूकर पर बाण प्रक्षेपण करते हैं। जिससे उसका प्राणान्त हो जाता है और अर्जुन अपना बाण उठा ले आते हैं। पुनः शिव-प्रेषित अनुचर अर्जुन से अपने स्वामी का बाण वापस देने के लिये उत्तेजनापूर्ण वाणी बोलता है। इसको प्रकरी कह सकते हैं। यह एकदेशीय घटना है जिसका नायक दूत अथवा अनुचर है। यह १३वें सर्ग से सम्पूर्ण १४वें सर्ग तक व्याप्त है। इसके

१. किरातार्जुनीय, ३।२२

२. इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेति प्रमाणयन्वाक्यमजातशत्रोः।
प्रसेदिवांसं तमुपाससाद वसन्निवान्ते विनयेन जिष्णुः॥

वही, ३।२४

३. वही, ३।३२

अनन्तर अर्जुन भी प्रत्युत्तर देते हैं तथा अर्जुन और शिव के युद्ध में पुनः शिव का साक्षात्कार होता है एवं पाशुपतास्त्र प्राप्ति होती है। इसके साथ नियताप्ति कार्यावस्था है जो द्वादश सर्ग से अष्टादश सर्ग के प्रारम्भ पर्यन्त दृष्टिगत होती है। इसमें पहले शूकर का आक्रमण रूप उपाय दिखाया गया है तथा युद्धादि के पश्चात् भगवान् शंकर के दर्शन देने से फलप्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है। इस प्रकार प्रकरी और नियताप्ति के संयोग से अवमर्श सन्धि महाकाव्योचित रूप में व्यक्त हुयी है।

भगवान् शिव अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं और सभी देवताओं की उपस्थिति में अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं। उन्हें फल प्राप्ति हो जाती है।[1] इस प्रकार कार्य और फलागम के योग से निर्वहण सन्धि है।

किरातार्जुनीय के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महाकवि ने उसमें महाकाव्योचित पाँच सन्धियों का सनियम एवं अकृत्रिम प्रयोग किया है।

लक्षणानुसार किरात में अष्टाधिक अठारह सर्ग हैं जो न तो स्वल्प हैं और न दीर्घ ही।

भारवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द वंशस्थ है। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्त-तिलक में इसकी प्रशंसा की है।[2] प्रथम सर्ग का प्रारम्भ वंशस्थ छन्द से होता है।[3]

सर्गान्त के दो श्लोकों में पुष्पिताग्रा एवं मालिनी छन्द हैं जो महाकवि द्वारा महाकाव्य के नियमानुसार निबद्ध हैं। द्वितीय सर्ग के प्रारम्भिक ५६ श्लोकों में वियोगिनी या विषमाक्षर वृत्त हैं। अन्तिम तीन श्लोकों में छन्द भिन्न हैं। इनमें क्रमशः उपजाति, पुष्पिताग्रा तथा वसन्ततिलका छन्द हैं। भारवि ने नियमानुसार सर्गान्त में छन्द भिन्न करने के साथ ही पंचम सर्ग में अनेक छन्दों का भी प्रयोग किया है।

---

१. किरातार्जुनीय, १८।१३-४८

२. वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकी कृता॥—सुवृत्ततिलक

३. किरातार्जुनीय, १।१

इसमें मालिनी[१], पुष्पिताग्रा[२], वसन्ततिलका[३], द्रुतविलम्बित[४], प्रमिताक्षरा[५] प्रभा[६], क्षमा[७], रथोद्धता,[८] जलधरमाला[९], प्रहर्षिणी,[१०] जलोद्धत[११] गति, शालिनी[१२] और वंशपत्र[१३] पतित हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भारवि ने किरात में महाकाव्य के नियमानुसार छन्दों का विधान किया है। सबसे कम ३८ श्लोक चतुर्थ सर्ग में तथा सर्वाधिक ८१ श्लोक एकादश सर्ग में हैं। अन्य सर्गों में भी प्रायः ५० श्लोक से अधिक ही हैं। सर्ग के अन्त में अग्रिम सर्ग की कथा की सूचना का नियम-पालन समस्त सर्गों में किया गया है। यथा-प्रथम सर्ग में कौरवों के उत्कर्ष का वर्णन करने के पश्चात् द्रौपदी शत्रुकृत अपमान का बदला चुकाने के लिए युधिष्ठिर को उत्तेजित करती हैं और अन्तिम श्लोक में यह कहकर कि इस समय आप विपत्ति सिन्धु में निमज्जित हैं, पुनः शत्रुओं का नाशकर राजलक्ष्मी आपका स्वागत करेगी।[१४] यह वाक्य द्वितीय सर्ग की कथा से सम्बन्ध जोड़ता है जिसमें वेदव्यास आकर युधिष्ठिर को शत्रु-विनाश का उपाय बताते हैं।

महाकाव्य में यथाप्रसंग सूर्योदय-चन्द्रोदय, सन्ध्या-प्रातः, रात्रि-मध्याह्न, मृगया, ऋतु, वन, पर्वत, नदी, समुद्र, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संयोग-वियोग, रणप्रयाण इत्यादि का वर्णन आवश्यक होता है।

भारवि ने नवम सर्ग में प्रभातकाल का सन्ध्या के साथ साम्य दिखाते हुये संकेत किया है।[१५] सायंकाल का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र खींचा गया है।[१६] सन्ध्या समय सूर्य के अस्त होने की उत्प्रेक्षा का सुन्दर मानवीकरण किया गया है।[१७] सान्ध्य समय सूर्य को शनैः शनैः अस्ताचल की ओर प्रस्थान करते हुये वृक्षों का सहारा लेकर विलीन

---

१. किरातार्जुनीय ५।५२
२. वही, ५।३२, ३८, ४०, ४१, ४४
३. वही, ५।२८--३०, ३३, ३७, ४२, ४९
४. वही, ५।१--१६ ×, ४५--४८
५. वही, ५।२०, २४, २५
६. वही, ५।२१
७. वही, ५।१८
८. वही, ५।२२
९. वही ५।२३
१०. वही, ५।२६, ३४, ३९, ५०, ५१
११. वही, ५।२७
१२. वही, ५।३६
१३. वही, ५।४३
१४. वही, १।४६
१५. वही, ९।८१
१६–१७. वही, ९।२,३ ९।५

होते चित्रित किया गया है। [1]क्षणिक सन्ध्या के पश्चात् रात्रि का आगमन कितनी शीघ्रता से होता है, इसका प्रत्यक्ष चित्र दृष्टिगत होता है।[2] रात्रि में किसी वस्तु में कोई भेद नहीं रह जाता, इस पर कवि ने कल्पना की है कि सूर्य भगवान् विवेक अपने साथ लेकर चले गये हैं। जिससे वस्तुगत भेद दूर हो गया है।[3]

चन्द्रोदय वर्णन बड़ा ही चित्ताकर्षक एवं स्वाभाविक हुआ है। जिस प्रकार सायं, रात्रि तथा चन्द्रोदय एक गति से अथवा स्वाभाविक रूप में गतिमान रहते हैं उसी क्रम से महाकवि भारवि भी इनका चित्रण करते हैं। रात्रि बीतते ही यथाकाल चन्द्रोदय हो जाता है।[4] रात्रि का वर्णन कवि ने उपमा और रूपक के माध्यम से किया है।[5] किरातेश्वर की आज्ञा से अर्जुन की परीक्षा के लिये सेना मृगया के लिये निकल पड़ती है। किरात सेना के चलने से सम्पूर्ण जंगल में हलचल मच जाती है। उस समय पशुपक्षी भय के कारण अपने झुण्ड से वियुक्त होकर इधर उधर भागने लगते हैं।[6] यद्यपि इस मृगया का लक्ष्य मूक दानव रूपी शूकर ही है जो अर्जुन की परीक्षा का विषय है। इस प्रसंग में अर्जुन और किरातपति शंकर द्वारा शर-प्रहार का हस्तलाघव एवं पराक्रम दृष्टिगत होता है।[7] शूकर की मृत्यु के अनन्तर शंकर के अनुचर और अर्जुन के मध्य इसी मृगया को विषय बनाकर वार्तालाप होता है।[8]

यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर आते हुये अर्जुन शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन करते हैं जो उनके लिये उपहार स्वरूप हैं।[9] महाकवि ने शरद् ऋतु का यत्र-तत्र अत्यन्त श्रृंगारिक वर्णन प्रस्तुत किया है।[10] इस ऋतु का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण मिलता है।[11] अर्जुन की तपश्चर्या भंग करने के लिये इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सरायें इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच जाती हैं। उनके आदेश से अर्जुन के सम्मोहनार्थ छहों ऋतुयें एक साथ, वन आकाशादि स्थानों पर पृथक्-पृथक् फैल जाती हैं।[12] महाकवि ने समस्त ऋतुओं का क्रमशः संश्लिष्ट रूप में

१–२. किरातार्जुनीय, ९।७, ९।१०

३–४. वही, ९।१२, ९।१७

५–६. वही, ९।१३, १४, १५, १६, १२।४५, ४७, ४८, ५२

७. वही, १३।२९

८. वही, १४।१३,–१५

९-१०. वही, ४।२, ४।१२

११-१२. वही, ४।१८, १०।१८

वर्णन किया है। वर्षा में आकाश बादलों से आच्छन्न हो जाता है। मेघ गर्जन करने लगते हैं।[1] महाकवि के ऋतु वर्णन से प्रतीत होता है कि उन्होंने ऋतु के कामोत्तेजक पक्ष को ही विशेष चित्रित किया है क्योंकि इन सबका प्रसंगानुकूल सम्बन्ध अर्जुन की तपस्या भंग करना और अपनी ओर विषयासक्त करना है। वर्षा की समाप्ति एवं शरद् के आरम्भ का उपमापूर्ण वर्णन हुआ है। जिसमें वर्षा की उपमा वर से और शरद ऋतु की उपमा वधू के साथ दी गयी है। शरद्रूपी वधू का अलंकरण मृणालतन्तु रूपी कंकण और कुमुदिनी के वनरूपी वस्त्र से होता है। इसी प्रसंग में केतकी, मालती, कदम्बादि पुष्पों तथा उन पर गुंजार करने वाले भ्रमरों का भी वर्णन हुआ है।[2] हेमन्त ऋतु का वर्णन महाकवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। इस ऋतु में पुष्पित होने वाले पुष्पों, लताओं, प्रियंगु, कुन्द, लवलीलता का उल्लेख किया गया है।[3] पुनः इसी क्रम में शिशिर ऋतु का भी मनोहारी वर्णन हुआ है—इस ऋतु से वसन्त का प्रारम्भ होता है, आम्रमंजरियों के सौरभ से वन रम्य हो जाता है। ओस कम हो जाती है।[4] इसके तुरन्त पश्चात् महाकवि ने वसन्त का पदार्पण कराया है। ऋतुराज वसन्त को सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ मानकर अप्सराओं को कुछ आशा होती है किन्तु वह भी जितेन्द्रिय अर्जुन को जीतने में नहीं समर्थ होतो।[5] ग्रीष्म ऋतु में मल्लिका एवं तीव्र आतप की ओर कवि ने संकेत मात्र किया है।[6]

इस प्रकार महाकवि भारवि ने महाकाव्य लक्षण के अनुसार षड्-ऋतुओं का वर्णन किया है। उनके इस ऋतु वर्णन को पढ़ने से प्रतीत होता है कि शरद् ऋतु को छोड़कर शेष का वर्णन सम्भवतः भारवि ने काव्यलक्षण निर्वाह की दृष्टि से किया है। किरात में कालिदास जैसी ऋतु वर्णना के दर्शन नहीं होते अथवा महाकवि ने नायक अर्जुन का त्वरित उत्कर्ष दिखाने की दृष्टि से ऋतुओं का और अधिक मनोरम वर्णन नहीं किया है। कुछ ऋतुओं का तो मात्र संकेत अथवा क्रम गिनाने की दृष्टि से ही अनुपालन किया है।

भारवि ने महाकाव्य लक्षणों के आधार पर वन, शैल आदि का भी यथोचित वर्णन किया है। पंचम सर्ग में हिमालय का सुन्दर चित्रण हुआ

१. किरातार्जुनीय, १०।१९
२. वही, १०।२८, २९
३. वही, १०।३२-३५
४. वही, १०।२४-२६
५. वही, १०।३०
६. वही, १०।३६-३७

है। सर्वप्रथम हिमालय पर्वत का औन्नत्य वर्णित है। इसकी ऊँचाई से सूर्य का प्रकाश दूसरी ओर न पहुँचने से अन्धकार रहता है जिससे गज-चर्म ओढ़े हुये साक्षात् भगवान् शिव से उपमित हो रहा है।[1] यह हिमालय पर्वत रत्न राशियों से युक्त है तथा यहाँ कमल विकसित मानसरोवर भी है जहाँ कलहंस निवास करते हैं। पार्वती एवं प्रमथगणों सहित भगवान् शिव का यहाँ निवास स्थान है।[2]

हिमालय पर्वत पर वन भी हैं जो बड़े ही घने हैं जिनकी उपमा अज्ञेय ब्रह्मा ही हो सकते हैं।[3] कल्पवृक्षों एवं सुधा से युक्त यह हिमालय है। हिमालय पर्वत को स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ एवं मनोरम तथा समग्र स्वर्गस्थ सम्पत्तियों से परिपूर्ण वर्णित किया गया है। महाकवि ने गंगा नदी का भी सुन्दर प्राकृतिक वर्णन किया है। हिमालय पर्वत की नदियों की नवविवाहिता रमणी से उपमा दी गयी है।[4] इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन भागीरथी की जलराशि में विनम्रतापूर्वक वृक्षों को गोता लगाते हुये देखते हैं। इसके अतिरिक्त अर्जुन अन्य नदियों को गंगा से मिलती हुई देखते हैं जिनमें चिलकती मछलियाँ उनके नेत्रों की तरह प्रतीत हो रही हैं।[5]

किरातेश्वर भगवान् शंकर और अर्जुन का युद्ध अतीव लोमहर्षक चित्रित हुआ है। किरातों की अपार सेना से समस्त भूमि नीचो-ऊँची होने पर भी समतल दिखायी पड़ती है। इस अपार सेना का सामना कृशकाय अर्जुन करते हैं। अर्जुन युद्धकाल में शूकर रूपी यज्ञीय पशु के सामने पड़ होने से साक्षात् शंकर सदृश प्रतीत हो रहे हैं।[1] किरात सेना रणक्षेत्र में विराजमान अर्जुन को अपने-अपने समक्ष देख रही है जिस प्रकार सांसारिक लोग एक स्थान पर स्थिति सूर्य को सर्वत्र देखते हैं।[6] इस प्रसंग में युद्ध के विविध रूपों यथा अस्त्र-शस्त्र से तथा मल्लयुद्ध आदि का वर्णन मिलता है। वस्तुतः यह अर्जुन और किरातपति शंकर का युद्ध सामान्य कोटि का नहीं अपितु दिव्य युद्ध है। इसमें नायक अर्जुन का उत्कर्ष दिखाया गया है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित महाकाव्य लक्षण के अन्तर्गत मुनि वर्णन अपेक्षित हैं। इसका भी सुन्दर वर्णन

---

१. किरातार्जुनीय, ५।२ २. वही, ५।१३
३. वही, ५।१८ ४. वही, ५।१० ५. वही, ६।१६
५. वही, १४।३३, ३८ ६. वही, १४।५८

वेदव्यास के रूप में किया गया है जो युधिष्ठिर को शत्रुकृत अपमान का बदला चुकाने हेतु दिव्यास्त्र प्राप्ति का उपाय बताते हैं। तृतीय सर्ग में वेदव्यास का आगमन होता है, उनके स्वरूप का सुन्दर वर्णन युधिष्ठिर के मुख से कराया गया है। द्वितीय सर्ग के अन्त में व्यास का सौम्य रूप चराचर को प्रभावित करने वाला, कलुष विनाशक, सुकृत समूह के मूर्तिमान् रूप में किया गया है।[१] वे निःस्पृह किन्तु सज्जनों के पक्षधर हैं।

शिव सेना का रणप्रयाण भी वर्णित हैं। शूकर वध हेतु किरातेश्वर शंकर की सेना के प्रस्थान का रोमांचकारी वर्णन किया गया है। गणेश तथा भगवान् शिव का समग्र परिवार किरातवेश में धनुष, शूल, परशु बाण लेकर युद्धार्थ सन्नद्ध है। उस समय जीवजन्तु भयाकुल होकर इधर-उधर पलायन करने लगते हैं।[२] पृथ्वी पर गिराने की इच्छा से अर्जुन ऊपर उछले हुये शंकर के चरण जैसे ही पकड़ते हैं भगवान् शंकर प्रकट हो जाते हैं और पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं।[३]

महाकाव्य का नामकरण कवि, वर्ण्यविषय, नायक अथवा अन्य किसी के नाम पर होना चाहिये। इस दृष्टि से इसके नायक अर्जुन तथा किरात के आधार पर किरातार्जुनीय महाकाव्य पड़ा। इसकी मुख्य कथा किरात और अर्जुन का युद्ध तथा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति है।

मल्लिनाथ ने सम्भवतः महाकाव्य-लक्षणों के आधार पर ही यह स्वीकार किया है—

**नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्थांशजः**
**स्तस्योत्कर्षकृते त्ववर्ण्यततरां दिव्यः किरातः पुनः।**
**शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः**
**शैलाद्यानि च वर्णितानिबहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम् ॥**[४]

## शिशुपालवध का महाकाव्यत्व परीक्षण

लक्षण-ग्रन्थों में प्रतिपादित महाकाव्य के समस्त लक्षण शिशुपालवध में सम्यक् घटित होते हैं। इस महाकाव्य में २० सर्ग हैं जो न स्वल्प हैं और न अधिक। प्रत्येक सर्ग में श्लोकों की संख्या ६७ से न्यून नहीं तथा उन्नीसवें सर्ग में अधिकतम एक सौ बीस श्लोक हैं। इसका कथानक श्रीकृष्ण के जीवन की एक प्रमुख घटना पर आधारित है तथा वही

---

१. किरातार्जुनीय, २।५६--५७ २. वही, १२।४३--४५ ३. वही,
४. किरातार्जुनीय, मल्लिनाथकृत घण्टापथ टीका।

इसके नायक हैं। महाकाव्य की सर्वोत्कृष्टता नायक पर आश्रित होती है। अतः काव्यशास्त्रीय दृष्टि से नायक का परीक्षण आवश्यक हो जाता है। लक्षण ग्रन्थों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिये। इस महाकाव्य के नायक क्षत्रिय वंशावतंस चन्द्रवंशी श्रीकृष्ण हैं जो गम्भीर, मृदु, प्रियभाषी, क्षमावान्, आत्मश्लाघा तथा अहंकार रहित, स्थिरचित्त एवं समस्त धीरोदात्त गुणों से मण्डित हैं। भगवान् श्रीकृष्ण योगियों के साक्षात्करणीय आदि पुरुष हैं जिन्होंने पृथ्वी के भार को हल्का करने के लिये भूतल पर अवतार लिया है।[१] ऋषि, मुनि एवं ब्राह्मणादि का वे अच्छी प्रकार से सम्मान करते हैं। श्रीकृष्ण का मनुजत्व ही उनके नायकत्व की सर्वाधिक विशेषता है। श्रीकृष्ण का गाम्भीर्य काव्य में विभिन्न स्थलों पर प्रकट हुआ है यथा—नारद द्वारा शिशुपालवध रूप इन्द्र का संदेश पाकर उसके वध की स्वीकृति दे देते हैं। मन्त्रणा गृह में बलराम के रोषपूर्ण वचनों को जो शिशुपाल के वध को प्राथमिकता देते हैं, बड़ी गम्भीरता से सुनते हैं। युधिष्ठिर के यज्ञ-मण्डप में शिशुपाल अपशब्द एवं कठोर वचन बोलता है किन्तु श्रीकृष्ण क्रुद्ध नहीं होते। वे आत्मश्लाघा नहीं करते अपितु अपने गुणों को दूसरों से सुनकर लज्जित हो जाते हैं।[२] सात्यकि शिशुपाल से कहता है कि भगवान् श्रीकृष्ण सिंहसदृश हैं जो मेघों के गर्जन से ही गरजते हैं।[३] श्रीकृष्ण अत्यन्त विनम्र हैं। युधिष्ठिर के यज्ञ में सभी प्रकार के कार्य करने के लिये तैयार हैं। वे अत्यन्त विनम्रता से कहते हैं कि मैं कठोर आज्ञा का पालन करने के लिये तैयार हूँ।[४] उनमें सेवाभाव सर्वाधिक है। वे दुष्टों के वधार्थ अवतरित हुये हैं। नारद के प्रस्ताव को "ओम्" कहकर मान्यता दे देते हैं और उसका पालन करते हैं। नारद की आज्ञा से वे आसन ग्रहण करते हैं[५] तथा नतमस्तक होकर नारद द्वारा छिड़के गये सम्पूर्ण तीर्थों के जल को नम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं।[६]

महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होता है अथवा लोकप्रसिद्ध सज्जनों से सम्बद्ध होना चाहिये। इसका कथानक महाभारत के सभापर्व से गृहीत है तथा श्रीकृष्ण के चरित्र पर आधारित है। कथानक की दृष्टि

१. शिशुपालवध, १।३७
२. वही, १४।२-३ ३. वही, १६।३० ४. वही, १४।१५
५. वही, १।१९।१८ ६. वही, १।१८

से शिशुपालवध महाकाव्य अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है। महाकाव्य में शृंगार, वीर, शान्त इन तीनों रसों में से कोई एक अंगी रस के रूप में अपेक्षित होता है। शिशुपालवध में वीररस की प्रधानता है। मल्लिनाथ ने भी "वीरप्रधानो रसः" कहकर शिशुपाल में वीररस की प्रमुखता बतायी है।

वीर रस का उच्चकोटि का निदर्शन इस महाकाव्य में हुआ है। युद्धक्षेत्र में वीरों के जाने की तैयारी, वीरों का उत्साह, ओजस्विता आदि का अत्यन्त सजीव चित्रण हुआ है। सैनिकों में इतनी त्वरा और युद्ध का उन्माद है कि विना आघात किये ही नंगी तलवारें शत्रुओं के वक्षःस्थल में प्रविष्ट हो जाती हैं।[१] हाथी, वीरों की हड्डियों को लकड़ी की तरह कड़कड़ाकर फाड़ देते हैं।[२]

शिशुपालवध में वीर रस का अत्यन्त रोमांचकारी वर्णन हुआ है। वस्तुतः माघ के वीर रस विषयक प्रसंगों को पढ़ने से ही एक विकरालता समक्ष प्रतीत होने लगती है। उसमें वीर रस के अतिरिक्त महाकाव्य के नियमानुसार अन्य रस भी अंग रूप में आये हैं। शृंगार के चित्र तो हिन्दी के विहारी को भी लाँघ गये हैं। स्नान करने के पश्चात् नायिका अपने शरीर को सुखाती है किन्तु वह यह नहीं जान पाती कि यह आर्द्रता प्रियतम के सात्विक भाव जन्य खेद से और भी बढ़ रही है।[३] माघ ने अधिकतर संभोग शृंगार का ही वर्णन किया है। उनमें विप्रलम्भ के चित्र अत्यल्प ही मिलते हैं। वे भी संभोग शृंगार के उद्दोपक रूप में ही हैं। अन्य विभिन्न रसों का पृथक्-पृथक् विस्तृत विवेचन रस अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

काव्य का प्रारम्भ आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण से होना चाहिये। इस दृष्टि से देखने पर शिशुपालवध का मंगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक[४] है। महाकाव्य में कहीं-

१. शिशुपालवध, १८।१७

२. आक्रम्यैकामग्रपादेन जंघामन्यामुच्चैराददानः करेण ।
सास्थित्वानं दारुवद्दारुणात्मा कंचिन्मध्यात्पादयामास दन्ती ॥—वही, १८।५१

३. प्रत्यंसं विलुलितमूर्धजा चिराय स्नानार्द्रवपुरुदवापयत् किलैका ।
नाजानादभिमतमन्तिकेऽभिवीक्ष्य स्वेदाम्बुद्रवमभवत्तरां पुनस्तत् ॥
—वही, ८।६८

४. वही, १।१

कहीं पर दुर्जनों की निन्दा एवं सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिये। शिशुपालवध में प्रसंगानुसार सज्जनप्रशंसा तथा दुष्टनिन्दा हुई है। सात्यकि ने भगवान् कृष्ण और शिशुपाल के व्याज से क्रमशः प्रशंसा एवं निन्दा की है। महाकवि ने दुर्जनों का प्रमुख दोष उनकी परगुण असहिष्णुता तथा परदोषान्वेषण को स्पष्ट किया है।[1] सज्जन स्वतः अपने गुणों का गान नहीं करते अपितु उनका गुणगान अन्य लोग करते हैं। सज्जन और दुर्जन का एक साथ गुण दोष सोलहवें सर्ग में बताया गया है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि ने सज्जनों की प्रशंसा तथा दुर्जनों की निन्दा करते हुए महाकाव्य के नियम का अक्षरशः पालन किया है।

शिशुपालवध में प्रायः एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है तथा सर्ग के अन्त में छन्दः परिवर्तन पूर्वक आगामी कथा का संकेत किया गया है। प्रथम सर्ग का प्रारम्भ वंशस्थ छन्द से हुआ है तथा सर्ग के अन्तिम दो श्लोकों में क्रमशः पुष्पिताग्रा एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में कई छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। चतुर्थ सर्ग के रैवतक वर्णन में उपजाति,[3] वसन्ततिलका[4], पुष्पिताग्रा[5], द्रुतविलम्बित[6], शालिनी[7], पथ्या[8], प्रहर्षिणी[9], आदि विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। महाकवि ने वर्णनों के अनुसार छन्दों का विधान किया है।

महाकवि माघ ने महाकाव्योचित सूर्योदय आदि समस्त उपादानों का अपने महाकाव्य में समाहार किया है। प्रभात वर्णन में उन्होंने नवीन कल्पनाओं से युक्त श्लेषमूलक प्रभात वर्णन किया है। जिस प्रकार बालक घुटनों के बल चलता हुआ मुस्कराती हुयी माँ या स्त्रियों के बुलाने पर उनकी गोद में जाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ता है वैसे ही यह प्रभातकालिक बाल-सूर्य उदयाचल रूपी आँगन में विकसित कमलिनियों तथा पक्षियों के कलरव के व्याज से आकाशरूपिणी माता के बुलाने पर अपने किरण रूपी हाथों को फैलाता हुआ आगे बढ़ रहा है।[10] माघ के वर्णनों की विशेषता यह है कि वे कोरी कल्पना ही नहीं हैं अपितु उन

---

१. शिशुपालवध, १६।२९ २. वही, १६।२१–२४

३. वही, ४।१७–१८, १९, २०, २१ ४. वही, ४।१९ ५. वही, ४।२०

६. वही, ४।२१ ७. वही, ४।२३, २४, २६ ८. वही, ४।२४

९. वही, ४।२६ १०. वही, ११।४७

कल्पनाओं को साकार करते हुए उन्हें प्रकृति के शाश्वत नियमों में घटित किया गया है। नवम सर्ग में सूर्यास्त का चित्रण किया गया है। सायंकाल पक्षी अपने आवास स्थान (घोंसलों) की ओर चल देते हैं। इस बात को कवि ने उत्प्रेक्षा पूर्वक इस प्रकार कहा—सायंकालिक वायु से कम्पित लता रूपी अंगुलियों से बुलाते हुये वृक्षों को पक्षिसमूह मानों प्रत्युत्तर दे रहे हैं कि हम लोग शीघ्र ही आ रहे हैं।[१] शिशुपाल में अस्तकालिक सूर्य की विभिन्न कल्पनायें हैं जो मानवीय स्वभाव के अनुरूप बन पड़ी हैं। दिन के बृद्ध होने की कल्पना[२], तेजहीन (अर्थहीन) सूर्य को पश्चिम दिशारूपिणी वेश्या के द्वारा घर से निकाल देने की कल्पना[३] आदि प्रमुख हैं। सन्ध्या के पश्चात् अन्धकाराच्छादित रात्रि का वर्णन हुआ है। घनीभूत पंक के सदृश अन्धकारसमूह पर्वतों की गुफाओं से बाहर आ गया है अथवा यह अन्धकार कहीं बाहर से आकर गुफाओं का सेवन कर रहा है।[४] इस प्रकार फैलते हुये अन्धकार के सम्बन्ध में सन्देहपूर्ण कल्पनायें प्रस्तुत की गयी हैं। माघ के इन वर्णनों का अध्ययन करने से विदित होता है कि मानों कवि ने अभिसरण करने वाली नायिकाओं की श्रृंगारिक अभिलाषाओं की पुष्टि करने के लिए अत्यन्त अन्धकारपूर्ण रात्रि का चित्रण किया है। अत्यन्त घनीभूत अन्धकार में भी नेत्रों में अनुराग रूपी अंजन को लगाकर प्रिय के भवन का मार्ग पकड़कर नायिकायें अभिसरण करने लगती हैं।[५] माघ की एक प्रमुख विशेषता है कि वे अपने वर्णनों में अपूर्व स्वाभाविकता ला देते हैं। इस रात्रिकाल में क्षीण कटि, कृशांगी नायिकायें भयभीत नहीं होती हैं क्योंकि कार्यार्थी को किसी क्लेश की चिन्ता नहीं हुआ करती।[६] रात्रि के वर्णन के तश्चात् चन्द्रोदय का इसी नवम सर्ग के २५वें श्लोक से ४२वें श्लोक तक सुन्दर वर्णन किया गया है।

महाकवि माघ ने चन्द्रोदय का वर्णन एक पौराणिक कथा के रूपक द्वारा किया है। जिसमें चन्द्रमा को राम, उसके शशलांछन को लक्ष्मण तथा नक्षत्र समूह को जाम्बवान आदि से अनुगत समुद्र को लाँघकर अन्धकार रूपी राक्षसवंश का विनाश करने वाला कहा गया है।[७] चन्द्रमा से रात्रि सुशोभित होती है और रात्रि से चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है,

१. शिशुपालवध, ९।४ २. वही, ९।३ ३. वही, ९।१० ४. वही, ९।१९
५. वही, ९।२१ ६. वही, ९।२२ ७. वही, ९।३१

क्योंकि बड़े लोगो का संयोग स्वभावतः परस्पर उन्नतिकारक होता है।[१] महाकाव्य के लक्षणानुसार अपेक्षित शैल वर्णन भी चतुर्थ सर्ग में रैवतक वर्णन के रूप में प्राप्त होता है। रैवतक पर्वत नवीन प्रभायुक्त रत्नों से परिपूर्ण है।[२] वह वेदों में वर्णित "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः" पुरुष की समानता अपने सहस्रों शिखरों तथा सूर्य चन्द्र रूपी दो नेत्रों से कर रहा है।[३] महाकवि ने रैवतक पर्वत का निदर्शना पूर्ण वर्णन किया है जो अत्यन्त नवीन एवं मौलिक कल्पना प्रसूत है। प्रातःकाल का समय है। उस पर्वत के एक ओर सूर्य उदित हो रहा है, दूसरी ओर चन्द्रमा अस्त हो रहा है। रज्जुरूपी किरणों से युक्त दोनों ओर लटकते हुये दो घण्टों से सुशोभित रैवतक पर्वत गजराज की शोभा को धारण कर रहा है।[४] इसी वर्णन को दृष्टिगत कर विद्वानों ने माघ को 'घण्टा माघ' की उपाधि दी है। महाकवि माघ ने षष्ठ सर्ग में यमकालंकार युक्त ऋतु-वर्णन प्रस्तुत किया है। भगवान् श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत पर विहार कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर उनकी सेवा करने के लिये वसन्तादि ऋतुएँ एक साथ पदार्पण करती हैं।[५] सर्वप्रथम वसन्त ऋतु का कवि ने वर्णन किया है। इस ऋतु के पुष्पों, पलाश वन, मकरन्द पूरित कमल, कुरबक, चम्पा, अशोक आदि पुष्पों का संयोग शृंगार के उद्दीपक के रूप में चित्रण हुआ है।[६] कोयल का मधुर कूजन कामोद्दीपक रूप में वर्णित है।[७] वसन्त ऋतु के अनन्तर ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है इसमें शिरीष नवमल्लिका पुष्पों के साथ विलासीजनों को मदमस्त करने वाले भ्रमर गुंजन कर रहे हैं।[८] ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा ऋतुका पदार्पण होता है। इस ऋतु का भी महाकवि ने कामोद्दीपक रूप में चित्रण किया है। स्फुटित होती हुयी विद्युत्, नीलवर्ण मेघ, केका करते हुये मयूर, कदम्ब पुष्प एवं कन्दली पुष्पों की सुगन्ध का सभी कामियों के लिये उद्दीपक रूप में वर्णन हुआ है।[९] क्रमशः शरद ऋतु का चित्ताकर्षक चित्रण हुआ है। इस ऋतु का वस्तुतः स्वाभाविक एवं अकृत्रिम चारु वर्णन हुआ है–शरद ऋतु में हंसों के शब्द मधुर एवं मयूरों के शब्द कर्कश लगने लगते हैं। इस पर महाकवि ने उत्प्रेक्षा की

---

१. शिशुपालवध, ९।३३ २. वही, ४।३ ३. वही, ४।४
४. वही, ४।२० ५. वही, ६।०१
६. वही, ६।२-५ ७. वही, ६।८
८. वही, ६।२२२३ ९. वही, ६।२५,२६,२९,३०,३२

है कि प्राणियों को बलवान् अथवा निर्बल समय ही करता है ।[१] कवि ने इस ऋतु के पुष्पों में स्त्रियों के विभिन्न अंगों की तुलना की है । जया पुष्प में अधर की, वनराजि में स्त्री के मुख की तथा नीली झिण्टो के पुष्पदलों में स्त्रियों के चंचल नेत्रों की कल्पना की है ।[२] ऋतुओं के इस क्रम में हेमन्त का वर्णन भी किया गया है । इस ऋतु में शैत्याधिक्य हो जाता है जो मानिनी स्त्रियों के मान को स्वभावतः दूरकर प्रिय समागम के लिए उत्कण्ठित कर देता है ।[३] हेमन्त ऋतु के वर्णनानन्तर कवि ने पाँच श्लोकों में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है । इस ऋतु में लोध्र पुष्प और लवंग पुष्पों का शृंगारिक वर्णन किया गया है ।[४] महाकवि माघ ने अलग से भी एक साथ षड्ऋतुओं का वर्णन किया है ।[५] तृतीय सर्ग में महाकाव्योचित द्वारिका नगरी एवं समुद्र का वर्णन हुआ है । समुद्र के मध्य सुन्दर द्वारकापुरी वडवाग्नि की ज्वाला के समान सुशोभित होती है ।[६] द्वारकापुरी जो ब्रह्मा के समग्र शिल्पविधान की सीमा है, स्वच्छ समुद्र जल में स्वर्ग की छाया के समान प्रतिबिम्बित हो रही है ।[७] शिशुपाल में द्वारकापुरी का सुन्दर एवं वैभव पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है[८] इस वर्णन के सम्यक् पठन से महाकवि को श्रीसम्पन्नता एवं वैभव का परिज्ञान होता है अथवा माघ ने श्रीकृष्ण जैसे पात्र के लिये जो श्रीसम्पन्न वसुदेव के घर में जन्म ग्रहण किये हैं, की निवासभूमि का सम्पन्नतापूर्ण वर्णन उचित ही है । माघ ने जिस किसी वर्ण्य-विषय का स्पर्श किया है उसको पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है, चाहे वह रावण, शिशुपाल का औद्धत्य हो चाहे रैवतक अथवा समुद्र एवं द्वारिका नगरी का वर्णन । समुद्र के वर्णन प्रसंग में माघ ने उच्चध्वनि करते हुए तथा पृथ्वी पर फैले हुये, बाहु के समान चंचल तरंगों वाले फेनयुक्त नदीपति को मृगी का रोगी समझा[९] । मुनियों द्वारा वेदों का आशय ग्रहण कर विरचित स्मृतियों की तरह मेघों के द्वारा समुद्र से ही जल लेकर पुनः समुद्र का अनुसरण करती हुयी नदियों का बड़ा ही स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।[१०]

---

१. शिशुपालवध, ६।४४    २. वही, ६।४६    ३. वही, ६।५७
४. वही, ६।६४,६६    ५. वही, ६।६७--७६    ६. वही, ३।३३
७. वही, ३।३५
८. वही, ३।३८,४३,४८,४९,५९,
९. वही, ३।७२
१०. वही, ३।७५

महाकाव्य के लक्षणानुसार मुनि-वर्णन में देवर्षि नारद का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन करते हुये नायक श्रीकृष्ण द्वारा उनका आतिथ्य सत्कार कराया गया है। वे कमल केसर के समान सुन्दर जटाओं से युक्त हैं, स्वयं शरत्कालिक चन्द्रमा की कान्ति वाले, पिशंग मेखला, सुन्दर चमूरु चर्म धारण किये हैं।[1] लक्षणानुसार अपेक्षित 'यज्ञ' वर्णन भी सम्यक् दृष्टिगत होता है। यह प्रसंग चतुर्दश सर्ग के अष्टादश श्लोक से द्विपंचाशत श्लोक पर्यन्त प्राप्त होता है। यजमान स्वरूप युधिष्ठिर अष्टमूर्ति भगवान् शंकर के सदृश शोभायमान हो रहे थे।[2]

माघ को कर्मकाण्ड एवं वेदमन्त्रों का यथावत् ज्ञान है। उनके द्वारा वर्णित यज्ञ विधान के अधार पर 'याग-नियम-पद्धति' पर पुस्तक का प्रणयन किया जा सकता है। युधिष्ठिर के यज्ञ-विधान में ऋत्विज् गण देवताओं का आह्वान करने वाले मन्त्रों से इन्द्रादि देवों के लिये हवन कर रहे हैं।[3] उद्गाता वैदिक मन्त्रों का पाणिनीय शिक्षा[4] में विहित विधि से उच्च स्वर में गान कर रहे हैं।[5] यज्ञ की समाप्ति पर ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दक्षिणा प्रदान की जाती है।[6] यज्ञों में याचकों को भी यथेष्ट धन मिलता है। जो पुरुष जिस वस्तु, धन स्वास्थ्य आदि की इच्छा से आता है, उसे वह सब यथेच्छ प्राप्त होता है।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह यज्ञ युधिष्ठिर का ही सर्वस्व साधक नहीं था अपितु सम्पूर्ण विश्व की कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्पतरु है। इसके अध्ययन से माघ की विश्वजनीन भावना का परिज्ञान होता है।

राजनीतिक मन्त्रणा का भी सुन्दर वर्णन द्वितीय सर्ग में बलराम उद्धव और श्रीकृष्ण के मध्य हुआ है।[8] राजनीतिक मन्त्रणा के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ससैन्य द्वारकापुरी से प्रस्थान करते हैं।[9] विशाल सेना में अश्व एक दूसरे से रगड़ खाते हुये बाहर निकल रहे हैं तथा इस विशालता को देखकर लोग मार्ग छोड़ देते हैं।[10] इस प्रकार महाकवि माघ ने सेना प्रयाण का सुन्दर वर्णन किया है।[11]

---

१. शिशुपालवध, १।५,६,७,८,

२. वही, १४।१८ ३. वही, १४।२० ४. पाणिनी शिक्षा, ५४--५५

५. वही, १४।२ ६. वही १४।३४

७. वही, ४।४९ ८. वही, २।६

९. वही, ३।६५ १०. वही, ३।६६-६७ ११. वही, १७।६२,६५

महाकवि माघ ने अपेक्षित नाट्य सन्धियों का भी अपने काव्य में यथोचित समाहार किया है। शिशुपालवध में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध मुख्य अथवा आधिकारिक वृत्त है तथा इन्द्रप्रस्थगमन, राजसूय यज्ञ, आदि प्रासंगिक कथायें हैं। प्रासंगिक वृत्त के पताका और प्रकरी नाम से दो भेद होते हैं।[1] श्रीकृष्ण का ससैन्य इन्द्रप्रस्थ प्रयाण, यादव-रमणियों की जलकेलि, इन्द्रप्रस्थ-प्रवेश तथा राजसूय यज्ञ पताका वृत्त है जिसके पताका-नायक युधिष्ठिर हैं। शिशुपाल के दूत द्वारा श्लेषपूर्ण वचन प्रकरी-कथा है। इन पताका और प्रकरी के विधान का उद्देश्य मुख्य कथावस्तु में गति देना है।

नारद द्वारा इन्द्र सन्देश[2] देते हुये शिशुपाल के वध[3] की प्रार्थना करना बीज अर्थप्रकृति है तथा भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा स्वीकृति[4] दे देने पर, नारद के गमनानन्तर जो श्रीकृष्ण की क्रोध सूचक, शत्रु-विनाशक भृकुटि का टेढ़ा होना है, वही कार्यसिद्धि के लिये औत्सुक्य होने से प्रारम्भ कार्यावस्था है। इस प्रकार दोनों के संयोग से मुख-सन्धि स्पष्ट है।

श्रीकृष्ण के सम्मुख शिशुपाल का वध-कार्य मुख्य कथा है तथा युधिष्ठिर का निमन्त्रण अवान्तर कथा है। इसमें किस कार्य को प्राथमिकता दी जाय, इसके लिये श्रीकृष्ण उद्धव और बलराम से परामर्श करते हैं। उद्धव राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने की सम्मति देते हैं। इस प्रकार बलराम और उद्धव के परस्पर विरोधी वचनों से निर्णय न हो पाने की स्थिति में मुख्य कथा बाधित-सी होने लगती है किन्तु राजसूय यज्ञ में जाने का निर्णय हो जाने से कथा का प्रवाह पुनः आगे बढ़ता है। ऐसी स्थिति में यहाँ बिन्दु अर्थप्रकृति है तथा राजसूय यज्ञ में जाने का निर्णय करके प्रस्थान की त्वरित तैयारी होने से यत्न अवस्था हुयी। अतः दोनों के योग से प्रतिमुख सन्धि परिलक्षित होती है।

श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ-प्रस्थान और युधिष्ठिर का यज्ञ-कार्य वह दूर तक चलने वाली कथा है। राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा तथा शिशुपाल एवं विपक्षी राजाओं द्वारा पाण्डवों के लिए कटु वाक्यों का प्रयोग आदि विघ्न (रुपाय) है तथा शिशुपाल पक्षीय राजाओं के लिये

१. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्। दशरूप, १।१३

२. शिशुपालवध, १।४१ ३. वही, १।७३ ४. वही, १।७५

अपशकुन आदि फल प्राप्ति के चिह्न हैं। इनसे फल-प्राप्ति की सम्भावना बढ़ती है। इस प्रकार पताका अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा कार्यावस्था होने से गर्भसन्धि दृष्टिगत होती है।

एकदेश स्थित कथा होने के कारण प्रकरी का स्वतः कोई उद्देश्य नहीं होता; यथा शिशुपाल का दूत अपने स्वामी के आदेशानुसार बोलता है। यद्यपि प्रकरी-नायक का कोई फलान्तर नहीं होता तथापि वह मुख्य इतिवृत्त का विस्तार करने में सहयोग करता है। फलप्राप्ति का निश्चय हो जाना ही नियताप्ति है। शिशुपाल और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध में श्रीकृष्ण की विजय के चिह्न में[1] नियताप्ति कार्यावस्था स्पष्ट हो जाती है। उक्त प्रसंग में नियमानुसार अवमर्श सन्धि स्फुट होती है। जिस अभीष्ट के लिये काव्यगत समस्त व्यापारों का विधान किया जाता है, वह 'कार्य' अर्थ-प्रकृति होती है। शिशुपाल का वध साध्य या कार्य है। वधरूप कार्य अर्थप्रकृति है तथा श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिरच्छेदन तथा शिशुपाल के तेज का कृष्ण की देह में समाहित हो जाना[2] फलागम है। अतः 'कार्य' और 'फलागम' के संश्लेष से यहाँ उपसंहृति सन्धि है।

इस प्रकार शिशुपालवध में पाँचो संधियों का सुन्दर संयोजन महाकाव्य लक्षणों के अनुरूप हुआ है।

महाकाव्य का नामकरण वर्ण्य विषय के आधार पर 'शिशुपालवध' हुआ है। सारांश रूप में आचार्य मल्लिनाथ का कथन अत्यन्त समीचीन है—

**नेताऽस्मिन् यदुनन्दनः स भगवान्वीरप्रधानो रसः**
**शृंगारादिभिरंगवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।**
**इन्द्रप्रस्थगमाद्युपाय विषयश्चैद्यावसादः फलं।**
**धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्॥**

**किरात एवं शिशुपाल का महाकाव्य लक्षण की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षण**

संस्कृत साहित्य में भारवि और माघ अलंकृत शैली के दो ऐसे महाकवि हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में एक दूसरे के निकट हैं। दोनों ने केवल एक-एक महाकाव्य की रचना की है। दोनों के महाकाव्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित महाकाव्य लक्षणों के सर्वथा अनुरूप हैं। प्रस्तुत प्रसग में

१. शिशुपालवध, १९।८३ २. वही, २०।७८–७९

महाकाव्य लक्षण को दृष्टिगत कर दोनों महाकाव्यों की तुलना प्रदर्शित की जा रही है।

भारवि ने अपने महाकाव्य को 'श्री' शब्द से प्रारम्भ कर मंगलाचरण किया है।[1] माघ ने भी 'श्री' शब्द युक्त वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।[2] भारवि ने सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है तथा माघ ने लक्ष्मी के ही पर्यायभूत 'श्री' शब्द का प्रयोग कर सर्ग की समाप्ति की है।

किरातार्जुनीय का कथानक महाभारत के वनपर्व से लिया गया है। वनपर्व में २७ से ४१वें अध्याय तक की छोटो-सी कथा को भारवि ने अपनी वर्णनकुशलता से सुगंठित कर उसमें चारुत्व ला दिया है।

शिशुपालवध महाकाव्य का इतिवृत्त एक प्राचीन आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित है जिसका वर्णन महाभारत में सभापर्व के अन्तर्गत 'शिशुपालवध' नाम से हुआ है। यह श्रीकृष्ण के जीवन की एक प्रधान घटना पर आश्रित है। शिशुपालवध की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भी प्राप्त होती है।

किरात के अर्जुन धीरोदात्त कोटि के नायक हैं जो आचार्यों द्वारा प्रतिपादित समस्त गुणों से युक्त हैं। अर्जुन के गुणों का सम्यक् वर्णन महाकाव्य में प्राप्त होता है। वस्तुतः नायक सम्पूर्ण कथा में व्याप्त होता है क्योंकि वही वास्तविक फलभोक्ता होता है एवं समस्त काव्य व्यापार उसी पर आश्रित होते हैं।[3]

आचार्य भामह और विश्वनाथ दोनों ने महाकाव्य लक्षण में मन्त्रणा[4] का विधान किया है। इस आधार पर महाकवि भारवि तथा माघ दोनों ने यथाप्रसंग 'मन्त्रणा' का सन्निवेश किया है। किरात में वनेचर से शत्रु (दुर्योधन) के वृत्तान्त को जानकर युधिष्ठिर द्रौपदी के गृह में जाकर सभी भ्राताओं की उपस्थिति में बताते हैं।[5] तदनन्तर द्रौपदी नम्रतापूर्वक अपना वक्तव्य प्रस्तुत करती हैं।[6] वह युधिष्ठिर के स्वाभिमान और

१. किरातार्जुनीय, १।१ २. शिशुपालवध, १।१

३. समग्रगुणः कथाव्यापी नायकः।
कथाप्रबन्धस्तद्व्यापी नयति व्याप्नोति इतिवृत्तं फलं चेति नायकः॥
—काव्यानुशासन, पृ० ३५५

४. (क) मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।—भामह काव्यालंकार, १।२०
(ख) साहित्यदर्पण, ६।३२ ५. किरातार्जुनीय, १।२७ ६. वही, १।२८

गौरव[1] का तथा भ्राताओं[2] (भीम, नकुल, सहदेव) के कष्ट का स्मरण दिलाती हुई शत्रुकृत अपमान का प्रतीकार करने के लिए उत्तेजित करती हैं।[3] द्रौपदी के विरतवचन हो जाने पर भीम उसी के कथन का प्रबल समर्थन करते हैं।[4]

शिशुपालवध में कार्यद्वयाकुल[5] श्रीकृष्ण मन्त्रणा करने के लिए अपने पितृव्य तथा मन्त्री उद्धव एवं अग्रज बलराम के साथ मन्त्रणागृह अथवा सभास्थान में पहुँचते हैं।[6] माघ ने इस अवसर पर मन्त्रणागृह अथवा सभा-गृह का भी सुन्दर स्वरूप निर्धारित किया है।[7]

यद्यपि दोनों महाकवियों ने लक्षणानुरूप मन्त्रणा की उपस्थापना है किन्तु माघ की मन्त्रणा राजोचित हुई है। माघ की मन्त्रणा में केवल तीन ही लोग हैं—श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम। उसमें कोई स्त्रीपात्र नहीं है। भारवि की मन्त्रणा अत्यन्त स्वाभाविक है क्योंकि युधिष्ठिर द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। वहाँ किसी सभामण्डल की कल्पना करना अत्यन्त अस्वाभाविक होता। वे तो परिवार-जनों के साथ स्वाभाविक विमर्श कर रहे हैं जिसमें स्त्री, अनुजादि सभी को अपना विचार प्रकट करने का अधिकार है।

भारवि ने लक्षणानुसार समुद्र वर्णन नहीं किया है जबकि माघ ने समुद्र वर्णन प्रसंग का अपने काव्य में यथोचित सन्निवेश कर महाकाव्य परम्परा का निर्वाह किया है।[8] चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र में ज्वार भाटा आता है जिससे उसका जल बहुत ऊपर उठता है और इससे समुद्र-गर्भस्थ मोती रत्नादि भी तट पर आ जाते हैं। इस सम्बन्ध में माघ ने कल्पना की है कि मानों अत्यधिक लोभवश समुद्र ने चन्द्रकिरणों का खूब पान किया है जो अब पेट में न समा सकने के कारण बाहर उगल रहा है।[9] इसके अतिरिक्त माघ ने समुद्र का बड़ा यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। यों तो दोनों महाकवियों ने महाकाव्य में अपेक्षित

१. किरातार्जुनीय, १।२९, ३१ २. वही, १।३४, ३५, ३६

३. वही, १।४२ ४. वही, २।१

५. शिशुपालवध, २।१ ६. वही, २।२, ३

७ रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयकृता इव॥—शिशुपालवध, २।४

८. शिशुपालवध, ३।७२ ९. वही, ३।७३

तत्त्वों का निरूपण किया है किन्तु माघ ने उन तत्त्वों की ओर अधिक ध्यान दिया है जो भारवि से छूट गये हैं अथवा उनका अल्प वर्णन ही हुआ है।

किरातार्जुनीय में यज्ञवर्णन का कोई प्रसंग नहीं आता जबकि माघ ने यज्ञ का विस्तृत एवं सिद्धान्तपूर्ण चित्रण किया है। जो आचार्य विश्वनाथ प्रतिपादित महाकाव्य लक्षण के अनुरूप है। माघ ने अपने यज्ञवर्णन में अद्वितीय पाण्डित्यपूर्ण कर्मकाण्ड का प्रदर्शन किया है।[१]

लक्षणानुसार शिशुपालवध में नारदमुनि का वर्णन है जो आकाश मार्ग से इन्द्र का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण के पास आते हैं। आतिथ्य परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण नारद मुनि की यथार्थ पूजा करते हैं।

भारवि ने वेदव्यास को युधिष्ठिर के समक्ष सीधे उपस्थित कराया है। युधिष्ठिर शास्त्रीय विधि से उनका (व्यास का) स्वागत करते हैं।[२]

भारवि के वेदव्यास युधिष्ठिर के गुणों तथा उनको दुर्दशा को दृष्टिगत कर प्रेमवश उनके पास आते हैं।[३] जबकि माघ के नारद इन्द्र के सन्देह-वाहक के रूप में प्रस्तुत होते हैं।[४]

वस्तुतः भारवि ने मुनि अथवा ऋषि में पायी जाने वाली अन्तः शक्ति के स्वाभाविक रूप का निदर्शन किया है, जबकि माघ ने आश्रय पद्धति के अनुरूप यज्ञोपवीत, माला आदि धारण किये हुये नारद को चित्रित किया है।

महाकाव्योचित प्रभात वर्णन किरात में अत्यल्प है। शिशुपाल में सम्पूर्ण एकादश सर्ग में प्रभात का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया गया है। महाकवि माघ का प्रभात वर्णन नितान्त मौलिक है। एक ओर उसमें प्रभातकालिक दृश्यों के चारु दर्शन होते हैं, दूसरी ओर उसमें व्याप्त श्रृंगारिकता भी स्पष्ट लक्षित होती है। माघ ने प्रभातकालिक प्राकृतिक परिवर्तनों अथवा दृश्यों का ही वर्णन नहीं किया है अपितु उस समय मानव, पशु आदि की जो स्थिति होती है, उसका भी सूक्ष्म निरीक्षण किया है।

---

१. वही, १४।१८--५२ २. किरातार्जुनीय, २।५८

३. तथापि निघ्नं नृप ! तावकीनैः प्रह्वीकृतं मे हृदयं गुणौघैः।
वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः॥
—किरातार्जुनीय, ३।१२

४. शिशुपालवध, १।४१

किरात के द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर, द्रौपदी और भीम की राजनीतिक मन्त्रणा तथा शिशुपाल के द्वितीय सर्ग में बलराम, उद्धव और श्रीकृष्ण के मध्य राजनीतिक चर्चा होती है। किरात के तृतीय सर्ग में अर्जुन की यात्रा तथा शिशुपाल के तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण की यात्रा का वर्णन किया गया है।

किरातार्जुनीय के चतुर्थ सर्ग में हिमालय वर्णन है तथा माघ के चतुर्थ सर्ग में रैवतक वर्णन है। किरातार्जुनीय के सातवें तथा आठवें सर्ग में अप्सराओं की क्रीडा का वर्णन है। शिशुपाल के सातवें तथा आठवें सर्ग में यादवांगनाओं के जलविहार एवं वनविहार क्रीडा का वर्णन है।

किरातार्जुनीय के नवम तथा दशम सर्ग में सायंकाल, चन्द्रोदय, रतिक्रीड़ा तथा मद्यपान का वर्णन है।

शिशुपाल में भी नवम सर्ग में सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय वर्णन तथा दशम सर्ग में मद्यपान तथा रतिक्रीड़ा का वर्णन है।

दोनों महाकाव्यों में नगर वर्णन हुआ है। किरातार्जुनीय में अर्जुन, इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुये हिमालय पर्वत को देखते हैं। हिमालय के भूभाग नगर की भाँति प्रतीत होते हैं। दूसरे प्रसंग में अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिये इन्द्र से प्रशंशित होकर अप्सराओं के प्रस्थान के समय अमरावती का वर्णन अति सूक्ष्म रूप से प्राप्त होता है।[1]

माघ ने द्वारकापुरी और इन्द्रप्रस्थ का सम्पन्नतापूर्ण एवं अलंकृत वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर पाण्डव उनका भव्य स्वागत करते हैं। इस प्रसंग में इन्द्रप्रस्थ का लक्षणानुसार वर्णन प्राप्त होता है।[2]

वस्तुतः भारवि का कथानक ही कुछ इस प्रकार का है जिसमें समृद्धि का चित्रण इतना अधिक नहीं किया जा सकता। भारवि की समृद्धि तो पौरुष पर आधारित है।[3] भारवि का समस्त श्रृंगारिक वर्णन मात्र

१. सोत्कण्ठेरमरगवैंरनुप्रकीर्णान्निर्याय ज्वलितरुचः पुरान्मघोनः।
रामाणामुपरि विवस्वतः स्थितानां नासेदे चरितगुणत्वमातपत्रैः॥

२. शिशुपालवध, १३।२९ किरातार्जुनीय, ७।२

३. तदलं प्रतिपक्षमुन्नतेरवलम्ब्य व्यवसायबन्ध्यताम्।
निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः॥ किरातार्जुनीय, २।१५

अर्जुन को तपोमार्ग से च्युत करने के लिये होता है जो उनकी दिव्य कोटि की परीक्षा के रूप में है।

यद्यपि भारवि नगर वर्णन में माघ से न्यून हैं तथापि इससे उनके महाकाव्यत्व की चारुता में कोई अन्तर नहीं आने पाता।

भारवि और माघ दोनों महाकवियों ने अपने-अपने काव्यों में यात्रा वर्णन उपन्यस्त किया है। भारवि ने अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर प्रस्थान तथा माघ ने श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ गमन वर्णित किया है। यद्यपि यात्रा दोनों में वर्णित है किन्तु उनके रूप में अन्तर है। भारवि के अर्जुन यक्ष के साथ यात्रा करते हैं।[1] श्रीकृष्ण सम्पूर्ण सेना के साथ यात्रा करते हैं तथा उनके साथ रमणियाँ भी चल रही हैं। श्रीकृष्ण के यात्रावसर पर उनके अलंकार धारण करने का भी वर्णन है।[2] अर्जुन के प्रस्थान के समय उनके पौरूष के सूचक गाण्डीव, धनुष, दो तरकश और कवच मात्र धारण करने का वर्णन है।[3]

दोनों महाकवियों ने ऋतु वर्णन किया है। किरात में दो पृथक् स्थलों पर ऋतु वर्णन दृष्टिगत होता है। चतुर्थ सर्ग में अर्जुन के इन्द्र-कील पर्वत पर प्रस्थान के समय अर्जुन एवं यक्ष द्वारा ऋतुवर्णन तथा दशम सर्ग में षड्ऋतु वर्णन, उत्तरार्धगत ऋतुवर्णन उद्दीपन रूप में चित्रित हुआ है।

माघ ने शिशुपालवध के षष्ठ सर्ग में षड्ऋतुओं का उद्दीपन रूप में सुन्दर वर्णन किया है। दोनों में अन्तर यह है कि भारवि ने शरद् ऋतु से तथा माघ ने वसन्त ऋतु से वर्णन आरम्भ किया है। किरातार्जुनीय में सभी ऋतुयें एक साथ उपस्थित होती हैं तथा शिशुपालवध में भी सभी ऋतुये एक साथ क्रमशः वर्णित हैं।[4]

महाकाव्य लक्षणगत पानगोष्ठी का विधान दोनों महाकाव्यों में किया गया है। माघ का उक्त वर्णन भारवि से उत्कृष्ट है। माघ ने

१. अलकाऽधिपभृत्यदर्शितं शिवमुर्वीधरवर्त्म संप्रयान् ॥

किरातार्जुनीय, ३।५९ पूर्वार्द्ध

२. शिशुपालवध, ३।४--११

३. यशसेव तिरोदधन्मुहुर्महसा गोत्रभिदायुधक्षतीः।
कवचं च सरत्नमुद्वहञ्ज्वलितज्योतिरिवान्तरं दिवः ॥ किरातार्जुनीय, ३।५८

४. शिशुपालवध, ६।६७--७९

प्रियतमाओं के सुन्दर मुख को ही कामियों के मदिरापात्र के रूप में चित्रित किया है।[1] भारवि एवं माघ की पानगोष्ठी वर्णन में अन्तर यह है कि किरात में वर्णित पानगोष्ठी से बढ़े हुये मदवाली अप्सरायें अर्जुन को आकर्षित करना चाहती हैं और माघ का यह वर्णम मात्र वर्णन की दृष्टि से किया गया है।

दोनों महाकाव्यों में आचार्य भामह एवं दण्डी निर्दिष्ट युद्धवर्णन भी प्राप्त होता है। किरातार्जुनीय में किरातेश्वर शंकर एवं अर्जुन के मध्य युद्ध होता है तथा शिशुपालवध में श्रीकृष्ण और शिशुपाल के मध्य युद्ध होता है। किरातवेशधारी भगवान् शिव के साथ किरातगण (प्रमथगण) हैं जो स्वयं ही अर्जुन को जीत लेने की इच्छा से शस्त्र-प्रहार करते हैं[2] किन्तु अर्जुन बाण वर्षा कर प्रथमगणों को विवश कर देते हैं।[3]

शिशुपालवध में भी युद्ध वर्णन है जो बड़ा ही सजीव और ओजस्वी है। यह युद्ध पूर्ण तैयारी के साथ हो रहा है। इसमें दोनों ओर की सेनायें पूरी साज-सज्जा और अदम्य उत्साह के साथ सन्नद्ध हैं।

महाकवि भारवि ने अधिकतर एक सर्ग में प्रायः एक ही छन्द का प्रयोग किया है तथा सर्गान्त में छन्दः परिवर्तन किया है। भारवि ने सर्वाधिक विभिन्न छन्दों का प्रयोग पंचम सर्ग में मालिनी, पुष्पिताग्रा, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, प्रभा, रथोद्धता, जलधरमाला, प्रहर्षिणी, जलोद्धतगति, शालिनी तथा वंशपत्रपतित छन्दों का प्रयोग किया है। पन्द्रहवें, सोलहवें तथा सत्रहवें सर्ग में पाँच प्रकार के—उपेन्द्र-वज्रा, ललिता, वसन्ततिलका, वंशस्थ और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग हुआ है।

माघ ने भारवि से अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। माघ का छन्दो-विधान अवसरानुकूल, विषयवस्तु के अनुसार बन पड़ा है। राजनीति वर्णन में अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग तथा उन्नीसवें सर्ग में युद्ध वर्णन में भी अनुष्टुप् का प्रयोग किया है। महाकवि माघ ने चतुर्थ सर्ग में उपजाति,

---

१. शिशुपालवध, १०।१ २. वही, १४।५१

३. गतैः परेषामविभावनीयतां निवारयद्भिर्विपदं विदूरगैः।
भृशं बभूवोपचितो बृहत्फलैः शरैरुपायैरिवपाण्डुनन्दनः॥
—किरातार्जुनीय, १४।५२

वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा, द्रुतविलम्बित, शालिनी, पथ्या, प्रहर्षिणी, जलधरमाला, वंशस्थ, प्रमिताधरा, मत्तमयूर, दोधक, आर्यागिति, जलोद्धतगति, रथोद्धता, मालिनी, पृथ्वी, वंशपत्र पतित छन्दों का विधान किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही महाकवियों ने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर अपने-अपने महाकाव्य का प्रणयन किया है। इतना अवश्य है कि भारवि की अपेक्षा माघ ने प्रायः समस्त लक्षणों को दृष्टिगतकर कथावस्तु को काव्यनिबद्ध किया है। किरात में महाकाव्य लक्षणों का स्वाभाविक पालन हुआ है जबकि शिशुपाल में सप्रयास लक्षणानुरूप काव्यसर्जना हुई है।

: ४ :

# रस-योजना

'रस' शब्द रस् धातु से अच् प्रत्यय पूर्वक निष्पन्न होता है। इसके अनेक अर्थ होते हैं जैसे—सार, पानी, चलना स्वाद, आनन्द, प्रसन्नता आदि। काव्य में रस का अर्थ आस्वाद्य होने से इसकी (रस की) व्याख्या 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' की जा सकती है। आनन्दानुभूति का मूल रस ही होता है। रस की महत्ता का प्रतिपादन प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। रस को आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही माना गया है।[१] वस्तुतः रस ही जीवन का सार है। रस की महत्ता का अनुभव कर रस प्रवर्त्तक आदिआचार्य भरत ने 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'[२] लिखा है। आचार्य राजशेखर रस को काव्य का आतमा मानते हैं।[३] अग्निपुराण ने काव्य में रस को ही जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया है।[४] आचार्य मम्मट काव्य में रस को प्रधानता को मानते हैं। काव्य प्रयोजन प्रसंग में उन्होंने यश, अर्थ, आदि में श्रेष्ठ परमानन्द की प्राप्ति कराना काव्य का मुख्य प्रयोजन बताया है।[५] आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में रस का स्वरूप प्रतिपादित करते हुये रसात्मक वाक्य को ही काव्य[६] कहकर उसे ब्रह्मास्वाद सहोदर माना है।[७]

इस प्रकार विभिन्न आचार्यों ने काव्य में रस का ही प्राधान्य माना है जिसके अभाव में काव्य सहृदयश्लाध्य नहीं हो सकता। वस्तुतः आचार्यों ने रस का प्रामुख्य बताकर जीवनानन्द का सूक्ष्म एवं जन-

---

१. 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।'—तैत्तरीयोपनिषद्, ११।७।१

२. नाट्यशास्त्र, ६।३२

३ शब्दार्थौ ते शरीरं रस आतमा।—काव्य-मीमांसा, पृ० १५

४. वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।—अग्निपुराण, पृ० ८०

५. सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भुतं विगलितवेद्यान्तर-मानन्दम्। —काव्यप्रकाश, १।२

६. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।—साहित्यदर्पण

७. वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥—साहित्यदर्पण, ३।२,३

सामान्य का अनुभवगम्य तत्त्व रस रूप में प्रतिष्ठित किया। काव्य में आस्वाद्यमान रस को ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने और स्पष्ट रूप दिया जिसमें उन्होंने ध्वनि को काव्य का आत्मा कहा है।[१] उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों को ध्वनि का समर्थक बताया है। इससे पहले ध्वनि की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, तथापि उसे और अधिक स्पष्ट करने के लिये ध्वन्यालोककार ने ध्वनि का निरूपण किया।[२] इसी ध्वनि को आचार्य आनन्दवर्धन ने सहृदयश्लाघ्य प्रतीयमान अर्थ कहा है जो रस रूप में प्रतिष्ठित है।[३]

आचार्यों द्वारा रस की महत्ता सर्वमान्य हो जाने पर इस आस्वाद्यमान रस की निष्पत्ति का प्रश्न समक्ष आता है। इस सम्बन्ध में आचार्य भरत का रसनिष्पत्ति सूत्र ही निर्विवाद है। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।[४]

इन्हीं रस तत्त्वों के सुष्ठु प्रयोग से श्रोता या पाठक आनन्दानुभूति करता है। अतः काव्य में इसका सम्यक् रसोत्कर्ष प्रयोग अपेक्षित होता है। उचित विभावानुभावादिकों से रचित कथाशरीर ही सहृदयश्लाध्यता को प्राप्त करता है। काव्य के जीवनाधायक तत्त्व रस के निर्वाह में स्मरणीय तथ्यों की ओर आचार्य आनन्दवर्धन ने संकेत किया है—

**मुख्या व्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः।**
**तेषां निबन्धने भाव्ये तैः सदैवाप्रमादिभिः॥**
**नीरसस्तु प्रबन्धो यः सोऽपशब्दो महान् कवेः।**
**स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षणः॥**[५]

## किरातार्जुनीय की रस—योजना

किरातार्जुनीय वीर रस प्रधान महाकाव्य है।[६] अंग रस के रूप में यथास्थान श्रृंगार, रौद्र, वीभत्स और भयान आदि रसों की भी रमणीय

---

१. काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥—ध्वन्यालोक १।५

२. ध्वन्यालोक, १।१

३. प्रबन्धे चापि रस एवोपनिबध्यमानोऽर्थविशेषनाभं छायातिशयं च पुष्णाति।
—ध्वन्यालोक, १।७

४. विभावानुभावव्यभिचारिहिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः--भरत का नाट्यशास्त्र पृ० ५०

५. ध्वन्यालोक, ३।१०--१४

६. श्रृंगारादिरसोंऽगमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः।—आचार्य मल्लिनाथ

योजना हुयी है। प्रस्तुत प्रसंग में वीर रस का विवेचन करने से पूर्व इनके भेदों का परिज्ञान कर लेना आवश्यक है। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वीररस के दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, तथा दयावीर रूप से चार भेद किये हैं।[1] आचार्य विश्वनाथ ने भी चार भेद किये हैं।[2] किरातकाव्य में इन भेदों में से--युद्ध-वीर रस का प्रकर्षरूपेण चित्रण हुआ है। युद्धवीर रस के दो भेद होते हैं—बुद्धि प्रधान और शस्त्र प्रधान। सर्वप्रथम युद्धवीर रस के अन्तर्गत बुद्धि प्रधान युद्धवीर का विवेचन प्रसंगोपेत है। इसमें दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का वृत्तान्त ज्ञात कर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास लौटे हुये वनेचर की उक्तियों में बुद्धि प्रधान वीररस का परिपाक होता है। वह दुर्योधन के राज्य सम्बन्धी कार्यों एवं भावों का वर्णन कर युधिष्ठिर को उत्साहित करता है। उदाहरणार्थ—वह (सुयोधन) काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार को जीतकर, मनूपदिष्ट शासन-पद्धति को क्रियान्वित करने की इच्छा से आलस्य रहित होकर समय विभागानुकूल नीति मार्ग का अवलम्बन कर अपने पौरुष का विस्तार कर रहा है।[3] पुनः वनेचर दुर्योधन के भृत्य, मित्र तथा कुटुम्बीजनों के प्रति किये जाने वाले सद्व्यवहार का उल्लेख करता है।[4]

दुर्योधन का समग्र वृत्तान्त जो वनेचर ने युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित किया है, वह बुद्धि प्रधान ही है। बुद्धि प्रधान वीररस का संचार वनेचर द्वारा आत्म-निरभिमानिता व्यक्त करने के व्याज से ही होने लगता है। वह कहता है—शत्रुओं के गुप्त रहस्यपूर्ण नीति का जो ज्ञान मुझे वनेचर को प्राप्त हुआ है, वह आपको ही कृपा से हो सका है।[5] इसमें शत्रुओं के गुप्त रहस्यपूर्ण नीति वाक्य से ही दुर्योधन का उत्कर्ष व्यक्त होता है जिससे युधिष्ठिर जैसे मनस्वी में शत्रु के प्रति उत्साह की जागृति होनी स्वाभाविक है। भारवि ने बुद्धि प्रधान वीर रस की योजना द्रौपदी

---

१. दानवीरं धर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च।
दयावीरमपि प्राह ब्रह्मा त्रिविधसम्मतम्॥ नाट्यशास्त्र पृ० ६०

२. स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्॥—साहित्यदर्पण ३।२३४

३. किरातार्जुनीय, १।९ ४. वही, १।१९

५. तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया निगूढ़ तत्वं नयवर्त्म विद्विषाम्॥
—किरातार्जुनीय, १।६ उत्तरार्द्ध

के द्वारा भी करायी है। जहाँ द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पौरुष एवं शत्रु-कृत अपमान का स्मरण दिलाते हुये युद्धार्थ उत्साहित करती है।[१]

बुद्धि प्रधान वीर रस से कहीं अधिक शस्त्र प्रधान वीर रस परिपुष्ट हुआ है। महर्षि वेदव्यास जो कामनाहीन होते हुये श्री स्वाभावतः सज्जनों के पक्षपाती हैं।[२] युधिष्ठिर की शत्रुकृत दुर्दशा को देखकर उन्हें उपाय बताने के लिये उपस्थित होकर उनके उत्साह को उद्दीप्त करते हैं। वेदव्यास कहते हैं कि आपको अपने पौरुष से ही पृथ्वी पर अधिकार करना होगा क्योंकि आपका शत्रु सैन्य एवं शस्त्र बल में आप से बढ़कर है।[३] इसके साथ ही वे उत्साह के उद्दीपन में परशुराम,[४] भीष्म-पितामह,[५] द्रोणाचार्य,[६] कर्ण,[७] के पराक्रम का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

किरातार्जुनीय में कुछ ऐसे भी प्रसंग उपलब्ध हैं जिनमें आलम्बन, उद्दीपन अथवा संचारी भाव ही मात्र व्यंजित हुये हैं। अर्जुन और इन्द्र के वार्त्ता-प्रसंग में उद्दीपन विभाग के परिपोष का उदाहरण इस प्रकार है—शत्रुओं के द्वारा बड़े लोगों के सम्मुख द्रौपदी के केश वस्त्रादि खींचे जाते हुये मृत्यु ने निश्चय कर लिया कि कौरवों को भी हम अपने नगर में घसीट ले जायेंगे।[८] यहाँ द्रौपदी के केश, वस्त्रादि के कर्षण का स्मरण कर अर्जुन में उत्साह उद्दीप्त हुआ है। शत्रुओं ने बलात्कार करके उत्तरीयवस्त्र को खींचा था जिसमें अर्जुन लज्जित-सा हो गया।[९] आदि उदाहरणों में उद्दीपन विभाव दृष्टिगत होता है। पुनः केवल स्थायी भाव उत्साह का चित्रण द्रष्टव्य है—गहन वनों से प्रवृद्ध तथा अत्यन्त उन्नत पर्वत का उल्लंघन किया जा सकता है किन्तु अविलंघ्यता महान् पराक्रमशाली तथा मान से उन्नत पुरुषों का परित्याग नहीं करती।[१०] अर्जुन ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—ऐ तप-स्विन्! आप ही बतलाइये शत्रु से बदला चुकाये बिना जिसका क्रोध

---

१. किरातार्जुनीय, १।३२, ३३, ३६, ३८, ४०, ४१, ४४
२. वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषुहि पक्षपाताः।

—किरातार्जुनीय, ३।१२

३. किरातार्जुनीय, ३।१७ ४. वही, ३।१८ ५. वही, ३।१९
६. वही, ३।२० ७. वही, ३।२१ ८. वही, ११।५१ ९. वही; ११।५०
१०. वही, ११।६३, ६७

शान्त हो जाय, इसे पुरुष पद से कैसे पुकारा जा सकता है।[1] उत्साह स्थायी भाव के उद्दीपन के अन्य श्लोक भी प्रसंगोचित रूप में उपन्यस्त हुये हैं।[2]

वीर रस के दान वीर, दयावीर, युद्धवीर तथा धर्मवीर चार भेद होते हैं। इसमें से धर्मवीर के रूप में अर्जुन द्वारा इन्द्र एवं भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिए की जानेवाली तपस्या है। अर्जुन की धर्मवीरता उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब वे इन्द्र से अपने दृढ़ संकल्प को व्यक्त करते हैं—या तो मैं पवन से उन्मूलित मेघ-माला की भाँति खण्ड-खण्ड होकर इस इन्द्रकील की चोटी पर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दूँगा या सहस्रलोचन इन्द्र की आराधना करके अपकीर्ति रूप कण्टक को निकाल फेकूँगा।[3]

प्रारम्भ से अन्त तक, यावत् फलप्राप्ति अर्जुन में वीररस के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। इन्द्रकील पर्वत पर इन्द्र से उपदिष्ट हो अर्जुन, भगवान् शूलपाणि की तपस्या करते हैं।[4] पुनः अर्जुन की परीक्षा के लिए मूक दानव मायावी शूकर के रूप में उनके वधार्थ[5] सम्मुख बढ़ने लगता है। उसे देखकर अर्जुन भिन्न-भिन्न प्रकार से तर्क-वितर्क करते हैं।[6] पुनः वे व्यास की शिक्षा का स्मरण कर शत्रुरूप शूकर का वध करने के लिए पुरुषार्थ का सूचक धनुष ग्रहण कर लेते हैं।[7] वह धनुष तपस्या से क्षीण-शक्ति कृशकाय अर्जुन से अभंगुर होते हुये भी मित्र की भाँति झुक जाता है।[8] अर्जुन के गाण्डीव धनुष पर बाण चढ़ाते ही प्रत्यंचा के आकृष्ट होने से उत्पन्न हुयी ध्वनि से गुफायें गुँज उठती हैं तथा अर्जुन के पद प्रक्षेप से पर्वत नत हो जाता है एवं पर्वतस्थ जीव शसंकित हो जाते हैं।[9] यहाँ रस परिपोषक तत्त्वों का इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है—मूकदानव आलम्बन, अर्जुन के वधार्थ कृत प्रयास उद्दीपन, धनुष का उठाना एवं अर्जुन का पद-प्रक्षेप अनुभाव एवं गर्व,

१. किरातार्जुनीय, ११।७१
२. वही, ११। ९, ७०, ७२, ७३, ७४
३. वही, ११।७९
४. किरातार्जुनीय, ११।८०
५. वही, १२।३७
६. वही, १३।२
७. वही, १३।१४
८. वही, १३।१५
९. प्रविकर्षनिनादभिन्नरन्ध्रः पदविष्टम्भनिपीडितस्तदानीम्।
अधिरोहति गाण्डिवं महेषौ सकलः संशयमारुरोह शैलः॥ वही, १३।१६

क्रोधादि संचारी भाव हैं तथा शूकर (मूक दानव) के मारने का उत्साह स्थायी भाव है।

महाकवि भारवि ने उत्साह के विभिन्न रूपों की अपने काव्य में योजना की है। वीररस की दृष्टि से किरातार्जुनीय के पन्द्रह, सोलह, सत्रह तथा अठारह सर्ग उत्कृष्टतम हैं। भारवि ने स्थान-स्थान पर ऐसे दृश्य भी उपस्थित किये हैं जिनमें केवल स्थायी भाव (उत्साह) की ही व्यंजना हुयी है। वराह का वध हो जाने के पश्चात् शिव प्रेषित दूत बाण लेने के लिये अर्जुन के पास आता है और उनसे विनम्रता पूर्वक अत्यन्त तिरस्करणीय वाक्य कहता है।

दूत अर्जुन से कहता है—आप सज्जन हैं, अतः आप चंचलता को त्याग दें। सदैव सहन नहीं किया जा सकता क्योंकि बार-बार अनुचित करने वाले पुरुष धैर्यशालियों को उसी तरह भी क्षुब्ध कर देते हैं जिस प्रकार प्रलयकाल का झंझावात विशाल समुद्रों को भी क्षुब्ध कर देता है।[1] यहाँ वस्तुतः व्यंग्यार्थ अर्जुन पर घटित होता है और उद्दीपन विभाव से वीररस की प्रतीति होती है।

किरात सैन्य का उत्साह भी यथास्थान व्यंजित हुआ है। जिस प्रकार पक्षी कहीं भी गमन करने की इच्छा से उड्डयन क्रिया में प्रवृत्त पंखों के निस्वन के साथ महावन से एक साथ ही उड़ पाती हैं उसी प्रकार विशाल धनुष से प्रेरित होकर बाण अपने पुंख निस्वन के साथ प्रबल वेग पूर्वक शबर सेना से एक साथ ही छूट पड़ते हैं।[2] इस प्रसंग में किरात सेना के उत्साह भाव की सुन्दर व्यंजना हुयी है।[3]

महाकवि ने युद्ध का वर्णन चित्रबन्धों द्वारा भी उपन्यस्त किया है जिनके शब्द ही मानों युद्ध की विभाषिका उपस्थित कर देते हैं। उक्त स्थल पर यद्यपि नायक और प्रतिनायक दोनों का पराक्रमपूर्ण उत्साह उपन्यस्त हुआ है तथापि मुख्य रूप से अर्जुन को वीरता पुष्ट हुयी है।

१. सज्जनोऽसि विजहीहि चापलं सर्वदा क इव वा सहिष्यते।
वारिधीनिव युगान्तवायवः क्षोभयन्त्यनिभृता गुरूनपि॥

किरातार्जुनीय, १३।६६

२. किरातसैन्यादुरुचापनोदिताः समं समुत्पेतुरुपात्तरंहसः।
महावनादुन्मनसः खगा इव प्रवृत्तपत्रध्वनयः शिलीमुखाः॥

—किरातार्जुनीय, १४।४५

३. किरातार्जुनीय, १४।४३, ४६, ४७

सम्भवतः महाकवि ने महाकाव्यगत अपेक्षित नायक के अभ्युदय का विचार कर ही ऐसा किया है। अर्जुन के वीरत्वपूर्ण युद्ध के परिणामस्वरूप सभी जीव-जन्तु भयभीत हो जाते हैं। किरातपति की सेना भी बड़े-बड़े धनुषों को छोड़कर भाग जाती है।[1]

अर्जुन का पराक्रम द्रष्टव्य है—

**स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययायः।**
**ललौ लीलां ललो लोलः शशीशशि शुशीः शशन् ॥**[2]

इसमें खड्ग, बाण और गाण्डीव धारण किये हुये अर्जुन द्वारा षडानन को भगाकर रणक्षेत्र में शोभायमान होने का वर्णन है। अर्जुन की रणचातुरी से शंकर के गण आश्चर्य में पड़ जाते हैं और हर्ष से तपस्वियों के रोम पुलकित हो उठते हैं।[3] अर्जुन के पौरुष से अभिभूत हो भागती हुयी शिव सेना[4] तथा कुमार कार्तिकेय का उसे समझाना[5] आदि अर्जुन के उत्साह में सहायक ही हैं। नायकगत उत्साह के साथ ही प्रतिनायक का उत्साह भी उत्कृष्ट रूप से परिपुष्ट हुआ है। शंकर के द्वारा बाण प्रक्षेप करने पर धनुष की टंकार से पूर्ण इन्द्रकील पर्वत मानों विदीर्ण होते हुए सम्पूर्ण दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुये शब्द करता है।[6] शंकर भगवान् अर्जुन-क्षिप्त बाण-वर्षा को निरस्त कर अपने शरों से सूर्य के मार्ग को रोक देते हैं।[7] इस प्रकार नायक और प्रतिनायक दोनों के उत्साह की पुष्टि स्पष्ट लक्षित होती है। वीररस का प्रकर्ष पोषण तभी होता है जब प्रतिद्वन्दी समान हो अन्यथा एक के न्यून होने पर दूसरे के उत्साह का प्रकृष्ट परिपोषण नहीं हो पाता। समान अथवा एक दूसरे से बढ़कर होने में ही उत्साह को पराकष्ठा के दर्शन होते हैं। अतः महाकवि भारवि ने नायक अर्जुन और प्रतिनायक शंकर दोनों के रण कौशल का वीर रसोचित सुन्दर सन्निबन्धन समानप्राय किया है।

अर्जुन किरातपति के रण कौशल से अपनी शक्ति पर सशंकित हो उठते हैं तथा उनकी संग्राम-कुशलता का विभिन्न प्रकार से अनुभव करते हैं।[8] जो शिव के उत्साह का पोषक है। अर्जुन विचार करते हैं—इसके

---

१. किरातार्जुनीय, १५-०५ २. वही, १५।५
३. वही, १५।५२, ५३ ४. वही १५।७
५. वही १५।८--१५ ६. वही, १५।३४ ७. वही, १५।४१
८. वही, १६।१९–२३

बाण इतनी तीव्रता से छूट रहे हैं जिनसे प्रत्यञ्चा के आकृष्ट किये जाने का पता ही नहीं चलता। शीघ्रता से निकलते हुए बाण तूणोर से मानों स्वयं निकल रहे हों। मुष्टि तो बाँधनी ही नहीं पड़ती।[1] इस प्रकार बाण प्रक्षेपण की समस्त क्रियाओं में अर्थात् बाण तूणीर से निकलना, प्रत्यंचाकर्षण, बाण का मुष्टि से पकड़ना आदि की त्वरा से अर्जुन को आश्चर्य होता है। इससे प्रतिनायकगत उत्साह की पुष्टि होती है।

अर्जुन के भुजप्रहार का एक सुन्दर वीरतापूर्ण चित्र द्रष्टव्य है जिसमें उनका अर्जुन का उत्साह व्यंजित होता है—जिस प्रकार मकर सुर-सरिता के प्रवाह को चीरकर जल की तरह से ऊपर आ जाता है वैसे ही अर्जुन वेगपूर्वक बाण रूपी नदो के सम्मुख उपस्थित हो, स्वर्ण चट्टान के समान भगवान् शंकर के वक्षःस्थल में भुजाओं से आघात करते हैं।[2]

तदनन्तर अर्जुन और शिव में मुष्टि युद्ध आरम्भ हो जाता है। इस स्थल पर एक साथ दोनों योद्धाओं के उत्साह का सुष्ठु परिपाक हुआ है भगवान् शंकर का वक्षःस्थल सह्यगिरि के तट के समान विस्तृत और अर्जुन की मुष्टियाँ समुद्र की वेगवती तरंगों के सदृश हैं जो मुष्टिरूपी तरंगे सह्यगिरि के तट रूपीं वक्षःस्थल पर टकरा रही है।[3] इस प्रकार अर्जुन और शंकर के मध्य होने वाले युद्ध में अनेकशः युद्ध प्रधान वीर रस का परिपोषण हुआ है।[4]

महाकवि भारवि की कृति किरातार्जुनीय का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि वे पौरुष और वीरता के अद्वितीय प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने वीर रस की सुन्दर योजना की है।

## शृंगार रस

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार किरातार्जुनीय के अंग रसों में शृंगार रस की सुन्दर परिपुष्टि हुई है। इस रस योजना में सम्भोग शृंगार की प्रमुखता है। काव्य में इसके आलम्बन अप्सरायें और गन्धर्व हैं तथा उद्दीपन रूप में षड्ऋतुयें, सन्ध्या, अन्धकार और चन्द्रोदय

१. किरातार्जुनीय, १६।२०

२. उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुमेत्यत्य बाणनद्याः।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः॥
—किरातार्जुनीय, १७।६३

३. किरातार्जुनीय, १८।५ ४. वही, १८।९--१०

वर्णित हैं। इस काव्य में आठ से दस सर्गों में श्रृंगार रस का सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है। दशरूपककार ने श्रृंगार की परिभाषा करते हुए लिखा है—रमणीय देश, काल, कला, वेश तथा भोग आदि के द्वारा जो आनन्द होता है, वह रतिभाव कहलाता है। वही मधुर अंग, चेष्टाओं से पुष्ट होकर श्रृंगार रस कहलाता है।[१]

आचार्य विश्वनाथ कामोद्रेक की उत्पत्ति के कारण को श्रृंगार मानते है।[२] श्रृंगार के उद्दीपक, ऋतुवर्णन, परिहास, चन्द्रोदय, वन, उपवन तथा जल-विहार आदि होते हैं। हाव-भाव भ्रूभंग आदि अनुभाव एवं असूया आदि संचारी भाव होते हैं। श्रृंगार की इस दृष्टि से भारवि का रस-सन्निवेश मौलिक एवं स्वाभाविक है। लक्षणग्रन्थकारों द्वारा वर्णित नायिकाओं की श्रृंगारचेष्टाओं तथा शरीरज[३] एवं अयत्नज[४] अलंकारों का सुन्दर वर्णन दृष्टिगत होता है। महाकवि ने सुरतकेलि के अन्तर्गत आने वाले बाह्य एवं आभ्यन्तर सुख का वात्स्यायन के कामशास्त्र के अनुकूल ही वर्णन किया है।[५]

प्रस्तुत प्रसंग में किरातकाव्य में श्रृंगार-रस के विविध रूपों का विवेचन अपेक्षित है।

प्रणय कुपिता नायिका को समझाती हुई उसकी सखी कहती है—मान छोड़कर प्रियानुसरण करो। तुम्हारा मन तो एक पहलू पर नहीं रह सकता, आगे चलकर मालूम होगा। इस प्रकार एक कुशल सखी अपनी सखी को, जो अपने प्रिय के पास जाना ही चाहती है, समझा बुझाकर पहले से ही प्रसन्न कर देती है।[६] इसमें प्रणयकुपिता नायिका

१. रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ॥
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः ॥—दशरूपक ४।४८

२. श्रृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तम-प्रकृति-प्रायो रसः श्रृंगार उच्यते ॥—साहित्यदर्पण

३. भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ।—दशरूपक २।३०

४. शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तभावा अयत्नजाः ॥—दशरूपक, २।३१

५. बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्विविधं रतमुच्यते ।
तत्राद्यं चुम्बनाश्लेषनखदन्त-क्षतादिकम् ॥—कामशास्त्र

६. किरातार्जुनीय ८।८

का मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत कराया गया है। भारवि के श्रृंगार वर्णन की विशेषता यह है कि वे श्रृंगार के सूक्ष्मरूप को प्रदर्शित कर हृदय की बात स्पष्ट कर देते हैं। अन्यत्र मानिनी नायिका का चित्र बड़ा ही सजीव बन पड़ा है—एक अप्सरा, जिस समय उसका प्रेमी भ्रमवश उच्चस्वर से सपत्नी का नाम लेकर सम्बोधित करते हुए पुष्पस्तवक प्रदान कर रहा है, मानकर कुछ नहीं बोलती और अश्रुपूरित नेत्रों से केवल भूमि कुरेदने लगती है।[1] इसमें ईर्ष्याकृत मान की सुन्दर व्यंजना हुयी है। किरातार्जुनीय में अप्सराओं की शरीर शोभा,[2] जलविहार,[3] तथा पुष्पावचय[4] का विस्तृत एवं मनोरम वर्णन हुआ है। किसी गन्धर्व द्वारा अप्सरा के मण्डन का सुन्दर चित्रण किया गया है—किसी सखी के उरःस्थल पर जो उन्नत स्तनों से मनोरम हैं, प्रिय स्वयं मालगुम्फित करके उसकी सौत के सामने ही पहनाता है। यद्यपि वह माल्य जल के कारण मसल गया है फिर भी वह सखी उसका त्याग नहीं करती, क्योंकि प्रेम तो गुण में निवास करते हैं, वस्तु में नहीं। भारवि का श्रृंगार वर्णन काव्य निर्वाह के साथ-साथ एक स्वाभाविक सत्य का उद्घाटन भी करता है। वस्तुतः भारवि ने माघ की भाँति श्रृंगारातिशय व्यंजना की दृष्टि से काव्य में इन वर्णनों को नहीं रखा है अपितु वे तो नायकगत पौरुष के पोषक होकर आये हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिसमें महाकवि ने नायिका के सौन्दर्यवर्धक अलंकारों से अधिक शरीर सौन्दर्य की व्यंजना करायी है।[5]

सात अयत्नज अलंकारों में शोभा[6] अलंकार का भारवि ने सुन्दर वर्णन किया है।[7] रात्रि,[8] चन्द्रमा,[9] आदि उद्दीपनों का वर्णन कर बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरकेलि का सुदृढ़ सन्निबन्धन किया गया है। जैसा कि

१. प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपक्षगोत्रं दयितेन लम्भिता।
न किञ्चिदूचे चरणेन केवलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम्॥
—किरातार्जुनीय, ८।१४

२. वही, ८।२१–२५ ३. वही, ८।२९, ३२, ३६, ३८

४. वही, ८।२० ५. वही, ८।४०, ४२, ४४

६. रूपोपभोगतारुण्यैः शोभांगानां विभूषणम्।—दशरूपक, २।३४

७. किरातार्जुनीय, ८।४०, ४२, ५२ ८. वही, ९।११

९. वही, ९।१७, १९, २४, २६

इसके बाह्य भेदों—चुम्बन,[1] आलिंगन,[2] नखक्षत,[3] आदि का वर्णन किया है। काव्य में इनकी सुन्दर व्यंजना हुयो है। आभ्यन्तर सुरत का भी सुन्दर चित्रण हुआ है—सुरतकाल में सुरयुवतियों के स्खलित वचन, कर किसलय का संचालन, सीत्कार के शब्द और अर्द्धनिमीलित नेत्र—ये सब कामदेव के अस्त्र बन जाते हैं।[4] शृंगार रसोत्कर्ष में मद्यपान और अधिक सहायक हुआ है।[5] वस्तुतः मद्यपान करने से ऐन्द्रिक मुखरता आ जाती हैं। मद्यपान के माध्यम से भारवि ने शृंगार को और अधिक स्पृहणीय बना दिया है।[6] एकान्त स्थान, कामदेव, मदिरा की मत्तता, चन्द्रकिरणों और वल्लभों के संगम आदि के द्वारा शृंगार की पूर्ण परिपुष्टि हुयी है।[7] सुररमणियाँ सम्भोग विधान में मर्यादाहीन हो जाती हैं।[8] मद्यपान से रतिरस में आविष्ट रमणियाँ विह्वल होकर प्रेमियों के सर्वथा वश में हो जाती हैं। यही स्थिति कामुकों को भी है जिससे वे ताडन, चुम्बनादि सुरतव्यापारों का यथास्थान निर्वाह नहीं कर पाते है।[9]

भारवि के शृंगार वर्णनों को पढ़ने से विदित होता है कि उन्होंने शृंगार रस की बड़ी ही सुन्दर योजना की है, किन्तु उसमें विलासिता एवं वासनाधिक्य के दर्शन होते हैं। उनमें कालिदास जैसी शिष्टता का अभाव है। यद्यपि द्रौपदी, भीम एवं अर्जुन के उत्साह एवं पौरुष को देखकर ऐसा नहीं लगता कि भारवि की मूल प्रकृति शृंगार की उच्चतम सीमा हो सकती है बल्कि शृंगार रस का प्रतिपादन नायक अर्जुन के उत्साह का परिपोषण करने के लिए ही इतना अधिक प्रकाशित किया गया है।

**शृंगार रसाभास**

रस का अनुचित रूप से वर्णन रसाभास कहा जाता है। लौकिक मर्यादा एवं शास्त्रीय मर्यादा के उल्लंघन में रसाभास ध्वनि और भावाभास ध्वनि होते हैं।[10] यहाँ अप्सराओं के द्वारा अर्जुन विषयक रति से

---

१. किरातार्जुनीय, ९। ७, ५६ — २. वही, ९।४१, ४८
३. वही, ९।३४, ४१, ४९ — ४. वही, ९।५०
५. वही ९।५१, ५२ ६८ — ६. वाकगोंखलु रहस्यविभेदम्। वही, ९।६८
७. किरातार्जुनीय, ९।७१ — ८. वही, ९।७२ — ९. वही, ९।७३
१०. तदाभासा अनौचित्यप्रवर्त्तिताः।—काव्यप्रकाश, ४।४९

अनौचित्य-प्रवर्तन हुआ है अतः इसे हम रसाभास की श्रेणी में परिगणित करते हैं। सुरांगनायें अपने अंगों की शोभा से अलंकरणों को अलंकृत करती हुई अर्जुन के विलोभनार्थ इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़ती हैं।[१] सुररमणियाँ अर्जुन को मोहित करने के स्थान पर स्वयं कामासक्त हो जाती हैं।[२] अप्सराओं के समस्त भ्रूविक्षेपादि मुग्धकारी व्यापार अर्जुन का अवलोकन कर जडवत् हो जाते हैं। यहाँ अप्सराओं की जडता अवस्था के चित्रण से रसाभास होता है—

**प्रकृतमनुससार नाभिनेयं प्रविकसदंगुलि पाणिपल्लवं वा।**
**प्रथममुपहितं विलासि चक्षुः सिततुरगे न चचाल नर्तकीनाम् ॥**[३]

**भावध्वनि**

देव, मुनि, आदि विषयक-रति और व्यंग्य व्यभिचारी भाव 'भाव' कहलाते हैं।[४] किरातार्जुनीय में मुनि-विषयक और देव-विषयक रति दोनों की व्यंजना हुई है। तृतीय सर्ग में महर्षि व्यास के आगमन पर युधिष्ठिर उनका स्वागत करते समय प्रशंसा करते हुये कहते हैं—आपकी यह दर्शन सम्पत्ति पुण्यपुञ्जहीन पुरुषों के लिए अप्राप्य है, यह रजोगुण रहित तथा कामनाओं की पूर्ति करने वाली है, बिना बादलों की वर्षा के समान है। मुझ जैसे व्यक्ति को आपका दर्शन सम्भव नहीं था। पुनः वे वेदव्यास के दर्शन से अपने पुण्यों और ब्राह्मणों के आशीर्वाद को सफल मानते हुये अपने को कृतकृत्य मानते हैं।[५] इसमें ऋषि विषयक रति की व्यंजना स्पष्ट होने से यहाँ भाव ध्वनि है।

अर्जुन के शौर्य एवं प्रताप से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन्हें प्रत्यक्ष होकर हृदय से लगा लेते हैं और अर्जुन शिव को प्रणाम करते हैं।[६] पुनः अर्जुन भगवान् शिव के विविध रूपों की स्तुति करने लगते हैं।[७] इस स्तुति में देव-विषयक रति की व्यंजना लक्षित होती है।

**रौद्र-रस**

किरातार्जुनीय में भगवान् शिव और अर्जुन के मध्य होने वाले युद्ध में रौद्र-रस का परिपाक हुआ है।

---

१. किरातार्जुनीय, १०।१ २. वही, १०।४० ३. वही, १०।४१
४. 'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः भावः प्रोक्तः।'--काव्यप्रकाश, ४।४८
५. किरातार्जुनीय, ३।५–८ ६. वही, १८।१३, १५
७. वही, १८।३७--४२, २२, ४३

अर्जुन के क्रोध का प्रारम्भ तभी हो जाता है जब उनके प्राण-प्रिय यश पर शत्रु द्वारा आघात होता है, वे सन्तप्त हो उठते हैं।[1] पुनः भगवान् शिव के द्वारा रणक्षेत्र में अर्जुन का पराक्रम अवरुद्ध कर दिया जाता है।[2] इससे उनका क्रोध उद्दीप्त हो उठता है और वे अपनी दृष्टि से विष वमन करने वाले महानाग के समान अपने क्रोधपूर्ण नेत्रों से जलविन्दु गिराने लगते हैं। केशबन्ध ढोले पड़ जाते हैं, नेत्र ताम्रवर्ण हो जाते हैं, मुख पर स्वेदविन्दु आ जाते हैं, उनकी भृकुटि तन जाती है।[3] यहाँ रस संचार की दृष्टि से शत्रु की सेना आलम्बन चेष्टायें उद्दीपन, अर्जुन के नेत्रों का लाल होना, जलबिन्दु गिराना, भ्रूभंग आदि अनुभाव तथा अमर्ष आदि संचारीभाव हैं, किं बहुना, अर्जुन का क्रोधातिशय उनके कवच का काम करने लगता है।[4]

**भयानक रस**

भयानक रस का स्थायी भाव 'भय' होता है जिसका चित्रण यद्यपि अल्प ही हुआ है—तथापि उसकी स्वभाविक व्यंजना हुई है। किरातार्जुनीय के पन्द्रहवें सर्ग में अर्जुन के बाणों के भय से इन्द्रकील पर्वत के सभी जीव-जन्तु भयभीत हो जाते हैं और किरातपति की सेना भी पलायन कर जाती है।[5] इसमें अर्जुन आलम्बन, उनका बाण प्रक्षेपण, जीव-जन्तुओं का भयभीत होना और किरात सेना का पलायन अनुभाव तथा त्रास आदि संचारीभाव हैं। अर्जुन के भय से विह्वल होकर भागते हुए प्रमथगणों[6] में भय की व्यंजना हुई है।

बारहवें सर्ग में भगवान् शिव की सेना के चलने के कोलाहल से भय-भीत पशु-पक्षी आर्तस्वर कर रहे हैं, उससे मालूम पड़ता है कि यह पर्वत क्रुद्ध-सा है। चमरी गायें प्रबल भय के कारण चुपचाप खड़ी हो जाती हैं।[7] इस प्रकार यहाँ भयानक रस की सुन्दर परिपुष्टि हुई है।

**वीभत्स रस**

भारवि ने वीभत्स रस का केवल आलम्बन रूप में ही चित्रण किया है। शिव और अर्जुन के बाणों से वह शूकर घोरनिद्रा में प्रवेश करता

---

१. किरातार्जुनीय, १७।४ २. वही, १७।५ ३. वही, १७।७--९

४. संरम्भवेगोज्झितवेदनेषु गात्रेषु बाधिर्यमुपागतेषु।
मुनेर्बभूवागणितेषु राशेलौंहस्तिरस्कार इवात्ममन्युः॥—किरातार्जुनीय, १७।४९

५. किरातार्जुनीय, १५।१ ६. वही, १५।६ ७. वही, १२।४५--४७

हुआ एकाएक वेगरहित होकर भ्रान्ति के कारण सूर्य को पृथ्वी पर गिरता हुआ और वृक्षों को घूमते हुये देखता है। गिरते हुये वह दाँतों और खुरों से वहाँ का पत्थर तोड़-फोड़ देता है, शरीर रक्त मे लथपथ हो जाता है, क्षणमात्र अर्जुन की ओर देखकर चिग्घाड़ते हुये मर जाता है।[1] यहाँ शूकर रूप आलम्बन से वीभत्स रस की व्यंजना हुयी है।

**अद्भुत रस**

इस रस के स्थायी भाव 'विस्मय' के भी कुछ प्रसंग किरातार्जुनीय में प्राप्त होते हैं। अद्भुत रस में अतिशयोक्ति की छटा रहती है। काव्य में अतिशयोक्ति का प्राधान्य भी रहता है, अतः अद्भुत रस का संचार स्वाभाविक है।

चौदहवें सर्ग में प्रमथगण अर्जुन के बाण-मोक्षण की तीव्रता से विस्मित हो जाते हैं।[2] भगवान् शंकर, अर्जुन के समस्त बाणों का शोषण कर जाते हैं[3] तथा अर्जुन के बाण रहित हो जाने पर विभिन्न प्रकार से युद्ध होता है, अनन्तर शंकर उनके (अर्जुन के) साहस से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष होते हैं।

पुनः शंकर की कृपा से अर्जुन तूणीरों के सहित गाण्डीव धनुष को एवं कवचाच्छादित अपने शरीर को तथा पूर्ववत् धारण की गयी खड्ग को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं।[4] इस प्रकार यहाँ विस्मय भाव की सुन्दर परिपुष्टि हुयी है। यद्यपि 'विस्मय' शब्द कहने से स्वशब्द वाच्यत्व दोष की प्रतीति होती है तथापि रसोत्कर्ष में कोई बाधा नहीं पड़ती है। नियमानुसार महाकाव्य की समाप्ति पर अद्भुत रस की योजना हुई है।[5]

**व्यभिचारी भाव चित्रण**

प्रायः व्यभिचारी भावों की संख्या तैंतीस गिनायी गयी है।[6] किरात काव्य में यत्र तत्र कुछ संचारी भावों का भी सुन्दर सन्निवेश हुआ है। द्वितीय सर्ग में मति[7] भाव की सुन्दर व्यंजना हुयी है—विना विचार किये

१. किरातार्जुनीय, १३।३०–३१ २. वही, १४।५३ ३. वही, १७।३५

४. 'सहशरधि निजं तथा कार्मुकं वपुरतनु तथैव संवर्मितम्।
निहितमपि तथैव पश्यन्नसि वृषभगतिरुपाययौ विस्मयम् ॥ किरात०, १८।१६

५. कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।—साहित्यदर्पण, ४।६

६. दशरूपक ४।९, काव्यप्रकाश, ४।४६

७. भ्रान्तिच्छेदोपदेशाभ्यां शास्त्रादेस्तत्वधीर्मतिः ॥—दशरूपक, ४।२७

हुये एकाएक कोई कार्य नहीं करना चाहिये। अविवेक आपत्तियों का कारण होता है। विचार पूर्वक कार्य करने वाले को सम्पत्तियाँ स्वयं वरण करती हैं।[1]

शूकर को देखकर अर्जुन विभिन्न प्रकार के वितर्क करते हैं—

शूकर ने मुख के अग्रभाग से वृक्ष की जड़ को खोद डाला है, पहाड़ के शिखर को भी तोड़ डाला है, यह अकेला ही मालूम पड़ता है। युद्ध के लिये आह्वान करता है। दुर्योधन ने इसका अत्यधिक सत्कार किया है जिससे यह मेरा वध करना चाहता है, इससे जीव-जन्तुओं का समूह क्षुब्ध हो गया है। इसने भी उसी का आश्रय लिया है अर्थात् शूकर का रूप बना लिया है अथवा अश्वसेन बदला चुकाने के लिये उपस्थित हुआ है।[2]

अप्सराओं के द्वारा अर्जुन को मुग्ध न कर पाने पर उनमें (अप्सराओं में) दैन्यभाव की व्यंजना हुई है—

**स्वयं संराध्येवं शतमखमखण्डेन तपसा**
**परोच्छित्या लभ्यामभिलषति लक्ष्मीं हरिसुते।**
**मनोभिः सोद्वेगैः प्रणयविहतिध्वस्तरुचयः**
**सगन्धर्वा धाम त्रिदशवनिताः स्वं प्रतिययुः ॥[3]**

यहाँ अप्सराओं की कान्ति का विरत हो जाना अनुभाव है। काव्य में गर्व भाव की सुन्दर संयोजना हुई है।[4]

विभिन्न भावों के समान 'विषाद' भाव की भी सुन्दर व्यंजना लक्षित होती है—अर्जुन पराक्रमी शत्रु के साथ युद्ध करने में प्रसन्नता का अनुभब करते हुये भी शत्रु के उत्कर्ष से क्षीण कान्ति हो रहे हैं। वे धूमावृत पर्वतस्थ अग्नि के सदृश प्रतीत होते हैं।[5]

---

१. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥
—किरातार्जुनीय, २।३०

२. किरातार्जुनीय, १३।३-६, १०-११, ३. वही, १०।६३

४. वही, १४।२२, १०।१६,

५. भूरिप्रभावेण रणाभियोगात्प्रीतो विजिह्मश्च तदीयवृद्धया।
स्पष्टोऽप्यविस्पष्टवपुः प्रकाशः सर्पन्महाधूम इवाद्रिवह्निः ॥
—किरातार्जुनीय, १७।२

इस प्रकार किरातार्जुनीय में वीररस के प्रामुख्य के साथ ही अंग रस के रूप में अन्य रसों की भी परिपुष्टि हुयी है। वस्तुतः भारवि विभिन्न रसों के मर्मज्ञ आचार्य हैं। उनके रसों में स्वाभाविकता एवं भावों की यथोचित अभिव्यक्ति है। उन्होंने माघ की भाँति सप्रयास रस-योजना नहीं की है। अतः किरात काव्य में विभिन्न रसों की व्यंजना से काव्य सौष्ठव के साथ-साथ अर्थगौरव का भी पूर्ण निर्वाह हुआ है।

### शिशुपालवध में रस-योजना

शिशुपालवध महाकाव्य का प्रधान रस वीर है।[1] इसमें शृंगार, रौद्र, भयानक, शान्त आदि अन्य अंग रसों की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। महाकवि माघ ने ऐसे नायक (श्रीकृष्ण) का ही चयन किया है जो 'विनाशाय च दुष्कृताम्' अथवा समय-समय पर असाधुओं के निपातनार्थ[2] पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करते हैं। शिशुपालवध काव्य में वीर रस का सन्निवेश प्रथम सर्ग से ही उपलब्ध होता है, जो वस्तुनिर्देशात्मक—मंगलाचरण में 'शासितुं जगत्' रूप में निहित है।

देवर्षि नारद शिशुपाल के पूर्व जन्मों (हिरण्यकशिपु और रावण) के औद्धत्य का स्मरण दिलाकर भगवान् श्रीकृष्ण को उद्दीप्त करते हैं।[3] नायकगत वीरता का चित्रण द्रष्टव्य है—हे नृसिंह ! अपने विशाल सिंह शरीर को धारण कर केसरों के समूह से बादलों को विदीर्ण करने वाले स्तनों के स्पर्श से टेढ़े हो जाने वाले नखों से उस हिरण्यकशिपु का पेट फाड़कर वधकर दिया।[4] इसमें हिरण्यकशिपु आलम्बन हैं, उसका औद्धत्य उद्दीपन है, श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध अनुभाव तथा स्मृति एवं गर्व आदि संचारी भाव हैं।

द्वितीय सर्ग में बलराम की वाणी के द्वारा उत्साह का सुन्दर परिपोषण हुआ है।[5] वे कहते हैं—मानी जन शत्रुओं को समूल नष्ट कर

१. वीरप्रधानो रसः।—मल्लिनाथ—सर्वंकषा टीका।

२. शिशुपालवध, १।७३

३. शिशुपालवध १।४२-४८

४. सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसंगभंगुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥
शिशुपालवध, १।४७

५. शिशुपालवध, २।३३, ३५, ४३, ४५, ५२, ६६

ही उदीयमान होते हैं जैसे—सूर्य उदय होने से पूर्व अन्धकार को विनष्ट कर देता है।[१] बलराम उसे (शिशुपाल को) कृत्रिम शत्रु[२] बताते हुए उसकी वीरता का भी स्मरण दिलाते हैं।[३] विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से बलराम द्वारा श्रीकृष्ण के उत्साह को उद्दीप्त करने से वीरता की परिपुष्टि हुयी है।[४]

वस्तुत: अंगीरस को कथाव्यापी होना चाहिये जो शिशुपालवध में उत्साह के रूप में पदे-पदे परिपुष्ट हुआ है। उद्धव के अन्तिम वाक्यों में उत्साह दृष्टव्य है जो आशीर्वाद रूप में व्यंजित हो रहा है—

सहज चपलतारूपी दोषों से समुद्धत दुर्बल एवं शिथिल हुआ शत्रु-समूह तुम्हारे असह्य पराक्रमरूपी अग्नि में शलभवत् नष्ट हो जाय।[५]

द्वादश सर्ग में सेना के रैवतक पर्वत पर विश्राम के बाद प्रस्थान-प्रसङ्ग में सेना के हस्ति, अश्वादि अंगों की विभिन्न प्रकार की चेष्टायें अनुभाव रूप में व्यक्त हुयी हैं।[६] श्रीकृष्ण के चलने पर उनके साथ होने वाली शंखध्वनि एवं नगाड़े के शब्द राजाओं और पर्वतों को व्यथित कर देते हैं।[७] 'पन्द्रहवें सर्ग से यावत् कथावसान वीररस की अजस्रधारा प्रवाहित होती है। महाकाव्य में अंगीरस सर्वव्यापी होता है तथा इसके द्वारा नायक का सर्वतोभावेन अभ्युदय अथवा उत्कर्ष प्रकटित होता है। इस परम्परा के अनुसार नायक श्रीकृष्ण में उत्साह भाव की रमणीय व्यंजना की परिपुष्टि होती है जो प्रतिनायक शिशुपाल के कठोर वचनों[८] से भी क्षुब्ध[९] नहीं होते। इसी प्रसंग में प्रतिनायक शिशुपाल के वीरत्व का भी वर्णन द्रष्टव्य है—

वह (शिशुपाल) विशाल पर्वत के चट्टान के समान कठोर अपने जंघों पर जोर से ताल ठोंकता है। जिसे भयाक्रान्त हो सभासदों ने सुना।[१०] श्रीकृष्ण को पूजा को न सहन करने वाले शिशुपालादि राजाओं को गंगासुत भीष्मपितामह ललकारते हैं—जो व्यक्ति श्रीकृष्ण की पूजा को न सहन करता हो वह युद्ध करने के लिए धनुष उठावे, सब राजाओं के मस्तक पर मेरा पैर रखा है।[११] शिशुपाल भी युद्ध को ललकारपूर्ण घोषणा[१२] करते हुए एकाएक सभा के बाहर चला जाता है।[१३]

---

१. शिशुपालवध २।३३ २. वही, २।३८ ३. वही, २।३९ ४. वही, २।३९
५, ६, ७. वही, २।११७, १२।१-३६, १२।१३, ८, ९, १०, ११, १२,
१३. वही, क्रमशः १५।२२-३६, १५।४०, १५।१०, १५।४६, १५।६५, १५।६७,

इस प्रकार शिशुपाल का सभा भवन से बहिर्गमन उसके शिविर में युद्धसूचक शंखध्वनि तथा सैनिकों का युद्धार्थ सन्नद्ध होना, प्रियतमाओं से विदाई आदि युद्ध उत्साह के उद्दीपक विभाव तथा अनुभाव हैं।

यादवों के द्वारा अपमानित एवं उपेक्षित होकर दूत के प्रस्थानानन्तर श्रीकृष्ण की सेना युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।[1] यहाँ यदु सेना का युद्ध में जाने हेतु सन्नद्ध होना तथा सेना का प्रस्थान अनुभाव है। वीररस का संचारी भाव 'हर्ष' भी स्पष्ट लक्षित होता है। युद्धोत्साह के सहचारी भाव हर्ष की सुन्दर व्यंजना प्रतिनायक की सेना द्वारा हुयी है। शत्रुसेना विवाह-वधू की तरह श्रीकृष्ण रूपी वर के आगे चलने वाली पटह ध्वनिपूर्वक निकट आने पर आनन्दित हो रही है।[2] वीररस का पूर्ण परिपाक शिशुपालवध के अष्टादश सर्ग से विंशति सर्ग तक चलने वाले युद्ध में हुआ है। विन्ध्य तथा सह्य पर्वत के समान दोनों सेनायें वेगपूर्वक एक दूसरे से मिल जाती हैं।[3]

क्रोधावेश के कारण सामने आये दो वीर हथियारों को छोड़कर मुक्कों का प्रहार करते हुये बाहुयुद्ध करना प्रारम्भ कर देते है।[4] यहाँ क्रोधावेश में हथियारों को छोड़कर मल्लयुद्ध प्रारम्भ कर देना युद्धोत्साह की त्वरा का सूचक है। माघ की वर्णन शैली ही युद्ध का सजीव चित्रण प्रस्तुत कर देती है। कवि ने युद्ध वर्णन में घोड़े एवं हाथियों के उत्साह का सुन्दर सन्निबन्धन किया है।[5]

महाकवि माघ को युद्ध वर्णन का बड़ा सुन्दर एवं विस्तृत अवसर मिला है जितना भारवि को नहीं प्राप्त हो सका है। किन्तु उन्होंने (माघ ने) इन अवसरों पर अपनी तमाम शैलीगत विशेषताओं को प्रदर्शित करने का भी प्रयास किया है। उन्नीसवें सर्ग में चित्रालंकारों के माध्यम से द्वन्द्व युद्ध का चित्रण किया गया है। इस सर्ग का प्रारम्भ वेणुदारी के युद्धोत्साह से हुआ है। वेगपूर्वक दौड़कर आते हुये वेणुदारी को महापराक्रमी बलराम ने उसी प्रकार देखा जैसे सिंह तीव्रता से

---

१. शिशुपालवध, १७।२०

२. यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत्स हरिवराग्रतः सरः।
तथा तथा हृषितवपुर्मुदाकुला द्विषां चमूरजनि जनीव चेतसा॥
—शिशुपालवध, १७।४३

३. शिशुपालवध, १८।१

४. वही, १८।१२ ५. वही, १८।२३,२६–२९, ३३

समक्ष आते हुए हाथी को देखता है।[1] तदनन्तर पराक्रमी योद्धाओं को पराजित करने वाले रथारूढ़ बलराम उसके साथ (वेणुदारी) युद्ध करने के लिए चल पड़ते हैं।[2]

माघ ने सर्वतोभद्र बन्ध के माध्यम से भी सैन्य चेष्टा का सुन्दर वर्णन किया है।[3] सैनिकों के उत्साह की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना हुई है—सैनिक लोग अपने अस्त्रों से सबसे आगे रहकर शत्रु को जीतना चाहते हैं।[4] सेना की उत्साहपूर्ण त्वरा का चित्र द्रष्टव्य है—

चिग्घाड़ते हुए एवं वेगपूर्वक सुन्दर हाथियों वाली बढ़े हुए मनुष्योत्पन्न कलरव से युक्त और मानो जनों के युद्धवाली वह सेना युद्ध विषयक रागरूपी रस अर्थात् क्रोध से मोहित क्रोधान्ध हो जाती है।[5]

महाकवि माघ ने युद्ध का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। तीव्रगामी अश्व तथा शीघ्रगामी बाण अपूर्व युद्ध को प्रारम्भ की हुई सेना के बीच में घुस जाते हैं तथा वे लौहमय अग्रभाग वाले बाण शीघ्र ही लक्ष्य भेदन करते हैं।[6]

द्व्यक्षर श्लोक के द्वारा हाथियों के भिड़ने का वर्णन तथा उनका युद्ध जन्य मद-प्रवाह एवं भग्नदन्त हाथियों की खटमलों से सादृश्यता आदि से उत्साह की परिपुष्टि होती है।[7] शत्रुगण भय के कारण एक ही हरि को द्विधा, त्रिधा तथा चतुर्धा देखते हुए मानो स्पर्धा से पंचत्व को प्राप्त करते हैं।[8]

माघ ने प्रतिनायक शिशुपाल के उत्साह[9] की व्यंजना के साथ ही नायक के उत्साहगत अभ्युदय का मनोरम चित्र उपस्थित किया है।[10] पुनः महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में नायक तथा प्रतिनायक का युद्ध वर्णित है। प्रारम्भ में विभावों एवं अनुभावों के माध्यम से प्रतिनायकगत उत्साह की सुष्ठु व्यंजना हुई है—युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के पराक्रम को न सहन करते हुए क्रोधजन्य ललाटस्थ तीन रेखाओं तथा वक्र भृकुटि से युक्त मुख वाला शिशुपाल उनको (श्रीकृष्ण को) ललकारता है।[11] शिशु-

---

१. शिशुपालवध, १९।१-२ २. वही, १९।३ ३. वही, १९।२६–२७ ४. वही, १९।३२

५. निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसात्तमः।
ततमानवजारासा सेना मानिजनाहवा ॥—वही, १९।३४

६. शिशुपालवध, १९।६२–६३ ७. वही, १९।६६, ६८, ७१

८. वही, १९।११७ ९.–१०--११--वही, १९।८२, १९।११५, २०।१

पाल भी अपने पूर्व वैर का स्मरण कर क्रुद्ध हो उठता है। इसके क्रोध के आलम्बन श्रीकृष्ण तथा उद्दीपन रुक्मिणी के कुच केसर से निहित श्रीकृष्ण का वक्षःस्थल है।[१]

शिशुपाल माया के द्वारा विजय चाहते हुये श्रीकृष्ण पर प्रस्वापनास्त्र का प्रयोग करता है जिससे अन्य राजा सो जाते हैं किन्तु श्रीकृष्ण नहीं सोते[२] प्रत्युत कौस्तुभमणि पर उनकी दृष्टि पड़ने से चतुर्दिक प्रकाश फैल जाता है जिससे सभी जाग जाते हैं।[३] प्रस्वापनास्त्र विफल हो जाने पर वह नागास्त्र का प्रयोग करता है जिससे सेना, हाथी, घोड़े आदि सभी बड़ी-बड़ी फणाओं वाले सर्पों से आविष्ट हो जाते हैं।[४] पुनः श्रीकृष्ण अपनी ध्वजा पर अंकित गरुड़ को मुस्कराकर देखते हैं जिससे कई दश-सहस्र गरुड़ उत्पन्न हो जाते हैं और सर्प भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही अलक्षित हो जाते हैं।[५] तदनन्तर अपने प्रयास को विफल देखकर शिशु-पाल आग्नेयास्त्र फेंकता है।[६] इससे अग्नि धधकने लगती है। मेघों को उत्पन्न कर श्रीकृष्ण इसका खण्डन कर देते हैं।[७] विभिन्न प्रकार के अस्त्रों के प्रयोग से उत्साह भाव का सुन्दर परिपोषण हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के समस्त अस्त्रों के नष्ट कर देने पर[८] शिशुपाल मर्मभेदी वाग्बाणों अर्थात् कटु वाक्यों का प्रयोग करता है।[९]

इस उद्दीपन से बढ़े हुए क्रोध वाले श्रीकृष्ण अपने कालाग्नि ज्वाला प्रदीप्त सुदर्शन चक्र से शिशुपाल के शरीर को कबन्धावशेष कर देते हैं।[१०]

यहाँ उत्साह भाव का आलम्बन शिशुपाल, उसका गाली देना उद्दी-पन विभाव तथा श्रीकृष्ण द्वारा शिर काटा जाना अनुभाव एवं स्मृति गर्व आदि संचारी भाव हैं।

---

१. अभिवीक्ष्य विदर्भराजपुत्रीकुचकाश्मीरजचिह्नमच्युतोरः।
चिरसेवितयापि चेदिराजः सहसावाप रुषा तदैव योगम् ॥—शिशुपालवध, २०।६

२-३. वही, २०।३२--३६, २०।३७--४०

४--५. वही, २०।४१--५१, २०।५२--५८

६. वही, २०।५९--६१ ७. वही, २०।६५

८. वही, २०।७६ ९. वही, २०।७७

१०. तेनाक्रोशत एव तस्य मुरजित्काललोलानल।
ज्वालापल्लवितेन मूर्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः ॥

—शिशुपालवध, २०।७८ उत्तरार्द्ध

जैसा कि वीर रस के दानवीर, धर्मवीर, दयावीर, युद्धवीर रूप से चार भेद होते हैं, उसमें दयावीर के अतिरिक्त काव्य में सभी का वर्णन प्राप्त होता है। दान-वीरता का वर्णन राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर द्वारा याचकों को यथेच्छ धन प्रदान करने में दृष्टिगत होता है।[१] युधिष्ठिर की सभा में जो जिस कामना से आया, उसे वह सब सम्यक् प्रकारेण प्राप्त हुआ।[२] उत्तम दान की एक विशेषता होती है—दाता की निरभिमानिता एवं आत्मश्लाघाराहित्य। इसका महाकवि ने एक आदर्श रूप युधिष्ठिर जैसे दानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।[३] राजा युधिष्ठिर को गुणों से अधिक प्रेम है किन्तु वे दान देने में गुणी एवं निर्गुणी का विचार वैसे ही नहीं करते जिस प्रकार मेघ ऊसर और उर्वर दोनों भूमियों में समान वर्षा करता है। इस प्रकार महाकवि माघ ने दानवीरता का वर्णन याचकों एवं ब्राह्मणों को दी जाने वाली दक्षिणा के रूप में किया है।

धर्मवीरता का चित्रण भी काव्य में हुआ है। युधिष्ठिर गृहागत श्रीकृष्ण से निवेदन करते हैं कि मैंने जिस धन को धर्मपूर्वक प्राप्त कर उसकी रक्षा तथा वृद्धि की है, उस धन को मैं सत्पात्रों में दान करूंगा आप उसे स्वीकार करें। मैं अग्नि में हवन करूँगा।[४]

इस प्रकार महाकवि माघ ने वीर रस का सांगोपांग परिपोष किया है।

## शृंगार-रस

शिशुपालवध में अंग रसों में शृंगार रस का सर्वाधिक विस्तार हुआ है। शृंगार रस का वर्णन काव्य में चतुर्थ से एकादश सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में प्राप्त होता है। इनमें भी षष्ठ, सप्तम, अष्टम तथा दशम सर्गों में शृंगार की भरमार है। इसका स्थायी भाव रति है। नायक एवं नायिकायें इस रति के आलम्बन हैं। उद्दीपन रूप में ऋतुओं सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का चित्रण हुआ है। दशरूपककार ने नायिकाओं की आठ अवस्थायें बतायी हैं।[५] इन सभी के रूप शिशुपालवध में देखे

---

१–२–३. शिशुपालवध, क्रमशः १४।४५, ४८, १४।४९, १४।४५

४. स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः पर्यपालयमवीवृधं च यत्।
तीर्थगामि करवै विधानतस्तज्जुषस्व जुहवानि चानले॥
—शिशुपालवध, १४।९

५. आसामष्टाववस्था स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः।—दशरूपक, २।२३

जा सकते हैं। नायिकाओं के अयत्नज एवं स्वाभाविक अलंकारों तथा उनके बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरत, दूतीप्रेषण आदि के माध्यम से शृंगार रस की सुन्दरता व्यंजित हुई है। षष्ठ सर्ग में वर्णित ऋतुवर्णन शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में चित्रित हुआ है। शृंगार में नायक, नायिका को अनुकूल बनाने के लिए चाटु करता है। कोई नायक-नायिका से कह रहा है कि तुम्हारी सुगन्धित स्वांस वायु तथा अमृत की तरह मधुर ओष्ठ के प्रति मुझ जैसा तृषार्त मधुर तृप्ति की कामना से तुम्हारे पास आ रहा है जिसे पुष्पों की गन्ध और रस भी नहीं तृप्त कर सकते।[१] प्रिय के इस प्रकार कहने पर नायिका दोनों भुजाओं के उठाने से अधिक ऊँचे स्तन वाली तथा त्रिवलीयुक्त, उदर सुन्दरता से युक्त मानों भ्रमर के भय से नायक का आलिंगन कर देती है।[२]

वसन्तऋतु के उद्दीपन से कामपीड़िता यादवांगनायें स्वयमेव सम्भोगार्थ तैयार हो जाती हैं। वे प्रियतमों के वसन्तोत्सवागमन पर उसी प्रकार तृप्त होती हैं जैसे कोई सुधा प्राप्त कर तृप्त हो जाय।[३] आकाश में नील वर्ण उन्नतमेघ को देखकर शृंगार रस वाले प्रियतम के प्रति अभिसार करती है।[४]

माघ का शृंगार वर्णन कहीं-कहीं अश्लील-सा हो गया है। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन मूलतः प्रकृति की दृष्टि से न करके सम्भोग के उद्दीपन के रूप में किया है। ऐसा लगता है कि मानों कवि ने उक्त शृंगार भाव को पुष्टि के लिए ही विभिन्न प्राकृतिक उपादानों का चयन किया है। सप्तम सर्ग में यादवगण ऋतुओं के द्वारा विस्तृत उपवन शोभा के दर्शनार्थ निकल पड़ते हैं। वे सपत्नीक जाते हैं अन्यथा वे असंख्य पुष्परूप बाणों को अकेले कैसे सहन कर सकते ?[५]

वन विहार के लिए जाने वाली अंगनाओं में आलम्बन और उद्दीपन दोनों के एकाश्रय का वर्णन भी किया गया है।[६] शृंगार के परिपोषक

---

१. शिशुपालवध, ६।१२

२. इति गदन्तमनन्तरमंगना भुजयुगोन्नमनोच्चतरस्तनी।
प्रणयिनं रभसादुदरश्रिया वलिभयालिभयादिव सस्वजे ॥
—शिशुपालवध, ६।१३

३. शिशुपालवध, ६।१५-१६ ४. वही, ६।२६ ५. वही, ७।८-२

६. वही, ७।३

दूतीप्रेषण का भी सुष्ठुरूप में चित्रण हुआ है। जिसमें वह (दूती) क्रुद्ध नायिका को अनुकूल करती है।[1] पुनः कलहान्तरिता[2] नायिका का नाट्यशास्त्रीय रूप सम्भोग श्रृंगार को पुष्ट करता है।[3] नायक के पार्श्व में चलती हुई नायिका के स्तन का कन्दुक की भाँति प्रिय (नायक) के स्पर्श से रोमांचित होना तथा प्रिय के पोछे से अपने उन्नत उरोजों द्वारा उसे (प्रियको) धक्का देना[4] आदि वर्णन कवि के श्रृंगारातिशय के व्यंजक हैं। युवक पति नवोढा नायिका के मुख कमल को ऊपर उठाकर चुम्बन कर लेता है, जिसे नायिका की चतुर सखी जानती हुई अनजान बनी रहती है।[5] यहाँ उस चतुर सखी की चेष्टा रमणीय लगती है। ऊँचे लगे हुए फूलों की इच्छा करती हुई नायिका नायक से तोड़कर देने को कहती है, इस पर उस स्थूल स्तन वाली मुग्धांगना के आलिंगन की इच्छा से नायक उसे दोनों हाथों से ऊपर उठा लेता है।[6] यह मुग्धा-नायिका है। खण्डिता आदि विविध प्रकार की नायिकाओं के माध्यम से विभिन्न रति क्रीड़ाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है।[7]

महाकवि माघ ने अंगनाओं के सविलास गमन,[8] चुम्बन,[9] आलिंगन,[10] नखक्षत,[11] सीत्कार,[12] तथा सुरतादि[13] का सुन्दर चित्रण किया है। आचार्य वात्सायन ने रति के जिन दश अंगों का वर्णन किया है वे यथार्थ रूप में शिशुपालवध में प्राप्त होते हैं। आलिंगन के कामशास्त्रोक्त विविध रूपों का वर्णन किया गया है। पति के द्वारा उत्तरीय हटा दिये जाने से कोई मध्यमा[14] नायिका लज्जित होती हुई पति के वक्षःस्थल से अपने स्तनों को ढक देती है अर्थात् स्तन मण्डल को ढकने के बहाने आलिंगन कर लेती है।

**उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम्।**
**आवरिष्ट विकटेन विवोढुर्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या॥**[15]

१. शिशुपालवध, ७।७–११
२. कलहन्तरिता मर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्—दशरूपक २।२६
३. वही, ७।४१    ४. वही, ७।१५–१९    ५. वही, ७।४४
६. शिशुपालवध, ७।४९    ७. वही, ७।५३–५६    ८. वही ७।१६–२३
९. वही, ७।४४, ८।१०,२६    १०. वही ६।५७,६५,७।४६,४९, १०।४२–५१
११. वही, ७।३९, ८।५१    १२. वही, ६।५८, ५९    १३. वही, ६।४१,७६,७७
१४. मध्योद्ययौवनानंगामोहान्तसुरतक्षया।—दशरूपक, २।१६
१५. शिशुपालवध, १०।४२

अष्टम सर्ग में वर्णित जल-विहार प्रसंग के अन्तर्गत श्रृंगार-रस की मनोरम योजना हुई है—जल में प्रविष्ट विलासी युवक, शीत के कारण जल में प्रवेश करने की इच्छा न करती हुई तथा निषेधार्थ हाथ हिलाती हुई रमणी को भिगो देता है।[1] यहाँ रमणी आलम्बन है, उसका हाथ हिलाकर रोकना उद्दीपन तथा रमण द्वारा भिगोया जाना अनुभाव एवं हर्ष संचारी भाव है।

सखियों द्वारा ढकेले जाने पर भयवश पति का आलिंगन कर लेने[2] आदि के द्वारा रतिभाव की सुन्दर योजना हुई है। जल-क्रीड़ा के समस्त उद्दीपन उपलब्ध हैं—यथा—सोने की पिचकारियाँ, सुगन्धित चन्दन, कुंकमादि, स्तन कलश का आंचलरूप कुसुम्भी-उत्तरोय, अंगूरीआसव तथा प्रिय का सामीप्य।[3] श्रृंगार में आनन्द बढ़ाने के लिए ईर्ष्या की भी आवश्यकता होती है। इसकी भी सुन्दर व्यंजना हुई है।[4]

विरहोत्कण्ठिता हथेली पर कपोल मण्डल को रखकर प्रियतम समागम के लिए उत्कण्ठित हो रही है।[5] श्रृंगार पूर्वक पति उत्कण्ठा से तरुणियाँ प्रियतमों को आकृष्ट करने के लिए विदग्ध सखियों को भेजती हैं।[6] यह वासकसज्जा नायिका है। कोई कलहान्तरिता नायिका दूती द्वारा प्रिय सन्देश पूछने पर लज्जावश बता ही नहीं पाती अपितु काम बाणों से कृश शरीर को ही देखकर रह जाती है। वही उस नायिका का प्रत्युत्तर है।[7] कलहान्तरिता नायिका द्वारा अपने प्रियतमों के पास दूती भेजने का मनोरम वर्णन मिलता है।[8]

शिशुपालवध में रमणियों के सुरतकालिक विपरीत भावों का भी सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन मिलता है।[9] आभ्यन्तर सुरत का चित्र द्रष्टव्य है—नायक का हाथ नायिका के वस्त्र हटाने लगा है, नायिका दोनों हाथों से रोक रही है, जिससे नायिका के हाथों की चूड़ियाँ खनकने लगती हैं। इस पर कवि का कथन है कि मानों चूड़ियों की ध्वनि कलह का

१. दशरूपक, ८।१९ २. शिशुपालवध, ८।२०

३. श्रृंगाणि द्रुतकनकोज्ज्वलानि गन्धाः कौसुम्भं पृथु कुचकुम्भसंगि वासः।
मार्द्वीकं प्रियतमसन्निधानमासन्नारीणामिति जलकेलिसाधनानि॥
—शिशुपालवध, ८।३०

४. वही, ८।४० ५. वही, ९।५४ ६. वही, ९।५५

७–८. वही, ९।६१, ९।५६--५९ ९. वही, १०।१८

निवारण करने के लिए हो रही है।[1] सुरतकाल में रमणियों के सीत्कार, करुणवचन, स्निग्धालाप, निषेधार्थक वाणी और हासध्वनि कामसूत्र के पदों की भाँति चित्रित किये गये हैं।[2] इस प्रकार महाकवि माघ ने काम-सूत्र का उल्लेख कर अपने शृंगार की प्रौढ़ व्यंजना करायी है। रतिश्रम संचारीभाव की भी रमणीय व्यंजना दृष्टिगत होती है।[3] सुरत-श्रम के कारण स्तनभार को कठिनता से वहन करती हुयी, कामासक्ति से सुरत की पराकाष्ठा होने से स्वेदार्द्र ललाट पर उनके केश चिपक जाते हैं।[4] प्रभात वर्णन के प्रसंग में ग्लानि[5] निद्रा[6] विबोध[7] आदि भावों की सुन्दर व्यंजना हुयी है। लज्जा भाव का सुन्दर चित्रण हुआ है—नायिका रात्रिकालीन सुरत में प्रियतम के प्रति किये गये अपने चाटुकार भाव का दिन में स्मरण कर लज्जित हो जाती है।[8]

भगवान् श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर उनके दर्शनार्थ समागत रमणियों की शृंगार-चेष्टाओं एवं भावों की विस्तृत व्यंजना हुयी है।[9]

श्रीकृष्ण इस महाकाव्य के वीर-रस प्रधान नायक हैं तथापि शृंगार के आश्रय के रूप में भी चित्रित हुये हैं।

प्रिय श्रीकृष्ण जिस अंगना को देखते हैं, वह लज्जा से नम्रमुखी हो जाती है तथा जिन्हें श्रीकृष्ण नहीं देखते वे अंगनायें कटाक्ष-पात करती हैं।[10] यहाँ श्रीकृष्ण भी शृंगार के आलम्बन रूप में चित्रित हुये हैं।

इस प्रकार माघ ने शृंगार-रस का अत्यन्त स्पृहणीय संयोजन किया है।

## हास्य-रस

महाकवि माघ ने अंग-रसों में हास्य-रस का अल्प किन्तु बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

रैवतक पर्वत पर सेना विश्राम हेतु इधर-उधर फैली है। हथिनी से डरा हुआ गधा तबतक उछलता रहता है जबतक उस पर बैठी हुयी

१. शिशुपालवध, १०।६२ २. वही, १०।७५
३. वही, १०।८०–८२ ४. १०।८० ५. वही, ११।२०
६. वही, ११।४ ७. वही, ११।१३
८. वही, ११।३९ ९. वही, १३।३१–४८
१०. यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।
निःशंकमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥
शिशुपालवध, ३।१६

वस्त्रहीन नितम्बों वाली दासी गिर नहीं जाती।[1] यहाँ दासी आलम्बन, उसके नितम्बों का वस्त्रहीन होना तथा नीचे गिरना उद्दीपन है।

इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ शीघ्रतावश रमणियां हार के स्थान पर करधनी, केशों में कर्णपूर तथा कपड़ों को उल्टा पहने हुए, हास्य की उद्दीपक बन जाती हैं।[2]

किसी उद्दण्ड अश्व की जीन और काठी ढीली होकर नीचे खिसक जाती है। वह (अश्व) अपने सवार को उछल-उछल कर भूमि पर गिराकर एक ओर को भाग लेता है। घोड़े की इस स्थिति को देखकर लोग हा-हा कर हँसने लगते हैं।[3]

यहाँ अश्व आलम्बन है, सवार का गिरना उद्दीपन है। महाकवि माघ के हास्य वर्णनों में अत्यन्त स्वाभाविकता विद्यमान है।

**वीभत्स–रस**

शिशुपालवध में वीभत्स-रस के चित्र भी प्राप्त होते हैं जिनमें जुगुप्सा भाव की सुन्दर व्यंजना हुयी है। समरांगण में बहती हुयी खून की नदियों तथा उनमे तैरते हुये हाथियों के पैर कछुओं की भाँति प्रतीत हो रहे हैं।[4] स्यार भूख को जगाने के लिये अजीर्ण तथा थकावट को दूर करने वाले रक्तरूपी मद्य का पान करते है तथा उपदंश के रूप में कलेजे के मांस का भक्षण करते हैं।

**ग्लानिच्छेदी क्षुत्प्रबोधाय पीत्वा रक्तारिष्टं शोषिताजीर्णशेषम्।**
**स्वादुंकारं कालखण्डोपदंशं क्रोष्टा डिम्बं व्यष्वणद्व्यस्वनच्च ॥**[5]

यहाँ स्यार आलम्बन है तथा उसका रक्त एवं कलेजा खाना उद्दीपन है। इससे पुष्ट होकर वीभत्स-रस अत्यन्त सटीक बन पड़ा है।

**करुण-रस**

शिशुपालवध में करुण-रस का भी अत्यल्प किन्तु स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होता है।

---

१. शिशुपालवध, ५।७

२. रभसेन हारपददत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ॥
—शिशुपालवध, १३।३२

३. शिशुपालवध, १२।२२ ४. वही, १८।७१ ५. वही, १८।७७

नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण से रावण के औद्धत्यजन्य देव-दुर्दशा का उल्लेख करते हैं जो बड़ा ही करुण है। रावण ने धनुष बनाने के लिये यमराज के भैंसे की सींग उखाड़ ली जिससे वह सींगों का भार हल्का हो जाने पर भी लज्जा के अत्यधिक भार से सिर नीचे करके चलता है।[१] रावण द्वारा दन्तपत्रिका बनाने की इच्छा से उखाड़ा गया गणेश जी का दाँत आज भी नहीं उगता।[२] अत्यन्त तेजस्वी अग्निदेव रावण के लोकातिशयी तेज से पराजित हो अत्यधिक दुःख के कारण अश्रुरूप धूम्र निकाल रहे हैं।[३]

प्रभात वर्णन प्रसंग में भी करुणा की एक झलक दिखायी पड़ती है—कुमुदिनियों ने आँखें बन्द कर लीं, सभी तारायें अस्त हो गयीं मानों इसी चिन्ता में शोभाहीन पत्नीवत्सल चन्द्रमा कृशता को प्राप्त हो रहा है।[४] यहाँ चन्द्रिका की दयनीय स्थिति के कारण करुण-रस की व्यंजना दृष्टिगत होती है।

## भयानक-रस

शिशुपालवध में वर्णित विभिन्न रसों के साथ ही 'भय' भाव की भी सुन्दर योजना हुयी है। नारद जी शिशुपाल के पूर्वजन्म के औद्धत्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—सर्वप्रथम असुर संज्ञा को प्राप्त हिरण्यकशिपु ने देवों के मन में भय को उत्पन्न कर दिया।[५] इससे पूर्व देवताओं को कोई भय नहीं था। हिरण्यकशिपु उनके (देवताओं) भय का प्रथम आलम्बन हुआ। रावण से भीत देवताओं की स्थिति का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। उससे कुबेर, वरुण, यम, दिवाकर, चन्द्रमा, अग्नि, भुजंग तथा देवांगनाएं अत्यन्त भयभीत होकर अपने-अपने स्वाभाविक धर्मों का परित्यागकर उसकी इच्छा से अनुकूल आचरण करते हैं।[६] इन्द्र तो रावण के भय से सुमेरु पर्वत की गुफा में छिपे रहते हैं।[७]

---

१. शिशुपालवध, १।५७ २. वही, १।६० ३. वही, १।६२

४. सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः ॥
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नंगमिन्दु-
र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥—शिशुपालवध, ११।२४

५. भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत ॥—शिशुपालवध, १।४३

६. वही, १।५२ ७. वही, १।५२

साहित्यदर्पणकार ने कौशिक (इन्द्र) में भय प्रदर्शित किये जाने से इसे भयानक रसाभास के अन्तर्गत रखा है।[1]

वृक्ष की दाढ़ी के समान मधुमक्खी के छत्ते को हाथी द्वारा कम्पित किये जाने से मधुमक्खियों के काटने से लोग व्याकुलता पूर्वक भागने लगते हैं।[2] वहाँ हाथी आलम्बन, मधुमक्खियों का काटना उद्दीपन तथा पलायन अनुभाव एवं त्रासादि संचारी भावों के माध्यम से भय भाव की व्यंजना हुयी है।

## अद्भुत-रस

शिशुपालवध में विस्मय भाव का भी यत्र-तत्र सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है। आकाश मार्ग से आते हुये नारदजी के सर्वत्र प्रसरणशील तेजः पुंज को नीचे गिरते देखकर लोगों को विस्मय हो जाता है।[3] यहाँ नारद जी आलम्बन, तेजपुंज उद्दीपन है। इससे विस्मय भाव की व्यंजना होती है।

रैवतक पर्वत पर विभिन्न मणियों की किरणें ऊपर उठती हैं और उनके परस्पर मिश्रण से बिना दीवार के ही चित्र बन जाते हैं जिनसे आकाशगामी देवादि आश्चर्यचकित हो जाते हैं।[4] रैवतक आलम्बन, मणिकिरणें उद्दीपन हैं जिससे विस्मय भाव व्यंजित होता है।

विस्मय भाव का पूर्ण परिपाक बीसवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में होता है। श्रीकृष्ण अपने चक्र से शिशुपाल का शरीर शिरोविहीन कर देते हैं।

उक्त प्रसंग में शिशुपाल के शरीर से निर्गत तेज आलम्बन, उस तेज का श्रीकृष्ण के तेज में मिलना उद्दीपन, नरेन्द्र के नेत्रों का विकसित होना अनुभाव है। इससे विस्मय भाव की सुन्दर व्यंजना होती है।

## रौद्र-रस

शिशुपालवध महाकाव्य में रौद्र-रस की सुन्दर व्यंजना हुयी है। युधिष्ठिर की सभा में श्रीकृष्ण की पूजा को न सहन करता हुआ शिशुपाल अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है।[5] शिशुपाल के क्रोधयुक्त शरीर का विभिन्न

१. साहित्यदर्पण, पृ० १२७ २. शिशुपालवध, १२।५४
३. वही, १।२ ४. वही, ४।५३ ५. वही, १५।२

अनुभावों के माध्यम से वर्णन हुआ है।[1] अत्यन्त क्रोध से उसका शिर काँपने लगता है, क्रोधाधिक्य से अश्रुपतन एवं स्वेद परिश्रवण आदि अनुभाव चित्रित हुये हैं।[2]

शिशुपाल युधिष्ठिर को फटकारने लगता है[3]—

हे पृथापुत्र! यदि तुम लोगों को यह कृष्ण ही पूज्यतम था तो क्या अपमान करने के लिए ही इन सब राजाओं को निमन्त्रित किया था।[4] यहाँ श्रीकृष्ण आलम्बन, उनकी पूजा उद्दीपन तथा युधिष्ठिर की निन्दा अनुभाव है।

युद्ध क्षेत्र में सैनिकों के क्रोध भाव की मनोरम व्यंजना हुई है— पदाति सेना जिनकी खड्ग शत्रुओं की खड्ग से कट गयी थी, क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को उसी प्रकार काटने लगते है जिस प्रकार शत्रुओं के खड्ग से कटे हुए सूडें तथा पूँछ वाले हाथी क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को छेदते हैं।[5] यहाँ शत्रुगण आलम्बन, खड्ग का काटा जाना उद्दीपन तथा पैदल सैनिकों का दाँतों से काटना अनुभाव एवं उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

### भावध्वनि तथा भावाभास

देव, मुनि विषयक रति को भाववाच्य माना जाता है।[6] आचार्य मम्मट ने मुनि विषयक रति का उदाहरण 'शिशुपालवध' से ही दिया है। नारद जी के आगमन पर श्रीकृष्ण उनका स्वागत करते हुए कहते हैं—आपका दर्शन शरीर धारियों की तीनों कालों की योग्यता को प्रकट करता है, पाप को नष्ट करता है, भावी शुभ का सूचक है तथा पूर्वकृत पुण्यों का सुपरिणाम सूचित करता है।[7]

तदनन्तर नारदजो श्रीकृष्ण के प्रति अपने भाव व्यक्त करते हैं।[8] वे कहते हैं कि हे प्रभो! यदि आप लोकद्रोही कंसादि के वधार्थ इस भूतल पर न अवतरित हुये होते तो योगियों के भी अगम्य मुझ जैसे लोगों को आपका दर्शन कैसे मिलता।[9]

---

१. वही, १५।३-१० २. वही, १५।३-४ ३. वही, १५।१४-१८
४. शिशुपालवध, १५।१८ ५. वही, १९।१५
६. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।—काव्यप्रकाश, ४।४८
७. वही, १।२६ ८. शिशुपालवध, १।३२--३८ ९. वही, १।३७

इस प्रकार नारद और श्रीकृष्ण के सम्भाषण में मुनि एवं देव विषयक रति की व्यंजना हुई है जिसके आलम्बन नारद और श्रीकृष्ण हैं।

भीष्म-कृत श्रीकृष्ण स्तुति में भी देवविषयक रति का सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है।[१]

शिशुपालवध में जहाँ एक और देवविषयक भाव का सुन्दर परिपोषण हुआ है वहीं दूसरी ओर अनौचित्य प्रवर्तन से भावाभास भी प्रकटित होता है।[२] कोई नायिका श्रीकृष्ण के सम्मुख कान खुजलाने के व्याज से उन्नत स्तनों को ऊपर उठाकर अपना अभिप्राय व्यक्त करती है।[३] यहाँ देव कोटि के नायक श्रीकृष्ण के प्रति अनुचित भाव प्रदर्शन होने से यह भावाभास के अन्तर्गत माना जायेगा।

## तुलनात्मक विवेचन

'किरातार्जुनीय' एवं 'शिशुपालवध' के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि दोनों महाकवियों में पर्याप्त साम्य है। प्रस्तुत प्रसंग में रस की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा इस प्रकार है—

दोनों ही महाकाव्य वीर-रस प्रधान हैं।[४] किरातार्जुनीय में अर्जुन और किरातेश्वर शंकर के मध्य होने वाले युद्ध में उत्साह भाव की व्यंजना हुई है तथा शिशुपालवध में शिशुपाल एवं उसके पक्ष के राजाओं तथा दूसरी ओर श्रीकृष्ण के माध्यम से उत्साह भाव की परिपुष्टि हुई है। वीर-रस के चार भेदों—युद्धवीर, दानवीर, दयावीर एवं धर्मवीर में से युद्धवीर रस का ही पूर्ण परिपाक 'किरातार्जुनीय' में मिलता है। युद्धवीर रस के दो भेद होते हैं—बुद्धिप्रधान और शस्त्रप्रधान। बुद्धिप्रधान वीर रस का सन्निबन्धन द्रौपदी और युधिष्ठिर के मध्य होने वाले वार्तालाप में हुआ है जिसकी पुष्टि भीम द्रौपदी के पक्ष से करते हैं। शस्त्रप्रधान वीररस का पूर्ण परिपाक शंकर और अर्जुन के युद्ध में हुआ है। अर्जुन के शस्त्रास्त्र विफल हो जाने पर वे मल्लयुद्ध करते हैं।

---

१. शिशुपालवध, १४।५९–५८     २. वही, १३।४०–४४

३. अधिकोन्नमद्धनपयोधरं मुहुः प्रचलत्कलापिकलशंखकस्वना।
अभिकृष्णमंगुलिमुखेन काचन द्रुतमेककर्णविवरं व्यघट्टयत्॥
—शिशुपालवध, १३।४१

४. ... .... .... वीरप्रधानो रसः।
—किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, घण्टापथ तथा सर्वंकषा टीका

वस्तुतः किरात की मुख्य कथा का सम्बन्ध भगवान् शिव और अर्जुन की युद्धविषयक घटना से है। अतः इस दृष्टि से शस्त्रप्रधान वीर-रस का सन्निबन्धन अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है। भारवि पौरुष प्रधान कवि हैं। पौरुष अथवा वीरत्व कवि के निजी व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है जिसके कारण उक्त रस की पूर्ण परिपुष्टि काव्य में स्वतः हो सकी है।

किरातकाव्य में दानवीर एवं दयावीर का स्पष्ट वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

शिशुपालवध में युद्धप्रधान वीर-रस के दोनों भेदों की सुन्दर व्यंजना हुई है। द्वितीय सर्ग में बलराम ओजःपूर्ण वाणी से अपने बुद्धि-प्रधान वीरत्व का सुन्दर परिचय देते हैं। बलराम की दृष्टि में बिना शत्रु का विनाश किये प्रतिष्ठा दुर्लभ है क्योंकि धूलि को बिना कीचड़ बनाये पानी भूमि पर नहीं रुकता है।[1] इसमें बलराम के वीरत्व की स्पृहणीय योजना हुई है।

श्रीकृष्ण और शिशुपाल पक्षीय सेनाओं के युद्ध में वीर-रस का परिपाक दृष्टिगत होता है। युद्ध की त्वरावश क्रोध में आकर दो वीर पहलवानों की तरह मुक्कों का प्रहार करते हुये बाहु युद्ध करने लगते हैं।[2] सम्भवतः उत्साह की परिपुष्टि में माघ ने भारवि से स्पर्धा करने की दृष्टि से बाहु युद्ध की एक छटा प्रस्तुत कर दी है। यहाँ यह स्मर्तव्य है कि माघ की अपेक्षा भारवि के वीर-रस में अधिक स्वाभाविकता है।

शिशुपालवध में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दिये गये प्रभूत दान, दक्षिणादि से उनका दानवीरत्व सिद्ध होता है। शिशुपालवध के वीर-रस का कलेवर अत्यन्त विस्तृत है तथापि जितना सुन्दर उत्साहभाव का परिपोषण किरातकाव्य में हुआ है उतना शिशुपालवध में नहीं मिलता। महाकवि भारवि युद्ध वीर-रस के पोषक हैं जबकि माघ का वीर-रस उनकी शृंगारी प्रवृत्ति से आक्रान्त है। माघ ने वीर-रस वर्णन-स्थलों में शृंगारमय उपमानों का सन्निवेश किया है। इस तथ्य की पुष्टि में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—युद्धस्थल में शिशुपाल और श्रीकृष्ण की पदाति, अश्व, गज एवं रथ सेनायें आपस में उसी प्रकार मिल जाती

---

१. विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥—शिशुपालवध, २।३४

हैं जैसे रति-काल में प्रियतमा प्रिय के अंगों को एक दूसरे से सम्पृक्त कर देती है।[1]

दोनों ही महाकाव्यों में अंग-रस के रूप में प्रमुख रूप से शृंगार रस का वर्णन हुआ है। भारवि की अपेक्षा माघ ने अपने काव्य में शृंगार का तथा उसमें भी सम्भोग शृंगार का अधिक सन्निबन्धन किया है। शिशुपालवध में शृंगारिक वर्णनों का संयोजन षष्ठ सर्ग के ऋतु वर्णन और सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम सर्ग के जलक्रीड़ा वर्णन, सूर्यास्त, अन्धकार, चन्द्रोदय एवं यादव-यादवांगनाओं के मधुपान वर्णन सहैव सुरत वर्णनादि में हुआ है। किरातार्जुनीय में भी अष्टम, नवम तथा दशम सर्गों में अप्सराओं के वन-विहार, पुष्पावचय, जलक्रीड़ तथा सुरत-केलि के प्रसंगों में शृंगारिक वर्णन समुपलब्ध हैं। सम्भवतः इनके अनुकरण पर ही माघ ने भी इन्हीं सर्गों में शृंगारिक वर्णन उपन्यस्त किये हैं। भारवि ने अर्थगौरव और रस दोनों का समुचित ध्यान रखा है किन्तु माघ तो रसप्रदर्शन में ही अपना गौरव समझते हैं।[2]

यद्यपि रस ही काव्य का प्राण तत्त्व है किन्तु उसे यथावसर एवं स्वाभाविक रूप में होना चाहिये। माघ ने भारवि से अधिक एवं विस्तृत रस योजना की है किन्तु जो स्वाभाविकता भारवि में है वह माघ में नहीं। वात्सल्य का जो स्वाभाविक चित्र भारवि प्रस्तुत कर देते हैं[3] उतना स्वाभाविक माघ को नहीं माना जा सकता है।[4] दोनों महाकवियों के शृंगार वर्णन में कोई विशेष अन्तर नहीं परिलक्षित होता है। किरातार्जुनीय में रतिभाव के आलम्बन अप्सरायें एवं गन्धर्व हैं तथा शिशुपालवध में यादव-यादवांगनायें। दोनों में ही एकाधिक नायक-नायिकाओं के माध्यम से रतिभाव का परिपोषण हुआ है। दोनों कवियों ने कामशास्त्रोक्त बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरत के विविध रूपों का वर्णन किया है।

दोनों ही महाकवियों ने विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन नहीं किया है और न ही कोई कथानकगत विप्रलम्भ का प्रसंग ही आया है। किरातार्जुनीय में गन्धर्व और अप्सरायें एक साथ ही अर्जुन को मोहित करने

१. शिशुपालवध, १८।२

२. नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः।—शिशुपालवध, २।८३ उत्तरार्ध

३. किरातार्जुनीय, ४।१०

४. शिशुपालवध, ४।२७

जाती हैं।[1] शिशुपालवध में भी यादवों के साथ उनकी अंगनायें हैं।[2] मुग्धा, खण्डिता आदि नायिकाओं का दोनों ही कवियों ने चित्रण किया है। दोनों ही महाकवियों ने अंगीरस के रूप में वीर-रस का सुन्दर सन्निबन्धन किया है।

लक्षणानुसार अंगीरस रूप में मान्य शान्त रस का परिपाक इन उभय आलोच्य महाकाव्यों में भी प्राप्त होता है। किरात काव्य में भगवान् शिव के प्रकट होने पर उनके विग्रह की अर्जुनकृत स्तुति में तथा शिशुपालवध में नारदकृत भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति में शान्तरस का परिपोष हुआ है। इस प्रकार एतद्विषयक रसपरिपा क में प्रायः दोनों काव्यों में समानता है।

किरातकाव्य में हास्य-रस का कोई प्रसंग नहीं आया है जबकि माघ ने हास भाव की भी व्यंजना की है।[3]

भारवि ने करुण-रस की भी व्यंजना नहीं की है। यद्यपि स्पष्ट रूपेण करुण का कोई अवसर शिशुपालवध में भी नहीं आया है तथापि करुण-रस की छटा यत्र-तत्र लक्षित होती है।[4]

भारवि ने वोर-रस, शृंगार-रस (सम्भोग), रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त रस का सन्निबंधन किया है। माघ ने वीररस, शृंगार (सम्भोग) रौद्र, भयानक, वीभत्स, हास्य, अद्भुत, करुण एवं शान्त रस की योजना की है। इस प्रकार भारवि ने सात रसों को तथा माघ ने नौ रसों को काव्य में उपन्यस्त किया है। माघ ने हास्य और करुण रस का भी स्वल्प वर्णन प्रस्तुत किया है किन्तु भारवि ने नहीं।

भारवि माघ से पूर्ववर्ती हैं। अतः माघ ने उन तथ्यों की ओर विशेष ध्यान दिया जिस पर भारवि की दृष्टि नहीं गयी है। प्रायः जिन रसों का किरातार्जुनीय में वर्णन हुआ है, माघ ने उन्हीं रसों की विभावानुभाव, आलम्बनादि भेद से प्रकृष्ट व्यंजना की है।

---

१. किरातार्जुनीय, ७।०१

२. शिशुपालवध, १३।१६

३. वही, ५।७, १२।२२,२४

४. वही, १।५७, ६०,६२ १५।८५

# अलंकार

साहित्य में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अलंकार पद दो प्रकार से निष्पन्न होता है। प्रथम 'अलंकरोतीति अलंकारः' अर्थात् जो अलंकृत करे वह अलंकार है। द्वितीय 'अलंक्रियते अनेनेत्यलंकारः'—जिससे अलंकृत किया जाय। प्रथम व्युत्पत्ति की दृष्टि से अलंकार का कर्तृत्व ज्ञापित होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि काव्यगत सौन्दर्य अलंकारों पर ही निर्भर है। उनके अभाव में काव्य सुशोभित नहीं हो सकता। द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार साधन हैं। काव्य का सौन्दर्य उद्देश्य है और उसका एक साधक अलंकार भी है। इन दोनों के अन्तर को हम इस प्रकार कह सकते हैं—प्रथम के अनुसार अलंकार ही शोभाधायक हैं तथा द्वितीय के अनुसार वे भी शोभावृद्धि के एक अंग हैं।

काव्यशास्त्र के प्रमुख छः सम्प्रदायों में अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं। सभी आलंकारिकों ने अपने सम्प्रदाय के अनुसार काव्य का आत्मा भिन्न-भिन्न माना है। आचार्य भामह अलंकारों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि आभूषण रहित अंगना का सुन्दर भी मुख सुशोभित नहीं होता।[1] आचार्य कुन्तक ने भी अलंकारों की महत्ता को स्वीकार किया है।[2] आचार्य दण्डी के अलंकार विश्लेषण से उनकी भी अलंकार प्रधान प्रवृत्ति का पता चलता है। उनकी अलंकार परिभाषा[3] से स्पष्ट होता है कि काव्यगत शब्दार्थ को सुशोभित करने वाले या सौन्दर्याधायक धर्म अलंकार हैं। इस प्रकार अलंकारवादी आचार्यों की दृष्टि में अलंकार ही काव्य का प्राणतत्त्व है। आचार्य जयदेव का कथन है कि जो अलंकार रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को उष्णतारहित क्यों नहीं स्वीकार करता?[4] अलंकार-सर्वस्व के कर्त्ता रुय्यक के शब्दों में प्राचीन आलंकारिकों के मत से काव्य में अलंकार ही प्रमुख हैं।[5]

---

१. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्। काव्यालंकार—भामह पृ० १७

२. सालंकारस्य काव्यता। वक्रोक्ति जीवित, १।६

३. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान्प्रचक्षते।—काव्यादर्श, २।१

४. अंगीकरोतिः यः काव्यं शब्दार्थवनलंकृती।
   असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥—चन्द्रालोक, १।८

५. तदेवमलंकारा एवं काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतं। अलंकारसर्वस्व, पृ० ८

रसवादी आचार्यों ने काव्य में रस को काव्य का जीवातु माना है। वे अलंकारों को गौण अथवा काव्य के शोभाधायक अंग रूप में ही मानते हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता को असिद्ध कर दिया।[1]

जिन आचार्यों ने काव्य में अलंकारों की प्रधानता को मान्यता नहीं दी है उन्होंने भी अलंकारों को उपेक्षित नहीं किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अलंकार काव्य में आत्मतत्त्व का स्थान भले ही न प्राप्त कर सकें तथापि काव्य की दृष्टि से वे उपेक्षित नहीं किये जा सकते। इसलिये समन्वयवादी आचार्य भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में रस, गुण के साथ ही अलंकारों का भी उल्लेख किया है।[2]

अलंकारों के भेदों के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही अलंकारशास्त्रियों में वैमत्य रहा है। आनन्दवर्धन ने लिखा है कि सहस्रों मनीषियों द्वारा अलंकारों के भेदों का प्रकाशन हुआ है और निरन्तर हो रहा है।[3] इस तथ्य को आचार्य दण्डी भी स्वीकार करते हैं।[4]

स्थूलतः अलंकारशास्त्रियों ने अलंकारों का दो वर्गों में विभाजन किया है—(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के बन्ध भी अलंकारों के ही अन्तर्गत माने गये हैं जिन्हें चित्रालंकार के भेद के रूप में मान सकते हैं। ये चित्रालंकार भी शब्दालंकार में अन्तर्भूत माने जाते हैं। रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में चित्रालंकारों का निर्देश किया है।[5] इसका पूर्ण स्पष्टीकरण रुद्रट द्वारा की गयी काव्यालंकार की टीका से हो जाता है। उनके अनुसार जहाँ काव्य में चक्रादि रूपों का निबन्धन होता है, वे चित्रालंकार हैं।[6] यहाँ यह ध्यात-

---

१. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।—काव्यप्रकाश १।४

२. निर्दोषं गुणवत्काव्यमलकारैरलंकृतम्।—सरस्वतीकण्ठाभरण, १।२

३. सहस्रो हि महात्मभिरन्यैरलंकारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च।

—ध्वन्यालोक, १।१

४. काव्यादर्श २२ ५. काव्यालंकार, ५।१

६. यत्र काव्ये वस्तूनां चक्रादीनां रूपाणि संस्थानानि रच्यन्ते।
निबद्धयन्ते तच्चित्रसादृश्यादाश्चर्याद् वा चित्रं नामालंकारः॥

—काव्यालंकार, ५।१ पर टीका

व्य है कि आचार्यों ने चित्र शब्द के आश्चर्य तथा आलेख्य दोनों रूपों अथवा दोनों का एकीकृत रूप में सन्निबन्धन किया है। ऐसे अलंकारों को शब्दालंकारों के अन्तर्गत इसलिये माना जाता है क्योंकि इनकी चारुता वर्णक्रम अथवा वर्णसंयोजन पर निर्भर करती है। वर्णों को एक ऐसे क्रम में समायोजित किया जाता है जिससे कमल आदि कोई आलेख्य तैयार हो जाता है अथवा वर्णक्रम से एक असाधारणता उत्पन्न हो जाती है जो पाठक को आश्चर्यान्वित कर देती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने इसके आश्चर्यगत अर्थ से भिन्न आलेख्य अर्थ पर अधिक बल दिया है।[१] वाग्भटालंकार के कर्त्ता आचार्य वाग्भट ने आलेख्यगत तथा आश्चर्य कारित्व अर्थ को उपन्यस्त किया है।[२]

प्रस्तुत प्रसंग में महाकवि भारवि एवं माघ की अलंकार योजना को दृष्टिगत कर कविद्वय के एतद्विषयक साम्य एवं वैषम्य की मीमांसा अपेक्षित है। अतः शब्दालंकार तथा अर्थालंकार क्रम से किरात एवं शिशुपाल की अलंकार विवेचना निम्नांकित है—

**किरातार्जुनीय में यमक अलंकार**

समन्वयवादी आचार्य विश्वनाथ ने इस अलंकार के लक्षण निर्धारण में मम्मट का ही अनुसरण किया है। इन्होंने सार्थक और परस्पर भिन्न अर्थ वाले स्वर व्यंजन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक अलंकार बताया है।[३]

आचार्य रुय्यक के मत में स्वर-व्यंजन दोनों की पुनरावृत्ति को यमक कहा जाता है।[४] इन्होंने अर्थ वैषम्य की चर्चा नहीं की है।

महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय में यमक अलंकार का सुन्दर विधान किया है।

---

१. केवलं वाच्यवाचकवैचित्र्यमात्राश्रयेण उपनिबद्धालेख्यप्रख्यं यदाभासते तच्चित्रम्।—ध्वन्यालोक, ३।२ वृत्ति

२. वाग्भटालंकार, ४।७

३. सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥—साहित्यदर्पण, १०।१८

४. स्वरव्यंजनसमुदायपौनरुक्त्यं यमकम्।
—अलंकारसर्वस्व, पृ० ६७, सूत्र, ६

हिमालय पर्वत पर स्थित नदियों का सुन्दर चित्रण इस प्रकार है—

**दधतमाकरिभिः करिभिः धृतेः समवतारसमैरसमैस्तटेः ।**
**विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदी ॥**[1]

इस श्लोक में 'करिभिः' 'महिता' तथा 'जवना' पदों की आवृत्ति हुई है। यहाँ प्रथम 'जवना' निरर्थक है। प्रथम करिभिः निरर्थक है तथा द्वितीय करिभिः का अर्थ हाथी के द्वारा है। इसी प्रकार दोनों महिता निरर्थक हैं एवं प्रथम जवना निरर्थक तथा द्वितीय जवना का अर्थ वेगवती है। यहाँ क्रमिक आवृत्ति होने से यमकालंकार है।

सर्वोत्तम प्रभूत सम्पत्ति सम्पन्न हिमालय से इस श्लोक की भूमि बढ़कर है। इसका वर्णन कवि ने यमक के माध्यम से प्रस्तुत किया है—

**सुलभैः सदा नयवता यवता निधिगुह्यकाधिपरमैः परमैः ।**
**अमुना धनैः क्षितिभृतातिभृता समतीत्य भाति जगती जगती ॥**[2]

इस श्लोक में यवता, परमैः, जगती पदों की आवृत्ति हुई है। इसमें प्रथम यवता निरर्थक है और प्रथम परमैः भी निरर्थक है। द्वितीय परमैः का अर्थ उत्कृष्ट है। भृता, भृता दोनों ही पद निरर्थक हैं। प्रथम जगती का अर्थ पृथ्वी तथा द्वितीय का अर्थ स्वर्ग, पाताल लोक है। यहाँ आवृत्ति में वर्णों की स्थिति समान क्रम में होने से यमक है।

हिमालय पर्वत की विशेषताओं का वर्णन इसी अलंकार के द्वारा हुआ है जो अत्यन्त स्पृहणीय है—

**कुररीगणः कृतरवस्तरवः कुसुमानताः सकमलं कमलम् ।**
**इह सिन्धवश्च वरणावरणाः करिणां मुदे सनलदानलदाः ॥**[3]

इस श्लोक में तरवः, कमलं तथा नवदा पदों की आवृत्ति हुयी है जिसमें दोनों तरवः निरर्थक है प्रथम कमलं पद भी निरर्थक है तथा दूसरे कमलम् का अर्थ जल है। नलदा, नलदा दोनों ही पद निरर्थक हैं।

कलकलनिनाद करने वाली नदियों के सुरम्य चित्रण में यमकालंकार की योजना कितनी आह्लादकारी है—

**सनाकवनितं नितम्बरुचिरं चिरं सुनिनदैर्वृतममुम् ।**
**मता फणवतो वतो रसपरापरास्तवसुधा सुधाधिवसतिः ॥**[4]

---

१. किरातार्जुनीय, ५।७ २. वही, ५।२०
३. वही, ५।२५ ४. वही, ५।२७

हिमालय पर स्थित महावर से रंजित पुष्पों की शय्याओं का वर्णन यमक अलंकार के माध्यम से हुआ है। उक्त संदर्भ में रागा, पीड़ा तथा शंस पदों की आवृत्ति हुयी है जहाँ रागा शब्द निरर्थक है। एक पीड़ा पद का अर्थ शिखर तथा द्वितीय पीड़ा निरर्थक है। शंस पद भी निरर्थक हैं।[1]

निर्मल जलपूर्ण मानसरोवर को धारण करने वाले हिमालय-चित्रण में यमक अलंकार की छटा द्रष्टव्य है—

**विकचवारिरुहं दधतं सरः सकलहंसगणं शुचि मानसम्।**
**शिवमगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहं सगणं शुचिमानसम्॥**[2]

इस पद्य में सकलहंसगणं तथा शुचिमानसम् पदों की आवृत्ति हुयी है। इसमें प्रथम सकलहंसगणं का अर्थ कलहंसगणों से युक्त है तथा द्वितीय निरर्थक है। प्रथम शुचिमानसम् का अर्थ पवित्र मानसरोवर है तथा द्वितीय का अर्थ अविद्याओं से रहित है।

विभिन्न वाहनों के अभाव वर्णन में प्रयुक्त समुद्गक अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है—

**स्यन्दना नो चतुरगाः सुरगाः सुरेभा वाविपत्तयः।**
**स्यन्दना नो च तुरगाः सुरगाः सुरेभा वा विपत्तयः॥**[3]

इस श्लोक के उत्तरार्ध के सम्पूर्ण पद पूर्वार्द्ध की भाँति हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द में एक-एक पद दो बार प्रयुक्त हुये हैं। इसमें प्रथम स्यन्दनाः का अर्थ वेगवान् तथा द्वितीय चस्यन्दनाः का अर्थ रथ है। प्रथम तुरगा का अर्थ अच्छी चाल वाले हैं तथा द्वितीय तुरगाः निरर्थक है। इसी प्रकार प्रथम सुरेभा का अर्थ सुन्दर बृंहण वाले तथा द्वितीय सुरेभा का अर्थ ऐरावत है। प्रथम विपत्तयः पद निरर्थक है तथा दूसरे का अर्थ विशिष्ट पैदल सिपाही है।

भगवान् के सदृश अक्षय हिमालय की महत्ता के चित्रण करने में यमक अलंकार का प्रयोग कितना स्पृहणीय है—

१. दिव्यस्त्रीणां सचरणलाक्षारागा रागायाते निपतितपुष्पापीडाः।
पीडाभाजः कुसुमचिताः साशंसं शंसन्त्यस्मिन्सुरतविशेषं शय्या॥
—किरातार्जुनीय, ५।२३

२. वही, ५।१३     ३. वही, १५।१६

**इह दुरधिगमैः किंचिदेवागमैः सततमसुतरं वर्णयन्त्यन्तरम् ।**
**अमुमति विपिनं वेद दिग्व्यापिनं पुरुषमिव परं पद्मयोनिः परम् ॥**[1]

इस श्लोक में परम पद की दो बार आवृत्ति हुयी है जिसमें प्रथम का अर्थ परम पुरुष भगवान् है तथा द्वितीय का केवल या मात्र है। इस प्रकार आवृत्ति से यमक अलंकार है।

**शिशुपालवध में यमक अलंकार**

माघ ने भी शिशुपालवध में विभिन्न स्थलों में यमक अलंकार के के माध्यम से बहुक्षेत्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है।

कमलश्रेणियों के अधीन तथा चंचल भ्रमरों वाले एवं वृक्ष श्रेणियों से धूप को दूर करते हुये रेवतक की पर्वतीय सुषमा के मनोरम चित्रांकन को अलंकृत बनाने वाले यमक की छटा अवलोकनीय है—

**राजीवराजीवशलोलभृङ्गं मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम् ।**
**कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥**[2]

इस श्लोक में मुष्णन्तमुष्णंत, कान्तालकान्ता तथा रक्षोभिरक्षोभि शब्दों की आवृत्ति हुयी है। इसमें पूर्वार्थ के मुष्णन्तं का अर्थ हरण करते हुये तथा द्वितीय मुष्णंत निरर्थक है।

ऊपर से अति नम्र होते हुये मेघों द्वारा जलवर्षण कर वन को अत्यन्त आर्द्र करने के चित्रण में यमक का चित्रण द्रष्टव्य है—

**यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहैः समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः ।**
**वनं बबाधे विषपावकोत्था विपन्नगानामविपन्नगानाम् ॥**[3]

प्रस्तुत पद्य में समुन्नमद्भिः तथा विपन्नगानाम् शब्दों की आवृत्ति की गयी है जिसमें प्रथम समुन्नमद्भिः पद का अर्थ जल-प्रवाह से आर्द्र है तथा द्वितीय पद समुन्नमद्भिः का अर्थ ऊपर से झुके हुये हैं। प्रथम विपन्नगानाम् निरर्थक है तथा द्वितीय का अर्थ सर्पयुक्त वृक्ष है।

रैवतक पर्वत पर जलाशय में प्रवेश किये हुये तथा विकचारविन्द से सानन्द रमण करने वाले तीस वर्षीय हाथी के बच्चे के वर्णन में 'यमक' का मनोरम चित्र दृष्टिगत होता है—

---

१. किरातार्जुनीय, ५।१८
२. शिशुपालवध, ४।९ ३. वही, ४।१५

**कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः।**
**प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैं ॥[1]**

इस श्लोक में 'योषिता' मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः तथा योषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः' शब्दों की आवृत्ति हुयी है। यहाँ योषिता मुदा रमन्ते तथा योषितामुदारमन्ते दोनों पद निरर्थक हैं। प्रथम कलभा विकस्वरैः पद निरर्थक है तथा द्वितीय 'कलभाविकस्वरैः' पद का अर्थ मधुर एवं उद्दीपक स्वर है। आवृत्ति समान क्रम से हुयी है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

इच्छानुकूल प्रसन्नतापूर्वक आहार-विहार करने वाले हाथी के बच्चों का सुन्दर वर्णन किया गया है जिसमें 'यमक' का सुन्दर रूप द्रष्टव्य है—

**इह मुहुर्मुदितैः कलभैं रवः**
**प्रतिदिशं क्रियते कलभैंरवः।**
**स्फुरति चानुवनं चमरीचयः**
**कनकरत्नभुवां च मरीचयः ॥[2]**

उक्त श्लोक में कलभै रवः तथा चमरीचयः पदों की आवृत्ति हुयी है। जिसमें प्रथम कलभै रवः पद निरर्थक है तथा द्वितीय कलभैरवः का अर्थ मधुर और भयंकर है। प्रथम चमरीचयः का अर्थ चमरी गायों का झुण्ड है तथा द्वितीय चमरीचयः निरर्थक है।

प्रियतमा के समान मनोहर दारुक की वाणी सुनने के अनन्तर सघन वनराजि रूप वस्त्र को धारण करने वाले रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण रुकना चाहते हैं, इस प्रसंग में यमक का सुन्दर सन्निवेश हुआ है—

**इत्थं गिरः प्रियतमा इव सो व्यलीकाः शुश्राव सूततनयस्य तदाव्यलीकाः।**
**रन्तुं निरन्तरमियेष ततो वसाने तासां गिरौ च वनराजिपटं वसाने ॥[3]**

इस श्लोक में वसाने पद की दो बार आवृत्ति हुई है जिसमें प्रथम वसाने निरर्थक है तथा द्वितीय वसाने का अर्थ आच्छादित है।

सुगन्धयुक्त निःश्वास तथा नवीन अमृत सदृश मधुर अधरोष्ठ का वर्णन भी यमक से कैसा चित्ताकर्षक बन गया है—

**सुरभिनिश्वसिते दधतस्तृषं नवसुधामधुरे च तवाधरे।**
**अलमलेरिव गन्धरसावमू मम न सौमनसो मनसो मुदे ॥[4]**

---

१. शिशुपालवध, ४।३३
२. वही, ४।६०
३. वही, ५।१
४. वही, ६।१२

इस श्लोक में मनसो शब्द की आवृत्ति हुई है। इसमें प्रथम मनसो निरर्थक है तथा द्वितीय का अर्थ अन्तःकरण है। समान क्रम से आवृत्ति के कारण यमक अलंकार स्पष्ट है।

श्रावण के महीने में आकाश में गज-समूह के समान उन्नत एवं नवीन मेघों को देखकर कामिनियों के मन में रति-भाव की जागृति का 'यमक' द्वारा सरस चित्रांकन किया गया है—

**गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।**
**अभिससार न वल्लभमंगना न चकमे च कमेकरसं रहः ॥[1]**

इस श्लोक में चकमे पद की आवृत्ति हुई है जिसमें प्रथम चकमे का अर्थ कामना करना है तथा द्वितीय चकमे पद निरर्थक है। आवृत्ति समान क्रम से होने के कारण यमक अलंकार है।

सुवर्ण के सदृश पिंगल पुष्पों की पंखुड़ियों वाले तथा परागसहित केसरों से मनोहर विजयसार के फूलों का वर्णन यमक द्वारा इस प्रकार किया गया है—

**कनकभंगपिशंगदलैर्दधे सरजसारुणकेशरचारुभिः।**
**विप्रविमानितमानवतीरुषां निरसनैरसनैरवृथार्थता ॥[2]**

इस श्लोक में रसनै पद की आवृत्ति हुई है जिसमें दोनों ही पद निरर्थक हैं।

अव्यक्त स्वर से मधुर गुन्जार करती हुई नायिका का सुन्दर चित्रण करने में 'यमक' की मनोरम योजना की गयी है—

**अधिजानु बाहुमुपधाय नमत्करपल्लवार्पितकपोलतलम्।**
**उदकण्ठि कण्ठपरिवर्तिकलस्वरशून्यगानपरयापरया ॥[3]**

इस श्लोक में परया पद की आवृत्ति हुई है जिसमें प्रथम परया का अर्थ आसक्ति है तथा द्वितीय पद निरर्थक है।

किरात एवं शिशुपाल दोनों काव्यों में यमक अलंकार का हृदयावर्जक सन्निबन्धन हुआ है। किरात के चौथे तथा पाँचवें सर्ग में यमकों के माध्यम से ऋतुओं तथा हिमालय का वर्णन प्राप्त होता है तथा शिशुपाल में भी चौथे एवं छठें सर्ग में रैवतक एवं षड्ऋतु वर्णन मिलता है।

१. शिशुपालवध, ६।२६ २. वही, ६।४७ ३. वही, ९।५४

दोनों ही महाकाव्यों में प्रायः समान रूप से इस अलंकार की योजना हुई है। यमक अलंकार के प्रयोग में किरात एवं शिशुपाल में पर्याप्त साम्य है। वैषम्य केवल यह है कि भारवि की अपेक्षा माघ ने संख्या की दृष्टि से अधिक यमकालंकारों का विधान किया है। भारवि ने लगभग दस यमक तथा माघ ने लगभग तीस प्रयोग किया है।

**श्लेष**

श्लिष्ट शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों के विधान को श्लेषालंकार कहते हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार अर्थ का भेद होने से भिन्न-भिन्न अर्थों के बोधक, समानाकार भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब परस्पर मिल जाते हैं तो वहाँ श्लेष नामक शब्दालंकार होता है।[1]

इस अलंकार के शब्द-श्लेष एवं अर्थ-श्लेष अभिधान से दो भेद होते हैं। इनमें शब्द पर आधारित श्लेष को 'शब्द-श्लेष' तथा अर्थ पर आधारित श्लेष को 'अर्थ-श्लेष' कहा जाता है। शब्द श्लेष में शब्द परिवृत्ति-सहिष्णुता अथवा शब्द परिवर्तन के सहन की क्षमता नहीं होती है अर्थात् यदि श्लिष्ट शब्द के स्थान पर उसका पर्यायभूत शब्द स्थापित कर दिया जाय तो वह सौन्दर्यहीन हो जायेगा किन्तु अर्थश्लेष में ऐसा नहीं होता। उसमें श्लिष्ट शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाचो रखने पर श्लेष के चमत्कार अथवा शोभा में कोई व्यवधान नहीं पड़ता क्योंकि उसमें शब्द परिवर्तन सह्य होता है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार—श्लिष्ट पदों के द्वारा एकाधिक अर्थो का कथन 'श्लेष' अलंकार होता है।[2]

## किरातार्जुनीय में श्लेषालंकार

महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय में विभिन्न अलंकारों के मनोरम प्रयोगों के साथ 'श्लेष' का भी सुन्दर संयोजन किया है। किरात में प्रायः 'श्लेष' अपने शुद्ध रूप में प्रयुक्त न होकर किसी अर्थालंकार का उपकारक

१. वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपदमाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोसावक्षरादिरष्टधा॥

—काव्यप्रकाश, ९।८४

२. श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ···· ।—साहित्यदर्पण, १०।११

बनकर आया है। कवि का यह अलंकार प्रयोग वैशिष्ट्य है कि वह अनेक अलंकारों की पृथग् योजना के साथ शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का एक साथ भी कुशलतापूर्वक निर्वाह करता है।

किरातपति शंकर और अर्जुन के मध्य होने वाले युद्ध में शिवजी अर्जुन के बाणों को छिन्न-भिन्न कर देते हैं, इस प्रसंग में शुद्ध श्लेष का सुन्दर चित्रण हुआ है—

**भिदमन्तः पदवीनिरोधं विध्वंसनं चाविदितप्रयोगः।**
**नेताऽरिलोकेषु करोति यद्यत्तच्चाकारास्य शरेषु शंभुः ॥**[1]

इस श्लोक में 'अन्तविभेदं' 'पदवीनिरोधं' तथा अविदितप्रयोगः के दो अर्थ हैं। अन्तर्विभेदं का शत्रु समूह के सम्बन्ध में भेद नीति तथा व्यूह आदि का भेदन रूप अर्थ है, पदवीनिरोधं का अर्थ यातायात मार्ग का अवरोध एवं आसार-प्रसार प्रतिबन्ध है। अविदितप्रयोगः का तात्पर्य अपरिचित उपाय प्रयोग तथा शंकर के पक्ष में उनके बाण मोक्षणादि से अज्ञात। इस प्रकार यहाँ दो अर्थ होने से 'श्लेष' है।

शिशुपालवध की अपेक्षा किरातार्जुनीय में श्लेष के प्रसंगों की स्वल्पता है। भारवि ने यत्र तत्र यथाप्रसंग 'श्लेष' को उपन्यस्त किया है जो अपनी शाब्दी क्रीडा से वर्ण्य वस्तु को चित्रित करने में अत्यन्त सफल हैं।

किरात में श्लेषानुप्राणितोपमा का सुन्दर चित्र अवलोकनीय है जो अत्यन्त सिद्ध है—

**कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।**
**तवाभिधानाद् व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥**[2]

किरात के पन्द्रहवें सर्ग के निम्नांकित श्लोक में पद भंग श्लेष है। अर्जुन हिमालय, ऐरावत एवं शेषनाग के समान समरांगण में शोभा को प्राप्त करते हैं—

**जगतीशरणे युक्तो हरिकान्तः सुधासितः।**
**दानवर्षी कृताशंसो नागराज इवाबभौ ॥**[3]

इस श्लोक में 'नागराज' पद श्लिष्ट है। इसका एक अर्थ ऐरावत तथा दूसरा अर्थ शेषनाग है एवं नागराज पद को भंग (न अगराज)

---

१. किरातार्जुनीय, १७।२७ २. वहीं, १।२४ ३. वही, १५।४५

करने से 'अगराज' का अर्थ शैलों के राजा हिमालय हो जाता है। तीनों ही अर्थ उपयुक्त हैं।

### शिशुपालवध में श्लेषालंकार

माघ काव्य में श्लेषालंकार के उत्कृष्ट कोटि के उदाहरण प्राप्त होते हैं। नारद जी के आगमन पर उनकी प्रशंसा करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

**कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।**
**सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ॥[१]**

यहाँ 'सुपात्र' शब्द का अर्थ सुन्दर पात्र एवं सुयोग्य पुत्र होने से श्लेषालंकार है।

नारद द्वारा रावण के औद्धत्य वर्णन में श्लेष की छटा द्रष्टव्य है—

**विभिन्नशंखः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।**
**निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥[२]**

इस श्लोक में शंख, मद तथा मानस के अलग-अलग अर्थ हैं। शंख-कम्बु, शंख नामक निधि, मद-हाथी के पक्ष में मदजल तथा रावण के पक्ष में अभिमान, मानस अर्थात् मानसरोवर एवं मन या चित्त। इस प्रकार एक ही पद के पृथक्-पृथक् अर्थ होने से यहाँ 'श्लेष' है।

माघ ने अर्थ-श्लेष का भी सुन्दर चित्रण किया है। चन्द्रमा रावण के घर में नर्मसाचिव्य करता है—

**कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।**
**विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥[३]**

इस पद्य में नर्मसचिव एवं चन्द्रमा के कार्यों में समानता होने से 'श्लेष' है। सम्पूर्ण कलाओं से युक्त चन्द्रमा और नर्मसचिव दोनों के कार्यों का वर्णन करने के कारण दो अर्थ हो जाने से श्लेषालंकार अवलोकनीय हो गया है।

समुद्र तट की रमणीय, चित्ताकर्षक शोभा के चित्रण में श्लेष की मनोरम योजना हुयी है—

**लक्ष्मीभृतोऽम्भोधितटाधिवासान् द्रुमानसौ नीरदनीलभासः।**
**लतावधूसम्प्रयुजोऽधिवेलं बहूकृतान् स्वानिव पश्यति स्म ॥[४]**

---

१. शिशुपालवध, १।२८
२. वही, १।५५
३. वही, १।५९
४. वही, ३।७१

इस पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द श्लिष्ट है। 'लक्ष्मी' शब्द का प्रथम अर्थ शोभा तथा द्वितीय अर्थ विष्णुपत्नी है। 'शोभा' और 'श्री' दोनों ही प्राकरणिक हैं अतः यहाँ श्लेषालंकार हो गया है।

भारवि ने भी शाब्दी क्रीडा के अधिक श्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस दृष्टि से माघ में साम्य है। शिशुपालवध में अपनी अप्रतिम शोभा से इन्द्रपुरी को भी परास्त करने वाली द्वारकापुरी के चित्रांकन में प्रयुक्त श्लेष की शाब्दी क्रीडा सुन्दर बन पड़ी है—

**निषेव्यमाणेन शिवैर्मरुद्भिरध्यास्यमाना हरिणा चिराद ।**
**उद्रश्मिरत्नांकुरधाम्नि सिन्धावाह्वास्त मेरावमरावतीं या ॥[1]**

इस श्लोक में 'शिवैर्मरुद्भिः' तथा 'हरिणा' पदों में श्लेष है जिसमें 'शिवैर्मरुद्भिः' का एक अर्थ शीतल, मन्द सुगन्धित पवन के द्वारा एवं दूसरा अर्थ रुद्रों तथा देवों से है। 'हरिणा' शब्द का प्रथम अर्थ भगवान् कृष्ण तथा द्वितीय अर्थ इन्द्र है।

शिशुपालवध में श्लेष के पदे-पदे अनेक चित्र प्राप्त होते हैं। रैवतक पर्वत पर सेना के विश्राम करने हेतु हाथियों के बाँधने के प्रसंग में श्लेष का प्रयोग हुआ है जहाँ 'नाग' शब्द के हाथी और सर्प दो अर्थ हैं।[2]

महाकवि भारवि की भाँति महाकवि माघ ने भी विभिन्न प्रकार से 'श्लेष' का संयोजन किया है। इस क्षेत्र में माघ भारवि से आगे निकल गये हैं। किरातार्जुनीय में चित्रित अर्थत्रयवाची श्लोक के समान शिशुपालवध में भी एक श्लोक में इन्द्र तथा सूर्य से उपमित श्रीकृष्ण का वर्णन किया गया है—

**सदामदबलप्रायः समुद्धृतरसो बभौ ।**
**प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः ॥[3]**

इस श्लोक में 'सदामदबलप्रायः' 'समुद्धृतरसो' और 'हरिः' पदों में 'श्लेष' है। द्वितीय 'हरि' पद का अर्थ इन्द्र तथा सूर्य है। दोनों अर्थ प्राकरणिक हैं। 'सदामदबलप्रायः' तथा 'समुद्धृतरसो' पद कृष्ण, इन्द्र और सूर्य तीनों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अनेकार्थक है। इस प्रकार के श्लेष चित्रांकन में दोनों कवियों में पर्याप्त साम्य है।

१. शिशुपालवध, ३।६२
२. वही, ५।४५ ३. वही, १९।११६

शिशुपाल में शुद्ध श्लेष के पदे-पदे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का श्लेषमय वर्णन अत्यन्त कमनीय है—

**हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिनं द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षतं प्रिया।**
**सत्यानुरक्तं नरकस्य जिष्णवो गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः ॥**[1]

इस श्लोक में 'चक्र' 'द्विजेन्द्रकान्त तथा 'सत्यानुरक्त' पदों में अर्थ-विविधता होने से 'श्लेष' है। चक्र का अर्थ हस्तरेखा एवं सुदर्शन चक्र, द्विजेन्द्रकान्त ब्राह्मण तथा चन्द्रमा, सत्यानुरक्त—सत्य में अनुरक्त तथा प्रिया सत्यभामा में अनुरक्त अर्थ हैं।

अन्यत्र द्वारकापुरी के वर्णन में माघ ने श्लेष का सुन्दर चित्र खींचा है जो अत्यन्त रमणीय बन पड़ा है—

**यस्यामजिह्मा महतीमपंकाः सीमानमत्यायतयोऽत्यजन्तः।**
**जनैरजातस्खलनैर्न जातु द्वयेऽप्यमुच्यन्त विनीतमार्गाः ॥**[2]

उक्त पद में 'अजिह्म', 'अपंकाः' 'सीमानमत्यायत' 'स्खलनैः' पदों के दो-दो अर्थ हैं—'अजिह्म - सीधा, निष्कपट, अपंकाः पंकरहित एवं दोष-रहित, सीमानमत्यायत बड़ी सीमाओं तथा मर्यादाओं एवं कुलाचार, स्खलनैः—स्खलित नहीं होने वाले पक्षान्तर में विरुद्धाचरण नहीं करने वाले अर्थ हैं। यहाँ अर्थश्लेष है।

**अनुप्रास**

आचार्य मम्मट ने वर्णसाम्य को अनुप्रास माना है।[3] उन्हीं का अनुसरण करते हुये आचार्य विश्वनाथ ने स्वर वैषम्य होने पर भी शब्दों (व्यंजनों) के साम्य में अनुप्रास स्वीकार किया है।[4]

## किरातार्जुनीय में अनुप्रास अलंकार

किरात में अनुप्रास अलंकार का अत्यल्प प्रयोग हुआ है। भारवि ने अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों का प्रयोग कम किया है जिनमें अनुप्रास का स्थान और भी स्वल्प है।

किरातार्जुनीय का प्रथम श्लोक अनुप्रासालंकार से ही मण्डित है जो अत्यन्त कमनीय एवं श्लाघ्य है। शत्रुगत वृत्तान्त का परिज्ञान कर

---

१. शिशुपालवध, १२।३ २. वही, ३।५७

३. वर्णसाम्यमनुप्रासः।—काव्यप्रकाश ९।७९

४. अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येपि स्वरस्य यत्।—साहित्यदर्पण १०।३

वनेचर धर्मराज युधिष्ठिर के पास द्वैतवन में आता है ।[1] इस श्लोक के 'वने वनेचरः' में वने पद की एकाधिक आवृत्ति से वृत्यानुप्रास है । यहाँ स्वर एवं व्यंजन दोनों का साम्य है । वेदव्यास द्वारा अर्जुन को योग-विधि का उपदेश करने के प्रसंग में कवि ने अनुप्रास की सुन्दर योजना की है—

**योगं च तं योग्यतमाय तस्मै तपःप्रभावाद्वितताार सद्यः ।**[2]

इस श्लोकार्ध में 'त' वर्ण की अनेकशः आवृत्ति हुयी है जिससे यह अनुप्रास के अन्तर्गत माननीय है ।

व्यास जी अर्जुन को यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत पर तपश्चर्यार्थ जाने का निर्देश करते हैं । वे कहते हैं कि अभीप्सित रम्य शिखर युक्त पर्वत पर यह यक्ष तुम्हें पहुँचा देगा—

**शिलोच्चयं चारुशिलोच्चयं तमेष क्षणान्नेष्यति गुह्यकस्त्वाम् ।**[3]

यहाँ 'शिलोच्चयं' पद की आवृत्ति हुयी है । शब्द और अर्थ दोनों की पुनरुक्ति में तात्पर्य मात्र के भेद से लाटानुप्रास होता है । अतः शिलोच्चयं से उच्च शिखर एवं चारु जुड़ जाने से रम्य शिखर अर्थ हो जाता है । इस प्रकार यहाँ लाटानुप्रास है ।

अन्यत्र श्लेष एवं उपमा से युक्त अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है—

**यथायथं ता सहिता नभश्चरैः प्रभाभिरुद्भासितशैलवीरुधः ।**
**वनं विशन्त्यो वनजायतेक्षणाः क्षणद्युतीनां दधुरेकरूपताम् ।।**[4]

अनेक वर्णों की स्वरूप एवं क्रमानुसार एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास होता है । इस श्लोक में यथायथं तथा 'ताः' और सहिता की आवृत्ति में साम्य होने से छेकानुप्रास है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किरात में अनुप्रास का स्वल्प किन्तु रमणीय चित्रांकन हुआ है ।

चित्रालंकारों के वर्णन में एकाक्षर, द्वयाक्षरादि[5] श्लोकों में भी अनु-प्रास का सुन्दर रूप लक्षित होता है—

---

१. किरातार्जुनीय, १।१ २. वही, ३।२६

३. वही, ३।२९ ४. वही, ८।२

५. स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललो लोलः शशीशशिशुशीः शशन् ।।—किरातार्जुनीय, १५।५

**न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।**
**नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥**[1]

## शिशुपालवध में अनुप्रास अलंकार

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में अनुप्रास अलंकार का अत्यन्त चारु चित्रांकन किया है।

अतीन्द्रिय ज्ञान के निधि नारद जी अपने पीछे आते हुये देवताओं को वापस कर स्वर्गसदृश भगवान् कृष्ण के घर पहुँचते हैं—

**निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नमः सदः ।**
**समासदत्सादितदैत्यसंपदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः ॥**[2]

प्रस्तुत श्लोक में 'नतीनती' द्विव्यंजनात्मक पद की असकृद् आवृत्ति के कारण यहाँ 'छेकानुप्रास' है।

रैवतक पर्वत के चित्रण में कवि का वृत्यनुप्रास अवलोकनीय है—

**फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्काशानवं धाम पतंगकान्तेः ।**
**शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम् ॥**[3]

इस श्लोक में 'शा' व्यंजन की स्वरूपतः एक बार आवृत्ति तथा 'क्रान्ति' 'क्रान्त' की एक बार आवृत्ति हुई है अतः यह वृत्यनुप्रास है। इस सर्ग के अन्तिम श्लोक में भी वृत्यानुप्रास है।[4]

वसन्त ऋतु के चित्रांकन में महाकवि माघ ने अनुप्रास की रमणीय छटा का दिग्दर्शन कराया है। जो अत्यन्त स्पृहणीय है—

**मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।**
**मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥**[5]

यहाँ पर 'म' वर्ण की अनेकशः आवृत्ति होने से अनुप्रासालंकार है। माघ अलङ्कारों के यथोचित संयोजन में अत्यन्त पटु हैं। माघ ने भी भारवि की तरह चित्रालंकारों के निबन्धन में अनुप्रास का प्रयोग किया है।

## उपमालंकार

अर्थालंकारों में उपमा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदि आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित चार अलंकारों में उपमा का स्थान अन्यतम है। राजानक रुय्यक ने अपने अलंकारसर्वस्व नामक ग्रन्थ में

१. किरातार्जुनीय, १५।१४ २. शिशुपालवध, १।११
३. वही, ४।१६ ४. वही, ४।६८ ५. वही, ६।२०

उपमा को अलंकारों का बीजभूत कहकर इसके महत्त्व का गान किया है ।[1] उपमालंकार में चार तत्त्व होते हैं—उपमेय, उपमान, साधारण धर्म एवं वाचक शब्द । यह सादृश्यमूलक अलंकारों की श्रेणी में परिगणित होता है । इस अलंकार में सादृश्य उपमेय एवं उपमान के मध्य स्थापित किया जाता है ।

भरत, भामह, वामन तथा मम्मट के अनुसार संक्षेप में उपमा की इस प्रकार परिभाषा दी जा सकती है—दो भिन्न वस्तुओं में, विरोध पर ध्यान न देकर यत्किंचित साम्य प्रदर्शित करना 'उपमा' है ।

प्रस्तुत प्रसंग में किरात एवं शिशुपाल में वर्णित उपमालंकारों का उल्लेख कर उनमें साम्य एवं वैषम्य का निर्धारण करना अभिप्रेत है ।

## किरातार्जुनीय में उपमालंकार

महाकवि भारवि ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों के चित्रण में अधिक सफलता प्राप्त की है । किरात काव्य का अनुशीलन करने से विदित होता है कि उनके काव्य में ८० से अधिक बार उपमा का प्रयोग हुआ है जो अत्यन्त आह्लादकर एवं प्रभावकारी है ।

किरातार्जुनीय महाकाव्य में भावात्मक जगत् की सूक्ष्मता को मर्मस्पर्शी एवं हृदयावर्जक बनाने के लिये यथार्थ जगत् के अनेक उपमानों का आदान किया गया है जिनसे हृदय में त्वरित चित्र-सा खींच जाता है जो भावात्मक रूप में चिरस्थायी हो जाता है । द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर के मनोभावों को उद्दीप्त करने के लिए जिन उपमानों का आश्रय लेती है वे अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं प्रभावी हैं—

इन्द्रतुल्य आपके पूर्वजों ने इस रत्नप्रसविनी धरा का निरन्तर उपभोग किया है जिसे आप इतनी सरलता से हाथ धो बैठे हैं जैसे कोई मदस्रावी हाथी सुमनोग्रथित माला को ध्वस्त कर देता है—

**आखण्डमाखण्डलतुल्यधामभिश्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः ।**
**त्वयाऽऽत्महस्तेन मही मदच्युता मतंगजेन स्रगिवापवर्जिता ॥**[2]

यहाँ शक्तिमान् युधिष्ठिर की तुलना मतवाले गजराज से तथा वसुन्धरा को पुष्पमाल्य की भाँति उपमित किया है । इससे गजराज और

---

१. उपमेवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालंकारबीजभूतेति प्रथमं निर्दिष्टा ।
—अलंकारसर्वस्व, पृ० २६

२. किरातार्जुनीय, १।२९

युधिष्ठिर तथा वसुन्धरा और पुष्पमाल्य में लिंग साम्य भी है।[1] राजोचित गुणों से युक्त कौन कुलीन क्षत्रिय राज्यश्री को मनोरमा प्रियतमा की भाँति अपहरण करने देगा तथा आपका क्रोध, शुष्क शमी वृक्ष को जला देने वाली अग्नि के सदृश आपको क्यों नहीं उत्तेजित करता।[2] आदि उपमायें पात्रों के मनोगत अभिप्राय को अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त कर देती हैं।

अर्जुन तपश्चर्यार्थ यक्ष निर्दिष्ट मार्ग से हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं। प्रस्थानानन्तर जनप्रिय अर्जुन कृषकादिकों से समन्वित पृथ्वी के पास उसी प्रकार पहुँचते हैं जैसे कोई नायक प्राप्तयौवना प्रियतमा के निकट जाता है। शरद्भूमि पर कलहंस वैसे ही कूंज रहे हैं जैसे नायिका की मेखला (करधनी) झणझणायमान हो रही हो और उसके परिपक्व धान्य की पाण्डुता नायिका के गौरवर्ण के सदृश दिखायी दे रही है—

**ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहितपाण्डुतागुणाम्।**
**उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादितयौवनां भुवम्॥**[3]

अग्नि की चिनगारियों के समान प्रकाशमान मन्त्रविद्या ने महर्षि व्यास के मुख से निकलकर अर्जुन के मुख का वैसे ही आश्रय ग्रहण किया जिस प्रकार दिन के आरम्भ में सूर्य विम्ब से निर्गत दीप्ति विकसित कमलों का आश्रय ग्रहण करती है।[4] यहाँ कवि ने महर्षि व्यास के मुख को सूर्य विम्ब के सदृश व अर्जुन के मुख को विकसित कमल तथा मन्त्र विद्या को रवि-दीप्ति एवं अग्नि की चिनगारी के सदृश चित्रित किया है। जिस प्रकार अन्धकार पुंजीभूत होकर कृष्णपक्ष की रात्रि के पास पहुँच जाता है उसी प्रकार अर्जुन के विरह से उत्पन्न शोक अन्य भाइयों को छोड़कर द्रौपदी के पास पहुंच गया।[5] प्रस्थानकाल में अर्जुन को देखने को लालायित द्रौपदी के अश्रुपूर्ण नेत्रों की उपमा हिमकण से युक्त कमल से दी गयी है। ये उपमायें[6] अत्यन्त भावानुकूल एवं प्रकृतिसंगत हैं।

जिस प्रकार वायु आदि से सुरक्षित और सुव्यवस्थित दीपक का प्रकाश अन्धकार में स्थित वस्तु को प्रदर्शित कराने में समर्थ होता है

१. किरातार्जुनीय, १।३१
२. वही, १।३२
३. वही, ४।१
४. वही, ३।२५
५. वही, ३।३५
६. वही, ३।३६, ४५

उसी प्रकार जब विवेकशील पुरुष कर्त्तव्याकर्त्तव्य के सम्बन्ध में सन्देह-ग्रस्त हो जाता है उस समय सम्यक् अभ्यस्त एवं विशुद्ध शास्त्रज्ञान उसके कर्त्तव्यमार्ग का निर्देश करता है—

**मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम् ।**
**सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् ॥**[१]

## शिशुपालवध में उपमालंकार

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में विभिन्न अलंकारों के साथ ही उपमालंकार का अत्यन्त आह्लादकारी चित्रण किया है। यदि उपमा में उन्हें कालिदास के पश्चात् स्थान प्रदान किया जाय तो अनुचित न होगा। उनकी उपमाओं में सूक्ष्मता एवं नवीनता के साथ-साथ पाण्डित्यपूर्णता है जो विभिन्न शास्त्रों एवं अन्तर्कथाओं पर आधारित है।

नारद तथा बलराम की तुलना में प्रयुक्त उपमा अत्यन्त स्पृहणीय है—स्वयं शुभ्रवर्ण नारद पीली मूँज की मेखला तथा अंजन के समान काले मृगचर्म को पहने हुये उन बलराम के समान प्रतीत हो रहे हैं जो सुवर्ण निर्मित करधनी से नीली धोती को बाँधे हुये हैं तथा स्वयं स्वच्छ या शुभ्र वर्ण के हैं।[२] मन्त्रणा गृह में कार्यद्वयाकुल श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम उच्च स्वर्णमय आसन पर विराजमान ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे तीन सिंहों से अधिष्ठित त्रिकूट-शिखर।[३]

महाकवि की उपमा कभी-कभी अत्यल्प शब्दों में अतिशय स्वाभाविक बन पड़ी है। कायर मनुष्य उस निस्सार तृण के समान हैं जो स्वयं झुक जाते हैं।[४]

माघ की प्राकृतिक उपमायें भी कम सटीक नहीं बन पड़ी हैं।

रात्रि-प्रस्थान तथा प्रभात आगमन का कवि ने अत्यन्त भावपूर्ण चित्रांकन किया है—

अरुण पंकज श्रेणी ही जिसके हस्त-पाद हैं, श्याम भ्रमरावली जिसकी कज्जल रेखा है, जो नीलकमल सदृश नेत्रों वाली है, ऐसी उषा वेला अचिरजाता किशोरी के समान पक्षियों का कलरव करती हुयी रात्रि के पीछे-पीछे दौड़ रही है।[५]

---

१. किरातार्जुनीय, २।३३

२. शिशुपालवध, १।६ ३. वही, २।५

४. वही, २।५० ५. वही, ११।४०

प्रमदाओं के अंगों में स्वभावतः विद्यमान किन्तु अप्रकाशित विलास को मदिरा मद ने इस प्रकार प्रकट कर दिया जैसे धातुओं में अन्तर्हित किन्तु अव्यक्त अर्थ को उपसर्ग साथ होकर प्रकट कर देता है ।[1]

युधिष्ठिर के यज्ञ में समागत भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य समान तेज वाले दृढ़ और घने पंख के समान बाहुओं वाले राजाओं ने इस प्रकार एक दूसरे का आलिंगन किया जिस प्रकार वज्र से पंख काटने से पूर्व पर्वतों ने पर्वतों का आश्लेष किया ।[2]

शिशुपालवध में अन्तर्कथाओं से सम्बद्ध उपमाओं का यह वैशिष्ट्य है कि वे मात्र कथाओं का संयोजन करने के लिये ही नहीं प्रयुक्त हैं अपितु उनकी गतार्थता भी है । शिशुपाल में ऐसी उपमाओं की बहुलता है । कोई क्रुद्ध हाथी युद्धस्थल में विशाल सेना के मध्य प्रवेशकर उस प्रकार भटकने लगता है जिस प्रकार मार्कण्डेय मुनि आदि विष्णु के उदर में पहुंचकर भटक रहे थे ।[3]

बाह्य सृष्टि का सर्जन करने से पूर्व ब्रह्मा, विष्णु भगवान् के उदर में प्रविष्ट हुये थे । इस पूर्व पुराण प्रसिद्ध कथा को ओर संकेत कर उपमित किया गया है ।

महाकवि माघ उपमा के चित्रांकन में कविकुलगुरु कालिदास के अत्यन्त निकट हैं । माघ की उपमाओं में कल्पना का आधिक्य है जबकि कालिदास की उपमाओं में अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविकता है ।

यद्यपि भारवि एवं माघ दोनों ही महाकवियों ने उपमा अलंकार की मनोरम योजना की है किन्तु भारवि की अपेक्षा माघ इस अलंकार की योजना में अधिक सिद्धहस्त हैं । शिशुपाल में अधिकतर उपमायें पौराणिक अन्तर्कथाओं को उपमान के रूप में उपन्यस्त कर वर्णित हैं जबकि किरात में केवल एक या दो ही ऐसी उपमायें मिलती हैं । माघ की उपमाओं में व्याकरण, राजनीति आदि का पाण्डित्य है जबकि भारवि ने इस अलंकार के प्रयोग में कोई नियोजित आयास नहीं किया है । माघ ने प्रायः प्राकृतिक, शास्त्रीय, लौकिक एवं अन्तर्कथाओं से सम्बद्ध विभिन्न प्रकार की उपमायें प्रयुक्त की हैं ।

---

१. शिशुपालवध, १०।१५ २. वही, १३।१५

३. व्याप्तं लोकैर्दुःखलभ्यापसारं संरम्भित्वादेत्य धीरो महीपः ।
सेनामध्यं गाहते वारणः स्म ब्रह्मेव प्रागादिदेवोदरान्तः ॥—वही, १८।४०

## रूपकालंकार

अलंकार जगत् में रूपक प्राचीनतम अलंकार है। 'रूपक' का उल्लेख आचार्य भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक ने किया है। इस अलंकार के मूल में सादृश्य की प्रधानता होती है। आचार्य दण्डी के अनुसार रूपक सादृश्य निमित्तक अलंकार है।[1] यह उपमा से भिन्न है। जब तक उपमेय और उपमान में भिन्नता की प्रतीति होती रहती है, तब तक उपमा है और जब दोनों (उपमेय और उपमान) में अभेद का आरोप हो अथवा दोनों के गुणों में एकत्व का भाव हो, वहाँ रूपक अलंकार होता है।

समन्वयवादी आचार्य मम्मट ने 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'[2] कहकर उपमान एवं उपमेय में अभेदारोप को रूपक बताया है।

भारवि ने सम्पूर्ण महाकाव्य में लगभग पन्द्रह रूपकों का प्रयोग किया है। शरदृतु का वर्णन करने में कवि ने कितना सटीक रूपक उपन्यस्त किया है—वर्षाऋतु रूप पति के चले जाने पर दिशा रूपी स्त्री विद्युल्लता रूप सुवर्ण सूत्र निर्मित आभूषणों से रहित होकर जलहीन मेघ रूप म्लान स्तनों से युक्त शोभायमान हो रही है—

**विपाण्डुभिर्म्लानितया पयोधरैश्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः।**
**इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये न दिग्वधूनां कृशता न राजते॥**[3]

यहाँ कवि ने वर्षाऋतु को पति, दिशाओं को स्त्री, मेघ को स्तन तथा विद्युत् को सुवर्णभूषण माना है।

मरीचिमाली सहस्रांशु सूर्य ने अतिशय तृषार्त होकर किरण रूप अंजलियों से मकरन्द रूप मद्य का पान किया है जिससे वह अरुण शरीर होकर पृथ्वी पर लुठ रहा है।[4]

युवतियों के अधरों में पल्लवों का आरोप, मुख में मद्यपात्र का आरोपण आदि भारवि की रूपक योजना के जीवन्त प्रमाण हैं।[5]

प्रायः भारवि ने प्रकृति के उपादानों को अपनी रूपक योजना का विषय बनाया है। उन्होंने जो उपादानारोपण या समाहार किया है वह वस्तुतः अत्यन्त हृदयावर्जक है।

---

१. उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।—काव्यादर्श, २।६६

२. काव्यप्रकाश

३. किरातार्जुनीय, ४।२४

४. वही, ९।३

५. वही, ९।५७

### शिशुपालवध में रूपकालंकार

महाकवि माघ ने यद्यपि अपने काव्य में रूपकों का प्रचुर प्रयोग नहीं किया है तथापि उनके द्वारा प्रयुक्त रूपकों के स्वल्प स्थल भी अत्यन्त सफल एवं सटीक बन पड़े हैं। मन्त्रणागृह में भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम तथा उद्धव लोकपीडक शिशुपाल के वधार्थ मन्त्रणा कर रहे हैं—

संसार के उपद्रवों की शान्ति के लिये एकत्र अत्यन्त देदीप्यमान मानवरूपी अग्नित्रय ( दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आवहनीयाग्नि) सभामण्डप रूप वेदी पर शोभित होते हैं।[1] यहाँ श्रीकृष्ण, बलराम एवं उद्धव में अग्नित्रय का आरोप किये जाने से रूपक स्पष्ट है।

कपोल प्रान्त को वृक्ष में रगड़ने से हाथी के मदजल से सौरभित वृक्ष की शाखा में बैठा हुआ बड़े-बड़े नीलम के टुकड़ों के समान सुन्दर, मनोहर भ्रमर समूह वृक्ष के कण्ठ में गले का हार बन गया।[2] यहाँ कवि ने भ्रमरावलि में बड़े-बड़े नीलम के टुकड़ों का आरोप किया है। इससे उपमेय स्वरूप भ्रमर तथा उपमान स्वरूप नीलम में तद्रूपता अथवा अभेद होने से रूपक स्पष्ट है। अन्धकार के वर्णन में प्रयुक्त माघ का उपमा कौशल द्रष्टव्य है—

**कलया तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम्।**
**क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनं गणाधिपतिमूर्तिरिति ॥**[3]

इसमें आकाश को भगवान् शिवजी के रूप में कल्पित किया गया है। चन्द्रमा की कला से विदीर्ण अन्धकार रूपी जटा वाले आकाश को लोगों ने क्षणमात्र के लिये शिवजी की मूर्ति समझा।

इस प्रकार महाकवि माघ ने रूपक अलंकार का यथोचित उपमानों के साथ साधर्म्य अभेद प्रदर्शित कर अपने चारु चित्रांकन से काव्य रत्न शिशुपालवध को सुशोभित किया है।

### अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास का अर्थ होता है—'अन्य अर्थ का न्यास या रखना।' इसके अन्तर्गत प्रस्तुत अर्थ अथवा कथ्य के समर्थन या पुष्टि के लिए अन्य अर्थ को समुपस्थित किया जाता है। इसके सामान्य एवं विशेष रूप से

१. जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ॥—शिशुपालवध, २।३

२. शिशुपालवध, ५।४६ ३. वही, ९।२७

दो भेद किये जा सकते हैं। इसे इन भेदों के आधार पर इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है--जहाँ सामान्य का विशेष द्वारा या विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उक्त स्थल पर ध्यातव्य है कि यदि सामान्य कथन की सामान्य कथन से तथा विशेष कथन की विशेष कथन से पुष्टि की जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास नहीं माना जायेगा। इसके अन्तर्गत सामान्य का विशेष से साधर्म्य द्वारा, वैधर्म्य द्वारा तथा विशेष का सामान्य से साधर्म्य द्वारा एवं वैधर्म्य द्वारा समर्थन किया जाता है।

वस्तुतः यह अलंकार कवियों के लोकानुभव एवं ज्ञान के निकष के रूप में माना जा सकता है। कोई कवि जितना ही अधिक व्युत्पन्न एवं प्रतिभावान् शास्त्राभ्यासी होगा वह उतना ही अधिक सुन्दर अर्थान्तरन्यास का समायोजन कर सकेगा।

आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों को आधार मानकर इस अलंकार को परिभाषित किया है और इसके चार भेदों को स्वीकार किया है।[1]

महाकवि भारवि के काव्य में अर्थान्तरन्यास के उपर्युक्त भेदों सहित प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार महाकवि कालिदास के काव्यों में उपमा के पदे-पदे सटीक उदाहरण प्राप्त होते हैं तथैव महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य में अर्थान्तरन्यास परिलक्षित होता है।

अर्थान्तरन्यास का प्रारम्भ भारवि काव्य के प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक से ही हो जाता है। युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन के राज्य वृत्तान्त को जानने के लिए नियुक्त वनेचर द्वैतवन में प्रणाम के पश्चात् समस्त शत्रु-वृत्तान्त युधिष्ठिर से कहने का निश्चय करता है क्योंकि शुभेच्छु जन व्यर्थ सुन्दर वाणी नहीं कहना चाहते जो मधुर होते हुए असत्य हो।[2]

---

१. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्सोऽर्थन्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥—काव्यप्रकाश, १०।१०९
साधर्म्येण वैधर्म्येण वा सामान्यं विशेषेण यत् समर्थ्यते विशेषो वा
सामान्येन सोऽर्थान्तरन्यासः।—वृत्ति वही

२. कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥
—किरातार्जुनीय, १।२

यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार स्पष्ट है। वनेचर के मन का व्यथित न होना विशेष बात है जिसका समर्थन 'नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' सामान्य कथन से किया गया है।

युधिष्ठिर द्रौपदी के सदन में प्रविष्ट होकर दुर्योधन के अपने प्रति कुटिल विचारों को उससे द्रौपदी से बताते हैं। इस पर द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्धार्थ उत्तेजित करती है जिसका प्रबल समर्थन भीम भी करते हैं। ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर धैर्यपूर्वक समझाते हैं—

बिना विवेचना किये एकाएक किसी कार्य को नहीं प्रारम्भ करना चाहिये। अविचारित कार्यारम्भ बड़ी-बड़ी विपत्तियों का कारण होता है। गुणों पर लुब्ध होने वाली सम्पत्तियाँ विवेकशील व्यक्ति का स्वयमेव वरण करती हैं।[1]

यह श्लोक साधर्म्यमूलक कार्य कारण एवं वैधर्म्यमूलक कार्य कारण दोनों का उदाहरण है। यहाँ सहसा विधान का अभाव कारण है तथा सम्पत्तियों का वरण रूप कार्य से साधर्म्य समर्थन है अतः साधर्म्यमूलक कार्य-कारण रूप अर्थान्तरन्यास है। उक्त श्लोक में ही सहसा विधान का अभाव अर्थात् विमृश्यकारित्व रूप कारण से अविचारित कार्यानुष्ठान आपत्तियों का स्थान होता है इस कार्य का वैधर्म्य से समर्थन होता है तब वैधर्म्यमूलक कार्य कारण रूप अर्थान्तरन्यास होता है।

भगवान् शंकर अर्जुन के धैर्य और साहस से जितना प्रसन्न होते हैं उतना तपश्चर्या से नहीं। क्योंकि तत्पुरुषों का पराक्रम गुण की राशियों की अपेक्षा अधिक साहाय्य प्रदान करता है।[2]

'भगवान् शंकर अर्जुन के तप से उतना प्रसन्न नहीं होते जितना पराक्रम से' यह विशेष कथन है जिसका सामान्य कथन सज्जनों का पराक्रम तपस्यादि गुणों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है, से साधर्म्य के आधार पर समर्थन होने के कारण सामान्य से विशेष का समर्थन रूप

१. किरातार्जुनीय, २।३०

२. तपसा तथा न मुदमस्य ययौ भगवान्यथा विपुलसत्वतया।
गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्वमुपकारि सताम्॥
—किरातार्जुनीय, १८।१४

अर्थान्तरन्यास है। इस प्रकार भारवि काव्य में अर्थान्तरन्यास के पदे-पदे विशिष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं।[1]

### शिशुपालवध में अर्थान्तरन्यास

भारवि की भाँति महाकवि माघ ने भी अर्थान्तरन्यास का सफल प्रयोग किया है। सफलता एवं संख्या दोनों दृष्टियों से भारवि माघ से आगे हैं तथापि माघ काव्य में प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास कम हृदयावर्जक नहीं हैं। वस्तुतः अर्थगौरव की सार्थकता अर्थान्तरन्यास पर ही निर्भर करती है। भारवि का अर्थगौरव तो प्रसिद्ध ही है साथ ही माघ भी गुणत्रय उपमा, अर्थगौरव, पदलालित्य सम्पन्न माने जाते हैं। माघ काव्य सूक्तियों से भरा पड़ा है। इन सूक्तियों में एक व्यावहारिकता अथवा स्वाभाविकता है जो कवि के लोकानुभव एवं मौलिक चिन्तन का स्पष्ट परिचायक है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' महाकाव्य में लगभग ९० अर्थान्तरन्यासों का प्रयोग किया है जो सटीक एवं प्रसंगोचित है। अर्थान्तरन्यास के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं—

रावण ने राम को मनुवंशोत्पन्न, मानवेतर, प्रभावयुक्त और अपना भावी विनाशकर्त्ता जानते हुये भी जानकीजी को नहीं छोड़ा क्योंकि मानी लोगों का सर्वदा एकमात्र अभिमान ही धन होता है।[2]

यहाँ 'राम को प्रभविष्णु जानते हुये भी जानकी को न छोड़ना' रूप कार्य का 'मानियों का अभिमान ही धन होता है' कारण से समर्थन होने से कारण कार्य समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

बलराम जी परामर्श देते हैं—जब तक एक भी शत्रु बना रहता है, तब तक सुख नहीं हो सकता है क्योंकि देवों के समक्ष ही राहु चन्द्रमा को पीड़ित करता है।[3]

यहाँ 'एक भी शत्रु के रहते सुख न होना' सामान्य बात है जिसका 'देवों के सामने राहु द्वारा चन्द्रमा का ग्रसना' रूप विशेष से समर्थन किया गया है, अतः विशेष से सामान्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

---

१. किरातार्जुनीय, ९।३२, १३।६१, १७।२३, ४०, १८।३

२. अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।
मुमोच जानन्नपि जानकी न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः॥
—शिशुपालवध, १।६७

३. वही, २।३५

सूर्य के दृष्टिगोचर होने से पहले ही अरुण ने समग्र अन्धकार को विनष्ट कर दिया क्योंकि दूसरों के पराभवकारी तेज को प्रसारित करने वाले का अग्रगमन शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ होता है।[1] यहाँ सामान्य से विशेष समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

महाकवि माघ प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति के धनी हैं। उन्होंने राजनीति, प्रकृति, युद्धादि वर्णन प्रसंगों में यथोचित सार्वजनीन आभाणकों का प्रयोग किया है।[2]

### उत्प्रेक्षालंकार

उत्प्रेक्षा शब्द उत्+प्र+ईक्षा के योग से सम्पन्न होता है जिसका अर्थ है बलपूर्वक देखना या विशिष्ट रूपेण उपमान का दर्शन—

**उत्कटा प्रकृष्टस्य उपमानस्य ईक्षा ज्ञानमुत्प्रेक्षा।**[3]

उत्प्रेक्षा की उपमा एवं रूपक से भिन्न स्थिति होती है जिसमें उपमेय एवं उपमान में सम्भावना या कल्पना की जाती है। यद्यपि उपमेय एवं उपमान स्पष्ट होते हैं किन्तु उपमान की उत्कृष्ट रूप में प्रतीति होती है। इस अलंकार का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य भामह ने किया।[4]

आचार्य मम्मट ने उत्प्रेक्षा के स्वरूप को पूर्वाचार्यों की अपेक्षा नवीनता के बजाय उसे सुव्यवस्थित कर दिया। उन्होंने प्रकृत की अप्रकृत के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहा है।[5]

महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय में शताधिक उत्प्रेक्षाओं का सफल प्रयोग किया है। भारवि की विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के मध्य प्रकृति चित्रण में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा अत्यन्त स्पृहणीय है—कमलिनी लता का हरावर्ण, पद्म पुष्प का अरुण वर्ण तथा पके हुये धान का पीला रंग—इन तीनों की छाया एक साथ जल में पड़ रही है जिससे वह (जल) वृत्रासुर शत्रु के धनुष की भाँति अनेक वर्ण का प्रतीत होते हुये मानों इन्द्रधनुष की छटा को धारण कर रहा है।[6]

---

१. शिशुपालवध, ११।२५

२. वही, २।१२,३८,८०, ५।१४, ११।३५,५७, २०।७४

३. उद्योत, पृ० ४५८,    ४. काव्यालंकार, २।९१

५. संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत्।—काव्यप्रकाश, १०।९२

६. मृणालिनीनामनुरंजितं त्विषा विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया।
पयः स्फुरच्छालिशिखापिशंगितं द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहिविद्विषः॥

—किरातार्जुनीय ४।२७

यहाँ विभिन्न वर्णों के सम्मेलन से जल में इन्द्रधनुष की उत्प्रेक्षा की गयी है। वस्तुतः यह जल में की गयी इन्द्र-धनुष की कल्पना अत्यन्त मौलिक है।

दार्शनिक क्षेत्र में भी कवि की उत्प्रेक्षाएँ अत्यन्त स्पृहणीय हैं—

हिमालय पर्वत के दुस्तर आभ्यन्तर तत्त्व का वर्णन पुराणों की सहायता से ही यत्किंचित् किया जा सकता है। दिगन्तव्यापी, इस हिमालय को जिसमें अनेक घने जंगल हैं, परमपुरुष ब्रह्मा के समान अज्ञेय है, केवल ब्रह्मा ही जानते हैं।[1] यहाँ हिमालय पर्वत में परमपुरुष की उत्प्रेक्षा की गयी है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

## शिशुपालवध में उत्प्रेक्षालंकार

महाकवि माघ उपमा की ही भाँति उत्प्रेक्षा में भी अत्यन्त पटु हैं। कवि को कल्पना के विस्तृत उच्चाकाश में उत्प्रेक्षा के द्वारा ही लम्बी उड़ान का अवसर मिलता है। अतः इस क्षेत्र में भी कवि-प्रौढता के मनोरम दृश्यों का दर्शन होता है। प्रकृति के अन्यतम उपादान प्रभात वर्णन में माघ की उत्प्रेक्षा अवलोकनीय है—

प्रातःकाल होते ही चन्द्रमा कान्तिहीन हो जाता है। इस पर कवि कल्पना करता है कि मानों पत्नीवत्सल चन्द्रमा शोकाभिभूत है क्योंकि प्रिय कुमुदिनियों ने आँखें बन्द कर लीं, रात्रि भी नष्ट हो गयी एवं सभी प्रिय तारायें भी विनष्ट हो गयीं।[2]

यहाँ चन्द्रमा में एक सामान्य प्रेमी की कल्पना से उत्प्रेक्षा में अत्यन्त आह्लादकता आ गयी है।

अष्टादश सर्ग में कवि ने युद्ध वर्णन में मनोरम उत्प्रेक्षाओं की योजना की है। ऊँची-ऊँची ध्वजाओं की पताकायें धूलियों को बहारने के लिये मृत्यु के शत्रुओं की भाँति प्रतीत हो रही थीं।[3]

---

१. किरातार्जुनीय, ५।१८

२. सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षममगदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः।
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नंगमिन्दु—
र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचैव ॥—शिशुपालवध, ११।२४

३. वही, १८।८

यहाँ पताकाओं में यम के बाहुओं की कल्पना से उत्प्रेक्षा स्पष्ट है। क्षीणकान्ति दीपक में गृह के नयन की कल्पना जो प्रेमियों के सुरतकौतुक को निर्निमेष देखते रहने से थका एवं उनींदा हो गया है।[१] आदि—,कवि की उत्प्रेक्षा के जीवन्त प्रमाण हैं।

## अतिशयोक्ति

यह सादृश्यमूलक अभेदप्रधान अलंकार है। इस अलंकार में वर्ण्य अथवा कथ्य को इतना बढ़ा चढ़ाकर कहा जाता है कि उपमेय की अपेक्षा उपमान अधिक चमत्कृत होने लगता है अथवा उपमान उपमेय को अपने में समाहित या निगलित कर लेता है।

आचार्य दण्डी के अनुसार जब लोक सीमा का अतिक्रमण कर प्रस्तुत पदार्थ के वर्णन की आकांक्षा हो, तो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।[२]

महाकवि भारवि ने अतिशयोक्ति का चारु-चित्रण लगभग पचीस श्लोकों में किया है।

इन्द्र तपोरत अर्जुन की समाधि भंग करने के लिये अप्सराओं की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—ब्रह्मा ने आप लोगों का सर्जन करने में संसार भर की कमनीयता को एकत्र किया है जैसे—चन्द्रमा, कमल आदि कमनीय स्थानों का सौन्दर्य-सार निष्कासित कर लिया है। यही कारण है कि लोग स्वर्ग की सर्वाधिक कामना करते हैं।[३]

यहाँ अप्सराओं का विप्रकीर्ण लावण्य से सम्बन्ध न होने पर भी उनके सम्बन्ध का वर्णन करने से सम्बन्धातिशयोक्ति है।

बारहवें सर्ग में अर्धरात्रि के समय अर्जुन अग्नि से भी अधिक प्रभासमान, धैर्य या गाम्भीर्य में समुद्र को भी पराभूत करते हुये एवं पर्वत से भी ऊंचे चित्रित किये गये हैं। इसमें अतिशयोक्ति (सम्बन्धातिशयोक्ति) स्पष्ट लक्षित होता है।[४]

---

१. शिशुपालवध, ११।१८

२. विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी।
असावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोत्तमा यथा ॥—काव्यादर्श, २।२४

३. बहुधा गतां जगति भूतसृजा कमनीयतां समभिहृत्य पुरा।
उपपादिता विदधता भवतीः सुरसद्मयानसुमुखी जनता ॥—किरातार्जुनीय, ६।४२

४. किरातार्जुनीय, १२।७

महाकवि भारवि की भाँति महाकवि माघ भी अतिशयोक्ति के प्रयोग में अत्यन्त कुशल हैं। देवर्षि नारद के आगमन पर कैटभारि भगवान् श्रीकृष्ण प्रलयकाल में जिनके उदर में चौदहों भुवन समा जाते हैं, उनके हृदय में नारद जी का आगमनजन्य हर्ष नहीं समा रहा था।[1]

रावण की लंकापुरी में ग्रीष्म, वर्षा, शरदादि षड्ऋतुयें अपने-अपने नियत समय का परित्याग कर एक साथ फल तथा फूल उत्पन्न करती हैं।[2] यहाँ ऋतुओं का अथवा प्रकृति का रावण से भयभीत होकर अनियमित होना सीमोल्लंघन है, अतः यहाँ अतिशयोक्ति है।

युद्ध स्थल में महावत के उद्दीप्त करने से पूर्व सेना के कोलाहल से हाथी के मद की नहरें बहने लगती हैं।[3] अठारहवें सर्ग में माघ ने युद्ध वर्णन प्रसंग में अतिशयोक्ति की झड़ी लगा दी है।[4]

## तुल्ययोगिता

तुल्ययोगिता का अर्थ है—समान की योगिता या सम्बन्ध अर्थात् जहाँ अनेक प्रस्तुतों (उपमेयों) या अनेक अप्रस्तुतों (उपमानों) की एकधर्मता हो, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।[5] इसके अन्तर्गत जहाँ उपमेय होते हैं वहाँ उपमेय ही रहते हैं तथा जहाँ उपमान होते हैं वहाँ उपमान ही रहते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार प्रकृतों या केवल अप्रकृतों का एक धर्म कथन ही तुल्ययोगिता है।[6]

आचार्य विश्वनाथ ने केवल प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों के एक धर्म से सम्बन्ध को तुल्ययोगिता बताया है।[7]

## किरात में तुल्ययोगिता

महाकवि भारवि के काव्य में तुल्ययोगिता के मात्र दो ही उदाहरण प्राप्त होते हैं। सुरयुवतियों के अपने-अपने प्रियतमों के साथ मद्यपान के वर्णन प्रसंग में—युवक गन्धर्वों ने मद्य और युवतियों के मुख में अनुरक्त होकर युवतियों के मुखों एवं कमल युक्त मदिराओं को पान करने की

---

१. शिशुपालवध, १।२३        २. वही, १।६६        ३. वही, १८।२६
४. वही, १८।२९, ३०, ४५, ४७, ४९, ६०, ६५, ७६
५. तुल्यधर्मेण योगो जातो तस्यामित्यन्वर्थनामा तुल्ययोगिता।—एकावली, पृ० २३९
६. नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।—काव्यप्रकाश, १०।१०४
७. साहित्यदर्पण, १०।४७

इच्छा व्यक्त की। युवतियों का मुख सुरभित था। युवकों ने पुनः पुनः अतृप्त भावेन उनका (मुखों का) आस्वादन किया तथापि वे स्वाद से वंचित प्रतीत हो रहे थे।[1]

यहाँ प्रस्तुत युवतियों का मुख और मदिरा में एक धर्मता होने से तुल्ययोगिता है।

जलनिधि समुद्र का जल, मनस्वियों का मन मर्यादोल्लंघन के भय से क्षुब्ध हो जाते हैं तथापि स्वच्छ हो रहते हैं।[2]

यहाँ उपमेय (प्रस्तुत) मनस्वियों का मन और उपमान (अप्रस्तुत) समुद्र के गुणों में एकधर्माभिसम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

महाकवि माघ ने भारवि को अपेक्षा अधिक तुल्ययोगिता अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके (माघ) काव्य में लगभग २४ तुल्ययोगिता अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

## भ्रान्तिमान्

भ्रान्तिमान् का अर्थ होता है भ्रमपूर्ण ज्ञान। अतिशय सादृश्य के कारण उपमान में उपमेय की निश्चयात्मक प्रतीति को भ्रान्तिमान् कहते हैं। प्रकृत (उपमेय) को देखकर उसमें अप्रकृत (उपमान) का भ्रम हो जाता है, यह सादृश्यजन्म होता है।[3]

आचार्य रुद्रट के अनुसार किसी वस्तु के समान अन्य वस्तु को देखकर उसमें उसका निश्चयात्मक भ्रम हो जाना भ्रान्तिमान् अलंकार है।[4]

महाकवि भारवि ने अपने किरातार्जुनीय महाकाव्य में भ्रान्तिमान् का लगभग १० श्लोकों में सुन्दर प्रयोग किया है।

इन्द्रकील पर्वत की चोटियों पर शब्दायमान झरने प्रवाहित हो रहे थे। उनकी प्रतिध्वनि से रथों की गड़गड़ाहट और बढ़ गयी थी जिससे

---

१. किरातार्जुनीय ९।५१

२. स्थित्यतिक्रान्तिभीरुणि स्वच्छान्याकुलितान्यपि।
तोयानि तोयराशीनां मनांसि च मनस्विनाम्॥ किरातार्जुनीय, ११।५४

३. भ्रान्तिश्चित्तधर्मः स विद्यते यस्मिन् भणितिप्रकारे स भ्रान्तिमान्।
अलंकारसर्वस्व, पृ० ६८

४. काव्यालंकार ८।८७

मयूरों को मेघ गर्जन का भ्रम हो रहा था और वे उत्कण्ठित होकर गर्दन उठाकर सुन रहे थे।[1]

यहाँ मयूरों को मेघों की गड़गड़ाहट सुनकर मेघ-गर्जन की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान अलंकार स्फुट है। सुरनारियों के नूपुरों की ध्वनि, करधनी की लड़ी की ध्वनि से मिश्रित होकर पहाड़ों की कन्दराओं से टकराती है जिससे वहाँ के सारसों को अपनी जाति के अन्य सारसों के बोलने का भ्रम हो जाता है।[2]

## शिशुपालवध में भ्रान्तिमान्

महाकवि माघ ने १० स्थानों पर भ्रान्तिमान् अलंकार का प्रयोग किया है जो अत्यन्त स्पृहणीय हैं।

भ्रमरों से भयभीत प्रियतमा से उसका प्रियतम कह रहा है–पुष्प-स्तबक भारावनत नवलता को अपने स्तनभार से जीतने वाली हे प्रिये! सौरभयुक्त कमलदलों को छोड़कर यह भ्रमरावलि तुम्हें श्रेष्ठ लता समझकर तुम्हारे सामने आ रही है।[3]

यहाँ उपमेय स्तनभार युक्त रमणी में उपमान नवलता का भ्रम होने से भ्रान्तिमान् है।

किसी रमणी ने रात्रि में अपने प्रियतम के श्वेत उत्तरीय को प्रातःकालिक किरणों के संसर्ग से कुसुम्भ वर्ण के मालूम पड़ने वाले दुपट्टे को अपना दुपट्टा समझकर धारण कर लिया है।[4]

इस प्रकार सूर्य की किरणों के संसर्ग से प्रियतम के उत्तरीय में प्रियतमा के दुपट्टे की भ्रान्ति उत्पन्न होने से भ्रान्तिमान् अलंकार हो गया है।

## सन्देहालंकार

संदेह सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान आरोपमूलक अर्थालंकार है। इस अलंकार के अन्तर्गत उपमेय में उपमान का सन्देह किया जाता है। यह सन्देह सादृश्य के आधार पर ही होता है। आचार्य वामन ने उपमान और उपमेय में संशय को सन्देहालंकार कहा है।[5]

---

१. किरातार्जुनीय ७।२२ २. वही, १०।४

३. इदमपास्य विरागि परागिणीरलिकदम्बकमम्बुरुहां ततीः।
स्तनभरेण जितस्तवकानमन्नवलते वलतेऽभिमुखं तव ॥–शिशुपालवध ६।११

४. वही, ११।५२

५. उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः।
ससन्देहं वचः स्तुत्यै ससन्देहं विदुर्बुधाः ॥ का० लं० सा० सं० ६।२

किरात में सन्देहालंकार का चित्रांकन बड़े मनोरम ढंग से किया गया है। तपश्चर्यार्थ हिमालय पर्वत की ओर जाते हुये अर्जुन विकसित कमलों से सुशोभित सरोवरों को देखते हैं जो कमल पराग से आच्छादित हैं। उन्हें देखकर अर्जुन को पृथ्वी पर खिले हुये गुलाब के पुष्प का भ्रम होता है किन्तु जब पाठीनों के अभिताडन से पुष्पपराग और फेन राशि हट जाती है तब अर्जुन का संशय विच्छिन्न हो जाता है।[१]

यहाँ विकसित कमलरूप उपमेय में सादृश्य के कारण स्थल के गुलाब रूप उपमान का सन्देह होने से सन्देहालंकार है।

किरात की भाँति शिशुपाल में भी सन्देहालंकारों की सुन्दर एवं आकर्षक योजना हुयी है—

दिन के व्यतीत हो जाने पर पंक के समान काले अन्धकार को देखकर सन्देह होता है कि यह अन्धकार समूह पर्वत की गुफाओं से निकला है अथवा बाहर से आकर गुफाओं का सेवन कर रहा था अथवा आकाश से पृथ्वी की ओर लटकता था या पृथ्वी तल से ऊपर उठ रहा था।[२]

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी सन्देहालंकार का प्रयोग हुआ है[३] जो भारवि से पर्याप्त साम्य रखता है।[४]

## निदर्शना

निदर्शना का अर्थ होता है—दृष्टान्त या उदाहरण। अर्थात् उदाहरण देना ही निदर्शना है।[५] दो वाक्यों में पारस्परिक संभव या असंभव सम्बन्ध होने पर भी उपमा के द्वारा उनमें सम्बन्ध की कल्पना करना निदर्शना अलंकार है। इसमें दो ऐसे वाक्य होते हैं जिनमें सम्बन्ध या तो सम्भव होता है या असम्भव। दो ऐसी बाते कही जाती हैं जिनमें संगति नहीं बैठती तथापि कवि अपनी प्रतिभा द्वारा उपमा के माध्यम से उन्हें परस्पर सुसम्बद्ध बना देता है। आचार्य मम्मट ने दो पदार्थों के असंभव सम्बन्ध में उपमा की परिकल्पना को निदर्शना कहा है।[६]

महाकवि भारवि के काव्य में निदर्शना के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं—यक्ष अर्जुन से कहता है—यह जो स्थलकमलों का वन दृष्टिगोचर

१. किरातार्जुनीय ४।५  २. शिशुपालवध ९।१९-२०
३. वही ८।२९  ४. किरातार्जुनीय ८।३५-३६
५. निदर्शनं दृष्टान्तकरणम्। काव्यप्रकाश, पृ० ४८०
६. अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमा परिकल्पकः।—काव्यप्रकाश, १०।९७

हो रहा है वहाँ से वात्याओं द्वारा उड़ाया हुआ कमल के पुष्पों का पराग आकाश में चतुर्दिक मण्डलाकार विस्तृत हो जाने पर स्वर्णच्छत्र की शोभा को धारण करता है।[1]

यहाँ आकाश में कमल के फूलों के फैले हुये पराग में सोने के छत्र की कल्पना कवि कल्पना की सुसम्बद्धता से निदर्शना का चमत्कार प्रदर्शित कर देती है। इसी से भारवि 'आतपत्रभारवि' की उपाधि से अलंकृत हैं।

अविचल और झुके हुये कन्धों वाले किरातराज, जिसके मुखमण्डल पर किसी प्रकार की विकृति नहीं है, में चन्द्रमा की प्रसन्नता रूपी शोभा की परिकल्पना कवि की अप्रतिम निदर्शना को झाँकी मानी जा सकती है।[2]

## शिशुपालवध में निदर्शना

महाकवि माघ द्वारा शिशुपालवध में चित्रित निदर्शना में रमणीयता के साथ-साथ सादृश्य सम्पन्नता भी विद्यमान है। रैवतक पर्वत का वर्णन करने में प्रयुक्त निदर्शना की रमणीयता अत्यन्त स्पृहणीय है—

लम्बी-लम्बी तथा रस्सी के समान किरणों वाले सूर्य के उदीयमान होने तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर यह पर्वत दोनों पार्श्वों में लटकते हुये दो घण्टाओं से युक्त गजेन्द्र की शोभा को धारण करता है।[3]

सहृदयों ने इस निदर्शना से प्रभावित होकर माघ को 'घण्टामाघ' की उपाधि से विभूषित किया है।

भारवि और माघ के निदर्शना के चित्रांकन ने प्रथम (भारवि) को 'आतपत्रभारवि' तथा दूसरे (माघ) को 'घण्टामाघ' की उपाधि से अलंकृत किया। सम्भवतः माघ के लिये भारवि का वह श्लोक ५।३९ अत्यधिक प्रभावशाली होने से प्रेरणा का आधार बना जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने भी निदर्शना अलंकार युक्त महनीय श्लोक की रचना कर ख्याति प्राप्त की।

द्वितीय सर्ग में बलरामजी अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं—जो व्यक्ति रोषपूर्ण शत्रु के साथ वैर करके उदासीन हो जाते हैं वे लोग उन लोगों के समान हैं जो सूखी घास के ढेर में जलती हुई अग्नि को डालकर हवा के रुख की ओर सोते हैं।[4]

---

१. उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्॥
—किरातार्जुनीय, ५।३९

२. किरातार्जुनीय १६।२१

३. शिशुपालवध, ४।२० ४. वही, २।४२

यहाँ शत्रु के प्रति वैर करके उदासीन होने और सूखी घास के ढेर में अग्नि छोड़कर सोने में कोई समानता नहीं है तथापि कल्पना से जो लाक्षणिक साम्य या सादृश्य लक्षित होता है, वह वस्तुतः मनोरम निदर्शना का संयोजन है।

भारवि ने जिस अलंकृत शैली की उद्भावना की उसे माघ ने पूरी गति प्रदान की। दोनों कवियों में अल्प कथानक को अलंकारों के माध्यम से अलंकृत करने की प्रवृत्ति में पर्याप्त समानता है। वैषम्य केवल इतना है कि भारवि पूर्णरूपेण अलंकारवादिता के पोषक नहीं हैं। अलंकारों के क्षेत्र में किरात में जो मापदण्ड निर्धारित किया गया, उसको चरमोत्कर्ष प्रदान करने का काम माघ ने किया।

माघ ने भारवि से अधिक चित्रबन्धों का प्रयोग किया है। दोनों के चित्रालंकारों में साम्य यह है कि भारवि ने पन्द्रहवें सर्ग में युद्धवर्णन प्रसंग में चित्रबन्धों का प्रयोग किया है तो माघ ने उन्नीसवें सर्ग के युद्ध विषयक प्रसंग में विविध चित्रबन्धों की योजना की है।

वस्तुतः माघ ने अलंकारों के विविध भेदों का प्रयासपूर्वक काव्यशास्त्रीय दृष्टि से संयोजन किया है। यही कारण हैं कि प्रायः माघ के सभी अलंकार भारवि से अधिक सटीक एवं चित्ताकर्षक बन पड़े हैं।

शब्दालंकारों की भाँति अर्थालंकारों के क्षेत्र में भी दोनों कवि ( भारवि और माघ ) एक दूसरे के पर्याप्त निकट हैं। इनके अन्तर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि विभिन्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों के प्रयोग में भारवि को सर्वाधिक सफलता अर्थान्तरन्यास में मिली है। भारवि के अलंकारों में बहुक्षेत्रीय व्यावहारिक अनुभव का समावेश है जबकि माघ में कल्पना एवं पौराणिक आख्यानों का बाहुल्य है। प्रायः भारवि एवं माघ दोनों ही कवियों ने समान रूप से सभी अलंकारों का अपने-अपने काव्य में समाहार किया है। अर्थालंकारों में अर्थान्तरन्यास ही ऐसा अलंकार है जो किरात से शिशुपाल में कम प्रयुक्त हुआ है। अन्य सभी अलंकार दोनों काव्यों में वर्णित हैं। इतना अवश्य है कि किरात की अपेक्षा शिशुपाल में अधिक अलंकारों को स्थान मिला है।

: ६ :

# भाषा

भाषा विचारों अथवा मनोगत भावों को अभिव्यक्त करने का साधन है। भाषा जितनी ही परिमार्जित एवं उदात्त होगी उतना ही अधिक सम्यक् रूप से भावावबोध हो सकेगा। यद्यपि विचारों के स्तर से भी भाषा प्रभावित होती है क्योंकि व्यावहारिक रूप में वीरोचित परि-स्थितियों में ओजः पूर्ण शब्द स्वभावतः निकलने लगते हैं। शान्त स्थिति में कोमल वर्णयुक्त वाणी प्रस्फुटित होती है। भाषा व्यक्ति के साहित्यिक पक्ष का परिचय देने के साथ ही व्यक्तित्व का भी गम्भीर अथवा उच्छृं-खल रूप प्रदर्शित करती है। वस्तुतः यह भाषा ही व्यक्ति के कर्तृत्व का बोध कराती है।

भाषा एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत वर्ण, शब्द, वाक्य एवं समग्र प्रबन्ध रूप ग्रहण किया जा सकता है। भाषा से शैली भी प्रभावित होती है। वर्णो शब्दों तथा वाक्यों का संयोजन ही भाषात्व का रूप ग्रहण करता है।

भाषा के स्वरूप का निर्धारण मुख्यतया साहित्य में होता है, चाहे वह हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी अथवा अन्य साहित्य हो। यह साहित्य के गद्य, पद्य तथा मिश्रित आदि सभी विधाओं में चारुत्व उत्पन्न कर सहृदय का हृदय आवर्जित करती है।

प्रस्तुत प्रसंग में महाकवि भारवि एवं माघ की भाषा की विशेषताओं को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है।

दोनों ही महाकवि परम्परा से भिन्न एक नवीन शैली जिसे अलंकृत अथवा विचित्र नाम से जाना जाता है, के समर्थक हैं। अतः दोनों ही कवियों ने स्वतः ही अपने काव्य के स्वरूप की ओर संकेत किया है। काव्यसरणि परिवर्तित होने से इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि भाषा के प्रयोग में अपने पूर्ववर्ती कवियों से किंचिद् पार्थक्य अवश्य होगा। इन दोनों कवियों के पूर्व की भाषा वाल्मीकि और कालिदास की है।

जब कोई कवि परम्परा से भिन्न काव्य को मोड़ देता है तो वह अपने काव्यगत मत का अवश्य उल्लेख करता है और फिर ऐसे कवियों

का काव्यगत स्वरूप संकेतित करना तो अधिक स्वाभाविक है जिन्हें अपने पाण्डित्य पर भी गर्व हो।

महाकवि भारवि शब्दों का प्रयोग यह विचार कर करते हैं कि जिनसे अर्थावबोध में कोई व्यवधान न हो। वे अर्थगौरव को विशेष महत्त्व देते हैं। उनका दृष्टिकोण ऐसे शब्दों को काव्य में सन्निविष्ट करना कदापि नहीं है जिनसे मात्र शब्द वैचित्र्य ही दृष्टिगत हो। कवि की काव्य-धारणा का ज्ञान मुख्यरूपेण दो स्थलों पर होता है। एक तो प्रथम सर्ग में वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को शत्रु वृत्तान्त निवेदन करने में तथा दूसरे किरातपति के अनुचर द्वारा शूकरवध के पश्चात् अर्जुन के बाण ग्रहण करने के अवसर पर दोनों के वार्ता प्रसंग से ज्ञात होता है।

प्रथम स्थल पर वनेचर के वचनों में भारवि की शब्द सम्पत्ति का इस प्रकार पता चलता है।

शत्रु उन्मूलन करने के इच्छुक युधिष्ठिर से आज्ञा प्राप्त कर वनेचर सरलता और उदारता से पूर्ण, प्रमाणयुक्त अर्थवत्तापूरित वाणी में निवेदन करता है—

**"स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामितिवाचमाददे।[1]"**

कवि की मान्यता है कि जिस प्रकार मलिनता से रहित दर्पण में स्वच्छतापूर्वक रूप प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार सप्रमाण, सुन्दर शब्द योजनायुक्त प्रिय और हितकर वाग् वैभव से सुबुद्धि का स्पष्टीकरण हो जाता है।[2]

भारवि पुनरुक्ति दोष को स्वीकृति नहीं प्रदान करते। द्रौपदी की बाणी की सराहना करते हुये युधिष्ठिर कहते हैं कि तुमने सुबन्त, तिङन्त पदों से पदविन्यास में भी न्यूनता नहीं की है और न ही तुम्हारी वाणी में पुनरुक्ति दोष है, उसमें परस्पर शब्दों की आकांक्षा भी बनी है।[3]

भारवि के सिद्धान्तानुसार अपेक्षित गुणों से युक्त वाणी को सौभाग्यशाली ही प्राप्त करते हैं। वे विद्वान् होते हैं जो निश्चित अर्थों वाली वाणी का प्रयोग करते हैं।

१. किरातार्जुनीय, १।३

२. अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मंगलास्पदे।
विमला तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते ॥–किरातार्जुनीय २।२६

३. स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥—वही, २।२७

अर्जुन किरातपति शंकर द्वारा प्रेषित अनुचर की स्वपक्ष को पुष्ट करने वाली वाणी को सुनकर उसकी सराहना करते हुये जो कहते हैं, उससे भाषा के सम्बन्ध में कवि के वर्णों की स्फुटता, श्रुतिमधुरता और अर्थगुरुता रूप विचार स्पष्ट होते हैं।[1]

भारवि इस बात पर भी बल देते हैं कि वाणी अथवा काव्य का साफल्य और चारुत्व तभी है जब पूर्वापर प्रसंग का ध्यान रखकर काव्य-सर्जन हो अन्यथा इसके विपरीत देवगुरु बृहस्पति भी हास्यास्पद होते हैं।[2]

महाकवि भारवि के उपर्युक्त भाषा एवं काव्य विषयक विवेचन से स्पष्ट तथ्यों के आधार पर उनकी विशेषता के रूप में हम मुख्यतया निम्नांकित विचार निर्धारित कर सकते हैं—

(१) भाषा की उदात्तता।
(२) शब्दसौन्दर्य।
(३) अर्थगौरव।
(४) दीर्घ समासों का अभाव।
(५) कोमल कान्त पदावली।
(६) अक्लिष्ट शब्द प्रयोग।
(७) प्रतिपाद्य की स्पष्टता।

वस्तुतः भारवि ने जिन काव्य एवं भाषा तत्त्वों की ओर संकेत किया है, उनका अपने प्रबन्ध में अनुपालन भी किया है, किन्तु कहीं-कहीं वे अपने सिद्धान्त से हटकर कलाबाजी करते हुये भी दृष्टिगोचर होते हैं।

महाकवि भारवि की ही भाँति महाकवि माघ ने भी अपने काव्य-विषयक सिद्धान्त को अपनी अक्षय कृति शिशुपालवध में दर्शाया है। वस्तुतः माघ की दृष्टि विद्वत्ता प्रकट करने की है। वे विद्वत्ता के साथ काव्य में प्रविष्ट होने का दावा करते हैं। वे काव्य-विषयक सिद्धान्त के निरूपण में लक्षणपरक दृष्टि रखते हैं। यद्यपि माघ भारवि से प्रभावित हैं क्योंकि उनके कुछ विचार भारवि से मिलते हैं किन्तु सम्पूर्ण नहीं।

---

१. विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती॥
——किरातार्जुनीय, १४।३

२. किरातार्जुनीय, ११।४३

भारवि और माघ के काव्य सम्बन्धी विचारों में साम्य और वैषम्य दोनों है। माघ भी भारवि की भाँति अर्थगौरव को मान्यता देते हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण के लिए "यावदर्थपदां"[1] शब्द का प्रयोग करके यह स्वीकार किया है कि वाणी की विशेषता परिमित अर्थ—पद वाला वचन कहना होना चाहिये। इसके द्वारा भारवि के "विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे" की प्रकारान्तर से स्वीकृति है।[2] द्वितीय सर्ग में बलराम श्रीकृष्ण के मन्तव्य का समर्थन करते हुये कहते हैं कि कृष्णोक्त वाणी अल्पाक्षर होने पर भी अर्थगौरव युक्त है जिसका भाष्य स्वरूप विस्तार मेरे वचनों में होगा।[3] इसे भारवि की द्रौपदी के वचनों की प्रशंसा में भीम द्वारा कहे गये "बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणाः" से साम्य स्थापित किया जा सकता है। जहाँ शक्तिवर्धक, रोगनाशक औषधि की स्वल्पाक्षरा किन्तु सारगर्भित अर्थपूर्ण द्रौपदी की वाणी से तुलना की गयी है।[4]

शिशुपालवध में पदे-पदे अर्थगुरुता का समर्थन दिखायी पड़ता है। बलराम के बाद श्रीकृष्ण के संकेत से उद्धव जी ने बृहस्पति के समान अर्थगौरव से परिपूर्ण तथा नीतिशास्त्र के अनुकूल वाणी में बोलना प्रारम्भ किया।[5]

जिस प्रकार भारवि को सत्ययुक्त सौन्दर्य ही मान्य है उसी प्रकार माघ भी यह मानते हैं कि सौन्दर्य की उक्ति सत्य के अनुसन्धान से रहित नहीं होनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसादनार्थ देवताओं द्वारा सुमेरु से लाकर उसके शिखरों से बढ़ाये गये जिस रैवतक पर्वत की ऊँचाई तथा सुन्दरता रूपी गुण के प्रगल्भ वक्ता कवियों को असत्य नहीं बना रहा है।[6] अर्थात् रैवतक पर्वत के सौन्दर्य एवं वैभव का कवियों ने

---

१. शिशुपालवध, २।१३ २. किरातार्जुनीय, १।३

३. संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः। —शिशुपालवध, २।२४ पूर्वार्द्ध

४. अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृष्यते गुणः।

—किरातार्जुनीय, २।४, उत्तरार्द्ध

५. भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम् ॥—शिशुपालवध, २।६९

६. मुदे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीय यस्योपचितस्य शृंगैः।
भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामुच्छाय सौन्दर्यगुणामृषोद्याः ॥

—शिशुपालवध, ४।१०

सत्य ही वर्णन किया है। इस तथ्य को कवि ने विभिन्न स्थलों पर स्वीकार किया है।[1]

महाकवि माघ ने यद्यपि अपने पूर्ववर्ती कवि भारवि के सिद्धान्तों को स्वीकार किया है किन्तु विभिन्न स्थलों पर उनकी (माघ) अपनी मौलिक मान्यतायें हैं जिसके कारण वे भारवि से वैषम्य भी रखते हैं।

भारवि शब्द वैचित्र्य को सिद्धान्ततः मान्यता नहीं देते किन्तु महाकवि माघ शब्द और अर्थ दोनों का महत्त्व स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ कवि शब्द तथा अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है।[2] इसके द्वारा माघ ने शब्द—क्रीड़ा को भी स्थान दिया है। सम्भवतः इसी धारणा के कारण माघ ने सेना को विभिन्न बन्धों (रचना-विशेष) सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, मुरजादि ) से युक्त शिशुपालवध महाकाव्य के समान गोमूत्रिकादि व्यूहों के कारण दुष्प्रवेश्य कहा है।[3]

इस प्रकार भारवि और माघ दोनों के भाषा-सम्बन्धी विचारों में जो मूल वैषम्य है वह यह कि भारवि जहाँ मात्र अर्थगौरव के पोषक हैं, वहीं माघ शब्द और अर्थ दोनों के समर्थक हैं।

माघ की भाषा-विषयक विशेषताओं को निम्नांकित रूप में माना जा सकता है—

(१) शब्दों की क्लिष्टता
(२) दीर्घ समास युक्त शब्दों का प्रयोग
(३) नवीन तथा अप्रचलित शब्दों का सन्निवेश।
(४) कोमलकान्त पदावली
(५) अर्थगौरव।

दोनों महाकवियों की भाषा सम्बन्धी विचार धाराओं के साम्य एवं वैषम्य को ध्यान में रखते हुये उनके द्वारा अपने-अपने महाकाव्यों में भाषागत प्रयोगों का विवेचन इस प्रकार है।

**(१) अर्थगौरव की दृष्टि से—**

साहित्य जगत् में भारवि का अर्थगौरव अत्यन्त प्रसिद्ध है। भारवि के अर्थगौरव में दो बातें सन्निविष्ट हैं—एक तो स्वल्प शब्दों में विपुल-भावों

१. शिशुपालवध, ५।१ १४।४
२. शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।—शिशुपालवध, २।८६ उत्तरार्द्ध
३. वही, १९।४१

का समाहार तथा दूसरी श्लोकगत उदात्तभाव या असाधारण कथन। उन्होंने परम्परा से भिन्न उत्कृष्ट तथ्यों का अपने काव्य में समाहार किया है। कहीं-कहीं उन्होंने एक साधारण अनुष्टुप् छन्द के माध्यम से बहुत ऊँची बात कह दी है। भारवि का अर्थगौरव माघ से इस अर्थ में श्रेष्ठ है कि उन्होंने ( भारवि ने ) स्वल्प शब्दों में उच्च बातें कह दी हैं। महाकवि भारवि का अर्थगौरव उसी प्रकार महत्त्वशाली है जिस प्रकार कालिदास की उपमा। भारवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा निरन्तर नूतन अर्थ को उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ है। भारवि के अनुसार अर्थ गरिमा के लिये प्रसंग निबन्धन और शब्दों का अवसरोचित प्रयोग आवश्यक है।[1] यदि प्रसंग का निर्वाह न किया गया तो वाणी चाहे देवगुरु बृहस्पति को ही क्यों न हो, श्लाघ्य नहीं हो सकती। इसके साथ ही शब्दों का उचित स्थानों पर प्रयोग भी अर्थगौरव को परिपुष्ट करने वाला प्रधान कारण होता है। कवि की उद्घोषणा है कि विद्वान् पुरुषों में वे ही सभ्यतम होते हैं जो अपने हृद्गत भावों को वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं तथा उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं जो अत्यन्त कुशलतापूर्वक निगूढार्थ को व्यक्त करने में समर्थ होते हैं परन्तु गम्भीर अर्थ का बोध कराने वाले पुरुष तो दुर्लभ ही होते हैं।[2]

कवि का काव्यगतध्येय सुस्पष्ट पदयोजना, अर्थगाम्भीर्य, पुनरुक्ति का अभाव तथा पदों की अर्थ प्रकाशन में क्षमता है। वस्तुतः अर्थगाम्भीर्य तभी सम्भव भी है जब पद सुस्पष्ट एवं परस्पर साकांक्ष हों। भारवि की मान्यता है कि जो स्थान व्याकरण में निर्दुष्ट व्युत्पत्ति का है वही काव्य में शब्द संस्कार का है। संस्कार तथा प्रयोग शिक्षा के द्वारा ही शब्द प्रयोगार्ह होकर यथार्थभाव को प्रकट करने में सक्षम होते हैं—

**संस्कारवत्त्वाद्रमयत्सु चेतः प्रयोगशिक्षागुणभूषणेषु।**
**जयं यथार्थेषु शरेषु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशशंसे ॥**[3]

यदि भारवि के उन स्थलों पर विचार किया जाय जहाँ मुख्यतया कथावस्तु प्रतिपादित हुयी है तो उनके पात्रों की प्रयुक्त भाषा में वस्तुतः शब्द गाम्भीर्य एवं बुद्धि का चमत्कार परिलक्षित होता है जो गल्प नहीं

१. अविज्ञातप्रबन्धस्य वचो वाचस्पतेरपि।
व्रजत्यफलतामेव नयद्रुह इवेहितम् ॥—किरातार्जुनीय, ११।४३

२. वही, १४।४,
३. वही, १७।६

अपितु एक चिन्तक के लिये प्रचुर सामग्री है। कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ कवि काव्यशास्त्रीय नियमों का निर्वाह सप्रयास करता है, वहाँ अवश्य ही भाषा का गम्भीर्य सम्यक्तया नहीं प्रकट हो सका है जैसे जलविहार, गन्धर्वों और अप्सराओं का गमन।

भारवि की अर्थगुरुता के कारण ही उनके काव्य में अनेक सूक्तियाँ पायी जाती हैं। सूक्तियों के द्वारा भी कवि के अर्थगाम्भीर्य का अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि कोई उक्ति तभी प्रभावकारी हो सकेगी जब वह अल्पाक्षरों में असन्दिग्ध लोकानुभव सम्मत विनिश्चितार्थ का सम्पादन करने में समर्थ हो।

महाभारत के उच्छृंखल भीम भी किरात में संयत वाणी बोलते हैं। यद्यपि उनमें भी शत्रु के प्रति क्रोध एवं वीरोचित दर्प है तथापि उनके शब्द न तो शब्दार्थ की मर्यादा का उल्लंघन करते है और न पदज्येष्ठता का ही। वे (भीम) द्रौपदी की युद्धार्थ प्रेरक वाणी का समर्थन करते हुये कहते हैं—मानिनी द्रौपदी द्वारा सुन्दर अभिप्राय पूर्ण वचन आपको अच्छे लगने चाहिए, आप गुणग्राही हैं। विद्वान् लोग गुणों पर विचार करते हैं। वे वक्ता की पात्रता पर (स्त्री अथवा पुरुष) विचार नहीं करते।[1] यहाँ पर कवि ने 'गुणगृह्या वचने विपश्चितः' के द्वारा द्रौपदी के वचनों की मान्यता तथा युधिष्ठिर की गुणवत्ता दोनों को ही कितने अल्पाक्षरों में प्रबन्ध निर्वाह के साथ व्यंजना करायी है। युधिष्ठिर भीम को समझाते हुये उनसे (भीम से) जो कहते हैं, वह कम प्रभावकारी नहीं है।[2]

महाकवि भारवि प्रायः सभी प्रकार के वर्णनों में अर्थगौरव को उपन्यस्त करने में कुशल हैं, चाहे वह राजनीति, व्याकरण अथवा भौतिक सुखों की उपेक्षा से सम्बद्ध हो। एक स्थान पर इन्द्र अर्जुन से भौतिक सुखों की निन्दा करते हुए कहते हैं–कि युवावस्था की शोभा शरत्काल के मेघ के सदृश चंचल है। शब्दादिक जो तत्तद् इन्द्रियों के विषय हैं, वे उपभोग काल में ही सुखद प्रतीत होते हैं किन्तु अन्तिमावस्था में सन्तापकारी ही होते हैं।[3] यहाँ पर कवि ने कितनी सरलता से विषयों की असारता का प्रतिपादन कर दिया है।

भारवि के अर्थगौरव के कारण ही आज अनेक सूक्तियाँ जन साधारण अथवा अल्प संस्कृत जानने वालों में भी प्रचलित देखी जाती हैं।

---

१. किरातार्जुनीय, २।५ २. वही, २।३० ३. वही, २।३८

राजनीति के क्षेत्र में कवि का पूर्ण अधिकार ही है। जहाँ छोटे-छोटे वाक्यों में कवि ने उदात्त भावों को भर दिया है। व्यास के मुख से 'निःसृत' 'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः'[1] जैसे सरल शब्दों में कितनी गुरुता है, यह सहृदय पाठक ही समझ सकता है।

भारवि सौन्दर्य की अपेक्षा गुणों के पक्षधर हैं। वे गुणार्जन को दुर्लभ मानते हैं। उन्होंने 'सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्' जैसी सूक्तियों के द्वारा अपने विचारों को अर्थगौरव से पूरित शब्दों में उद्घाटित किया है।

किरातार्जुनीय में अर्थगौरव को विशेष रूप से प्रकाशित करने में अर्थान्तरन्यास अलंकार बहुत कुछ सहयोगी है।

महाकवि भारवि को भाँति माघ ने भी अर्थगौरव का ध्यान रखा है। दोनों में वैषम्य यह है कि भारवि ने अर्थगौरव को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है, वे अर्थगौरव को ही केन्द्रित कर काव्य-कानन में विचरते हैं किन्तु माघ अर्थगौरव को उतना महत्त्व नहीं देते। वे कभी-कभी अर्थ-वैचित्र्य की ओर भटक जाते हैं। अर्थगौरव की मान्यता भारवि की अपनी मौलिक है जबकि माघ ने भारवि के आदर्श को उनके काव्य से प्रेरणा प्राप्त कर अपनाया है। तथापि उनके काव्य में अर्थगुरुता का अभाव नहीं है। प्रायः माघ इसके लिये पौराणिक आख्यानों का आधार लेते हैं जबकि भारवि अपने लोकानुभवों को मिश्रित कर गौरव प्रदान करते हैं।

माघ का अर्थगौरव उनके समग्र काव्य में देखा जा सकता है। जिस रावण ने तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा से शिव के प्रति श्रद्धाधिक्य के कारण अपने दसवें शिर को भी काटना चाहा और जब उसकी इच्छा के अनुरूप भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये तो उस महासाहसी रावण ने उनके प्रसाद को भी विघ्न माना।[2] इनमें रावण का साहस और उसकी शिवभक्ति का कितना अर्थपूर्ण वर्णन है। यहाँ पर कवि ने अपनी प्रतिभा से रावण के उद्दण्ड रूप एवं देवाराधन से प्राप्त शक्ति का गुरुतर भाव स्पष्ट कर दिया है।

---

१. किरातार्जुनीय, ३।१७ उत्तरार्द्ध

२. प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः॥

—शिशुपालवध, १।४९

भारवि के समान ही माघ ने भी प्रबन्ध प्रसंग निर्वाहकता को स्वीकार किया है। अपनी इच्छा के अनुरूप असंगत वचन तो बहुत कुछ कहा जा सकता है किन्तु सन्दर्भ के अनुरूप वचन कठिनाई से ही कहा जा सकता है—

**बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।**
**अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः ॥**[१]

कवि ने अर्थगौरव का सिद्धान्ततः बहुत ध्यान रखा है। उनके समक्ष सदैव भारवि का आदर्श बना रहा है। वे राजाओं के अर्थचिन्तन की तुलना कवि से करते हैं जो अर्थ तथा गुण युक्त रमणीय पद समूह का चिन्तन करता है।[२]

महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में कथावस्तु से सम्बद्ध जो नवीन कल्पनायें की हैं और जो अर्थालंकार की योजनायें की हैं, वे सभी उनके अर्थगौरव की सूचक हैं। एक मालोपमा के उदाहरण द्वारा कवि के अर्थगौरव का अनुभव किया जा सकता है। द्वारकापुरी से भगवान् श्रीकृष्ण की सेना बाहर निकलती है। उसका वर्णन इस प्रकार है—जैसे विष्णु के अंग से प्राणी निकले, शंकर की जटाओं से गंगा जी निकलीं तथा जिस प्रकार ब्रह्मा के मुख से वेदों की ऋचायें निकलीं, उसी प्रकार उस नगर (द्वारकापुरी) से श्रीकृष्ण भगवान् निकले।[३]

इसके द्वारा कवि ने सेना की असंख्यता, बलवत्ता तथा अजेयता की सुन्दर व्यंजना की है।

इस प्रकार प्रायः कविप्रयुक्त समस्त अलंकारों के माध्यम से अर्थगौरव की छटा दृष्टिगत होती है। माघ ने भारवि के समान अर्थान्तरन्यास के द्वारा सुन्दर अर्थवत्ता युक्त सूक्तियों की मौलिक सर्जना की है। साथ ही उनकी व्यंजना शक्ति से स्फुट होने वाला अर्थगौरव अधिक चारु बन पड़ा है।

कोई नायक भूल से अपनी प्रेयसी की सपत्नी का उत्तरीय ओढ़कर नायिका के पास जाता है। इस पर नायिका कहती है कि 'तुम मेरी

---

१. शिशुपालवध, २।७३ २. वही, ११।६

३. प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरायुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः॥
—शिशुपालवध, ३।६५

प्रिया हो' यह जो तुमने कहा था वह ठीक ही था क्योंकि प्रियजन (सपत्नी) का वस्त्र ओढ़कर यहाँ आये हो। इस प्रकार उसने व्यंग्य किया कि तुम मुझे नहीं अपितु मेरी सपत्नी को प्रेम करते हो क्योंकि उसका ही वस्त्र-ओढ़कर आये हो।[१]

इस प्रकार माघ के अर्थगौरव का उच्चकोटिक प्रस्फुटन अर्थान्तर-न्यास के द्वारा भी हुआ है।

इसके अतिरिक्त अर्थगौरव की सूचक अनेक सूक्तियाँ भी शिशुपाल में प्राप्त होती हैं। माघ को सूक्तियों के सम्बन्ध में उतनी ख्याति नहीं मिली है जितनी भारवि को। यद्यपि माघ की उक्तियाँ कम मार्मिक एवं भावोद्बोधक नहीं हैं, तथापि उनमें (माघ) पाण्डित्याधिक्य होने से सर्वसाधारण के लिये ग्राह्य नहीं हो सकी हैं। उनकी भाषा भारवि की अपेक्षा कुछ दुर्बोध है। माघ की ख्याति एक पण्डित के रूप में अधिक है। माघ ने कहीं-कहीं अत्यन्त सरल भाषा में सूक्तियों की स्वाभाविक उपस्थापना की है। जैसे कल्याण से किसकी तृप्ति होती है, मानियों का धन अभिमान ही होता है। सभी अपना स्वार्थ चाहते हैं। विशिष्टता को चाहने वाला कौन व्यक्ति औचित्य का विचार करता है आदि।[२] महाकवि माघ ने कुछ क्लिष्ट सूक्तियों की भी सर्जना की है।[३] वे कहीं-कहीं अर्थगौरव से हटकर शब्दवैचित्र्य की ओर भी चले जाते हैं। यद्यपि उनके काव्य में अर्थगौरव का यथावसर उपस्थापन हुआ है तथापि भारवि से कुछ अन्तर अवश्य है—

**इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।**
**स्फुरति चानुवनं चमरीचयः कनकरत्नभुवां च मरीचयः॥**[४]

यहाँ शब्दालंकारों की प्रमुखता होने से अर्थचारुत्व क्षीण हो गया है। रैवतक पर्वत पर हाथी शब्द करते हैं, चमरी गायों का झुण्ड घूम रहा है तथा स्वर्णमयी, रत्नमयी, भूमि की किरणें स्फुटित हो रही हैं।

---

१. तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति प्रियजन परिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः।
मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्रीर्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन॥
—शिशुपालवध, ११।३३

२. वही, १।२९, ६७, २।६५, ८।८१०, ५।४४

३. वही, ५।१४, ९।६ आदि। ४. वही, ४।६०

## शब्द-योजना

भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये कविद्वय की शब्द योजना का विवेचन भी अत्यन्त आवश्यक है। भावाभिव्यक्ति के लिये शब्दों का यथास्थान भावानुकूल संयोजन हो शब्द-योजना कहा जाता है। यह कवि की रुचि, प्रवृत्ति एवं ज्ञान पर निर्भर करता है कि वह कहाँ पर कैसा शब्द-न्यास करे। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से हम इसे तीन भागों में विभक्त कर विश्लेषण कर सकते हैं :—

(१) भावों के अनुसार शब्द-योजना।

(२) क्लिष्ट अक्लिष्ट शब्द।

(३) प्रचलित एवं अप्रचलित शब्द।

**(१) भावों के अनुसार शब्द-योजना—**

महाकवि भारवि एवं माघ दोनों ही महाकवियों ने भावानुकूल शब्द-योजना की है। इनमें भारवि का शब्दन्यास प्रथम विचारणीय है। किरात महाकाव्य के अध्ययन से सुतरां स्पष्ट है कि कवि अर्थ को वरेण्य मानता है अतः ऐसी स्थिति में अर्थ की सार्थकता तभी है जब उस अर्थ के आधारभूत शब्द अपने भावों के अनुरूप स्थान प्राप्त करते हों। वस्तुतः भारवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उन्हें अनुभूतियों को काव्य में सरस एवं हृदयावर्जक रूप में अभिव्यक्त करने तथा उनको साकार रूप प्रदान करने में सफलता मिली है।

तृतीय सर्ग में कवि ने पाण्डवों के समीप समागत सौम्य मुनि व्यास जी को कल्पना के अनुरूप ही अपनी शब्द शक्ति द्वारा उपस्थित कर दिया है। आसनासीन भगवान् व्यास के शरीर से प्रस्फुटित तेजोराशि ऊर्ध्व-प्रसरणशील है। उनका वर्ण ईषत् नील है। सिर पर पीत वर्ण की जटायें सुशोभित हो रही हैं। अतः वे विद्युत-युक्त मेघ के समान प्रतीत हो रहे हैं। शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उनका स्वरूप अतिशय आह्लादक है।[1] यहाँ मुनि के लिए शरच्चन्द्र, ऊर्ध्व प्रसरणशील तेजो-राशि, पिशंग वर्ण जटा जैसे सुन्दर शब्दों से कवि ने वर्ण्यरूप को साकार कर दिया है।

---

१. ततः शरच्चन्द्रकराभिरामैरुत्सर्पिभिः प्रांशुमिवांशु जालैः।
विभाणमानीलरुचं पिशंगीर्जटास्तडित्वन्तमिवाम्बुवाहम् ॥—किरातार्जुनीय, ३।१

यही नहीं आवश्यकतानुसार युद्धादि प्रसंगों में कवि ने तदनुकूल शब्दों का प्रयोग किया है जो कवि के शब्दप्रयोग-कौशल का द्योतक है।[१]

कवि शब्दों द्वारा नाद व्यंजना कराने में प्रवीण है। जलविहार करती हुयी सुरांगनाओं के वर्णन द्वारा कवि ने नृत्य एवं वाद्य के मनोहर समन्वय का उपस्थापन किया है। जल संतरण करती हुयी अप्सराओं के करतलों द्वारा जल पर किये जाने वाले आघात के कारण मृदंग की गम्भीर ध्वनि उत्पन्न हो रही है तथा कम्पमान उनके पयोधर नर्तक की शोभा को धारण कर रहे हैं।[२]

कवि अपने शब्द-पाटव से अज्ञात दृश्य को भी साक्षात् कर देता है। यही उसका यथास्थान शब्द प्रयोग कौशल है।

भारवि की भाँति महाकवि माघ भी अवसरानुकूल शब्द चयन में कुशल हैं। दोनों कवियों के शब्द संयोजन में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है।

कवि ने काव्यगत पात्रानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। आकाश-मार्ग से समागत नारद जी के वर्णन में कवि ने उनके स्वरूप आदि के परिचय में जो चित्र प्रस्तुत किया है,[३] उससे लगता है कि मानों कवि ने नारद को स्वयं देखा है।

माघ शान्त भाव के चित्रण में जितने प्रवीण हैं उतने ही युद्ध वर्णन में भी। वे तदनुकूल शब्दों का प्रयोग करते दिखायी देते हैं।[४]

शिशुपाल में कहीं-कहीं पर शब्दों का उपस्थापन इतना सुन्दर है कि भावों का प्रकटीकरण बिना किसी प्रयास के होने लगता है—

सूर्य सदृश परमतेजस्वी नारदजी के सम्मुख हर्षातिरेक से नेत्रद्वय को धारण करते हुये श्रीकृष्ण भगवान् वस्तुतः पुण्डरीकाक्ष हो गये।[५]

---

१. किरातार्जुनीय, १८।१–८

२. ह्रदाम्भसि व्यस्तवधूकराहते रवं मृदंगध्वनिधीरमुज्झति।
मुहुः स्तनैस्तालसमं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम्॥ किरात, ८।४३

३. शिशुपालवध, १।६ ४. वही, १६।४०

५. निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी।
विलोचने विभ्रदधिश्रितश्रिणो स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्॥"
शिशुपालवध, १।२४

यहाँ पर कवि ने पुण्डरीकाक्ष शब्द का कितना सही प्रयोग किया है। सूर्य के देखने से कमल विकसित होता है। सूर्य सदृश नारदजी के दर्शन से श्रीकृष्ण के नेत्र हर्ष से विकसित हो गये, उन्हें वे (श्रीकृष्ण) निर्निमेष होकर देखने लगे अतः श्रीकृष्ण भगवान् का 'पुण्डरीकाक्ष' कहलाना सार्थक हो गया।

यद्यपि भारवि और माघ दोनों ही महाकवियों ने जो शब्दन्यास किया है, वह एक दूसरे के पर्याप्त निकट है। किन्तु यहाँ क्लिष्टता तथा अक्लिष्टता के आधार पर भी दोनों कवियों की भाषा पर विचार कर लेना आवश्यक है। शब्दों की सरलता अथवा कठिनता व्याकरण से भी प्रभावित होती है। इस दृष्टि से भारवि और माघ दोनों ही कवि व्याकरण के पण्डित हैं। अतः उन्होंने विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया है।

महाकवि माघ क्लिष्ट एवं नवीन शब्दों के प्रयोग में भारवि से अधिक कुशल हैं। वे प्रायः नूतन शब्दों का प्रचुर प्रयोग करते हैं क्योंकि वे कतिपय निश्चित वर्णों से गुम्फित वाणी की अनन्त विचित्रिता को महत्त्व देते हैं।[1] नवीन शब्दावली का प्रयोग कवि की अपनी मौलिक विशेषता है। शिशुपाल में कवि ने भाषा के चमत्कार प्रदर्शन हेतु जितने नवीन शब्दों का प्रयोग किया है, उतना कोई कवि अकेले नहीं कर सका है। इसी कारण उनके सम्बन्ध में "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते" की उक्ति प्रसिद्ध हो गयी है। उन्हें नये शब्दों के प्रयोग का अच्छा शौक है। उन्होंने इसके लिये कोष का सहारा लेने के साथ ही अपने असाधारण व्याकरणवैदुष्य से भी शब्दों की नूतन सृष्टि की है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने लगभग १८०० नवीन शब्दों का प्रयोग किया है। "नवसर्गे गते माघेऽनवशब्दो न विद्यते" का यदि यह अर्थ लिखा जाय कि माघ के किसी नव (नूतन) सर्ग में देखा जाय तो अनव (पुराना शब्द) प्रयुक्त हुआ नहीं मिलता। क्योंकि प्रायः उन्होंने एक बार प्रयुक्त किये शब्द को पुनः नहीं प्रयुक्त किया है।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के लगभग ७५ पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें बहुत ऐसे हैं जिन्हें कवि ने उनकी विशे-

---

१. वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥—शिशुपालवध, २।७२

षता के आधार पर स्वयं बनाये हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—अधोक्षज, उपेन्द्र, अरविन्दनाभि, कमलसरव विष्वकसेन, गदाग्रज, चिरंतनमुनि, प्रियरथांग, बलानुज, रथांगपाणि, सुपर्णकेतु सलिलात्मन् आदि।

महाकवि माघ ने 'गोत्रभिद्'[१] शब्द का पति और इन्द्र अर्थ में प्रयोग करके अपने शब्द वैभव का उत्कृष्ट उदाहरण दिया है। वस्तुतः पति गोत्रभेदी होता ही है। पर्वतों का भेदन करने के अर्थ में यह शब्द इन्द्रत्व में भी सटीक बैठ जाता है।

कहीं-कहीं शिशुपालवध में कवि ने नितान्त अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है जिसके कारण अर्थावबोध में क्लिष्टता आ गयी है। महाकवि माघ और भारवि में इस विषय पर बड़ा वैषम्य है क्योंकि भारवि ने शब्दों पर इतना पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयास नहीं किया है, वे मात्र एकाक्षर, द्वयक्षर में ही कलाबाजी का नमूना दिखाकर रह गये हैं।

माघ सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों के स्थान पर सप्रयास नूतन अप्रचलित शब्द प्रयुक्त करते हैं। यदि इन्हें संकलित किया जाय तो एक अच्छी सूची बन सकती है—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| कठोर | — | पूर्ण | वृत्त | — | भृत |
| अग्रभूमि | — | प्राप्यस्थान | कर्कर | — | दर्पण |
| मनुष्यधर्मा | — | कुबेर | स्वापतेय | — | वृत्त |
| निशान्त | — | गृह | पारी | — | दोहनपात्र |
| कीनश | — | यम | आश्रव | — | आज्ञापालक |
| नरेन्द्र | — | विष वैद्य | वनीयक | — | याचक |
| शृंखलक, रवण | — | ऊँट | वारिज | — | शंख |
| मिचुमर्द | — | निम्ब | सरक | — | मधुपात्र |
| रुचिर | — | पति | नग्न | — | बन्दीजन |
| | | | आभीत्व | — | भयंकर |

१. तदयुक्तमंग तव विश्वसृजा न कृतं यदीक्षणसहस्रतयम्।
प्रकटीकृता जगति येन खलु स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रभिदा॥
—शिशुपालवध, ९।८०

इस प्रकार महाकवि माघ ने विभिन्न स्थलों पर ऐसे नवीन शब्दों को प्रयुक्त किया है जो सर्वथा अप्रचलित हैं।

माघ व्याकरण के भी प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्होंने व्याकरण ज्ञान के प्रौढ़िप्रदर्शन की इच्छा से भी अनेक शब्दों का प्रयोग किया हैं। इसमें कुछ प्रमुख शब्द निम्नांकित हैं—

न्यधायिषाताम्, पर्यपूपुजत्, अभिन्यवीविशत्, अचूचुरत्, प्रतिचस्करे, व्यद्योतिष्ट, दन्दह्यते, इन्धनोषधक् अध्यरुक्षत्, वितर्पिनिव्यूँहविटंकनीडः, पारेजलम्, मध्येसमुद्रम्, विपर्यणीनमन् ॥

इस प्रकार व्याकरण सम्मत अप्रचलित शब्दों के प्रयोग में महाकवि भारवि माघ से प्रायः साम्य रखते हैं क्योंकि वे भी व्याकरण के पण्डित हैं। इस शास्त्र में उनकी अप्रतिहत स्वच्छन्द गति है। वे अपने व्याकरण विषयक ज्ञान के प्रदर्शन-लोभ का संवरण नहीं कर सकते। इस प्रकार के प्रयोगों से महाकाव्य के कथा-प्रवाह में व्याघात भी हुआ है तथा कृत्रिमता का भी आभास होने लगता है।

शिशुपालवध का शब्दबन्ध वस्तुतः अद्वितीय है। माघ ने राजनीति, व्याकरण, दर्शन, काम आदि शास्त्रों के पाण्डित्य प्रदर्शन के प्रत्येक स्थान पर अपनी शब्द सम्पत्ति का प्रचुर प्रयोग किया है जबकि भारवि अर्थ-गौरव को ध्यान में रखकर विषय के प्रतिपादन का ध्यान रखते हुए भाषा के कलात्मक सन्निबन्धन को भूल बैठे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारवि चाहते हुए भी भाषा के प्रयोग में खुल नहीं पाये। शायद इसका कारण यह भी हो सकता है कि उनके समक्ष तत्कालीन कवि समाज में कालिदास की छाप भी बनी रही हो तथा नवीन विधा की ओर भी काव्य का क्षेत्र बढ़ता रहा हो। अतः इसी ऊहापोह में कवि का भाषा प्रयोग पूर्ण विकसित रूप में नहीं आ सका। इसके विपरीत माघ के समय तक आते-आते कालिदास की ग्रन्थ भी न रही हो और भारवि का स्थान बढ़ने लगा हो जिससे प्रेरणा प्राप्त कर माघ स्वतन्त्र रूप से विचित्र मार्ग पर चल पड़े।

माघ का एक गुण और है जिसके कारण दण्डी अकेले ख्यातिप्राप्त हैं। माघ ने जहाँ कालिदास और भारवि के गुणों को अपने काव्य में समाहित किया है, वहीं उन्होंने दण्डी के पद लालित्य का भी अपने काव्य में समाहार कर लिया है।

प्राय: यमकालंकार की योजना से पदमाधुर्य में वृद्धि हो जाती है। इस दृष्टि से भारवि के यमक युक्त पद्यों में यत्र तत्र लालित्य की स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। हिमालय पर्वत बड़े-बड़े कदम्ब के पुष्पों से सुशोभित है। गुथे हुये पुष्प माल्य के समान तमाल वनों से व्याप्त है। मदस्रावी और सुन्दर शुण्ड, भुशुण्ड वाले हाथी विचरण कर रहे हैं—

**पृथुकदम्बकदम्बकराजितं ग्रथितमालतमालवनाकुलम् ।**
**लघुतुषारतुषारजलाच्युतं धृतसदानसदाननदन्तिनम् ॥**[1]

भारवि के इस पद्य में अनुप्रास और यमक की अपूर्व छटा के दर्शन होने के साथ ही मधुर शब्दावली श्रुतिमधुर होकर आनन्द मग्न कर देती है। इसके अतिरिक्त किरात में विभिन्न स्थलों पर यमक, सानुप्रास पद योजना द्वारा अपूर्व शोभा दृष्टिगत होती है।[2]

महाकवि माघ पदलालित्य में सिद्धहस्त हैं। इसमें मात्र पदसौन्दर्य अपेक्षित नहीं होता अपितु सुकुमारता, वर्णमाधुर्य, भावों के अनुरूप भाषा तथा भाषा की संगीतात्मकता जैसे गुणों की आवश्यकता होती है। तभी पदलालित्य आह्लादित कर सकता है। माघ में ये सभी गुण विद्यमान हैं। वसन्तकालीन वर्णना का सुमधुर चित्र कितना स्पृहणीय बन पड़ा है—

**मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।**
**मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥**[3]

वसन्त में खिली हुई माधवीलता के पराग के बढ़ने से पुष्प पराग का पान कर मतवाली, मदोत्पादक ध्वनि करती हुयी भ्रमरी उच्च स्वर से गुंजन करने लगती है।

कवि ने वर्णन के अनुरूप ही मधुमास, माधवीलता, भ्रमरी आदि के लिये अत्यन्त मधुर वर्णों के साथ पदगुम्फन किया है।

ऐसे मधुर पदों को पढ़ते ही पाठक उन्हें दुहराने लगता है। वह काव्य की आत्मा की ओर आकर्षित होकर अर्थावबोध के साथ रसानुभूति भी करने लगता है।

भारवि और माघ के पदलालित्य में अन्तर है। भारवि कुछ विशेष स्थलों पर लालित्य प्रदर्शित करते हैं जबकि माघ स्वाभाविक रूप से चित्रित कर देते हैं। यद्यपि माघ के काव्य में पाण्डित्य की झलक है,

१. किरातार्जुनीय, ५।९ २. वही, ५।१३ ३. शिशुपालवध, ६।२०

प्रदर्शन की भावना है तथा शब्द सम्पत्ति का जाल है किन्तु उनके पद विन्यास को देखकर यह बरबस कहना पड़ता है कि इस क्षेत्र में कवि बिना किसी आयास के पदलालित्य की छटा को विखेरता हुआ चलता है। वे वसन्त और अन्य कोमल स्थलों के पद चयन में जितने कुशल हैं उतने ही युद्ध क्षेत्र के वर्णनों में भी।[1] इसके साथ ही उन्होंने अन्य विभिन्न स्थलों पर लालित्य की झलक दी है।[2]

भारवि और माघ की भाषा में एक वैषम्य यह भी है कि भारवि की भाषा में दीर्घ समास नहीं है जबकि माघ की भाषा समासबहुला है। वे माघ विकट समासान्त पदावली के पोषक हैं। भारवि ने पात्रों एवं विषय के अनुकूल हृदयहारी शब्दयोजना की है।

दोनों ही कवियों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है तथा भावों के अनुरूप शब्द-चयन की क्षमता है। भाषा-सम्बन्धी गुण प्रायः दोनों काव्यों में समान हैं किन्तु माघ भारवि से आगे इसलिये हैं क्योंकि उन्होंने (माघ ने) काव्य जगत् में अपना अद्वितीय स्थान बनाने की दृष्टि से भाषा में क्लिष्टता, समास-बहुलता और नवीन एवं अप्रचलित शब्दों का समावेश किया है।

**शैली—**

संस्कृत साहित्य में शैली शब्द का प्रयोग रीति या मार्ग के लिये किया जाता है। वामन से पहले रीति के स्थान पर प्रायः मार्ग शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। प्रत्येक कवि अपने अनुभूत विचारों अथवा भावों की अभिव्यक्ति के लिये अपने ढंग से पदों का संयोजन करता है।

आचार्य वामन ने अपने वक्रोक्तिजीवित में कवि-प्रवृत्ति के कारणभूत तीन मार्गों का उल्लेख किया है। ये तीनों मार्ग इस प्रकार हैं—सुकुमार, विचित्र अथवा उभयात्मक।[1]

**रीति—**

संस्कृत साहित्य में रीति का प्रमुख स्थान है। आचार्य वामन ने तो काव्य में रीति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। रीति की महत्ता का ज्ञान इसी से हो जाता है कि रीति को लेकर संस्कृत वाङ्मय

---

१. शिशुपालवध, २०।१३, १८

२. अचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ।—वही, १।१६ उत्तरार्द्ध, ११।१९, ६।६९

में रीति सम्प्रदाय हो चल पड़ा। यह रीति शब्द नानार्थक है। आचार्य भामह ने रीति के लिये 'काव्य', दण्डी और भोज ने 'मार्ग', वामन ने 'रीति', आनन्दवर्धन ने 'पदसंघटना' तथा रुद्रट एवं मम्मट ने 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया है।

रीति शब्द रीङ् गतौ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। रीतिशब्द के अर्थ—ढंग, शैली, प्रकार, मार्ग एवं प्रणाली भी हैं। रीति शब्द को व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

'रियन्ते परम्परया गच्छन्त्यनयेति करणसाधनोऽयं रीतिशब्दः मार्ग पर्यायः' इस व्युत्पत्ति के द्वारा भी रीति का अर्थ मार्ग ही स्पष्ट होता है। भोज ने भी सरस्वतीकण्ठाभरण में मार्ग ही माना है।[१] आचार्य विश्वनाथ ने भी रीति शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करते हुए पदों के संघटन को 'रीति' कहा है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि रीति अंग संस्थान की तरह मानी जाती है, वह काव्य के जीवातुभूत रस भावादि तत्त्वों की उपकारक होती है।[२]

कुछ आलंकारिक इसे मार्ग तथा कुछ रीति कहते हैं। क्योंकि इस पदरचना के माध्यम से ही कविगण विभिन्न प्रकार के अनुसन्धान करते हैं, अतः इसे मार्ग कहा जाता है। वस्तुतः रीति पद मार्ग का ही पर्याय है। दण्डी ने सर्वप्रथम रीति को मान्यता दी और उसके दो भेद—वैदर्भी, गौडी स्वीकार किये हैं।[३] दण्डी से पूर्ववर्ती आचार्य भामह ने वैदर्भी तथा गौडी को 'मार्ग' मानकर उसके दो भेद किये हैं।[४]

समन्वयवादी आचार्य विश्वनाथ के रीति विभाजन में प्रायः सभी कवियों के काव्यों का मूल्यांकन समाहित हो सकता है, अतः उनके चतुर्भेदों—वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली एवं लाटी के आधार पर ही काव्य-विवेचन समीचन होगा।

---

१. वैदर्भादिकृतः पन्थाः काव्ये मार्ग इति स्मृतः।
रीङ्गताविति धातोः सा व्युत्पत्या रीतिरुच्यते ॥—सरस्वतीकण्ठाभरण

२ पदसंघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां.................. ॥ साहित्यदर्पण,९।१

३. तत्र वैदर्भगौडीयो वर्ण्यते प्रस्फुटान्तरो।
......इति मार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात् ॥—काव्यादर्श, १।४०-४१

४. भामह, काव्यालंलार, १।३१-३३,३५

रीतियों में सर्वप्रथम वैदर्भी रीति का नाम आता है। इसे रीति की सत्ता स्वीकार करने वाले प्रायः सभी आचार्यों ने मान्यता दी है।

**(१) वैदर्भी रीति—**

इस रीति की व्याख्या आचार्य विश्वनाथ ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में की है। यह माधुर्य व्यंजक वर्णों द्वारा रचित समास रहित अथवा छोटे समासों वाली मनोहर रचना होती है जो वैदर्भी की संज्ञा से अभिहित होती है।[1] भोज ने समास-राहित्य, श्लेष आदि सम्पूर्ण गुणों से युक्त तथा वीणा की ध्वनि के सदृश श्रुतिसुखद रीति को वैदर्भी कहा है।[2] वामन भी 'समग्रगुणोपेता वैदर्भी' मानते हैं। वैदर्भी रीति के संस्कृत कवियों में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास सदृश कवियों को मान्यता प्राप्त है। इससे वैदर्भी के स्वरूप का क्रियात्मक मूल्यांकन सहृदय पाठक स्वयं कर सकते हैं कालिदासीय परम्परा के पश्चात् कुछ अंशों तक भारवि को भी इसी शैली में रखा जा सकता है। यद्यपि उनके काव्य में शुद्ध वैदर्भी नहीं है तथापि माघ की विकटबन्धता का अभाव होने से वैदर्भी ही किसी सीमा तक मानी जायगी।

**(२) गौडी रीति—**

आचार्य विश्वनाथ ने ओज को प्रदर्शित करने वाले कठिन अक्षरों (वर्णों) से निर्मित एवं समासाधिक्य के साथ शब्दाडम्बरों से युक्त बन्ध को गौडी रीति कहा है।[3]

भोज ने अत्यधिक आडम्बरबद्ध पदों का जिसमें समास हो, ओज और कान्ति गुणों से युक्त रीति को गौडी माना है।[4]

आचार्य दण्डी ने तो वैदर्भी के विपरीत गुणों वाली रीति को गौडी रीति कहा है।[5] इस प्रकार गौडी में समासबहुलता और विकटबन्धता का होना सुनिश्चित है।

---

१. माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥—साहित्यदर्पण, ६।२-३

२. तत्रासमासा निःशेषश्लेषादिगुणगुम्फिता।
विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते॥—सरस्वतीकण्ठाभरण २।२९

३. ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः॥
समास बहुला गौडी—साहित्यदर्पण ९।३-४

४. सरस्वतीकण्ठाभरण, २।३१

५. एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि।—काव्यादर्श, १।४२

**(३) पाञ्चाली—**

वैदर्भी एवं गौड़ी रीति के बचे वर्णों के द्वारा जो रचना की जाय तथा जिसमें पाँच छः पदों का समास हो, विश्वनाथ के मत से वह पांचाली रीति होती है।[१] आचार्य भोज के लक्षण के आधार पर ही इनका मत प्रतीत होता है क्योंकि सरस्वतीकण्ठाभरण में भी पांचाली को उसी प्रकार परिभाषित किया गया है—जिस पद संघटना में पाँच छः पदों का समास हुआ हो और जो ओज तथा कान्ति गुणों से रहित हो किन्तु मधुर एवं कोमल हो, उसे पांचाली कहा जाता है।[२]

पाञ्चाली रीति के विषय में—

**शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।**
**शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥**

इस सामान्य धारणा के द्वारा विशेषकर उदाहरण स्वरूप बाणभट्ट को पाकर यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इस रीति की रचना में समासबहुलता अवश्य होती है।

**(४) लाटी—**

यह वैदर्भी एवं पाञ्चाली इन रीतिद्वय के मध्य की रीति लाटी है।[३] आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इस सम्बन्ध में अज्ञातनामा आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है।[४]

आचार्य भोज ने भी काफी मिलता हुआ लक्षण किया है। जिसमें प्रायः सभी रीतियाँ संयुक्त रहती हैं वह लाटी रीति कही जाती है।[५] इस प्रकार आचार्यों ने रीतियों का अपने-अपने मतानुसार लक्षण निर्धारित

१. वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः। समस्तपंचषपदोबन्धः पांचालिका मतः।
द्वयोर्वैदर्भीगौडयोः।—साहित्यदर्पण, ९।४

२. समस्तपंचषपदामोजःकान्तिविवर्जिताम्।
मधुरां सुकुमारां च पांचालीं कवयो विदुः॥—सरस्वतीकाण्ठाभरण २।३०

३. लाटी तु रीति वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता।—साहित्यदर्पण ९।५

४. गौडी डम्बरवद्धारपादवैदर्भी ललितक्रमा।
पाञ्चाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभिः पदैः॥—वहीं, पृ० ६६२

५. समस्तरीतिव्यामिश्रा लाटीया रीतिरुच्यते।
—सरस्वतीकण्ठाभरण २।३३, पूर्वार्द्ध

किया है। इनके आधार पर ही किसी महाकाव्य की रचना शैली का मूल्यांकन किया जा सकता है।

महाकवि भारवि ने वैदर्भी रीति का सफल प्रयोग करने का प्रयास किया है। उनकी मान्यता के अनुसार प्रसाद गुणमयी रचना अच्छी होती है—

**प्रसादरम्यामोजस्वि गरीयो लाघवान्वितम्।**
**साकांक्षमनुपस्कारविष्वग्गतिनिराकुलम् ॥[1]**

इतना ही नहीं किरातार्जुनीय में सौष्ठव, औदार्य, विनिश्चितार्थता रूप गुणों से शैली को मण्डित किया गया है।[2] कवि ने प्रायः इन सभी बातों का अपने काव्य मे यथास्थान ध्यान रखा है। यद्यपि भारवि में कालिदास जैसी प्रसादरम्यता एवं वैदर्भी विन्यास का अभाव है तथापि उनके काव्य में इस रीति को पर्याप्त स्थान मिला है और अवसरानुकूल उसका निर्वाह भी हुआ है।

भारवि प्रतिपाद्य विषय को जीवन्त रूप में उपस्थापित करने में अति दक्ष हैं। उनकी भाषा में दीर्घ समास का अभाव है। उन्होंने कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है। किरात में गुणों तथा रीतियों की स्थिति वर्ण्यविषय के अनुरूप हुई है। इन विशेषताओं के कारण किरात में यत्र-तत्र शैलीगत सारल्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। दुर्योधन के प्रति प्रजावर्ग की स्वामिभक्ति का असमस्त (समास रहित) चित्रण द्रष्टव्य है—

**महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।**
**नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वांछन्त्यसुभिः समीहितुम् ॥[3]**

कवि ने कोमल प्रसंगों में तदनुकूल पदों के विन्यास द्वारा काव्य रचना की है तथा उग्र भावों के प्रकाशन हेतु कठोर एवं क्लिष्ट पदों का प्रयोग किया है। वे जितनी कुशलता से सौम्य वेदव्यास[4] का मनोहारी पदों में चित्रण करते हैं उतने ही कौशल से युद्ध क्षेत्र में वीरोचित रस के पोषक शिव और अर्जुन का भी चित्र उपस्थित करते हैं।[5] यद्यपि किरात

---

१. किरातार्जुनीय, ११।३८ २. वही, १।३

३. किरातार्जुनीय, १।१९ ४. वही, २।१-२, ५

५. व्रणमुखच्युतशोणितशीकरस्थगितशैलतटाभभुजान्तरः।
अभिनवैषसरागभृता बभौ जलधरेण समानमुमापतिः ॥—किरातार्जुनीय, १८।४

में वैदर्भी शैली के प्रख्यात महाकवि कालिदास की भाँति सुश्लिष्ट पद विन्यास, प्रसादमयी हृदयावर्जक पदावली की प्रचुरता नहीं है तथापि उसमें अर्थगौरवशालिनी पदविन्यस्तता का बाहुल्य अथवा प्राधान्य है।

भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है भावों के अनुसार पदप्रयोग। अप्सराओं की कामकेलि, अर्जुन की तपश्चर्या, किरात और अर्जुन का युद्ध, ऋतुओं एवं प्राकृतिक सौन्दर्य, अर्जुन और इन्द्र की वार्ता आदि विषयों का कवि ने विषयानुकूल भाषा में सरल चित्रण किया है। सहज एवं भावपूर्ण भाषा में अस्तंगत सूर्य का भव्य चित्र द्रष्टव्य है—

**अंशुपाणिभिरतीव पिपासुः पद्मजं मधु भृशं रसयित्वा।**
**क्षीबतामिव गतः क्षितिमेष्यंल्लोहितवपुरुवाह पतंगः ॥[1]**

किरातार्जुनीय में प्रायः वैदर्भीरीति के अधिकाधिक गुण विद्यमान हैं अतः उसको उनकी काव्यशैली की विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

माघ की अपेक्षा भारवि की काव्यशैली का निर्धारण करना कुछ सरल है। क्योंकि भारवि उतने आलंकारिक एवं कलाबाज नहीं हैं जितने माघ। यदि भारवि ने कुछ क्लिष्टबन्धत्व प्रस्तुत किया है तो वह मात्र नमूने के रूप में।

सम्प्रति रीति को ध्यान में रखकर माघ की काव्य शैली का विवेचन अभीष्ट है।

यदि हम माघ को वैदर्भी रीति की कसौटी पर रखें तो वह खरे नहीं उतर सकते क्योंकि इस रीति की सर्वाधिक विशेषता समासराहित्य और भावों का सहज प्रवाह होता है। इसमें विषय वस्तु की गति और हृदय की उन्मुक्त द्रवणशीलता अपेक्षित होती है।

यद्यपि महाकवि माघ के काव्य में पदलालित्य का भारवि से कहीं अधिक संयोजन हुआ है किन्तु वह समासों एवं अलंकारों के घटाटोप से आच्छादित सा हो गया है। शिशुपालवध में कुछ ऐसे स्थल अवश्य हैं जहाँ भावानुकूल शब्दों का प्रयोग किया गया है[2] किन्तु वे इतने स्वल्प हैं कि उसमें माघ का शैली विषयक सिद्धान्त निर्धारित नहीं किया जा सकता।

---

१. किरातार्जुनीय, ९।३ २. शिशुपालवध, १।५१

अलंकारों एवं दीर्घ पदावली के प्रति माघ का विशेष आग्रह है। इतने पर भी उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि उनके काव्य में प्रयुक्त पदावली वर्ण्य-विषय के अनुकूल हो। यह माघ की शैली की विशेषता है।

महाकवि माघ अवसरानुकूल ऐसी व्यंजना का प्रयोग करते हैं जो स्वाभाविक और प्रभावशाली होती है। बलराम का एक नाम मुसलपाणि भी है अतः अपना अभिमत व्यक्त करने के पहले उद्धव जी कहते हैं कि मुसलपाणि के बोलने के पश्चात् अब मेरा बोलना अनुचित है।[1] यहाँ पर कवि के 'मुसलपाणि' शब्द से वह व्यंजित होता है कि (बलराम) बिना बुद्धि की उग्र वार्ता करते हैं।

उक्त प्रसंगोचित व्यंजना, भावों और बलराम के व्यक्तित्व के अनुरूप है। वनविहार वर्णन के प्रसंग में लक्षणा शक्ति का प्रयोग सर्वथा स्पृहणीय है।[2] इसमें दो अर्थ लिये गये हैं। यहाँ 'मधुप' और 'अमृतप' के दो भिन्न अर्थ हैं—मधुप=भ्रमर तथा मद्यपायी, अमृतप=अधरामृत तथा अमृत पीने वाला देवता रूप दो दो अर्थ कवि के वर्णन चातुर्य के परिचायक हैं।

महाकवि माघ दीर्घ समासों के प्रेमी हैं। इससे उनके प्रसादगुण में कमी आयी है। माधुर्य और ओज गुण अवश्य पुष्ट होते दिखायी देते हैं किन्तु वे प्रसादमयता की पूर्ति करने में सफल नहीं हैं। उनकी समास बहुला पदावली का अंकन अधोलिखित पद्यांश से किया जा सकता है—

**निजसौरभभ्रमितभृंगपक्षतिव्यजनानिलक्षयितघर्मवारिणा।**
**अभिशौरि काचिद नमेषदृष्टिना पुरदेवतेव वपुषा व्यभाव्यत ॥**[3]

यहाँ पर कवि ने रमणी की शोभा का वर्णन किया है जो नगर की देवता के समान शोभायमान हो रही थी। समासों की पंक्ति बिछा दी गयी है।

---

१. सम्प्रत्यसाम्प्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् ॥—शिशुपालवध, २।७०

२. सरजसमकरन्दनिर्भरासु प्रसवविभूतिषु भूरुहां विरक्तः।
ध्रुवममृतपनामवांछयासावधरममुं मधुपस्तवाजिहीते ॥—वही, ७।४२

३. शिशुपालवध १३।४५

इस प्रकार के प्रसंगों[१] को देखकर माघ को गौडी रीति का कवि कहा जा सकता है।

शिशुपालवध शैली की विशेषता उसका उक्तिवैचित्र्य है। इस क्षेत्र में वे बड़े कुशल हैं। वे किसी बात को सीधे न कहकर विचित्र ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उक्तिवैचित्र्य के लिये आवश्यकता होती है उच्च कल्पना एवं शब्दोपस्थापना की।

शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा से रुष्ट हो जाता है और उन्हें बहुत कुछ उल्टा-सीधा सुनाने लगता है। वह एक-एक करके उनके सभी नामों को अन्यथा सिद्ध करता है। मधुसूदन शब्द पर आक्षेप करते हुये कहता है—तुमने मधु नामक किसी दैत्य को न मार करके अपितु मधुमक्खी के छत्ते को डंडे से मारा है अतः मधुसूदन कहलाते हो।[२] इसी प्रकार वह (शिशुपाल) इष्टसत्य[३] चक्रधर[४] आदि श्रीकृष्ण के नामों को अपने वाग्वैदग्ध्य से खण्डित करता है।

महाकवि भारवि के काव्य में वैदर्भी रीति है किन्तु माघ के काव्य में गौडी रीति है। किरात की अपेक्षा शिशुपाल में प्रसाद गुण का अभाव है।

महाकवि माघ की काव्य शैली की सर्वाधिक विशेषता यह है कि वे वीरोचित प्रसंगों में श्रृंगारिक उपमाओं अथवा परिस्थितियों का बड़ा ही सटीक सामंजस्य उपस्थित करते हैं। यह माघ की अपनी मौलिक विशेषता है जो भारवि में नहीं है। बलराम शिशुपाल के वधार्थ श्रीकृष्ण से मन्त्रणा सभा में अपना मन्तव्य व्यक्त करते हैं। उनके लिये (बलराम) जो विशेषण प्रयुक्त हुये हैं वे श्रृंगारिक हैं जबकि उनके हृदय में शत्रु के प्रति क्रोध है—

**आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम्।**
**म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः॥**[५]

---

१. अथोच्चकैर्जरठकपोतकन्धरातनूरुहप्रकरविपांडुरद्युति ।
बलैश्चलच्चरण विधूतमुच्चरद्धनावली रुदचरत क्षमारजः ॥
—शिशुपालवध, १७।५२

२. वही, १५।२३ ३. वही १५।२५ ४. वही १५।२६

५. वही २।१७

अन्यत्र, ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण रूपी दूल्हे के आगे चलने वाली नगाड़े की ध्वनि निकट पहुँचती है वैसे-वैसे शत्रु सेना विवाह-वधू की भाँति हृदय में पुलकित होती है।[1] यद्यपि यह हर्ष युद्धोत्साह का ही संचारीभाव है किन्तु कवि को शृंगारिकता का पुट विद्यमान है।

**छन्दोयोजना**

काव्य शैली के निर्धारण में छन्दोविधान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'छादनात् छन्दः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर भावों को आवृत करने के कारण छन्द अत्यन्त प्रमुख हैं। प्रत्येक कवि का अपना कोई न कोई प्रिय छन्द होता है। यद्यपि कुछ तो काव्यशास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करने के लिये भी विविध छन्दों का प्रयोग करते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में कोई लक्षणग्रन्थोक्त विशेष नियम नहीं है। मात्र सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन आवश्यक होता है।

महाकवि भारवि जितने कुशल अलंकार प्रयोग में हैं उतने ही छन्दः-प्रयोग में भी। उन्होंने छन्दों का बड़ा ही स्वाभाविक एवं अवसरानुकूल प्रयोग किया है। भारवि का अति प्रिय छन्द वंशस्थ है। वे अपने काव्य का प्रारम्भ भी वंशस्थ से ही करते हैं।[2] उनकी वंशस्थप्रियता एवं विधान कुशलता को देखकर ही क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में भारवि की सराहना की है—

**वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता।**
**प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥[3]**

किरात महाकाव्य में लगभग २६ छन्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु उनमें १२ छन्द प्रमुख हैं। वे हैं—वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, पुष्पिताग्रा, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, अनुष्टुप्, शिखरिणी, रथोद्धता, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, उद्गता। पहले चौथे तथा चौदहवें सर्ग में प्रमुख रूप से वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया गया है।

---

१. यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत्स हरिवराग्रतः सरः।
तथा तथा हृषितवपुर्मुदाकुला द्विषां चमूरजति जनीव चेतसा ॥
—शिशुपालवध, १७।४३

२. किरातार्जुनीय १।१

३. सुवृत्ततिलक

वीर रस के प्रसंग में प्रायः कवि ने वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा तथा उपजाति का प्रयोग किया है। क्षेमेन्द्र ने वीर रस के लिये वंशस्थ छन्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी बताया है।[1]

शृंगारिक प्रसंगों में पुष्पिताग्रा का प्रयोग वस्तुतः श्लाघ्य है। इसका सम्बन्ध वसन्त से होता है क्योंकि वसन्त ऋतु कामोद्दीपक है।

वस्तुतः भारवि की काव्य शैली में छन्दोविधान का विशेष महत्त्व है। किरात में प्रयुक्त छन्दों का सारांश इस प्रकार है—

पहले, चौथे, आठवें, चौदहवें सर्ग में वंशस्थ छन्द का सफल विधान हुआ है। तीसरे, सोलहवें, सत्रहवें सर्ग में प्रयुक्त उपजाति की संख्या लगभग १४६ है तथा ग्यारहवें, पन्द्रहवें सर्ग में प्रयुक्त अनुष्टुप् की संख्या लगभग १२५ है। वंशस्थ के बाद इन्हीं छन्दों का आधिक्य भी है। छठें सर्ग में प्रमिताक्षरा एवं सप्तम में प्रहर्षिणी छन्द हैं। नवें, दशवें में क्रमशः स्वागता, पुष्पिताग्रा छन्द प्रयुक्त हुये हैं। बारहवें सर्ग में उद्गता एवं अठारहवें में द्रुतविम्बित की रचना हुई है। पाँचवें सर्ग में द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, प्रहर्षिणी, जलोद्धतगति, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा, शालिनी, मालिनी आदि अनेक प्रकार के छन्द मिलते हैं। भारवि ने प्रभा आदि अन्य अनेक अप्रचलित छन्दों की भी रचना की है। इसके अतिरिक्त एकाक्षर पाद, द्व्याक्षर आदि बन्धों की भी योजना काव्य में सुलभ है।

प्रायः सभी छन्द यथावसर भावों के सन्निबन्धन में समर्थ बन पड़े हैं। छन्दों के प्रयोग-क्षेत्र में भारवि अत्यन्त कुशल प्रतीत होते हैं।

जहाँ माघ ने रस, अलंकार आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सरणि के पूर्ववर्त्ती कवि भारवि से प्रतिस्पर्धा की है वहीं उन्होंने छन्दःप्रयोग में भी अपेक्षाकृत अधिक कौशल दिखाया है। संख्या की दृष्टि से वे कालिदास और भारवि दोनों से आगे हैं। किरात महाकाव्य में बारह छन्दों का मुख्यरूपेण प्रयोग हुआ है जबकि माघ ने सोलह छन्दों का विशेष प्रयोग किया है।

शिशुपालवध महाकाव्य में यदि प्रक्षिप्त श्लोकों को परिगणित न किया जाय तो बीस सर्गों में कुल १६४५ श्लोक प्राप्त होते हैं। इन श्लोकों में माघ ने ४६ छन्दों का प्रयोग किया है जबकि भारवि ने २६ छन्दों का

१. षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते। सुवृत्ततिलक

ही अपने काव्य में सन्निवेश किया है। किरात काव्य में भारवि ने पाँचवें सर्ग में अधिक से अधिक १४ छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु माघ ने चौथे सर्ग में २२ छन्द प्रयुक्त किये हैं।

छन्द विषयक कविद्वय की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि माघ ने काव्यशैली की इस विशेषता को भी भारवि से अधिक प्रदर्शित करने की कोशिश की है।

छन्दों के प्रयोग में यह बात अवश्य है कि माघ ने वर्ण्यविषय के औचित्य का सदैव ध्यान रखा है। उन्होंने नीति तथा युद्ध विषयक प्रसंगों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। ऋतुवर्णन प्रसंग में द्रुतविलम्बित तथा वनविहार में पुष्पिताग्रा, जलक्रीडा में प्रहर्षिणी, चन्द्रोदय एवं रात्रिवर्णन में प्रमिताक्षरा छन्द का प्रयोग किया है। स्वागता और मालिनी छन्दों का प्रयोग क्रमशः सुरत विलास और प्रभात वर्णन में हुआ है।

माघ काव्य में सर्वाधिक अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। माघ के प्रमुख १६ छन्दों का कुल प्रयुक्त संख्या सहित विवरण इस प्रकार है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| अनुष्टुप् | २३० | वंशस्थ | ७४ |
| उपजाति | १८२ | मंजुभाषिणी | ७० |
| वसन्ततिलका | ८९ | उद्गता | १०० |
| रथोद्धता | ८५ | द्रुतविलम्बित | ७० |
| स्वागता | ९० | मालिनी | ७२ |
| औपच्छन्दसिक | ८२ | रुचिरा | ६५ |
| प्रमिताक्षरा | ८३ | वैतालीय | ७९ |
| प्रहर्षिणी | ७६ | पुष्पिताग्रा | ७८ |

भारवि की भाँति माघ ने भी प्रभा छन्द का केवल एक बार प्रयोग किया है। भारवि के ललिता, अपरवक्त्र एवं प्रमुदितवदना मात्र तीन ऐसे छन्द हैं जिनका प्रयोग माघ ने किया है। उन्होंने (माघ ने) बाइस छन्दों का प्रयोग किया जो भारवि से अधिक हैं—

अतिशायिनी, आर्या, कुररीरुता, दोधक, धृतश्री, पृथ्वी, महामलिक, मेघविस्फूर्जि, रमणीयक, कुटजा, तोटक, पथ्या, मन्जुभाषिणी, मन्दाक्रान्ता, रुचिरा, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्विणी, हरिणी, वैतालीय, वैश्वदेवी एवं स्रग्धरा।

यो तो शिशुपालवध में सभी छन्दों का अत्यन्त स्वाभाविक एवं सफल प्रयोग हुआ है किन्तु वसन्ततिलका तथा मालिनी और भी अधिक चित्ताकर्षक हैं। वसन्ततिलका का एक सुन्दर संगठन द्रष्टव्य है जहाँ इन भावों को बाँधा गया है—घोड़ों से उतारते समय अन्तःपुर की रानियों ने कंचुकियों के गले में बाहुलतायें डालकर उतरने का सहारा लिया जिससे उन अन्तःपुर में नियुक्त पुरुषों ने आलिंगन तो पा लिया किन्तु उनके (स्त्रियों) सदाचार सम्पन्न होने से कपोल चुम्बन नहीं किया।[1]

दोनों महाकवियों की शैली में छन्दो वैशिष्ट्य समान है। वैषम्य केवल छन्द-संख्या के न्यूनाधिक्य में है जिसे हम ऐसा वैषम्य नहीं मान सकते जो शैली को प्रभावित करता है। इतना अवश्य है कि माघ के छन्द भारवि से अधिक सुस्पष्ट हैं।

भारवि की भाषा उदात्त एवं सरल है। उसमें वर्ण्य वस्तु को स्पष्ट वर्णित करने की तथा रसावबोध कराने की क्षमता है। भाषा पर भारवि का पूर्ण अधिकार है जिसके कारण वे अपने भावों, कल्पनाओं, अनुभवों को सरस एवं चित्ताह्लादक रूप में अभिव्यक्त करने में सफल हैं। उनकी भाषा में दीर्घ समास नहीं है। उसमें कोमलकान्त पदावली उद्घोष के अनुसार अर्थगौरव युक्त है। उनकी शब्दयोजना काव्यगत पात्रों के वर्ण्य विषय के सर्वथा अनुरूप है।

किरातार्जुनीय में प्रसादगुण एवं वैदर्भी रीति की स्थिति होने से शैली में चारुत्व आ गया है और भाषा प्रवाहमय बन गयी है।

डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार—यद्यपि भारवि की शैली माघ की भाँति विकट समासान्त पदावली का आश्रय नहीं लेती, तथापि कालिदास जैसी ललित वैदर्भी भी नहीं। कालिदास की कविता में द्राक्षापाक है, अंगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी छूट पड़ती है जबकि भारवि के काव्य में नारिकेलपाक है।[2]

---

१. कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तुरंगा-
द्राजावरोधनवधूरवतारयन्तः।
आलिंगनान्यधिकृताः स्फुटमापुरेव
गण्डस्थलीः सुचितया न चुचुम्बुरासाम् ॥ —शिशुपालवध, ५।१८

२. संस्कृत-कवि-दर्शन पृ० १११

भारवि और माघ दोनों ही कवियों की शैली की मूल शाखा एक ही है किन्तु भारवि कुछ अपने युग को ध्यान में रखकर अपनी शैली को पूर्ण चित्रात्मक नहीं बना सके किन्तु माघ ने उस शैली को अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का माध्यम बनाया जिससे विषयवस्तु की अपेक्षा उनकी शैली अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी। शिशुपालवध के अनुसन्धानकर्त्ताओं अथवा पाठकों द्वारा बार-बार इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि उनकी शैली और पाण्डित्य संस्कृत साहित्य में अभूतपूर्व है।

रीति की दृष्टि से शिशुपालवध की रीति वैदर्भी नहीं मानी जा सकती। उसे गौडी कहा जायगा। क्योंकि माघ ने विकट समासान्त पदावली का प्रयोग किया है। अलंकारों का उचित प्रयोग रस का यथावसर पोषण आदि माघ की शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं।

वस्तुतः दोनों ही महाकवि काव्य जगत् में बेजोड़ हैं। अपने स्वल्प कथानक को आलंकारिक रूप में प्रस्तुत कर भारवि और माघ ने जहाँ एक ओर ख्याति प्राप्त की वहीं दूसरी ओर वे श्रीहर्ष आदि परवर्ती महाकवियों के मार्ग दर्शक भी बन गये।

७

# प्रकृति-चित्रण

भारतवर्ष तप, सत्य एवं सदाचार का देश है। यहाँ की संस्कृति के मौलिक सिद्धान्तों की सर्जना प्रकृति की क्रोड में हुयी है। प्राचीन ऋषि मनीषा से संवलित मानवजीवन के सिद्धान्त प्रकृति के ही सुरम्य वातावरण में विकसित हुये हैं। प्रकृति के इस व्यापक प्रभाव के कारण ही न केवल भारतीय कवियों ने अपितु पाश्चात्य विद्वान् कवियों ने भी इसे (प्रकृति को) एक शिक्षक के रूप में माना है। प्रकृति के स्वरूप में कोमलता एवं भीषणता दोनों हैं। यदि कालिदास को प्रकृति के कोमल रूप ने मुग्ध किया है तो भवभूति को उसके कोमल एवं भीषण दोनों रूपों ने। संस्कृत की काव्य-परम्परा में ऐसी प्रकृति को अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। फलतः प्रकृति वर्णन महाकाव्य का अनिवार्य अंग बन गया। लौकिक साहित्य में वालमीकि, कालिदास आदि कवियों ने प्रकृति के सजीव एवं मानव सदृश व्यवहार की सुन्दर व्यंजना की है। प्रकृति मनुष्य के सुख एवं दुःख दोनों में साथ देने वाली रही है। वाल्मीकि रामायण में सीता के वियोगजन्य संताप से संतप्त राम अशोक वृक्ष से कहते हैं—शोक को दूर करने वाले अशोक, मैं अत्यधिक शोक के कारण अचेतन हो रहा हूँ। तुम मेरी प्रियतमा का दर्शन कराकर अपने नाम को सार्थक कर दो।[1] हनुमन्नाटक के अनुसार राम सीता के वियोग से दुःखित हो वन, वृक्ष, नदी, पहाड़ आदि से पूछते फिरते हैं कि हे पर्वत वृक्षों तुमने चारु नेत्री, बिम्बोष्ठी सीता को तो नहीं देखा है।[2]

भारतीय वाङ्मय में प्रकृति का चित्रण दो रूपों में प्राप्त होता है—आलम्बन के रूप में तथा उद्दीपन के रूप में। इनमें कालिदास आदि कवियों ने प्रकृति के आलम्बन रूप को प्रमुखता दी है जिससे उनमें प्रकृति की ही भाँति कमनीयता एवं स्वाभाविकता है। कालिदास ने तो

---

१. अशोक शोकापनद शोकोपहतचेतनम्।
त्वन्नामानां कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम्॥

वालमीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, ६०।१७

२. हनुमन्नाटक, ४।११

अपनी काव्यसर्जना का आरम्भ ही प्रकृति के मनोहारी प्रकृति रूप से 'ऋतुसंहार' में किया है। उनका कुमारसम्भव भी प्रकृति के चारु एवं सूक्ष्म निरीक्षण का सूचक है। वे हिमालय का स्वाभाविक आलम्बन रूप में चित्रण करते हैं जो पृथ्वी के मानदण्ड की भाँति स्थित है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का तो प्रथमश्लोक ही प्रकृति की व्यापकता का दिग्दर्शन करा देता है। प्रकृति में दृष्टिगत होने वाली अग्नि, जल, वायु आदि अष्टविभूतियाँ ही परमेश्वरस्वरूपा हैं।

कालिदास के बाद अलंकृत शैली के महाकवियों ने प्रायः प्रकृति का उद्दीपन रूप ही चित्रित किया है। उनके द्वारा कहीं-कहीं चित्रालङ्कारों से प्रकृति का बोझिल रूप ही प्रस्तुत हुआ है। वे प्रकृति के आलम्बन रूप की अपेक्षा उद्दीपन रूप को अधिक अङ्गीकार करते हैं। इस शैली के कवियों ने प्रायः प्रकृति के मानवीय रूप को अधिक निरूपित किया है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में महाकवि भारवि और माघ के प्रकृतिगत वैशिष्ट्य का विवेचन करते हुए दोनों कवियों की तुलना प्रस्तुत की जा रही है—

जैसा कि ऊपर विवेचन हुआ है, संस्कृत साहित्य में प्रकृति के मुख्यतः आलम्बन विभाव एवं उद्दीपन विभाव दो रूपों की व्यञ्जना करायी गयी है। ये दोनों ही रूप किरात एवं शिशुपाल में प्राप्त होते हैं।

**आलम्बन के रूप में प्रकृति-चित्रण और भारवि**

भारवि यद्यपि अलंकृत शैली के महाकवि हैं तथापि वे एक ऐसे संगम स्थल हैं जिनमें वाल्मीकि, कालिदास आदि के द्वारा प्रतिपादित प्रकृति का स्वाभाविक एवं संश्लिष्ट रूप दृष्टिगत होता है और साथ ही परवर्ती कवियों द्वारा अङ्गीकृत प्रकृति का उद्दीपन रूप भी प्राप्त होता है।

महाकवि भारवि ने अपने किरातार्जुनीय महाकाव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप के स्वाभाविक चित्र चित्रित किये हैं जो स्वाभाविकता के साथ काव्यसौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। उनके इस प्रकार के चित्र पाठक को अपनी वर्णनचातुरी से आकृष्ट कर लेते हैं। उनका शरदृतु वर्णन, हिमालय वर्णन आदि प्रसङ्ग अपनी नैसर्गिकता, हृदयावर्जकता एवं प्रभावोत्पादकता के कारण संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

वेदव्यास की आज्ञा से उनके निर्देशानुसार विजयार्थ गाण्डीव धनुष, तरकश तथा कवच युक्त अर्जुन यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते

हुए जिस सुरम्य स्थल पर पहुँचते हैं, उसका चित्रण भारवि ने कितने सुन्दर ढङ्ग से किया है, वह देखते ही बनता है। वह रमणीय स्थान ग्राम का समीपवर्ती क्षेत्र है। वहाँ के भूखण्ड धान की सुन्दरबालों से सुशोभित हो रहे हैं। कीचड़ नाम मात्र को भी नहीं है। कहीं-कहीं जल है जिसमें कमल सुशोभित हो रहे हैं। अर्जुन ने उन प्रकृति सम्पत्तियों को अपने प्रति प्रदत्त प्रकृति के उपहार की भाँति माना।[1] यहाँ पर प्रकृति का अत्यन्त स्वाभाविक एवं आकर्षक चित्रण है।

हिमालय के शिखरों पर प्रवाहित होने वाली गङ्गा का सुन्दर एवं अकृत्रिम वर्णन दर्शनीय है जो भारवि की सूक्ष्मेक्षणा का सूचक है— हिमालय की चोटियों पर गङ्गा प्रवाहित हो रही हैं। प्रस्तर खण्डों के कारण उनका जल-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। पुनः उन प्रस्तर के ढेरों पर से उतरते समय असंख्य जलकण ऊर्ध्व गति से फव्वारे की भाँति छूटते हैं। उस समय गङ्गा जी शुभ्र चामर धारण की हुई की तरह प्रतीत हो रही हैं।[2] महाकवि भारवि का आलम्बन रूप से यह चित्रण उनकी स्वाभाविक वर्णन-दक्षता का परिचायक है। इसमें शान्त रस के आलम्बन विभाव का चारु चित्रण है।

सरोवर, जलाशय, गङ्गा आदि के कुशल वर्णन के साथ ही कवि ने हिमालय पर्वत पर बोलने वाले पक्षियों का भी नैसर्गिक चित्रण किया है—हिमालय पर कुररी पक्षियों का झुण्ड बोल रहा है। वृक्ष पुष्पभार से झुक गये हैं। इसके जलाशय कमल से शोभायमान हो रहे हैं। सरितायें वृक्षों से आवृत्त और उशीर से युक्त होकर ताप को दूर करतो हैं तथा हाथियों के लिये प्रसन्नतावर्धक हैं।[3] यहाँ पर कवि ने विभिन्न चित्रों के माध्यम से जो एक सम्पूर्ण दृश्य उपस्थित किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक है। यद्यपि इसमें आलंकारिक सन्निबन्धन है तथापि जो दृश्य उपस्थित होता है, वह अत्यन्त स्पृहणीय है।

---

१. विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीरपेतपंकाः ससरोरुहाम्भसः।
ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरुपायनीभूतशरद्गुणश्रियः॥
—किरातार्जुनीय, ४।२

२. विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितैरुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभिः।
दधतमुन्नतसानुसमुद्धतां धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम्॥—वही, ५।१५

३. वही, ५।२५

मार्ग की प्रत्येक वस्तुओं का अवलोकन करते हुए अर्जुन सुरम्य हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। हिमालय के भूप्रदेश विविध रत्नों की किरणों से प्रभासित हैं। इस पर्वत पर अनेक नदियाँ हैं जिनके तट हाथियों के द्वारा क्षत करके समस्थल बना दिये गये हैं, इनमें कमल विकसित हैं। ऊर्ध्व से अधः की ओर बहने से इनके प्रवाह में तीव्रता है। नवीन विकसित अड़हुल के पुष्प के सदृश कान्ति वाली पद्मरागादि महामणियाँ सुशोभित हैं जिनके समूह से मिश्रित होकर स्वर्णयुक्त शिखरों पर सायंकालीन किरणों के सदृश प्रकाशमान किरणों को हिमालय धारण कर रहा है।[1] इन उदाहरणों में प्रकृति के आलम्बन रूप का ही मुख्यतया चित्रण हुआ है।

भारवि की दृष्टि में वह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब के पुष्पों से सुशोभित हो रहा है तथा गुँथे हुये पुष्पमाल्य की तरह तमाल के वनों से परिव्याप्त है। इस पर्वत पर से बूँद बूँद करके हिमजल मन्द-मन्द परिश्रवण कर रहा है और इसी पर्वत पर सुन्दर शुण्ड-भुशुण्ड वाले हाथी भी निर्भीक होकर विचरते रहते हैं।[2]

आलम्बन रूप की एक प्रमुख विशेषता है उसकी यथावत् स्वरूप में अकृत्रिम एवं अतिशयोक्ति रहित वर्णना। इस दृष्टि से भारवि के आलम्बन विभाव रूप में चित्रित प्रकृति अत्यन्त खरी उतरती है जिसके पठन अथवा श्रवण मात्र से हिमालय के आस-पास का दृश्य समक्ष उपस्थित हो जाता है।

इस प्रकार के आलम्बन रूप के अनेक चित्र कैलाश पर्वत वर्णन में भी प्राप्त होते हैं।[3]

महाकाव्य विधान के अनुसार कवि ने पर्वत वर्णन का नियम निर्वहण मात्र ही नहीं किया है बल्कि उसके स्वाभाविक एवं सजीव रूप का रम्य वर्णन प्रस्तुत किया है जो कवि की प्रकृतिक सम्पदाओं के प्रति अकृत्रिम अनुराग की निर्दशिका है। कैलाश पर्वत पर तृण समूह अपनी अभिनव रमणीयता का परित्याग नहीं करते जिससे वे सर्वदा हरे-भरे दिखायी देते हैं। नीलकमल के वन अनुदिन अपनी नीलिमा की वृद्धि करते रहते हैं और वे कभी सूखते नहीं। विभिन्न वर्णों के पुष्प समूह से युक्त वृक्षों के पत्ते भी धराशायी नहीं होते।[4] वस्तुतः प्रकृति के मौलिक

---

१. किरातार्जुनीय, ५।७–८ २. वही, ५।९ ३. वही, ५।४३, ४४
४. वही,, ५।३७

किंवा सहज सौन्दर्य को आलम्बन के रूप में ही चित्रित किया जा सकता है जिसका पूर्ण परिपाक महाकवि भारवि के काव्य में यत्र-तत्र विकीर्ण है ।[1]

### माघ का आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण

महाकवि भारवि की भाँति ही महाकवि माघ ने भी अपने शिशुपाल-वध में प्रकृति के आलम्बन रूप का दक्षतापूर्णचारुचित्रण किया है। प्रथम सर्ग में नारद के स्वरूप का जो सुन्दर वर्णन हुआ है, उसमें कवि की सहज प्राकृतिक सूक्ष्मेक्षणा का पर्याप्त परिचय मिल जाता है—

**नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम् ।**
**क्षणं क्षणोक्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना ॥**[2]

चतुर्थ सर्ग में नौ कुलक श्लोकों द्वारा माघ ने रैवतक वर्णन प्रसंग में प्रकृति के आलम्बन रूप का मनोरम चित्रण किया है।

श्रीकृष्णभगवान् इन्द्रनीलमणियों से सम्बद्ध गेरु, मैनसिल आदि अनेक प्रकार की विचित्र धातुओं वाले रत्नों की कान्तियों के साथ भूमि को फाड़कर ऊपर निकले हुये सर्पों के श्वास वायु के धुयें के समान स्थित रैवतक पर्वत को देखते हैं ।[3] यहाँ पर कवि की कल्पना ने उभरी हुयी पर्वत श्रेणियों को श्वसन क्रिया से निस्सरित सर्पों के निःश्वास जन्य धूम्र माना है। इसी प्रकार भारवि ने भी पंचम सर्ग में हिमालय पर्वत पर अनेक रत्नराशियों का वर्णन किया है।

माघ की प्रकृति वर्णना शक्ति बेजोड़ है। वे प्रकृति के स्वरूप चित्रण में जो अपनी कल्पनाओं को जोड़ देते हैं, उनमें इतनी स्वाभाविकता है कि वे उसी में समाहित हो जाती हैं।

रैवतक पर्वत पर सूर्योदय एवं चन्द्रास्त को दृष्टिगत कर उनमें हाथी के लटकते हुये घण्टों की स्वाभाविक कल्पना द्रष्टव्य है—

---

१. अवरुग्णतुंगसुरदारुतरौ निचये पुरः सुरसरित्पयसाम् ।
स ददर्श वेतसवनाचरितां प्रणतिं बलीयसि समृद्धिकरीम् ॥
—किरातार्जुनीय, ६।५, १२।४७, ४९

२. शिशुपालवध, १।४

३. निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्भित्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम् ।
नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श ॥
—शिशुपालवध, ४।१

लम्बी-लम्बी तथा ऊपर की ओर रस्सी के समान प्रसरणशील किरणों वाले सूर्य के उदय और चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर यह पर्वत नीचे की ओर लटकती हुयी दो घण्टाओं से युक्त गजराज के समान सुशोभित हो रहा है।[१] यहाँ कवि ने सूर्योदय एवं चन्द्रास्त में हाथी के लटकते हुये घण्टों की कल्पना की है, वह रूप विधान की दृष्टि से अत्यन्त स्वाभाविक है।

रैवतक पर्वत पर अनेक प्रकार के पक्षीगण निवास करते हैं जो विभिन्न स्वरों में कूजते रहते है। कदम्ब पुष्पों से सुगन्धित रैवतक पर्वत पर पक्षिगण प्रत्येक क्षण अनेक लयों के साथ कूज रहे हैं तथा नवीन विकसित एवं पल्लवित कदम्ब वनों को कँपाती हुयी एवं मेघ को पुनः पुनः उड़ाती हुयी वायु समोप में बह रही है।[२]

इस श्लोक में आलम्बन रूप से प्रकृति का चित्रण कर कवि ने सौन्दर्य में वृद्धि कर दो है।

महाकवि माघ ने आकाश के मनोहारी सौन्दर्य का कुशलतापूर्ण स्वाभाविक चित्रण कर अपनी काव्य प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। जिसमें न तारागण और न ही चन्द्रमण्डल दृष्टिगोचर हो रहा है, सूर्यास्त हो गया है, गर्मी शान्त हो गयी है तथा अन्धकार भी नहीं हुआ है, इन गुणों से युक्त आकाश सुशोभित हो रहा है, क्योंकि गुणहीन का निर्दोष होना ही गुण होता है।[४]

ग्यारहवें सर्ग में प्रकृति के विभिन्न रूपों में उसके आलम्बन रूप का चित्रण अत्यधिक स्वाभाविक एवं कमनीय है।

ध्रुव तारा अत्यधिक दूर होने के कारण छोटा प्रतीत होता है तथा उसके ऊपर स्पष्ट देदीप्यमान विस्तृत सप्तर्षि मण्डल शकटासुर के समान शोभायमान हो रहा है जो बाल्यकाल में भगवान् श्रीकृष्ण के चंचल

---

१ शिशुपालवध, ४।२०

२. विहगाः कदम्ब सुरभाविह गाः कलयन्त्यनुक्षणमनेकलयम्।
भ्रमयन्नुपैति मुहुरभ्रमयं पवनश्च धूतनवनीपवनः॥—वही, ४।३६

३. वही. ४।५८

४. अविभाव्यतारकमदृष्टहिमद्युतिबिम्बमस्तमितभानु नभः।
अवसन्नतापमतमिश्रमभादपदोषतैव विगुणस्य गुणः॥—वही, ९।१२

चरण कमल द्वारा ताडित होने से ऊपर उठ गया है।[1] इस प्रकार कवि ने ध्रुव तारा एवं सप्तर्षि मण्डल के स्वाभाविक रूप का निरूपण करने के साथ ही अपनी कल्पना से उसे सुन्दर बना दिया है। माघ के इस प्रकार के अनेक वर्णन उनके काव्य में प्राप्त होते हैं जो आलम्बन रूप में चित्रित हुये हैं।[2]

प्रातः काल का समय है। वस्तुतः जब कमल विकसित होते हैं तब कुमुद नहीं खिलते एवं कुमुदों के विकसित होने पर कमल नहीं खिलते किन्तु प्रातः काल दोनों में समानता आ जाता है।
एतद्विषयक एक दृश्य द्रष्टव्य है—

कुमुद अभी पूरे शोभाहीन नहीं हुये हैं और कमलों का भी पूर्ण विकास नहीं हुआ है। एक की आधी शोभा क्षीण हुयी है दूसरे को आधी ही शोभा प्राप्त हुई है। भ्रमरगण दोनों पर मंडरा रहे हैं और अपने गुंजार से दोनों की ही प्रशंसाकर रहे हैं।[3]

प्रकृति के आलम्बन रूप का कवि ने कितने सटीक रूप में वर्णन किया है। वस्तुतः माघ का प्रभात वर्णन बाह्य एवं अन्तः प्रकृति चित्रण का बेजोड़ उदाहरण है।

भाग्य के प्रतिकूल होने पर बहुत साधन भी निष्फल हो जाते हैं। शीघ्र ही अस्त होने वाले सूर्य की सहस्रों किरणें भी उसे अवलम्बन नहीं दे सकतीं।[4] यहाँ पर अस्त होते हुये सूर्य के स्वाभाविक रूप के माध्यम से कवि ने एक शाश्वत सत्य का उद्घाटन कर दिया है।

छठें सर्ग के वर्षाऋतु वर्णन में कवि ने आलम्बन रूप में अनेक मनोरम चित्र उपन्यस्त किये हैं—बादलों ने रैवतक पर्वत की धूलि आदि का जल वर्षण द्वारा शमन कर दिया जिससे भूमि स्त्रियों के सुखपूर्वक चलने के योग्य हो गयी है।[5] इस प्रकार प्राकृतिक उपादानों का आलम्बन के रूप में स्वाभाविक वर्णन करके अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

---

१. शिशुपालवध, ११।३ २. वही, ११।४, ७, ११

३. दधदसकलमेकं खण्डितामानमद्भिः
श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिः पलाशैः।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः
कुमुदकमलषण्डे तुल्यरूपामवस्थाम्॥—शिशुपालवध, ११।१५

४. शिशुपालवध, ९।६ ५. वही, ६।३३

## उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति का रूप विधान

कवि अपने काव्य को चमत्कृत करने के लिये विभिन्न क्षेत्रों का अवलम्ब लेता है। इनमें काव्य को चारुत्व प्रदान करने के लिये वह प्रकृति के विभिन्न पक्षों को ग्रहण करता है। एक तो कवि प्रकृति के स्वाभाविक पक्ष का यथावत् वर्णन करता है जिसमें प्रकृति का मौलिक रूप अपने कोमलकान्त रूप में चित्रित होता है तथा दूसरे उसका वह पक्ष जो इस प्रकार वर्णित होता है कि उससे मानव मनोभाव उद्दीप्त हो उठते हैं। इनमें सुख एवं दुःख दोनों पर प्रभाव पड़ता है। प्रकृति का एक ही उपादान मनुष्य को सुखात्मक अनुकूल एवं दुःखात्मक प्रतिकूल परिस्थिति में परिवर्तित हुआ सा प्रतीत होता है। संयोग में चन्द्रमा की जो शीतल किरणें सुखद अनुभूति कराती हैं वे ही वियोग काल में अग्नि सदृश संतप्त करने लगती हैं।

प्रायः कवियों ने प्रकृति के इन आलम्बन एवं उद्दीपन उभय पक्षों का मनोरम चित्रण किया है। भारवि एवं माघ दोनों ही महाकवियों ने अधिकतर संयोग के उद्दीपक चित्रों को ही अपने काव्य में उपन्यस्त किया है।

महाकवि भारवि ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण अधिक किया है। उन्होंने मानवमन को उद्दीप्त करने वाले प्राकृतिक उपादानों का उद्दीपन रूप में वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है।

बरफ की चट्टान के समान श्वेत गायों के झुण्ड शनैः शनैः शरदकाल की नदी के बालुकामय ढेर को छोड़ते हुये चले जा रहे हैं, उन्हें देखकर अर्जुन के मन में ऐसा कौतूहल उत्पन्न होता है जैसा कि रमणी के जघन प्रदेश से सरकती हुई साड़ी के समय किसी कामुक व्यक्ति को होता है।[1] यहाँ पर रमणी के जघन प्रदेश से साड़ी का खिसकना उद्दीपन विभाव है।

कोमल किसलय और पुष्पों से युक्त लताओं के कुंजों से तथा कमलपूर्ण सरोवरों से सुशोभित होता हुआ वह हिमालय पर्वत प्रियतम के समीप मानिनी स्त्रियों को भी उत्कण्ठित कर देता है।[2]

१. विमुच्यमानैरपि तस्य मन्थरं गवां हिमानीविशदैः कदम्बकैः।
शरन्नदीनां पुलिनैः कुतूहलं गलद्दुकूलैर्जघनैरिवादधे॥—किरातार्जुनीय, ४।१२

२. किरातार्जुनीय, ९।१९

कोमल किसलय तथा पुष्पों से युक्त लतायें एवं कमलपूर्ण सरोवर ये सभी प्राकृतिक उपादान स्त्रियों के मन में रतिभाव को उद्दीप्त करते हैं।

हिमालय पर्वत पर अनेक शोभा सम्पन्न लता कुंज ही उत्तम भवन हैं, कल्पवृक्ष के पल्लव तल्प हैं कमलवन से स्पर्शित रतिजन्य श्रम को दूर करने वाला वायु भी निरन्तर बहता रहता है जिससे अमरलतायें स्वर्ग को भी भूल गयी हैं।[1] यहाँ हिमालय पर्वत पर विद्यमान कमलवन एवं शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु रति के उद्दीपक हैं। भारवि ने इन उद्दीपनों के साथ प्रकृति के वास्तविक स्वरूप का भी चित्र प्रस्तुत किया है।

भारवि को नदियों के तटप्रदेश अत्यन्त मनोरम एवं सुखद प्रतीत होते हैं—शैल सरितायें अपने ऊंचे-ऊँचे तटप्रदेश से सुशोभित होती हैं। वे तट वस्त्रवत् विकसितकाश से शोभायमान हो रहे हैं और तट पर कल-कूजन करती हुई सारसों की पंक्ति करधनी की तरह शोभित हो रही हैं तथा वे तट नितम्बिनी के नितम्ब के समान सुशोभित हो रहे हैं।[2]

यहाँ सारसों का कलकूजन, नितम्ब आदि उद्दीपन हैं।

उन्नत प्रदेश से गिरने के कारण सरिता का प्रवाह खण्ड-खण्ड हो रहा है तथा उन प्रवाहों से विलग होकर जलकण इधर-उधर फैल रहे हैं जो मनोरम प्रिय की गोद के समान शीतल हैं। उनमें शुभ्र मोती की कान्ति के समान कान्ति है जिससे वे वनों के प्रहास के समान परिलक्षित हो रहे हैं।[3] यहाँ मनोभावों को उद्दीप्त करने के हेतु रूप शीतल जलकण का चारु वर्णन उपस्थित कर कवि ने अपनी प्रकृति वर्णन-चातुरी का अच्छा परिचय दिया है।

भारवि ने प्रकृति के विभिन्न उपादानों-लता, पुष्प, नदी, पर्वत आदि का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों में सफल चित्रण किया है। लताओं का चित्रण करने में उन्होंने उद्दीपन विभाव का बड़ा ही सजीव एवं मनोहारी रूप प्रस्तुत किया है—फूली हुयी लतायें पुष्पों से लदी हुयी हैं। उन पुष्पों पर भ्रमण अविचल भाव से मकरन्द पान कर रहे

१. किरातार्जुनीय, ५।२८   २. वही, ५।९

३. विदूरपातेन भिदामुपेयुषश्च्युताः प्रवाहादभितः प्रसारिणः।
प्रियांकशीताः शुचिमौक्तिकत्विषो वनप्रहासा इव वारिबिन्दवः॥

—किरातार्जुनीय, ८।१०

हैं। इस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों लतायें निश्चल भ्रमरालि रूप अंजनसे अंजित विशाल पुष्प रूप नेत्रों के द्वारा प्रेमाधिक्य होने के कारण अतिशय आदर के पात्रभूत सखीवर्ग को देख रही हैं।[1]

पुष्पावचय के अनन्तर कवि ने सुरांगनाओं के जल विहार का मनोरम वर्णन किया है। भारवि की कल्पनाओं की एक विशेषता यह है कि वे अपनी कल्पनाओं के साथ पाठक को भी रसभूमि में खींच ले जाते हैं। उनमें यथार्थता है—गंगा में मछलियाँ चिलक रही हैं जिससे कमल हिलने लगते हैं। कीचड़ नाम मात्र भी नहीं है, लहरों का ताँता लगा हुआ है, कलहंस कलकूजन कर रहे हैं। गंगा की इस स्वाभाविक रम्यता में कवि की कल्पना जुड़ जाती है जिससे यह प्रतीत होने लगता है कि मानों गंगा उन सुरवधुओं को स्नान करने के लिए बुला रही हैं।[2] ये चित्र स्वतः ही एक तटस्थ व्यक्ति को आकर्षित कर लेते हैं। कमल, मछलियों का चिलकना एवं गंगा का पंकराहित्य, स्नानार्थ उद्दीप्त करते हैं।

प्रकृति के विभिन्न अंगों के वर्णन के साथ सूर्यास्त का चित्रण भी कवि के विदग्ध प्रकृति प्रेम का परिचायक है। भारवि ने प्रकृति को एक ही रूप में नहीं देखा है, वे प्राणिजगत् को प्रभावित करने वाले प्रकृति के विभिन्न पक्षों के सूक्ष्म द्रष्टा हैं—

किरणपति सूर्य सायंकालिक रक्तिमा से दर्शनीय हो गये, उनका दिवसकालिक सन्ताप समाप्त हो गया। किन्तु वह सूर्य ताप, पृथ्वी को छोड़कर मानो चक्रवाक पक्षियों के हृदय में प्रविष्ट हो गया। चक्रवाक मिथुन दिन में संयुक्त रहते हैं और रात में विलग हो जाते हैं। चक्रवाक दम्पत्ति सायंकाल होनेपर रात्रिकालिक भावी विछोह का स्मरण कर दुःखी हो जाते हैं।[3]

---

१. सखीजनं प्रेम गुरुकृतादरं निरीक्षमाणा इव नम्रमूर्तयः।
स्थिरद्विरेफांजनशारितोदरैर्विसारिभिः पुष्पविलोचनैर्लताः॥
—किरातार्जुनीय ८।११

२. अथ स्फुरन्मीनविधूतपंकजा विपंकतीरस्खलितोर्मिसंहतिः।
पयोऽवगाढुं कलहंसनादिनी समाजुहावेव वधूः सुरापगा॥—वही, ८।२७

३. गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति सहस्रमरीचौ।
आससाद विरहय्य धरित्रीं चक्रवाक हृदयान्यभितापः॥—वही, ९।४

यहाँ भारवि ने कितनी कुशलता से चक्रवाकपक्षी के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन विभाव का चित्रण किया है।

महाकवि भारवि ने चन्द्रोदय का मानव मन के उद्दीपक के रूप में जो चित्रण किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक एवं स्पृहणीय है—

उदयाचल की ओट में स्थित हिमांशु चन्द्रमा का मण्डल नीले आकाश में उसी तरह सुशोभित होता है जिस प्रकार नील समुद्र में गिरता हुआ गंगा का जल शोभायमान होता है।[1] चन्द्रमण्डल बर्फ की तरह स्वच्छ वर्ण का प्रतीत होता हुआ श्वेत किरणों एवं नीलिमायुक्त किरणों से नीले आकाश में विचरण करता हुआ मन को उद्दीप्त करता है।

इन्द्र-प्रेषित अप्सरायें अर्जुन को तपस्या से च्युत करने के लिये गन्धर्वों के साथ उनके पास आती हैं और वे विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों से एक ही साथ छहों ऋतुओं को उत्पन्न कर देती हैं। जिसमें सर्वप्रथम कवि ने वर्षा ऋतु का चित्रण किया है जो मानव मन को उद्दीप्त करने में क्षम है।

नीले-नीले बादलों से आकाश आच्छन्न हो जाता है। विद्युल्लता की दमक स्पष्ट दिखलायी देने लगती है और जलभाराक्रान्त मेघ गर्जन से दिशायें गूँज उठती हैं तथा मेघ गर्जन प्रणयिजनों के रतिकालिक कलह को दूर कर देता है।[2]

इस प्रकार महाकवि भारवि ने प्रकृति के अनेकपक्षों का उद्दीपन रूप में सफल चित्रण कर अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

**महाकवि माघ का उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण**

महाकवि भारवि से स्पर्धा कर अपने काव्य को सुविस्तृत कलेवर प्रदान करने वाले महाकवि माघ ने भी अपने काव्य में प्रकृति के उभय पक्षों का चित्रण किया है। माघ के समक्ष काव्य का एक आदर्श स्वरूप

---

१. नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः।
खे रराज निपतत्करजालं वारिधेः पयसि गांगमिवाम्भः॥
—किरातार्जुनीय ९।१९

२. सजलजलधरं नभो विरेजे विवृतिमियाय रुचिस्तडिल्लतानाम्।
व्यवहितरतिविग्रहैर्वितेने जलगुरुभिः स्तनितैर्दिगन्तरेषु॥
—वही, १०।१९।

किरातार्जुनीय था जिससे उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की। काव्यगत अन्यान्य विशेषताओं के साथ माघ का उद्दीपन रूप में चित्रित प्रकृति चित्रण संस्कृत साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। माघ संभोग पक्ष का ही मुख्यतया निरूपण करते हैं। अतः उनके काव्य में उद्दीपन विभावों का चित्रण स्वाभाविक ही है। यद्यपि माघ की प्रकृति में संभोग शृंगार के उद्दीपन विभाव की मुख्यता है तथापि उनमें यत्र तत्र वियोग के भी चित्र प्राप्त हो जाते हैं।

माघ ने पर्वतसौन्दर्य का मानवमनोभावों के उद्दीपक के रूप में चित्रण किया है—चमकने वाली सूर्य की किरणें इन स्वर्णिम भूभागों को पिंगलवर्ण करती हुयी प्रतीत होती हैं। रैवतक पर्वत पर चातकों के दीनवचनों को जल प्रदान कर शान्त कर देने वाले एवं विद्युत से मनोहर पीले सुवर्णों की तुलना करने वाले अथवा पीले-पीले सोने के समान चमकती हुयी बिजली वाले मेघ पर्वत के भूभागों को आच्छादित कर रहे हैं।[1] रैवतक पर्वत को भूमि पर चित्रित पयोहों की ध्वनि, सूर्य की किरणों का स्वर्णमयी भूमि से संश्लेष, विद्युत का चमकना आदि मानव मनोभावों का उद्दीपक ही है।

माघ कृत वियोग का उद्दीपक प्रकृति चित्रण भी अत्यन्त मनोरम है। कदम्ब पुष्प अपने पराग से पतिरहित विरहिणी स्त्रियों के लिये अत्यन्त कष्टकारी हो रहे हैं।[2] यहाँ कदम्ब पराग से पतिवियुक्ता स्त्रियाँ सान्निध्य का स्मरण कर उद्दीप्त हो उठती हैं।

कवि ने नवम सर्ग में सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि आदि का चित्रण उद्दोपन के रूप में प्रस्तुत किया है—चन्द्रोदय का उद्दोपन रूप बड़ा ही मनोरम वर्णन हुआ है—निशाकर बड़े-बड़े तरगरूपी भुजाओं से तटप्रान्त का आलिंगन करने वाले अत्यन्त गम्भीर समुद्र को क्षोभयुक्त कर देता है, इससे धैर्यहीन यादव क्षुब्ध हो उठते हैं अर्थात् वे भी काम-पीड़ित हो जाते हैं।[3] यहाँ तरंगें और उनका आलिंगन उद्दीपन रूप है।

---

१. स्थगयन्त्यमूः शमितचातकार्तस्वरा जलदात्तर्ा स्तुतिकान्तकार्तस्वराः।
जगतीरिह स्फुरितचारुचामीकराः सवितुः क्वचित् कपिशयन्ति चामी कराः॥
—शिशुपालवध, ४।२५

२. शिशुपालवध ६।३७

३. वही, ९।३८

चन्द्रमा का उदय होते ही सुप्त कामदेव कामीजनों को संतप्त करने लगता है—जिस प्रकार चलने-फिरने में असमर्थ कोई वृद्ध व्यक्ति घर के भीतर पड़ा रहता है और छड़ी आदि का सहारा पाकर धीरे-धीरे चलने लगता है, वैसे ही यह कामदेव खिड़कियों के बीच से आने वाली चन्द्र-किरणों को स्फटिक की छड़ी रूप सहारे को प्राप्त कर उठ खड़ा होता है अर्थात् कामीजनों के काम को बढ़ा देता है।[1] यहाँ चन्द्र किरणों के माध्यम से कामीजनों के कामोद्दीपन का चित्रण हुआ है।

वसन्त में विकसित माघ की लता के पराग का पानकर मतवाली भ्रमरी गम्भीरतापूर्वक उच्च स्वर से गूँजने अथवा गायन करने लगती हैं। ये समग्र चित्र मन को उद्दीप्त कर देते हैं।[2]

माघ ने नवम सर्ग में अन्धकार वर्णन के अनन्तर अठारह श्लोकों में चन्द्रोदय का चारु-चित्रण किया है। शेषनाग की सहस्र फणाओं में विद्यमान भास्वर नागमणियों से विनिर्गत प्रभा समूह की भाँति दिखायी देने वाला चन्द्रमा शनैः शनैः निकलता हुआ नायिका के मन्द हास की भाँति प्रतीत हो रहा है।[3]

माघ के वर्णनों में श्रृंगारिकता का बाहुल्य है। वे कहीं तो मानिनी स्त्रियों के प्रणयकोप को दूर करने में अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति का प्रयोग करते हैं और कहीं उनकी प्राकृतिक सम्पदा मानिनियों को समागम के के लिए उत्कण्ठित करती हैं। उन्होंने संभोग श्रृङ्गार के परिपोषण में उद्दीपन विभाव के जो चित्र उपस्थित किये हैं वे अत्यन्त रमणीय एवं स्पृहणीय हैं—कन्दली के पुष्पों को कम्पित कर देने वाला तथा मानिनी स्त्रियों के मन को दूर करने वाला मेघ का पवन वनों को नम्र कर देता है और प्रवासियों को भी कँपा देता है।[4]

यद्यपि यहाँ मेघ—पवन उद्दीपन की दृष्टि से चित्रित हुआ है, तथापि कवि के द्वारा चित्रित कम्पित कन्दली पुष्प उद्दीपन में चार चाँद लगा देते हैं।

---

१. भवनोदरेषु परिमन्दतया शयितोऽलसः स्फटिकयष्टिरुचः।
अवलम्ब्य जालकमुखोपगतानुदतिष्ठदिन्दुकिरणान्मदनः॥
—शिशुपालवध, ९।३९

२. वही, ६।२० ३. वही, ९।२६

४. प्रवसतः सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालितः।
नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुतः॥—वही, ६।३०

## किरातार्जुनीय में प्रकृति का मानवीकरण

मनुष्य और प्रकृति का सृष्टि के आरम्भ से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जगत् के समस्त व्यापारों का आधार मनुष्य ही है। वह अपने व्यापारों अथवा कार्यों में तीव्रता एवं सौन्दर्य लाने हेतु प्रकृति का आश्रय ग्रहण करता है। प्रकृति की सुरम्यता एवं कमनीयता ने ही मनुष्य को 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की अनुभूति करायी है। प्रकृति को हम सृष्टि की एक निधि कह सकते हैं जो मानवजीवन के लिए वरदान स्वरूप हैं। साहित्य अथवा लोक व्यवहार में प्रकृति के माध्यम से अनेक शिक्षायें प्रदान की जाती रही हैं। भर्तृहरि विनम्रता का पाठ फलावनत वृक्षों से, जलयुक्त मेघों से, बहती हुयो नदियों से, धैर्यशाली पर्वत आदि प्राकृतिक उपादानों से ही पढ़ाते हैं। अतः ऐसी प्रकृति को मानव रूप में कल्पना तथा उसका चित्रण करना स्वाभाविक ही है। प्रकृति की व्यापकता मानव मन को इतना प्रभावित करती हैं कि हम अनजाने में भी उससे आह्लादित होते रहते हैं। वर्षाकाल में मेघों का गर्जन, विद्युत की चमक एवं इन्द्रधनुष मन को कितने प्रिय लगते हैं। वसन्त को प्राकृतिक सुषमा किस सहृदय को अपने बहुरंगी परिधान से आकर्षित नहीं कर लेती? सम्भवतः इन्हीं तमाम बहुक्षेत्रीय ज्ञात अज्ञात प्रभावों का अनुभव कर आचार्यों ने महाकाव्य में प्रकृति वर्णन को अनिवार्य लक्षण के रूप में रखा। जब सामान्य मनुष्य प्रकृति का इतनी निकटता से अनुभव करता है तो अलाकसामान्यप्रतिभासंयुक्त कवि उससे कितना तादात्म्य स्थापित कर सकता है, इसकी अनुभूति तो सहृदय काव्यमर्मज्ञ ही कर सकते हैं। काव्य जगत् के स्रष्टा कवि की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं पैनी होती है जो प्रकृति के उन रूपों को भो कल्पना कर लेती है जहाँ प्रकृति स्वयं नहीं पहुँच सकती। वह प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन रूपों के साथ ही उसका मानवीकरण भी कर लेती है। वस्तुतः कवि समद्रष्टा एवं यथार्थ का शिल्पो होता है, वह उस यर्थाथता को स्पष्ट करने के लिए प्रकृति को मानव धरातल पर चित्रित करता है।

प्राचीन काल से ही कवियों ने प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के साथ मानव मन का तादात्म्य स्थापित किया है। प्रकृति के मानवीकरण से दो बातें समक्ष आतो हैं। प्रथम तो मनुष्य और प्रकृति के वास्तविक अथवा यथार्थ सम्बन्ध का परिज्ञान होता है, द्वितीय कवि की दृष्टि से

प्रकृति और मनुष्य के सूक्ष्म निरीक्षण का पता चल जाता है। कवि जितना हो व्यावहारिक होगा प्रकृति उतनी ही उसके काव्य में मानवीकृत होगी।

इस दृष्टि से महाकवि भारवि और माघ, प्राकृतिक उपादानों के मानवीकरण में साहित्य जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों ही महाकवियों का यह रूप-विधान स्तुत्य कहा जायगा। भारवि और माघ ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्य में मानवीकरण के द्वारा एक नयी दिशा प्रदान की है।

भारवि के मानवीकृत रूप अत्यन्त स्वाभाविक एवं रोचक लगते हैं जिनमें एक अपूर्व स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीय में प्रकृति के अनेक रूप विधानों के साथ उसके मानवीय रूप की भी कल्पना की है—

वे वर्षा ऋतु पर पति का, दिशाओं पर सुन्दरियों का, मेघों पर स्तन-मण्डल का, विद्युत पर आभूषण का आरोपण करते हुये प्राकृतिक सौन्दर्य का मानवीकरण कर देते हैं।[1]

महाकवि भारवि की कल्पना प्रवणता पाठक के सम्मुख प्रकृति को एक मानव के रूप में सजीव चित्रित कर देती है—वनराजियां कामिनी रूप हैं, उनके विकसित पुष्प कामिनियों के हास्य के समान हैं। इनमें बाण वृक्ष या कटसरैया निर्मल खुली हुई आँखों के सदृश हैं, छितौन का पराग पाण्डुवर्ण के अंचल के सदृश है। यहाँ पर कामिनी रूपी वनराजियाँ विकसित पुष्प रूपी हास से, कटसरैया के पुष्प सदृश नेत्रों से अवलोकन करती हैं और सप्तवर्ण रूपी आँचल हवा से उड़ने लगता है जिसे वे सम्हालने लगती हैं।[2]

पके हुये धान के पौधे झुके हुये हैं, इस पर कवि अपनी मानवीकरण की कल्पना का आरोपण करता है कि मानों ये धान के पौधे सुरम्य सुगन्धि

१. विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरैश्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः।
इयं कदम्बानिलभर्तुरत्यये न दिग्वधूनां कृशता न राजते॥
—किरातार्जुनीय ४।२४

२. विपाण्डु संव्यानमिवानिलोद्धतं निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः सपुष्पहासा वनराजियोषितः॥—वही, ४।२८

युक्त नीलकमलों को सूंघने के लिये झुक रहे हैं।[1] स्वल्प शब्दों में धानों को एक मानवीय व्यापार में चित्रित कर महाकवि भारवि ने अपनी प्रतिभा का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है।

हिमालय पर्वत के वर्णन में कवि ने प्रकृति का जो मानवीकरण रूप प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। हिमालय इतना ऊँचा है जिससे प्रतीत होता है कि वह सुमेरु पर्वत को जीतने के लिए इतना ऊँचा हो रहा है।[2]

जिस प्रकार कोई मनुष्य दूसरे से ऊँचे उठने या बढ़ने का प्रयास करता है, वैसा ही मानवीय रूप कवि ने हिमालय पर्वत का चित्रित किया है। मानवीय कल्पनाओं के चित्रण में कवि को मानवगत स्वाभाविक व्यवहारों की अनुरूपता एवं उपमाओं के उचित सन्निबन्धन का ध्यान रखना पड़ता है। इन दोनों तथ्यों के निर्वाह में भारवि अत्यन्त दक्ष हैं।

अर्जुन के इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचने पर—वृक्ष वन्दीजन की भाँति गुंजार करते हुये भ्रमरों के शब्दों के व्याज से अर्जुन का स्वागत करते हैं।[3] मानवीकरण की कितनी व्यावहारिक कल्पना है। पवन एक मित्र की भाँति कमलपराग को विकीर्ण करते हुये अर्जुन का आलिंगन करता है।[4]

महाकवि भारवि ने व्यावहारिक जगत् में दृष्टिगत होने वाले स्वाभाविक मानवीय व्यवहारों का प्रकृति के उपादानों में आरोपण कर अपनी काव्य प्रतिभा का जो परिचय दिया है, वह अत्यन्त श्लाघ्य है—जब चक्रवाक पक्षी समीपस्थ भी अपनी प्रियतमा का स्पर्श नहीं कर पाते तब उसकी इस दयनीय दशा को देखकर कमलिनी का पुष्प अपनी पंखुड़ियों को संकुचित कर मनोवेदना प्रकट करने लगता है।[5] जिस प्रकार कोई मनुष्य दूसरे की वेदना में सहानुभूति प्रकट करने हेतु स्वयं दुःखी

१. वही, ४।२६

२. अथ जयाय नु मेरुमहीभृतो रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं नु विलंघयितुं नभः ॥—वही, ५।१

३. किरातार्जुनीय, ६।२

४. वही, ६।३

५. यच्छति प्रतिमुखं दयितायै वाचमन्तिकगतेऽपि शकुन्तौ।
नीयते स्म नतिमुज्झितहर्षं पंकजं सुखमिवाम्बुरुहिण्याः ॥—वही, ९।१४

हो जाता है, उसी रूप में प्रकृति के उपादान भी भारवि की कल्पना शक्ति से मानवीय रूप प्रस्तुत करते हैं ।

महाकवि भारवि प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों का मानवीय रूप प्रस्तुत करने में अत्यन्त कुशल हैं। उन्होंने रात्रि को एक नूतन परिणीता वधू की भाँति कल्पित कर उसमें जो मानवीय भावनाओं का समावेश किया है, वह मौलिक होने से स्तुत्य है। वह (रात्रि) ऐसी नवविवाहिता है जिसके मुख का अन्धकार रूपी घूँघट हट गया है, और वह लज्जावनत हो रही है ।[1]

अन्यत्र चन्द्रमा के सौन्दर्य का मनोरम मानवीकरण रूप द्रष्टव्य है—जिसमें प्राकृतिक सौन्दर्य और अधिक निखर आया है—चन्द्रमा अपने किरण रूपी हाथों से तारिकारूपिणी नायिका का आलिंगन करता है। यहाँ चन्द्रमा में नायक और तारिका में नायिका का आरोपण कर मानवीय प्रणय पद्धति का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह सर्वथा उसकी मौलिक कल्पना का ही साकार रूप है ।[2]

भारवि के प्राकृतिक उपादानों के मानवीकरण की सर्वाधिक विशेषता यह है कि उनके मानवीय आरोपण प्रकृति को आत्मसात् कर लेते हैं। उनमें कोई भेद नहीं रह जाता तथा ऐसे स्थलों में व्यवहार अथवा व्यापार कल्पित किये जाते हैं वे प्रकृति की कोमलता के सर्वथा अनुरूप होते हैं।

ऋतु वर्णन में कवि द्वारा जो सुन्दर मानवीकरण किया गया है, वह अतीव प्रशंसनीय है। वर्षा के अवसान और शरद् ऋतु के प्रारम्भ का एक चित्र अवलोकनीय है—वर्षाऋतु वर है, शरदऋतु वधू है। शरद्रूपी वधू मृणालतन्तु रूप कंकण तथा कुमुदिनी के वनरूप वस्त्रों एवं नील झिण्टी पुष्प रूप बाण को धारण किये है, उसे वर्षा ऋतु रूपी वर अपने सुकोमल करकमलों से स्पर्श करता है ।[3] इस स्थल पर वर

---

१. उद्गतेन्दुमविभिन्न तमिस्रो पश्यति स्म रजनीमवितृप्तः ।
व्यंशुकस्फुटमुखीमतिजिह्मां व्रीडया नववधूमिव लोकः ॥—वही, ९।२४

२. किरातार्जुनीय ९।२७

३. धृतविसवलयावलिर्वहन्ती कुमुदवनैकदुकूलमात्तबाणा ।
शरदमलतले सरोजपाणौ घनसमयेन वधूरिवाललम्बे ॥
—किरातार्जुनीय १०।२४

और वधू के रूप में कवि ने प्रकृति का जो सटीक मानवीकरण किया है, वह सराहनीय है।

किरात के षष्ठ सर्ग में प्रकृतिगत मानवीकरण के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें देखकर बरबस कहना पड़ता है कि भारवि का प्रकृति से बड़ा ही निकट मानवीय सम्बन्ध है।

कवि ने नदियों को सुषमा युक्त रमणी ( वयस्या ) की भाँति देखा है। चिलकती हुयो मछलियां सुन्दर नेत्र हैं, उनके पुलिन प्रदेश स्थूल जघन हैं जिससे वे नदियाँ सुन्दर नेत्रों वाली स्थूल जघना रमणी की भाँति प्रतीत हो रही हैं।[1]

भारवि प्रकृति के जिस उपादान को अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से स्पर्श करते हैं, उसमें वे प्राण फूँक देते हैं। सामान्य एवं प्रचलित प्रकृति तत्त्वों में मानवीकरण आसान है किन्तु अप्रचलित एवं नितान्त नवीन उपादान में मानवीय व्यवहार का आरोपण कठिन है। सीप में रमणी का आरोपण कितना मौलिक एवं चारु बन पड़ा है जो देखते ही बनता है—सीप का मुख खुला हुआ है और उससे स्वच्छ मोतियों की किरणें निकल रही हैं, जो सोकर जगने पर जम्हाई लेने से खुले हुये मुख वाली रमणी से उपमित हो रही है।[2]

भागीरथी के तट पर स्थित छोटे-छोटे वृक्ष जल वेग से पानी में गोते लगा रहे हैं, पुनः ऊपर उठ रहे हैं।[3] इस प्रकार के वर्णनों में एक मानवीय सजीवता है। इनसे ऐसा लगता है मानों कोई मानव समुदाय जल विहार कर रहा है। किरात में प्रकृति के अनेकानेक उपादानों का मानवीय रूप अनेकशः चित्रित हुआ है।[4]

**महाकवि माघ का प्राकृतिक रूप विधान : मानवीकरण के रूप में**

वस्तुतः महाकवि माघ एक कलावादी काव्यकार हैं। उन्होंने शिशुपाल वध में बहुक्षेत्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। उनके महाकाव्य में शास्त्रीय ज्ञान के पश्चात् दूसरा स्थान प्रकृति को हो है जिसके माध्यम

१. स ततार सैकतवतीरभितः शफरीपरिस्फुरितचारुदृशः।
ललिताः सखीरिव बृहज्जघनाः सुरनिम्नगामुपयतीः सरितः॥
—किरातार्जुनीय ६।१६

२. किरातार्जुनीय, ६।१२

३--४. वही, ६।५, ६।९, १०।१०,३४

से कवि ने अपनी उदात्त काव्य सर्जना का सुन्दर रूप समुपस्थित किया है। काव्य मात्र रूक्ष उपदेशों का गेय संग्रह नहीं है अपितु वह मानव मन को अपनी चारुता से आह्लादित करने का साधन है। इस आह्लादकता के रूप-सर्जन में प्रकृति का अपूर्व योगदान है। अतः काव्य में उसके सफल (प्रकृति के) चित्रण के अभाव में काव्य सहृदय सुहृदयहारी नहीं हो सकता। इस दृष्टि से महाकवि माघ ने भी महाकवि भारवि की भाँति प्रकृति के अनेक उपादानों का आलम्बन उद्दीपन एवं मानवीय रूप में सफल चित्रांकन किया है।

महाकवि भारवि के समान माघ ने भी पर्वत के रूप में रैवतक का विभिन्न रूपों में वर्णन किया है और प्रकृतिगत मानवीकरण का मनोरम दृश्य उपन्यस्त किया है।

प्राचीन काल में जिस प्रकार विन्ध्य पर्वत ने सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध करने का प्रयास किया था उसी प्रकार रैवतक पर्वत भी चतुर्दिक् उठते हुये मेघ समूहों से सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये तत्पर है।[1] पर्वत को मानवीय चेतना की भाँति प्रतिस्पर्धात्मक भावना से प्रेरित रूप का सफल चित्रांकन कर कवि ने अपनी उत्कृष्ट काव्य-क्षमता का जो परिचय दिया है, वह अत्यन्त श्लाघ्य है।

महाकवि माघ ने अपने पूर्ववर्त्ती कवि भारवि से विभिन्न स्थलों पर स्पर्धा की है जिससे दोनों काव्यों में अत्यधिक साम्य दृष्टिगत होता है। यदि भारवि लताओं में मानवीय चेतना का आरोपण करते हैं तो माघ भी उनसे पीछे नहीं रहते। रैवतक पर्वत पर लतायें अङ्गनाओं की भाँति प्रतीत हो रही हैं—रैवतक वृक्षोंपर पति का आरोप—दो मोटी मूलशाखा पतिस्कन्ध, नवीन पल्लव हाथ, भ्रमर कज्जल एवं पुष्पों पर नेत्र के आरोपण द्वारा प्रस्तुत प्रकृति के माध्यम से अप्रस्तुत मानवीय चेतना का जो संचरण कविवर माघ ने कराया है, वह उनकी अप्रतिम काव्य प्रतिभा का साकार चित्र है। जिस प्रकार स्त्रियाँ पति के कन्धे पर नवीन पल्लव के समान कोमल हाथों को रखती है और भ्रमर युक्त पुष्पों के समान कज्जल शोभित नेत्रों को हर्ष से विकसित कर लेती हैं, उसी

१. गुर्वीरजस्रं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य मर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः॥

शिशुपालबध, ४।२

प्रकार रैवतक पर्वत वनस्पतियों के स्कन्धों पर हाथ के समान नव-पल्लवों को रखी हुयी तथा भ्रमर समूह से आच्छादित पुष्प रूप नेत्रों वाली ये लतायें शोभायमान हो रही हैं।[1]

भारवि और माघ के प्रकृतिगत मानवीकरण में पर्याप्त साम्य है। दोनों ही महाकवियों ने पर्वतों एवं नदियों का मानवीय रूप में चित्रण किया है। महाकवि भारवि ने हिमालय की नदियों को नवविवाहिता रमणी के रूप में चित्रित किया है।[2] किन्तु माघ ने नदियों को रमणी की भाँति वर्णन नहीं किया है अपितु उन्होंने उनका पुत्रीके रूपमें मानवी-करण किया है जो भारवि की अपेक्षा अधिक उचित प्रतीत होता है क्योंकि पर्वतों से ही नदियों की उत्पत्ति काव्य में प्रसिद्ध है। कवि ने रैवतक पर्वत को पिता मानकर नदियों को पुत्री मानते हुये विवाह के पश्चात् पतिगृह जाती हुई कन्या को देखकर पिता के वात्सल्य का जो चित्रण किया है, वह मानव मनोभावों के कितना निकट एवं मर्म-स्पर्शी है, इसका यथार्थ अनुभव, पुत्री को विदा करते हुये एक पिता ही कर सकता है।[3]

यद्यपि माघ ने भारवि की भाँति मानवीय चित्रों के समाहार में सफलता प्राप्त की है तथापि किन्हीं स्थलों पर उनके इस चित्रांकन में कल्पना की ऊँची उड़ान के कारण कुछ क्लिष्टता आ गयी है। प्राकृतिक उपादानों के मानवीकरण के अन्तर्गत भारवि की भाँति महाकवि माघ ने मेघश्रेणियों का मानव मनोभावों के अनुरूप जो मनोरम चित्रण किया है, वह सर्वथा सराहनीय है। श्रीकृष्ण की सेवा के लिए समस्त ऋतुयें विना क्रम के उपस्थित हो जाती हैं। जिसप्रकार चमकते हुये चंचल विद्युत की तरह नेत्रों वाली युवावस्था के कारण उन्नत स्तनों वाली रमणी कामाधिक्य के कारण विना समय की अपेक्षा किये हुये ही प्रियतम के पास पहुँच चाती है, उसी प्रकार वर्षा न होने से बड़े-बड़े मेघों वाली

---

१. वनस्पतिस्कन्धनिषण्णबालप्रवालहस्ताः प्रमदा इवात्र।
पुष्पेक्षणैस्तम्भितलोचनैर्वा मधुव्रतव्रातवृतैर्व्रततयः ॥ —शिशुपालवध, ४।३५

२. किरातार्जुनीय, ५।१०

३. अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः ॥
—शिशुपालवध ४।४७

चंचल विद्युत से प्रयुक्त मेघ श्रेणियाँ विना क्रम के ही रैवतक पर्वत पर उपस्थित हो जाती है ।[1] मेघ श्रेणियों में नायिका के समस्त मानवीय व्यापारों का आरोपण माघ के प्राकृतिक पाण्डित्य का परिचायक है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने विकसित कमल रूप नेत्रों वाली तथा नीचे को ओर सरकते हुए स्वच्छ वस्त्र के समान बादलों वाली शरदृत्तु को पर्वतराज के मध्य में स्थित प्रिया के समान देखा है ।[2] यहाँ पर कवि ने पर्वतराज को मानवीय राजा तथा शरदृत्तु को प्रिया के रूप में चित्रित कर मानवीय व्यवहार का जो दिग्दर्शन कराया है, वह अत्यन्त सटीक है। यद्यपि प्रकृति का मानवीकरण साहित्य जगत् में बहुश: चित्रित किया गया है किन्तु जो महाकवि माघ का प्रकृति मे मानवीय आरोपण, है, वह प्राय: श्रृंगारिक होते हुये भी मानव मनोभावों में एकरूप हो गया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति के समस्त कार्य एवं व्यापार मनुष्यवत् ही होते हैं।

माघ ने प्रकृति के अत्यन्त सूक्ष्म उपादानों में मानवीय व्यवहारों का सुन्दर आरोपण किया है । उन्होंने हंस, कोकिल आदि पक्षियों से लेकर वन के फूलों से विशाल वृक्षों तक मानवीकरण किया है । इस क्षेत्र में अपने विस्तृत वर्णनों से वे महाकवि भारवि से आगे निकल जाते हैं। यद्यपि मानव मनोभावों का सुन्दर आरोपण करने में महाकवि भारवि कम कुशल नहीं है तथापि माघ के सुविस्तृत वर्णन अवश्य ही उन्हें आगे कर देते हैं।

भारवि की ही भाँति महाकवि माघ ने भी नवपल्लवों का मानवीकरण किया है । उन्होंने भ्रमरों के गुन्जार एवं पल्लवों के कम्पन में यादव रमणियों को बुलाने की कल्पना की है ।[3]

प्रकृति द्वारा आतिथ्य का सुन्दर चित्रण भारवि ने भी किया है। अर्जुन के इन्द्रकील पर्वत के समीप पहुंचने पर मधुप गुन्जार एवं पुष्प प्रक्षेपादि द्वारा उनका स्वागत होता है ।

---

१. शिशुपालवध, ६।२५

२. स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षम् क्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव ।
शरदमच्छगलद्वासनोपमा क्षमधनायधनाशनकीर्तनः ॥
—शिशुपालवध, ६।४२

३. वही, ७।२५

माघ ने पुष्करिणी द्वारा यादव रमणियों के आतिथ्य का सुन्दर मानवीकरण किया है—तालाब में कमल विकसित हैं, पक्षी कलकूजन कर रहे हैं तथा वह श्वेत फेन से युक्त हैं, इस प्रकार की पुष्करिणी में आतिथ्य की सामग्री का आरोपण किया गया है। जैसे कोई अतिथि के आने पर उसे अर्घ देता है वैसे ही वह पुष्करिणी विकसित कमलों से अर्घ देती है, फेन से हंसती या मुस्कराती हुई पक्षियों के कलरव के व्याज से कुशल क्षेमादि पूछती है तथा तरंगरूपी हाथों से पैर धोने के लिए जल प्रदान करती है।[1] इस प्रकार माघ का मानवीकरण अत्यन्त स्पृहणीय एवं स्वाभाविक हैं।

किरात में रमणियों के जल में प्रवेश करने से पूर्व गन्धर्व जल की थाह लगाते हैं। महाकवि माघ ने इसका मानवोकरण कर दिया—रमणियाँ कामो पुरुष के मन के समान जल की गहराई का पता लगाकर ही प्रवेश करती हैं।[2] जल को कामो पुरुष की चंचलता के रूप में चित्रित कर कवि ने उसे मानवीय रूप दे दिया है।

महाकवि माघ ने प्रकृति को मानवीय मनोभावों के अनुरूप चित्रण में मनोवैज्ञानिक पक्ष का भी सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। रमणियों ने जल में प्रवेश किया, उनके मुख से रक्त कमल तिरस्कृत हो गये तथा उनके दोनों नेत्रों से नोलकमल भी पराजित हो गये। भ्रमरियाँ गुंजन कर रही हैं। इस पर कवि यह मनोवैज्ञानिकता उपस्थित करता है कि रक्त कमल यह सोचकर बिना लज्जा के भ्रमरियों के गुंजन के व्याज से नाच-गा रहा है क्योंकि समान प्रतिद्वन्द्वी नोलकमल भी उनके नेत्रों से पराजित हो चुका है। रक्त कमल को अपनी हार पर किसी के हँसने का भय नहीं है तभी तो वह प्रसन्नता से नाच-गा रहा है।[3] व्यवहार में भी देखा जाता है कि जब कोई दो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति से परास्त हो जाते हैं तब उन्हें आपस में किसी के हँसने का भय नहीं रहता।

माघ के प्राकृतिक मानवी रूप पदे-पदे परिलक्षित होते हैं। शृंगार का मानवीकरण करने में तो सिद्धहस्त ही हैं। उन्हें लोकव्यवहार के

---

१. उत्क्षिप्तस्फुटितसरोरुहार्घ्यमुच्चैः सस्नेहं विहगरुतैरिवालपन्ती।
नारीणामथ सरसी सफेनहासा प्रीत्येव व्यतनुत पाद्यमूर्मिहस्तैः॥
—शिशुपालवध, ८।१४

२. वही, ८।१७ ३. वही, ८।२३,

अनुरूप व्यापारों का प्रकृति पर आरोपण बड़ा रुचिकर लगता है।

पश्चिम दिशा में सूर्यास्त हो रहा है। इस पर कवि कल्पना करता है—पश्चिम दिशारूपी गणिका किरणरहित सूर्यरूपी धनहीन कामुक को आकाशरूपी घर से निकाल रही है।[1] जिस प्रकार वेश्या सौन्दर्यादि से सम्पन्न भी कामुक को धनाभाव में प्रश्रय नहीं देती, इससे प्रेम नहीं करती वैसे ही पश्चिम दिशा भी सूर्य को निकाल देती है। इस प्रसंग में कवि ने जो मानव मनोभावों के अनुरूप प्रकृति में संचार कराया है, वह उनका वाग्वैदग्ध्य ही है।

भारवि और माघ के मानवीकरण में पर्याप्त साम्य है। दोनों कवियों ने सूर्य, दिशा एवं अन्यान्य प्राकृतिक उपादानों में मानव चेतना का संचार कराया है। परन्तु प्राकृतिक उपादानों में मानवीय व्यवहारों के आरोपण में माघ भारवि के ऋणी हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि माघ उस पूँजी का विस्तार कर समृद्धिशाली बन गये हैं। प्रत्येक वस्तु का आदान दो प्रकार से होता है—एक तो उस प्राप्त वस्तु का उसी रूप मे प्रयोग तथा दूसरा उस प्राप्य के आधार पर अपना पल्लवन अथवा उसका विकास। माघ दूसरे प्रकार के वस्तुग्राहक हैं जिन्होंने भारवि से एक दिशा ली है और उसमें वृद्धि अपने ढंग से की है। अतः मौलिक रूप से हम यही कहेंगे कि दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

महाकवि भारवि के सदृश माघ ने भी अस्त होते हुये सूर्य एवं चन्द्र की मानव मनोभावों के अनुरूप कल्पना की है। महाकवि माघ ने अस्त होते हुये चन्द्रमा का जो मानवीकरण किया है, वह अवलोकनीय है—चन्द्रमा पश्चिम दिशा की ओर अस्त हो रहा है। पूर्व दिशा कान्तियुक्त हो रही है। इस पर कवि कल्पना करता है कि चन्द्रमा रूपी नायक पर जो पश्चिम दिशा रूपी स्त्री के साथ गमन करने के कारण निम्नता को प्राप्त हुआ है, पूर्व दिशारूपी रमणी हँस रही है।[2]

महाकवि माघ ने भारवि की ही भाँति अनेक प्रकार से सूर्य का मानवीकरण किया है। सूर्योदय वर्णन में माघ ने जो मानव व्यापार के

---

१. शिशुपालवध, ९।१०

२. उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे, पतति न वरमिन्दुः सो परामेष गत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति, स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठांगनायाः॥
—शिशुपालवध ११।१२

अनुकूल चित्रण किया है, वह द्रष्टव्य है—बड़ी-बड़ी रस्सियों के समान किरणों से चंचल पक्षियों के कलरव रूप कोलाहल को करती हुयी दिशायें बड़े भारी घड़े के समान इस सूर्य को समुद्र के पानी के भीतर से बाहर निकाल रही है।[1]

सूर्य का बिम्ब एक घड़ा है। उसकी किरणें रस्सियां हैं। दिशायें पानी खींचने वाली वधुयें हैं जो प्रातःकालिक पक्षियों का कलरव हो रहा है, वह स्त्रियों के द्वारा खींच लेने की खुशी में की जाने वाली ध्वनि है। माघ इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते अपितु वे उस ताम्र वर्ण सूर्य पर और मानवीय आरोपण करते हुए सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं—यह बिम्ब लाल क्यों है? कवि कल्पना करता है कि मानों जब भीतर पड़ा था तब अग्नि की ज्वाला से खूब तपाया गया होगा।[2]

माघ ने ऊपर दिशाओं में जो स्त्रीसुलभ चेष्टाओं का मनोरम समाहार किया है, वह कितना स्वाभाविक है जो वस्तुतः प्रातःकालिक सौन्दर्य का मानवीय रूप प्रस्तुत करता है।

महाकवि माघ ने प्रकृति के एक ही उपादान में कालभेद से अनेकानेक कल्पनायें की हैं। वही सूर्य कहीं कामुक के रूप में चित्रित होता है, वहीं दिग्वधुओं की हँसी का पात्र बनता है और कहीं घण्टे का रूप प्राप्त करता है। इन सबके द्वारा जहाँ कवि ने एक ओर प्रकृति को मानवीय रूप दिया है वहीं अपने सूक्ष्म निरीक्षण का भी सुन्दर परिचय दिया है। सूर्य के बाल रूप का वात्सल्यपूर्ण चित्र द्रष्टव्य है—

उदयाचल के शिखर रूपी आँगन में रेंगते हुये, खेलते हुये बाल सूर्य को देखकर पक्षियों के कलरव के व्याज से आकाश रूपिणी माँ उसे बुला रही है।[3] जिस प्रकार आँगन में घुटने के सहारे चलते हुये छोटे बच्चे को

१. विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहगालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥
—वही, ११।४४

२. शिशुपालवध ११।४५

३. उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥—शिशुपालवध, ११।४७

हँसती हुयी स्त्रियाँ देखती हैं और उच्च स्वर से अपनी ओर बुलाती है, तब वह अपने कोमल-कोमल हाथों को फैलाकर गोद में जाने के लिये आगे बढ़ता है। ऐसा ही चित्र कवि ने सूर्य को बालक मान कर खींचा है। वहाँ सर्य पर बालक का आरोपण, विकसित कमलिनियों पर मुस्कराती हुयी स्त्रियों का तथा आकाश पर माता का आरोपण किया गया है।

प्रातः, सन्ध्या, चन्द्र, रात्रि, वन, नदी, पर्वत आदि अनेक प्रकृति के अंग सबके समक्ष समान रूप से अपना रूप प्रदर्शित करते हैं किन्तु सभी उसके प्रति न तो उतना आकृष्ट होते हैं और न अनुभव ही करते हैं। किन्तु कवि जब इन्हीं का रूप अपने शब्द परिधान से संवारकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, तब हमें प्रकृति की सुषमा का तथा उसके मानवीय रूप का आभास होता है। साहित्य जगत् में वेदों से लेकर आद्यावधि विभिन्न कवियों द्वारा प्रकृति का सुन्दर प्रस्तुतीकरण हुआ है। इतना अवश्य है कि कालक्रमानुसार कवियों ने अपनी काव्य शैली से प्रकृति को भी अलंकृत किया है। इस परम्परा में वाल्मीकि, कालिदास ने प्रकृति के स्निग्ध एवं कोमल रूप को जितनी निकटता से चित्रित किया है उतना परवर्ती कवियों ने नहीं किया। इस क्षेत्र में एक नयी दिशा तो भारवि ने दी जिसका माघ ने विस्तार किया। यद्यपि इस अलंकरण से प्रकृति के वर्णन में कोई न्यूनता नहीं आयी, जबकि प्रकृति चित्रण में विशेष दृष्टि होने से अन्य विषय कुछ गौण होते गये।

प्रस्तुत प्रसंग में भारवि और माघ काव्यों के आधार पर प्रकृति के विभिन्न आयामों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

**प्रातः**

सम्पूर्ण प्राणिजगत् के प्रायः समस्त कार्य एवं व्यापार इसी समय प्रारम्भ होते हैं। प्रातःकाल में ही लोक को उद्बुद्ध करने वाले सहस्त्र किरण भगवान् भुवन भास्कर का उदय होता है। प्रातः का प्रभाव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे प्रकृति के अन्य तमाम अंग भी रमणीयता को प्राप्त करते हैं। पुष्पों का विकास, पक्षियों का कलरव, मन्द पवन की शीतलता आदि सभी एक नया रूप प्राप्त करते हैं। मानव मन में भी एक नवीनता आती है।

भारवि एवं माघ दोनों कवियों ने प्रातःकाल का सुन्दर वर्णन किया है। महाकवि भारवि ने अपने किरात महाकाव्य में प्रातः का मनोरम चित्रण किया है। उन्होंने प्रातः वर्णन में उन व्यापारों का उल्लेख किया है

जिनसे प्रभात-काल की सूचना होती है अथवा जिनसे प्रातः होने का पता चलता है।

सुरत व्यापार में लगे गन्धर्वों एवम् अप्सराओं को बन्दीजनों के स्तुतिपाठ से प्रभात का पता चलता है।[1] प्रातःकालिक सुगन्धित वायु मन्द-मन्द बहने लगती है। कवि को ऐसा लगता है मानों वह रति-खेद से निमीलित नेत्रों वाली अप्सराओं की सेवा करने के लिये प्रवृत्त हो रहा है।[2]

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में प्रातःकालिक प्रकृति के विभिन्न उपादानों की तुलना के चित्रांकन के साथ ही मानव-व्यवहारों का भी सुन्दर वर्णन किया है।

प्राचीनकाल में राजाओं को प्रातः जगाने के लिए बन्दीजन प्रभात-कालिक गायन करते थे। इस परम्परा के अनुसार प्रातःकाल बन्दीजन भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने हेतु गान करने लगते हैं।[3]

इस स्थल पर माघ ने भारवि के समान ही वर्णन किया है। दोनों काव्यों में प्रातः वैतालिकों का स्तुतिपाठ चित्रित किया गया है। प्रातःकाल सुन्दर वायु बहने से कुछ आलस्य मिश्रित निद्रा होती है। एक पहरेदार के रात्रि-कर्त्तव्य का समय पूरा हो गया है, वह अगले पहरेदार को जगा रहा है किन्तु वह अस्पष्ट बोलते हुये नहीं जाग रहा है।[4] प्रातःकाल में स्वाभाविक रूप से मनुष्य की ऐसी ही अलसायी स्थिति होती है।

प्रातः पशुजगत् में भी एक चेतना आती है, घोड़ा सामने बिखेरी हुयी घास को नथुनों से स्फुरित करता हुआ खाने की इच्छा कर रहा है।[5] प्रातःकाल सुन्दर वायु बह रही है जो रमणियों की लुप्त कामाग्नि को उद्दीप्त करने में भूमा का कार्य कर रही है।[6]

माघ ने यहाँ प्रभातकालिक वर्णन में शृङ्गारिक चित्रण किये हैं, वहीं वे प्रातःकाल अग्निहोत्रियों के घर में होने वाले हवन का भी उल्लेख

१. किरातार्जुनीय ९।७४। २. वही ९।७५–७६। ३. शिशुपालवध ११।१। ४. शिशुपालवध ११।४। ५. वही ११।११। ६. वही ११।१७।

करना नहीं भूलते। अग्निहोत्रियों के घर में शास्त्रोक्तविधि से ऋत्विक् उचित मन्त्र द्वारा हवन कर रहे हैं, अग्नि सुन्दर हविष्यान्न को जला रहा है।[१] तप्त स्वर्ण के समान पिंगलवर्ण सूर्यकिरणों का समूह वडवाग्नि की तरह प्रतीत होता हैं जो मानों संसार को जलाने के लिये उद्यत है।[२] सूर्य राजा को भाँति उदयाचल के शिखररूपी सिंहासन पर क्षणभर बैठकर, प्रणाम करने की इच्छुक प्रजा को सन्तुष्ट कर प्रजा के निरीक्षणार्थ उठ खड़ा होता है।[३] सात घोड़ों वाला सूर्य कमल को विकसित कर भ्रमरों के गुञ्जनरूपी गीत से समादृत हो कमल रूपी घर के अन्दर सोयी हुई कमलश्री को सम्मानपूर्वक देख रहा है।[४] महाकवि माघ का प्रसिद्ध प्रभातवर्णन का यह श्लोक अत्यन्त कमनीय है—कुमुदवन सौन्दर्यहीन हो रहा है, कमल समूह शोभा को प्राप्त कर रहा हैं, उलूकवृन्द दिन में न देख सकने के कारण अप्रसन्न हो रहा है, चकवे को दिन में प्रिया का सान्निध्य मिलेगा, इससे वह प्रसन्न हो रहा है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है, सूर्य उदय हो रहा है। यह सब स्वाभाविक ही है क्योंकि भाग्य से मारे हुये लोगों का विचित्र परिणाम होता है।[५] यहाँ माघ ने प्रभातकाल का तो चित्र खींचा ही है, साथ में सृष्टि के अथवा स्रष्टा के वैचित्र्य का भी निरूपण कर दिया है।[५]

वस्तुतः महाकवि माघ प्रकृति के सभी रूपों का चित्रण करने में अत्यन्त पटु हैं। सूर्य रात्रिरूपी कल्प के बीतने पर लक्ष्मी युक्त विष्णु भगवान् की भाँति उदयकालिक अरुणिमा से युक्त आकाश रूपी क्षीरसागर में सो रहा है। सूर्य-विष्णु, अरुणिमा-लक्ष्मी, रात्रि-कल्प और आकाश-क्षीरसागर हैं।[६]

---

१. वही ११।४१। २. वही ११।४३।

३. क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणःक्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः॥
शिशुपालवध ११।४८।

४. वही ११।६१। ५. वही ११।६४।

६. प्रलयमखिलतारालोकमह्नाय नीत्वा श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागां दधानः।
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते॥
शिशुपालयध ११।६६।

माघ ने प्रातःकाल का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है। शिशुपाल के एकादश सर्ग का प्रभात-वर्णन शृंगार एवं वीर दोनों रसों की सुन्दर व्यंजना भी करा देता है। एक ओर सूर्य कामुक है तो दूसरी ओर वह ऐसा वीर है जो अपने शत्रुओं का विनाश कर प्रकट हो रहा है। यादवांगनाओं की रतिक्रीड़ा से व्यंजित होने वाला शृंगार एवं श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपालवध रूपी भावी परिणाम दोनों सूर्यरूपी नायक के माध्यम से चित्रित हुये हैं।

महाकवि माघ ने प्रातः का जितना विशद एवं विभिन्न प्रतीकों के साथ वर्णन किया है, उतना भारवि-काव्य में नहीं प्राप्त होता। महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन वस्तुतः साहित्य में सर्वप्रमुख है। इस प्रकार का रोचक मानवीय एवं स्वाभाविक प्रभात-वर्णन अन्यत्र दुर्लभ ही है।

**सन्ध्या—**

जो महत्त्व प्रातः का है, उससे कम सन्ध्या का नहीं है। जो मानवीय व्यापार प्रातः प्रारम्भ होते हैं उनकी समाप्ति एवं विश्राम सायंकाल होता है।

सन्ध्या का वर्णन भारवि एवं माघ दोनों महाकवियों ने किया है। महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय में सायंकाल का मनोरम चित्रण किया है—प्रातः पक्षी आहार की खोज में निकलते हैं और सायं निवासार्थ अपने नीड़ों की ओर चल देते हैं। दोनों समय अन्धकार नहीं रहता। प्रभात और सायं के लक्षण एक से होते हैं।[1]

यहाँ कविवर भारवि ने "उदेति सविता ताम्रस्ताम्रो ऽस्तमैति च" का विस्तार करते हुये स्वाभाविक चित्रण किया है। सायकाल आकाश का पश्चिमी भाग मेघमालाओं से आच्छादित लहरों से संक्रान्त प्रवालपुञ्ज को

---

१. आकुलश्चलपतत्रिकुलानामारवैरनुदितौषसरागः।
आययावहरिदश्वविपाण्डुस्तुल्यतां दिनमुखेन दिनान्तः॥
किराता ९।८।

किरणों से रंजित समुद्र की भाँति शोभायमान होता है।[१] सन्ध्या के समय लोग उसे हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं, इस प्रकार लोग सन्ध्या से अपना प्रेम जोड़ते हैं किन्तु वह शीघ्र ही चली जाती है।[२] सायंकाल कमल, धीरे-धीरे बन्द होना प्रारम्भ कर देते हैं। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि चक्रवाक पक्षी की वियोगजन्य व्यथा के कारण वह कमल उससे सहानुभूति के कारण संकुचित हो रहा है।[३]

इस प्रकार महाकवि ने सायंकाल का स्वाभाविक चित्रण किया है।

भारवि की भाँति महाकवि माघ ने भी सन्ध्या का मनोरम दृश्य उपस्थित किया है—सायंकालिक वायु से कम्पित लताओं के माध्यम से वृक्ष मानों पक्षियों को अपने निवास स्थान की ओर बुला रहे हैं, बोलते हुये पक्षी मानों उसका प्रत्युत्तर दे रहे हैं।[४] सायंकाल पक्षी अपने नीड़ों की ओर चल देते हैं। भारवि ने इस तथ्य का चित्रण स्वाभाविक रूप से किया है जबकि माघ ने उसे मानव मनोभावों के अनुरूप चित्रित किया है। कुसुम्भ पुष्प के समान लालिमा युक्त पितरों की जननी सन्ध्या रूपिणी ब्रह्मा की मूर्ति जनसमूह द्वारा नमस्कृत होती हुयी अपनी प्रकृति का कभी त्याग नहीं करती।[५] यह वर्णन भारवि के अनुसार ही हुआ है। सायंकाल सूर्य विरल धूप की कान्ति से मन्द दृष्टि वाले, क्षीण शरीर वृद्ध पुरुष की भाँति प्रतीत हो रहा है[६]। आधा अस्त हुआ सूर्य का बिम्ब ब्रह्मा के नख से विदीर्ण हिरण्मय से उत्पन्न ब्रह्माण्ड के एक टुकड़े के समान आवृत्त हो रहा है।[७] कमलिनी रूपी नायिका दिनभर अपने प्रियतम सूर्य को निर्निमेष देखती हुयी सायंकाल सूर्य के अस्त हो जाने से दुःखित हो अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को बन्द कर लेती हैं।[८]

भारवि और माघ, दोनों कवियों के सन्ध्यावर्णन में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है।

---

१,२,३. किरातार्जुनीय ९।९, ९।१०, ९।१४।

४. अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलितलतांगुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः॥
शिशुपालवध ९।४।

५,६,७,८. शिशुपालवध ९।१४, ९।३, ९।९, ९।११।

## सूर्यास्त

महाकवि भारवि एवं माघ ने अपने-अपने महाकाव्य में यथास्थान प्रकृति के उपादान स्वरूप सूर्यास्त का चित्रण किया है।

महाकवि भारवि ने सूर्य के अस्त होने का मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रण किया है—भगवान् सूर्य सुरवधुओं को विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रमणाभिलाषी जानकर उनको अवसर देने के लिये पश्चिम समुद्र की ओर चलने लगते हैं।[1] सूर्य ने दिन में खूब छककर किरण रूपी अंजलियों से कमलों के मकरन्द का पान किया है जिससे वह मत्त होकर पृथ्वी पर लुढ़क रहा है।[2] धीरे-धीरे तप्त सूर्य सायंकाल लोहितवर्ण का हो जाता है जो नेत्रों के लिये अवलोकनीय है। चक्रवाक पक्षी दुःखित होने लगते हैं।[3] जिस प्रकार आश्रित व्यक्ति जब अपने आश्रय का परित्याग कर देता है तब उसके गौरव में न्यूनता आ जाती है और वह मलिन और उदास रहता है, उसी प्रकार सूर्यबिम्ब अर्ध भाग के अस्त हो जाने पर सूर्य का किरण पुञ्ज पूर्व दिशा का परित्याग कर पश्चिम दिशा में संहत होकर निष्प्रभ हो रहा है।[4] शनैः शनैः सूर्य न जाने कहाँ विलीन हो जाता है, न जाने पहाड़ के घने जंगलों में प्रवृष्ट हो जाता है अथवा पृथ्वी में घुस जाता है या समुद्र में डूब जाता है। उस बुड्ढे का तो पता नहीं चलता कि क्या हुआ ?[5] भारवि को सूर्य के तिरोहित होने पर सन्देह बना रहता है कि वह कहाँ चला जाता है। वस्तुतः सूर्यास्त का यह अत्यन्त स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण है।

महाकवि माघ ने भी भारवि की भाँति नवम सर्ग में सूर्यास्त का वर्णन किया है—सूर्य अपने सन्ताप को न सहन कर पाने के कारण पश्चिम

---

१. किरातार्जुनीय ९.१।   २. वही ९.३।

३. वही ९.४।

४. मुक्तमूललघुरुज्झित पूर्वः पश्चिमे नभसि संभृतसान्द्रः।
सामिमज्जति रवौ न विरेजे खिन्नजिह्म इव रश्मिसमूहः॥
किरातार्जुनीय ९.५।

५. वही ९.७।

के जल में कूदने की इच्छा से अस्ताचल पर दौड़कर चढ़ जाता है।[१] सूर्यास्त के समय कोई रमणी रति की उत्कण्ठा से सूर्य और अस्ताचल के मध्य की दूरी नाप रही है[२] जबकि भारवि के एतद्विषयक वर्णन में सूर्य रमणियों के रमणाभिलाषा को जानकर पश्चिम दिशा की ओर खिसकने लगता है।

अस्तकालिक सूर्य अड़हुल के पुष्प के समान लाल कान्तिवाला हो जाता है और वह दिशाओं के कंकण की भाँति प्रतीत होने लगता है।[३] सूर्य की प्रभारूपी प्रियतमायें तेजोराशि सूर्य के परलोक चले जाने पर अग्नि प्रविष्ट होकर सती हो जाती हैं।[४]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारवि एवं माघ दोंनों महाकवियों ने प्रकृति-चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है। किरात एवं शिशुपाल में आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति का चित्र खींचा गया है। इसके साथ ही दोनों काव्यों में प्राकृतिक उपादानों का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मानव मनोभावों के अनुरूप मानवीकरण भी किया गया है। यद्यपि दोनों काव्यों में प्रकृति-चित्रण प्रायः समान है किन्तु भारवि की अपेक्षा माघ की प्रकृतिचित्रण-कला अधिक चारुत्व-पूर्ण है।

१. शिशुपालवध ९।५। २. वही ९।२। ३. वही ९।८।
४. वही ९।१३।

# चरित्र-चित्रण

किरात तथा शिशुपाल के पात्रों का चरित्र-चित्रण करने से पूर्व नायक तथा नेता शब्द का विचार आवश्यक है। ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। नायक शब्द की उत्पत्ति "नी" धातु से ण्वुल् प्रत्यय के योग से होती है इसी प्रकार "नत्" धातु से तृच् प्रत्यय का योग होने पर "नेता" शब्द बनता हैं। दोनो का अर्थ हैं—ले जाने वाला अर्थात् जो कथावस्तु को फल की ओर ले जाता हैं वह नायक या नेता है।

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने अपने नाटयदर्पण में प्रधान फल का प्राप्तकर्त्ता तथा व्यसनराहित्य रूप गुणों से युक्त होना नायक का मुख्य लक्षण बताया है।[1] विभिन्न नाटयलक्षण-ग्रन्थों में आचार्यों ने नायक के अनेक सामान्य गुणों का उल्लेख किया है तथा उसके चार भेद किये हैं जो इस प्रकार हैं—धीरललित, धीरशान्त, धीरोद्धत एवं धीरोदात्त। इसके गुणों का भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है। सामान्यतया नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकप्रिय, शुचि, वाग्मी, सत्कुलोत्पन्न, स्थिर युवा, बुद्धिमान, उत्साह सम्पन्न, स्मृतिमान, प्रज्ञ, कलाशील, मानी, शूर दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रचक्षु तथा धर्मपरायण होता है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने भी इन्हीं अपेक्षित गुणों से युक्त व्यक्ति को नायक माना है।[3]

**अर्जुन**

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के नायक अर्जुन हैं जो लक्षणग्रन्थोक्त धीरोदात्त के समग्र गुणों से समलंकृत हैं। भारवि ने नायकभूत अर्जुन के समस्त गुणों का काव्य में सन्निवेश किया है। उनकी आकृति, वीरता, कार्य-व्यापार, गाम्भीर्य, त्याग, नम्रता आदि का यथास्थान सुन्दर चित्रण हुआ है। महाकाव्य में अर्जुन का प्रवेश तृतीय सर्ग से होता है। यद्यपि

---

१. नाटयदर्पण चतुर्थ विवेक का० १६०। २. दशरूपक २।१-२।
३. साहित्यदर्पण ३।३०।

द्रौपदी ने भीम, नकुल एवं सहदेव के गुणों की चर्चा के साथ प्रथम सर्ग में अर्जुन के भी शौर्य का एक श्लोक में वर्णन किया है किन्तु वह मात्र प्रसंगपूर्त्यर्थ ही है।[1]

पात्रों की आकृति को चित्रित करने में भारवि अत्यन्त कुशल हैं, वे शब्दों से आकृति को इस प्रकार वर्णित करते हैं कि वर्ण्य पात्र समक्ष उपस्थित सा प्रतीत होने लगता है। महाकाव्य में यत्र तत्र अर्जुन के शरीर-सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है—

उनके शरीर का रंग मरकतमणि के समान है, पिंगल वर्ण की जटाओं से वे तमाल वृक्ष के समान प्रतीत होते हैं।[2] उनकी आकृति उदार है और वे मानों मनुष्य रूप में स्थित बदरिकाश्रमवासी नारायण के अवतार हैं। वे सूर्य सदृश हैं।[3] वह वेदी के निकट ज्वालाजाल से विस्तृत हवि की अभिलाषा करते हुये अग्नि देव के समान प्रतीत हो रहे हैं। प्रायः कवि ने उनकी आकृति को तेजोराशि सम्पन्न एवं सूर्य[4] तथा अग्नि[5] सदृश प्रकाशमान चित्रित किया है। तपोरत अर्जुन कवच पहने हुये यज्ञोपवीत के स्थान पर डोरी सहित धनुष को धारण किये हुये हैं जिससे वे विशाल इन्द्र धनुष से परिवेष्टित घने वनों से व्याप्त हिमालय की तरह शोभायमान हो रहे हैं।[6] वे दानवों के नगर को भ्रष्ट करने की इच्छा रखने वाले साक्षात् शिव के समान हैं अन्तर केवल इतना है कि उनके ( अर्जुन ) तीसरा नेत्र नहीं है।[7]

इन्द्र प्रेषित अप्सरायें अर्जुन को सम्मोहित करने के लिये आती हैं किन्तु उन्हें देखते ही स्वयं कामासक्त हो जाती हैं क्योंकि युवावस्था की रम्यशोभा मन का हरण कर लेती है।[8] इसके द्वारा कवि ने नायक अर्जुन की शारीरिक आकृति, रम्यता, शोभा, लावण्य आदि समस्त गुणों की व्यंजना की है।

अर्जुन जहाँ अत्यन्त कोमल एवं रम्य हैं वहीं अत्यन्त पुष्ट एवं कठोर भी हैं क्योंकि उनके स्कन्ध प्रदेश बलीवर्द के सदृश हैं तथा उनकी ग्रीवा स्थूल है। पत्थरों की चट्टान के समान उनका वक्षःस्थल है।[9]

---

१. किरातार्जुनीय १।३५। २. वही ६।२३। ३. वही १४।४१।
४. वही १२।८,१५। ५. वही १२।७। ६. किरातार्जुनीय १२।९।
७. वही १२।१४। ८. वही १०।१७, ४०। ९. वही १४।४०।

अर्जुन के अंग प्रत्यंग को देखकर सुरसुन्दरियों के नेत्र जितने तृप्त हुये उतने विकसित कमलों के समूह तथा सप्तच्छद के गुच्छों और मालती पुष्पों से भी तृप्त नहीं हुये।[1] भारवि की वर्णन शैली कितनी प्रभावी है कि वे पाठक को भी कुछ सोचने के लिये छोड़ देते हैं। इससे यह व्यञ्जित होता है कि मालती और सप्तच्छद ( छितवन ) एवं कमल शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले अर्जुन के नेत्र हैं। उनकी आकृति में रुचिरता तथा औदार्य की विद्यमानता है।[2]

आकृतिगत सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कवि ने सूक्ष्म बातों का भी ध्यान रखा है। कहीं ऐसा न हो पाठक उनके पात्रों की आकृति से मात्र उनके बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रह जाय और नायक निर्गन्ध किंशुक ही हो जाय। इस दृष्टि से उन्होंने अर्जुन के शारीरिक सौन्दर्य अथवा आकृति में निहित गुणों का भी प्रख्यापन किया है—

आकृति के अनुकूल उनका उद्योग महान् है। प्रयत्नानुकूल ही उनकी क्रियायें हैं जो किसी के द्वारा अतिक्रान्त नहीं की जा सकती हैं। क्रिया के अनुसार उनका तप भी प्रकृष्ट है और तप के समान ही विजयरूप फल-युक्त उनका ऐश्वर्य है।[3]

अर्जुन अत्यन्त आज्ञाकारी एवं विनम्र हैं। वे अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर से जाओ, "तपस्या करो" इस आज्ञा को पाकर विद्यार्थी की तरह विनम्र भाव से वेदव्यास के समक्ष उपस्थित होते हैं।[4] अन्यत्र वह (अर्जुन) मुनि वेशधारी इन्द्र का अतिथिसत्कारोचित पूजन भी करते हैं।[5] इन्द्र अर्जुन को मोक्ष का परामर्श देते हैं किन्तु अर्जुन बड़ी विनम्रतापूर्वक इन्द्र की वाणी की सराहना करते हैं और उत्तर देते हैं।[6] वे कहते हैं—मैं क्षत्रिय हूँ, अग्रज युधिष्ठिर की आज्ञा पालन करने के लिए सदैव तैयार रहता हूँ।[7] इससे अर्जुन की आज्ञाकारिता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

---

१. वही १०।३९। २. वही ६।१।

३. सदृशमतनुमाकृतेः प्रयत्नं तदनुगुणामपरैः क्रियामलङ्घ्याम्।
दधदलघु तपः क्रियानुरूपं विजयवतीं च तपःसमां समृद्धिम्॥
किरातार्जुनीय १०।१३।

४. किरातार्जुनीय ३।२४। ५,,६,७,. वही क्रमशः ११।९, ११।३७, ११।४५।

भारवि के पात्रों की एक सबसे बड़ी विशेषता मर्यादा-पालन है जिसका उल्लंघन अर्जुन क्या द्रौपदी और भीम भी नहीं करते। काव्य का मूल्यांकन विशेषकर नायक के गुणों के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टि से अर्जुन में जो स्वाभाविक मानवोचित गुण हैं, वे काव्य की ओर कवि की शैली को उत्कृष्ट स्थान प्रदान करते हैं।

काव्य का फलागम अर्जुन के तपोगत शौर्य पर निर्भर करता है। अतः उनका तप अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है जिससे नायक की जितेन्द्रियता संकल्प के प्रति अवधानता एवं सहनशीलता आदि गुणों की पुष्टि होती है।

किरातार्जुनीय में दो स्थानों पर अर्जुन की उग्र तपस्या का वर्णन हुआ है। प्रथम इन्द्र को प्रसन्न करने हेतु तपस्या तथा द्वितीय इन्द्र के आदेशानुसार भगवान् शंकर के प्रसादनार्थ की जाने वाली तपस्या।

महर्षि वेदव्यास ने अर्जुन को ही उग्र तपस्या करने में सफल समझा। वे उन्हें (अर्जुन) उपदेश देते हुये कहते हैं--हे अर्जुन ! तुम मेरे योग से अपने तेज की अभिवृद्धि करते हुये बिना अपने कर्त्तव्य-मार्ग का परित्याग किये शस्त्र धारण कर जप, उपवास एवं स्नानादि विधियों से मुनियों का आचरण करो।[1] तदनन्तर अर्जुन इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये तपश्चर्या हेतु तैयार हो जाते हैं। उन्हें ले चलने के लिये कुबेर का अनुचर उनके सामने उपस्थित हो जाता है। गाण्डीव धनुष, तरकस और कवच धारण कर अर्जुन आकाश के मध्य चमकते हुये ताराओं के प्रकाश की भाँति प्रकाशित हो उठते हैं।[2]

इन्द्रकील पर्वत पर योगशास्त्रानुकूल विधि से चित्तवृत्ति को एकाग्र कर मुनियों की वृत्ति धारण करने में अर्जुन को कोई कष्ट नहीं होता। क्योंकि मनस्वी पुरुषों के लिए कुछ भी अशान्तिजनक नहीं होता। इन्द्रियनिग्रह में ही सुखानुभूति पाने वाले मनस्वी अर्जुन अपने परम पवित्र मैत्री आदि गुणों से पापरूप अज्ञान का नाश करते हुये सुकृत्यों से वृद्धि को प्राप्त करने लगते हैं।[3]

अहिंसा आदि पवित्र कर्मों में तत्पर एवं ध्यान, जप, नमस्कार आदि विधियों से स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र की उपासना में लगे हुये अर्जुन

---

१. किरातार्जुनीय ३।१८। २. वही ३।५८।

३. वही ६।१९-२०।

स्वाभाविक तथा आगन्तुक वीर और शान्त रस को पुष्ट करने वालों को एक साथ धारण करते हैं। शस्त्र धारण करने पर भी कुटिलता से विमुख होकर और अपने पवित्र चरित्रों से तपस्वियों को भी तिरस्कृत करने वाले अर्जुन मृगों का मनोविनोद करते हैं क्योंकि दया, दाक्षिण्यादि गुण किसको वशीभूत नहीं करते।[१]

अर्जुन के तपः प्रभाव को सहन न कर सकने के कारण वनवासी इन्द्र से उनके (अर्जुन के) तपो जन्य निष्कालुष्य एवं तेज के विषय में यह निवेदन करते हैं कि समस्त प्राणी उससे अभिभूत हैं। वह सदैव अश्रमित ही रहता है।[२]

अर्जुन की तपस्या में विघ्न उपस्थित कर परीक्षा लेने के लिए इन्द्र अप्सराओं को इन्द्रकील पर्वत पर भेजते हैं किन्तु वे (अप्सरायें) वहाँ जाकर स्वयं ही काम पीड़ित हो जाती हैं और अर्जुन के ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अप्सराओं ने तपस्वी अर्जुन को देखा कि उनके अङ्ग यम-नियम का पालन करने से क्षीण होते हुये भी अटल हैं। शान्ति एवं उग्रता से समन्वित अर्जुन साक्षात् मूर्तिमान अथर्ववेद की भाँति मालूम पड़ रहे हैं जो अभ्युदय काण्ड और अभिचार काण्ड से समन्वित हैं।[३] अप्सरायें अर्जुन की इन्द्र सदृश तेजस्विता[४] एवं शक्ति-मत्ता से इतनी प्रभावित होती हैं कि वे उन्हें (अर्जुन को) देखकर सोचती हैं कि यह तो यों ही यथेष्ट कार्यों का सम्पादन कर सकता है उसके लिये तपस्या तो तुच्छ साधन है।[५] अप्सरायें अर्जुन को लुभाने के लिये विभिन्न प्रकार की काम कलाओं का प्रदर्शन करती हैं किन्तु वे अविचल समाधि के कारण अविकृत चित्तशाली अर्जुन को डिगाने में सफल नहीं हो पातीं।[३]

अप्सराओं के असफल होकर लौट जाने के पश्चात् पाकशासन इन्द्र स्वयं अर्जुन के आश्रम में आते हैं। इन्द्र चाहते हैं कि वे (अर्जुन) मुक्ति की ओर आकृष्ट हो जायँ किन्तु बड़ी विनम्रता के साथ अपने संकल्प की

---

१. किरातार्जुनीय ६।२२–२४। २. वही ६।३१, ३४, ३५।
३. वही १०।१०। ४. वही १०।१४। ५. वही १०।१५।
६. वही १०।६२।

दृढ़ता पर बल देते हुये कहते हैं—न मैं सुख के लिये तपश्चर्या कर रहा हूँ, न मैं चञ्चल लक्ष्मी की ही कामना कर रहा हूँ और न मैं विनश्वरता रूप विद्युत्पात से ही डरता हूँ, अतः मुझे मुक्ति की भी चिन्ता नहीं है। शत्रुओं द्वारा किये गये कपट व्यवहार से जो हम लोगों के ऊपर कलंक का टीका लगा है उसे मैं शत्रु रमणियों के वैधव्यपूर्ण नेत्रजल (आँसू) से धोना चाहता हूँ।[१] शत्रुओं का संहार करके वंश परम्परा से प्राप्त "श्री" का उद्धार किये बिना मैं मोक्ष को भी विजयलक्ष्मी की प्राप्ति में विघ्न मानता हूँ।[२] अर्जुन की दृढ़ता की पराकाष्ठा के दर्शन तो तब होते हैं जब वे कहते हैं कि या तो मैं पवन से उद्धृत मेघमाला की तरह खण्ड-खण्ड होकर इसी इन्द्रकील के शिखर पर अपनी जीवन लीला समाप्त कर दूँगा अथवा इन्द्र की आराधना करके अपकीर्ति रूप कण्टक को निकाल फेकूँगा।[३] इससे अर्जुन के धीरोदात्तोचित दृढ़व्रत गुण की पुष्टि होती है।

वस्तुतः अर्जुन के इस दृढ़ संकल्प को देखकर इन्द्र अर्जुन का आलिङ्गन करके उन्हें भगवान् शंकर को उपासना के लिये उपदेश देते हैं।[४]

अर्जुन अत्यन्त दृढ़ता के साथ भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करते हैं। उनकी तपःकालिक जितेन्द्रियता, लक्ष्य के प्रति पूर्ण एकाग्रता, हिमालय को भी प्रकम्पित कर देने वाली गुरुता एवं तमोविदारक तेजस्विता से प्रभावित होकर इन्द्रकील पर निवास करने वाले तपस्वी भी भगवान् शंकर के निकट आते हैं और उनसे (शंकर से) अर्जुन के तपः शौर्य का निवेदन करते हैं।[५] महाकवि भारवि ने अर्जुन के उन सभी गुणों का काव्य में यथोचित सन्निवेश किया है जो एक लोकोत्तर महामानव में ही सम्भव है। अर्जुन एक ऐसे पात्र हैं जिनमें महत्त्वाकांक्षी क्षत्रिय की विशेषताओं के साथ एक सामान्य जन में अपेक्षा

---

१,२. किरातार्जुनीय क्रमशः ११।६६—६७, ६९।

३. विच्छिनाभ्र विलायं वा विलीये नगमूर्धनि।
आराध्य वा सहस्राक्षमयशः शल्यमुद्धरे॥
वही ११।७९।

४,५. वही क्रमशः ११।८०, १२।२८।

की जाने वाली योग्यतायें भी विद्यमान हैं। ये अत्यन्त शिष्ट, विनीत, आज्ञाकारी एवं दृढ़व्रती हैं।

अर्जुन जहाँ एक ओर महान् तपस्वी हैं वहीं दूसरी ओर उनमें एक सामान्य भावुक हृदय की भी विद्यमानता है। तपस्याकाल में जिनका चित्त विभिन्न अप्सराओं आदि के हाव-भाव विलासादि से लेश मात्र भी आकृष्ट नहीं होता वही (उनका चित्त) यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान करते समय प्रकृति तथा सामाजिक जीवन से अत्यन्त प्रभावित हो जाता है।

इन्द्रकील की ओर जाते हुये अर्जुन कलकूजन करते हुये राजहंस, खेतों में झुकी हुयी धान की बालें, जलाशय में चिलकती हुयी मछलियाँ, खिले हुये कमल, क्षौम के सदृश सिकताराशि आदि देखकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।[1] अर्जुन सामाजिक जीवन से भी प्रभावित होते हैं—दधिमन्थन करती हुयी ग्वालिनियाँ जिनके दधि भाण्ड मृदंग के समान ध्वनि कर रहे हैं और जिनसे मयूरियों को घन गर्जन का भ्रम उत्पन्न हो रहा है, देखते हैं। वे गाँवों का निरीक्षण करते हुये चल रहे हैं।[2]

काव्यगत उक्त प्रसङ्गों से नायक अर्जुन के व्यावहारिक जीवन का परिज्ञान होता है।

भगवान् शंकर के द्वारा अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करने पर अर्जुन ने जो शिव विग्रह की स्तुति की है, वह वस्तुतः उनकी ज्ञान एवं गुरुता की परिचायिका है।[3] अर्जुन की शास्त्रज्ञता एवं शुद्धवंशोत्पन्नता उनके आचरण एवं आकृति से ही प्रकाशित हो जाती है। शिव प्रेषित वनेचर उनसे कहता है—"आपके शान्तभाव से आपके हृदय की कोमलता स्पष्ट होती है। तेजोराशिसम्पन्न आपका सम्प्रदायशुद्ध तप आपके शास्त्रज्ञान की सूचना देता है। आपकी देवतुल्य आकृति से आपके शुद्ध वंश में जन्म ग्रहण करने का परिचय मिलता है"।[4]

अर्जुन में दया दाक्षिण्यादि का भी अभाव नहीं है। उन्हें शत्रुपक्ष पर भी दया आ जाती है। किरात सेना और अर्जुन के मध्य युद्ध हो रहा है। विजय की आशा के प्रति निराश होकर उन प्रमथगणों की संग्राम से

१. किरातार्जुनीय ४।१--६। २. वही ४।१५--१६, १९।
३. वही १९।२२--४२। ४. वही १३।३७।

पराङ्मुखता देखकर अर्जुन को दया आ जाती है तथा वे पलायमान प्रमथगणों का अनुसरण बहुत ही मन्द गति से करते हैं।[1] इससे अर्जुन की महासत्वता एवं गम्भीरता व्यञ्जित होती है।

अर्जुन में समस्त गुणों के साथ ही एक उच्चकोटि रणकुशल योद्धा के भी गुण विद्यमान हैं। उनके युद्धगत पराक्रम का सम्यक् परिचय ससैन्य किरातपति शंकर के साथ होने वाले युद्ध से मिल जाता है। किरात महाकाव्य को यही सर्वप्रमुख घटना है। क्योंकि इसी में सफलता प्राप्त करके अर्जुन अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

अर्जुन बाण-मोचन में अत्यन्त कुशल हैं। वे शूकर के वधार्थ अपना बाण चलाते हैं। उस बाण के शूकर के शरीर में प्रविष्ट होने का पता ही नहीं चल सका कि कब वह छूटा और कब अपने लक्ष्य पर पहुँच गया।[2] किरात का चौदहवाँ, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ और सत्रहवाँ सर्ग अर्जुन की लोकविश्रुत वीरता का सुतराँ निदर्शक है।

किरात सेना एक साथ अर्जुन पर बाण प्रक्षेपण करती है। इससे अर्जुन की क्रोधपूर्ण, भयानक दृष्टि, जो विध्वंश की सूचना दे रही थी, प्रमथ सेना पर भयसूचक उल्कापात की तरह पड़ती है।[3] सेना आश्चर्य में पड़ जाती है कि ये बाण (अर्जुन-प्रक्षिप्त) आकाश से, पृथ्वी से, दिशाओं के मण्डल से, सूर्यबिम्ब से अथवा इस तपस्वी के शरीर से किंवा एक ही बार धनुष की प्रत्यञ्चा के आकृष्ट करने से गिर रहे हैं। अर्जुन के बाणों से प्रतिपक्षी सेना संकुचित हो जाती है।[4] किरात सेना के परास्त हो जाने पर किरातपति शंकर से युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। अर्जुन भगवान् शंकर के बाणों को खण्डित कर उत्साह और रणचातुरी से समरक्षेत्र में घूमने लगते हैं। शंकर प्रेरित शर संहति को अर्जुन के बाण उसी प्रकार आच्छादित कर लेते हैं जिस प्रकार सूर्य के किरण-

---

१. किरातार्जुनीय १४।३,६।

२. अविभावितनिष्क्रमप्रयाणः शमितायाम इवातिरंहसा सः।
स पूर्वतरं नु चित्तवृत्तेरपतित्वा नु चकार लक्ष्यभेदम्॥
किरातार्जुनीय, १३।२७।

३. वही १४।४१। ४. वही १४।५३, ५६।

पुञ्जों को बादल ढक लेते हैं ।[1] अर्जुन के द्वारा किया जाने वाला विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग उनकी उदात्त रण-कुशलता का परिचायक है ।

अर्जुन का धैर्य एवं साहस भी प्रशस्य है । युद्ध में भगवान् शंकर जितना अर्जुन के धैर्य और साहस से प्रसन्न होते हैं उतना तपश्चर्या से नहीं ।[2]

महाकाव्य में अर्जुन के स्वाभिमान, मनस्विता एवं अपने कर्त्तव्य के प्रति दृढ़ता जैसे उदात्त गुणों के पदे पदे दर्शन होते हैं क्योंकि वे एक विजयाभिलाषी क्षत्रिय हैं और तपस्या के द्वारा शत्रु-पराभव के साधन रूप पाशुपतास्त्र को प्राप्त करना चाहते हैं । महाकवि ने नायक अर्जुन के चरित्र में ऐसे उत्कृष्ट शाश्वत मानव मूल्यों का समाहार किया है जो सदैव अपने कर्त्तव्य पथ का स्मरण दिलाते हुये जीवन को जीवन्तता अथवा यथार्थता प्रदान करते हैं । अर्जुन की सर्वाधिक विशेषता यह है कि उन्हें अपने पौरुष पर विश्वास है । वे किसी के प्रलोभन में नहीं आते । इसका ज्वलन्त प्रमाण किरात के अनुचर को अर्जुन द्वारा दिया जाने वाला उत्तर है । शिवदूत ने कहा कि आप हमारे स्वामी किरातनाथ से मैत्री कर लें ।[3] अर्जुन ने इसका अत्यन्त सुन्दर स्वाभिमानपूर्ण उत्तर दिया है—"वर्णाश्रम धर्म की रक्षा में योग्य (मैं) कहाँ और कहाँ निकृष्ट जीवों की हत्या करने वाला तुम्हारा स्वामी ? नीचों के साथ उच्च व्यक्तियों की मित्रता नहीं होती, क्योंकि हाथी श्रृगालों के साथ मित्रता नहीं करते । नीच व्यक्ति के साथ वैर करने से यश क्षीण होता है तथा उनके साथ मैत्री करने से गुण कलंकित होता है ।[4]

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से यहाँ अर्जुन के इन वचनों से शोभा नामक गुण स्पष्ट होता है ।

मनुष्यों की तीन कोटियाँ मानी गयी हैं—उत्तम, मध्यम और अधम ।[5] अर्जुन उत्तम कोटि के मनुष्य हैं जो कार्य को आरम्भ करके यावत् फलप्राप्ति विभिन्न विघ्नों के आने पर भी उनका अपने पौरुष से निवारण करते हुये डटे रहते हैं । वे अपनी तपस्या में सफल होते हैं,

---

१. किरातार्जुनीय १५।३७--४० । २. वही १८।१४ ।
३. वही १३।५२-५३ । ४. वही १६।२२, २४ । ५. नीतिशतक सं० २८ ।

जिसके परिणामस्वरूप शिव इन्द्र तथा लोकपाल उन्हें अस्त्र प्रदान करते हैं।

अर्जुन में उन सभी गुणों का समवाय है जो धीरोदात्त नायक में अपेक्षित होते हैं। उनसभी गुणों से विभूषित अर्जुन का व्यक्तित्व किरात महाकाव्य को एक अनुपम गरिमा प्रदान करता है।

**द्रौपदी**

द्रौपदी किरातार्जुनीय महाकाव्य की नायिका है। उसका चरित्र किरातार्जुनीय के प्रारम्भिक तीन सर्गों में उपलब्ध हैं। पहले सर्ग में दुर्योधन के राज्य-वृत्तान्त को युधिष्ठिर से सुनने के बाद तथा तृतीय सर्ग में तपश्चर्यार्थ इन्द्रकील पर्वत को ओर प्रस्थान करने वाले अर्जुन को विदा करते समय। इन दोनों के मध्य एक ओर प्रसंग है जिसमें भीम द्वारा द्रौपदी के प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर से कहे गये वचनों का प्रशंसात्मक समर्थन किया गया है।

द्रौपदी में स्वाभिमानिता, नीतिपटुता एवं मनोभावों को समझने तथा विचारों की उद्दीप्त करने की अद्भुत क्षमता है। काव्य में द्रौपदी के विचारों का केन्द्रबिन्दु शत्रुकृत अपमान है। जिसके कारण ही उसके समस्त व्यापार क्रियाशील हैं। दुर्योधन के अभ्युदय को सुनकर उसे शत्रुकृत अपकारों का स्मरण हो आता है। उन अपकारों की इतनी चुभन हैं कि वह अपनी प्रतिक्रिया ही युधिष्ठिर से व्यक्त नहीं करती, अपितु शत्रुपराभव हेतु उन्हें उद्दीप्त भी करती है।[1]

कवि ने द्रौपदी का चरित्र बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है क्योंकि उसे (द्रौपदी को) पुरुष को कैसे उत्साहपूर्ण उद्योग में व्यापृत किया जा सकता है, स्त्री जाति का क्या कर्त्तव्य है आदि का बड़ा ही स्वाभाविक ज्ञान है। किरातार्जुनीय में चित्रित द्रौपदी के गुणों का चित्रण निम्नांकित है—

द्रौपदी स्वभिमानिनी महिला है। उसे क्षत्राणी तथा वीर पुरुष की पत्नी होने का गर्व है जिसके कारण वह शत्रुकृत अपमान को कदापि नही सहन कर सकती है। वह युधिष्ठिर से कहती है कि कौन ऐसा कुलाभिमानी क्षत्रिय राजा होगा जो समस्त साधनों से युक्त होते हुये भी वंश परम्परा

---

१. किरातार्जुनीय १।२७।

से प्राप्त मनोरमा प्रियतमा कि भाँति राज्यलक्ष्मी को देखते हुये अपहृत होने देगा।[1] यहाँ वक्ता ने कितने उदात्त अर्थ की व्यञ्जना करायी है जिसे सुनकर कोई भी विवेकशील व्यक्ति विना चिन्तन किये नहीं रह सकता। इसमें कितनी मर्यादित फटकार है और द्रौपदी का स्वाभिमान सुव्यक्त है। इसके द्वारा द्रौपदी ने अपने स्वाभिमान के साथ युधिष्ठिर के आत्म-गौरवोचित कर्त्तव्य का बोध कराया है। क्षत्रिय राजा अपने राज्य का अपहरण करते देखे यह उसके लिये अत्यन्त निन्दा की बात है। काव्य दृष्टि से भारवि ने जो चरित्र चित्रण की शैली अपनायी है, वह अतिशय प्रभावशाली तथा पात्रौचित भी है। द्रौपदी कहती है कि आपने मनस्वि-गर्हित मार्ग का अवलम्बन किया है जो किसी भी प्रकार उचित नहीं है।[2]

यहाँ द्रौपदी के चरित्र के सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि वह स्वयं स्वाभिमानिनी है यथा दूसरे को भी स्वाभिमान से युक्त देखना चाहती है। उसकी दृष्टि में क्रोध शून्य व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि इस प्रकार का व्यक्ति मित्र से न तो सम्मान पाता है और न शत्रु ही उससे भयभीत होते हैं।[3]

यहाँ पर द्रोपदो ने बड़ा ही मनोवैज्ञानिक आधार अपनाया है क्योंकि किसी व्यक्ति को किसी कार्य विशेष में उद्यत करने से पूर्व उसकी शक्ति का स्मरण दिलाना आवश्यक होता है। वह जानती है कि जब युधि-ष्ठिर अपने समस्त गौरव, वैभव एवं पराक्रम को समझ जायेंगे तो अवश्य ही शत्रु प्रतीकार रूपकर्म में संलग्न हो जायेंगे। आत्मशक्ति के पूर्व बोध हो जाने पर व्यवसायोचित अथवा कर्त्तव्योचित पौरुष जागृत होता है, उसमें कुछ और ही शक्ति होती है जिससे यावत् कार्य समाप्ति क्रिया में ह्रास नहीं आता है। इन आधारों को लेकर द्रौपदी अपने केन्द्रविन्दुवत् शत्रुकृत अपमान का पुनः पुनः स्मरण दिलाती है। कुलीन स्वाभिमानी व्यक्ति में अपनी उपेक्षा अपने कुटुम्बियों के सम्मान, अपमान

---

१. गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरम मात्मवधूमिव श्रियम्॥
किराता १।३१।

२,३. किरातार्जुनीय क्रमशः १।३२, ३३।

या मानमर्यादा का अधिक ध्यान रहता है। द्रौपदी के चित्त में अपने से अधिक युधिष्ठिर की दुर्दशा[१] तथा भीम[२], अर्जुन[३], नकुल और सहदेव[४] के दुःखों की चिन्ता है।

स्वाभिमानिता का एक गुण मोहराहित्य भी होता है। जब तक मनस्वी को मोह है, तब तक वह मनस्वितजन्य यश को नहीं प्राप्त कर सकता है। द्रौपदी में प्रेम तो है, किन्तु अज्ञानतापूर्ण मोह नहीं, उसे अर्जुन के प्रति अनुराग है किन्तु शत्रुकृत अपमान के प्रतीकार हेतु जो करणीय तपोरूप व्यापार है उसके लिये वह अपने प्रियजन ( अर्जुन ) का विश्लेष भी सहन करती है।

द्रौपदी ने तपश्चर्यार्थ प्रस्थातव्य अर्जुन को भी बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्साहित किया है। दुःख का केन्द्रीभूत कारण शत्रुकृत अपमान ही है।[५] वह अर्जुन से कहती है कि आप भग्नदन्त गजराज की भाँति मान-मर्यादा के नष्ट हो जाने से विरूप हो गये हैं, आपका पौरुष शत्रु-प्रताप से आच्छादित हो गया है, जिससे आप शरत्कालिक मेघ से ढके गये हतप्रभ की भाँति दृतप्रेम हैं। आपके अस्त्र अप्रयोग के कारण कुण्ठित हो गये हैं, यशोऽभाव में शुष्क समुद्र की भाँति परिवर्तित स्वरूप वाले लग रहे हैं।[६]

द्रौपदी की स्वाभिमानिता की पराकाष्ठा तो तब देखने को मिलती है जब वह क्षत्रिय और कार्मुक की शब्दगत अन्वर्थता का विश्लेषण कर क्षत्रियोचित पौरुष का उद्बोधन करती है।[७]

द्वितीय सर्ग में भीम ने भी मानिनी कहकर द्रौपदी की वाणी की सराहना की है जिसमें उनकी ( द्रौपदी की ) ओजस्विता का ही समर्थन हुआ है।[८]

द्रौपदी अत्यन्त नीतिमती भी है। जहाँ उसने युधिष्ठिर और अर्जुन को उत्साहित किया है, वहीं राजनीति की भी छटा विखेर दी है। उसे

---

१. किरातार्जुनीय १।३८–४१। २. वही १।३४।
३. वही १।३५। ४. वही १।२६। ५. वही ३।३९, ४२।
६. वही ३।४६। ७. किरातार्जुनीय ३।४८। ८. वही २।२।

( द्रौपदी को ) राजनीतिगत सन्धि-विग्रह के नियमों का भी ज्ञान है।[1] द्रौपदी के अर्थगुरुतापूर्ण सूत्र स्वरूप कथित वाणो का राजनीतिक दृष्टि से भीम ने विश्लेषण किया है जो वस्तुतः द्रौपदी की नीतिमत्ता का स्पष्ट परिचायक है। उन्होंने ( भीम ) सन्धि, विग्रह, यान, द्वैधीभाव जैसे नीतिगत जटिल सिद्धान्तों को द्रौपदी द्वारा सहज रूप में वर्णित किये जाने की श्लाघा और समर्थन किया है जो वस्तुतः गुरुकृपा और शास्त्रा-भ्यास से ही प्राप्य है—

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्ति कृत्यवर्त्म यः ॥[2]

किरात महाकाव्य में यद्यपि द्रौपदी का स्वल्प प्रसंग ही आया है किन्तु वही नायकभूत अर्जुन के समस्त व्यापारों का निमित्त कारण है। उसकी भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यदि किरातार्जुनीय से द्रौपदी को निकाल दिया जाय तो सम्पूर्ण काव्य एक निराधार रचना बन जायेगा। यदि व्यवहार जगत् की दृष्टि से विचार किया जाय तो द्रौपदी ऐसे पात्र का प्रतिनिधित्व करती है जो दैनिक संघर्ष में अनैतिक शत्रु से मर्माहत होकर प्रसुप्त पौरुष का सहारा लेनी है और अपने अस्तित्व को पुन-रुत्थापित करने के साथ ही समाजवादी विचारधारा को पुष्ट करती है। वह एक ऐसी नारी है जो पुरुष संरक्षित होते हुये भी उसकी मार्गदर्शिका है। विशेषता तो यह है कि वह इतनी समर्थ एवं सक्षम होते हुये भी स्त्रियोचित मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती है। इसके अतिरिक्त यदि किरातार्जुनीय को कथावस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो कवि ने ऐसी नारी की संकलपना की है जो कालिदास की शकुन्तला नहीं है अपितु उनकी ( भारवि की ) विचित्र शैली की ओजस्विनी क्षत्राणी है।

### वेदव्यास

महाकवि भारवि ने पराशरात्मज कृष्णद्वैपायन व्यास को एक तेजोमय ऋषि के अनुरूप ही चित्रित किया है। काव्य में द्वितीय सर्ग से तृतीय सर्ग तक पैंतीस श्लोकों में उनका वर्णन हुआ है।

शत्रुकृत अपमान से विक्षुब्ध भीम को जब युधिष्ठिर समझा रहे थे

---

१. वही १।४५। २. वही २।३।

तभी अभिलषित मनोरथ सिद्धि के समान वेदव्यास का आगमन होता है।[१] वे अत्यन्त सौम्य हैं। उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य क्या, पशु-पक्षियों के हृदय में भी शान्ति उत्पन्न हो जाती है। उनका तेजःपुञ्ज अत्यन्त समुज्ज्वल है किन्तु वह दर्शनीय तथा दुष्कृतों के नाशक एवं विपत्तिहर्त्ता है। वे साक्षात् मूर्तिमान् सुकृत् हैं।[२]

उनकी आकृति का कवि ने ऐसा वर्णन किया है जिससे वे साक्षात् की भाँति प्रतीत होने लगते हैं। आसन ग्रहण कर लेने पर व्यास जी शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान मनोहर, ऊर्ध्व प्रसरणशील तेजः समूह से उन्नत प्रतीत होते हैं। उनके शरीर का रंग हल्का नीला है, पीले वर्ण की जटायें हैं जिससे विद्युद्युक्त मेघ के समान दिखायी दे रहे हैं।[३] शरीर की स्थूलता में भी वे बढ़े चढ़े हैं, उनका आकार शान्त है जिससे अन्तःकरण की सौम्यता का भी भाव स्पष्ट हो रहा है।[४]

कवि ने व्यास जी के तपोबल का मनोवैज्ञानिक प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। किसी के दर्शन से जब अपना अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं तभी उसके प्रभाव का स्वतः अनुभव होने लगता है। व्यास जी अपरिचितों के भी हृदय में श्रद्धा और भक्ति को उत्पन्न कर देते हैं, पशु-पक्षी भी शान्ति का अनुभव करने लगते हैं। युधिष्ठिर को तो ऐसा लग रहा था मानों उनसे कभी सम्भाषण भी हो चुका है।[५]

ऐसे मुनि का दर्शन पाकर युधिष्ठिर अपनी कामनाओं को सफल हुआ मानते हैं क्योंकि उनका दर्शन कल्याण की वर्षा करने वाला है, अमृत-मयी किरणों वाले चन्द्रमा से भी अधिक आह्लादकारी है।[६]

व्यास जी विभिन्न प्रकार के उदाहरणों द्वारा पाण्डव के पौरुष को जागृत करते हैं। वे युधिष्ठिर से कहते हैं कि विजयश्री पराक्रम के ही अधीन होती है, अतः आपको पराक्रम के द्वारा ही पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करना होगा।[७]

---

१. किरातार्जुनीय २।५४।
२. वही २।५५--५६, ५९।
३. किरातार्जुनीय ३।१।
४. वही ३।२, ३।
५. वही २।५५, ३।२, ३।
६. वही ३।६--८।
७. वही ३।१७।

भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे शत्रुपक्षीय राजाओं का पराक्रम वर्णित कर उन्हें जीतने के लिए अर्जुन को मन्त्र विद्या प्रदान करते हैं, जिससे वे (अर्जुन) उग्र तपश्चर्या द्वारा पाशुपतास्त्र प्राप्त करें और शत्रुओं का नाश करें ।[1]

महाकवि भारवि ने वेदव्यास की अहैतुकी कृपा का दिग्दर्शन कराया है जो वस्तुतः भारतीय ऋषि मुनियों की परम्परा रही है। व्यास जी यद्यपि निःस्पृह हैं और सांसारिक वादों से परे हैं, तथापि सभ्यजनों से वे प्रभावित होते हैं और धर्म संस्थापनार्थ शत्रु के पराभव हेतु सज्जनों का उचित मार्ग दर्शन करते हैं। वेदव्यास बहुत ही सामाजिक उपदेश देते हैं, वे सच्चे राष्ट्रहित चिन्तक हैं। उन्हें ब्रह्मज्ञान अथवा वैराग्य का उपदेश अभीष्ट नहीं प्रत्युत जो कालोचित एवं राजोचित है, उसे बताकर करणीय व्यापार में अपनी शक्ति प्रदान कर पाण्डवों को प्रवृत्त करते हैं।[2]

भारवि के पात्रों की विशेषता यह है कि वे सभी मानवीय धरातल पर अपने उदात्त चरित्र को साकार करते हैं, चाहे मुनीश्वर व्यास हों अथवा देवराज इन्द्र।

## वनेचर

महाकवि भारवि की वनेचर-कल्पना नितान्त मौलिक है। पाण्डव राज्यविहीन स्थिति में द्वैतवन में निवास कर रहे हैं अतः उनके पास साधन सम्पन्न गुप्तचर की सम्भावना नहीं की जा सकती है। उनके लिये तो ब्रह्मचारी वेषधारी वनेचर ही शत्रु-भेद परिज्ञान का साधन हो सकता है, अतः कवि ने वनेचर की गुप्तचर के रूप में बड़ी स्वाभाविक कल्पना की है।

किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक पचीस श्लोकों में वनेचर का वक्तव्य प्राप्त होता है। वह शत्रु वृत्तान्त के ज्ञान में अत्यन्त पटु, स्वामिभक्त, सार रूप में बोलने वाला, मृदुभाषी किन्तु स्पष्ट वक्ता है। कवि की चरित्र चित्रांकन की यह महती विशेषता है कि अल्प प्रसंग में वनेचर द्वारा अपनी सारी शत्रु सम्बन्धी जानकारी एवं करणीय उपाय का समावेश कर दिया है।

---

१. किरातार्जुनीय ३।१८--२२। २. वही ३।२६।

वनेचर मानव मन की स्वाभाविक मनःस्थिति को भली-भाँति समझता है। वह जानता है कि यदि किसी के प्रतिकूल सत्य भी कहा जाय तो वह कटु लगता है अतः पहले ही सविनय प्रणामपूर्वक भृत्य के कर्त्तव्यों के प्रति इङ्गित करके आवश्यकतानुसार साधु-असाधु वाणी बोलने के लिये क्षमा याचना कर लेता है, क्योंकि हितकारी और मधुर वाक्य तो दुर्लभ हैं।[1]

वह अत्यन्त विनम्र है। दूर्योधन की रीति-नीति की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् भी वह नम्रता पूर्वक कहता है कि कहाँ राजाओं का दुर्ज्ञेय चरित और कहाँ मैं पामर जन्तु? बड़ा अन्तर है तथापि आपकी (युधिष्ठिर की) कृपा से मैं कुछ जान सका हूँ।[2]

भारवि का वनेचर, रघुवंशप्रणेता कालिदास की भाँति नम्रता प्रदर्शन में तो अति "मन्द" है किन्तु अपने विषय (राजनीति) का मर्मज्ञ पण्डित है। वह जानता है कि वह मित्र (कर्मचारी), मित्र नहीं है जो स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता और वह उचित स्वामी नहीं है जो मित्र (कर्मचारी) की बात को सम्यक् सुनता नहीं क्योंकि राजा और मन्त्री दोनों के अनुकूल रहने पर सम्पत्तियाँ उनकी सहचारिणी बनकर रहती हैं।[3]

वनेचर की बुद्धिमत्ता एवं नीतिमत्ता का समग्र परिचय उसके द्वारा वर्णित दुर्योधन की शासन व्यवस्था से मिल जाता है। उसने अत्यन्त सूक्ष्मता से शत्रुनीति का निरीक्षण किया। दुर्योधन की आत्मीय जनों के प्रति, प्रजा के प्रति व्यवहार की अच्छी प्रकार से जानकारी की थी।[4]

समग्र वृत्तान्त निवेदन के अनन्तर यह युधिष्ठिर से कहता है कि अब

---

१. क्रियासुयुक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥
किरातार्जुनीय १।४।

२. वही १।६।

३. स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः॥
किरातार्जुनीय १।५।

४. किरातार्जुनीय १।१०।

आप दुर्योधन का प्रतीकार अतिशीघ्र करें। वह अपने कर्त्तव्य की सीमा को भली-भाँति जानता है, अतः यह भी कहता है कि हम लोग मात्र सूचना संग्रह करते हैं, यहो हम लोगों से कार्य कराना चाहिये।[१] तत्पश्चात् वह युधिष्ठिर से पुरस्कृत होकर चला जाता है।

किरातार्जुनीय काव्य में वर्णित प्रसङ्गों के आधार पर वनेचर के चरित्र में नम्रता, स्वामिभक्ति, यथार्थ कथन, नीतिपटुता, व्यवहार कुशलता आदि गुणों की अभिव्यक्ति होती है। भारवि के समस्त पात्रों को एक विशेषता यह है कि यद्यपि उनका अल्प प्रसङ्गों में ही क्यों न चित्रण किया हो किन्तु वे अभिनेय वस्तु एवं गुणों में सर्वथा पूर्ण हैं। ऐसा नहीं लगता कि किसी पात्र का चित्रण अधूरा है अथवा और होना चाहिये था।

**दुर्योधन**

दुर्योधन के चरित्र में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण है। उसके सम्बन्ध में वनेचर और युधिष्ठिर के वक्तव्यों से सम्यक् जानकारी प्राप्त होती है। उसका बाह्य आचरण अत्यन्त संयत एवं प्रजारंजक है किन्तु वह प्रकृत्या अविनीत एवं दुष्ट है। युधिष्ठिर की लोकोपकारिता, धार्मिकता एवं प्रजानुरंजकता जैसे प्रभावी गुणों से तिरस्कृत कर प्रजा में अपनी सज्जनता का प्रदर्शन कर राज्य को सुस्थिर करना चाहता है। इस दृष्टि से उसमें धर्मनिष्ठ आदर्श राजा के समग्र गुणों का समाहार किया गया है किन्तु वह मूलतः अत्यन्त मायावी है।

वनेचर दुर्योधन के राज्य वृत्तान्त का वर्णन करते हुये उसे 'जिह्म' शब्द से अभिहित करता है। दुर्योधन के बाह्य एवं आन्तरिक उभयपक्षीय व्यक्तित्व का परिचय, वनेचर के निम्नलिखित श्लोक से मिल जाता है—

तथाऽपि जिह्मः स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयनभूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः॥[२]

दुर्योधन काम, क्रोधादि षड्विकारों को जीतकर मनूपदिष्ट नीति मार्ग का अनुसरण करता हैं तथा समस्त कर्मचारियों के प्रति उसका अत्यन्त

---

१. वही १।२५। २. किरातार्जुनीय १।८।

विनम्रता एवं आत्मीयता पूर्ण व्यवहार है।[1] साम-दाम-दण्ड-भेद चारों नीतियों का यथोचित प्रयोग करता है।[2] उसका प्रजा के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार है। न्यायपूर्वक यथापराध दण्ड देता है।[3] राज्य की सुव्यवस्था की दृष्टि से उसने सर्वत्र कार्य कुशल गुप्तचरों की नियुक्ति कर रखी है। अपनी वीरता से अनेक राजाओं को करद बना लिया है तथा वह अत्यन्त पराक्रमी है।[4]

इन गुणों के साथ ही वह निरालस्य होकर यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं का अनुष्ठान करता है।[5]

वनेचर के अतिरिक्त युधिष्ठिर के वचनों से भी दुर्योधन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। जहाँ वे ( युधिष्ठिर ) शत्रु-अभ्युदय श्रवण से उत्तेजित भीम को समझाते हुये कहते हैं कि दुर्योधन अत्यन्त अहंकारी है तथा उसके समस्त प्रकटित दुर्व्यवहार कृत्रिम हैं जिनका वह आद्योपान्त निर्वाह नहीं कर सकता है।[6] अतः उसके वास्तविक स्वरूप का रहस्योद्‌घाटन होने पर प्रजा, मित्र एवं अमात्य आदि विरुद्ध हो जायेंगे।

इस प्रकार किरात काव्य में दुर्योधन ऐसा पात्र है जो अत्यन्त उद्धत एवं अविनीत होते हुये स्वार्थपरक दृष्टि से सौम्यता एवं विनम्रता के आवरण से आवृत है। वह काव्य में प्रतिनायक की भूमिका वहन करता है। यद्यपि सम्पूर्ण काव्य में वह स्वयं नहीं उपस्थित हुआ है तथापि नायक अर्जुन के तपोरूप व्यापार का वही केन्द्रबिन्दु है। उसी के प्रतीकारार्थ अर्जुन वेदव्यास के आदेशानुसार पाशुपतास्त्र प्राप्त करते हैं।

---

१. वही १।९–१०। २. वही १।१२।

३. वही १।१३। ४. वही १।१४, १६, २१।

५. मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।
किरातार्जुनीय १।२२।

६. असमापितकृत्यसम्पदां हतवेगं विनयेन तावता।
प्रभवन्त्यभिमानशालिनां मदमुत्तम्भयितुं विभूतयः॥
किरातार्जुनीय २।४८।

**इन्द्र**

किरातार्जुनीय में पाकशासन इन्द्र मुनि के वेष में अर्जुन के समक्ष आते हैं। उनकी जटायें धवल हैं जिससे वे चन्द्र-किरणों से युक्त तथा सन्ध्या से परिव्याप्त दिवसावसान के सदृश स्पष्ट लक्षित हो रहे हैं।[१] पकी हुयी भौंहों से उनके दोनों नेत्र ढके हैं। नेत्रों के कानों में सिकुड़न पड़ गयी है। वे ऐसे सरोवर के समान प्रतीत हो रहे हैं जो तुषार के ढेर से मुरझाये हुये कमलों से परिव्याप्त हो। उनके अंग दुर्बल हैं जिससे वे भाराक्रान्त प्रतीत हो रहे हैं।[२] वे अलौकिक शरीरधारण कर अर्जुन के आश्रम पर आते हैं।[३]

शिशुपालवध में भी इन्द्र का उल्लेख हुआ है किन्तु वे साक्षात् नहीं आते हैं अपितु उन्होंने नारद के माध्यम से अपना सन्देश भेजा है।[४] भारवि एवं माघ, दोनों महाकवियों ने काव्य में इन्द्र का समावेश किया है। दोनों काव्यों में जो इन्द्रगत कार्य है वह प्रायः समान ही है। शिशुपालवध में इन्द्र लोकपीडक शिशुपाल के वधार्थ श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजते हैं तथा किरात काव्य में इन्द्र अन्यायी दुर्योधन के विनाशार्थ उद्यत तपस्वी अर्जुन को दर्शन देकर उन्हें ( अर्जुन को ) अपने अभीष्ट लक्ष्य की सफलता का दिशा निर्देशन एवं आशीर्वाद प्रदान करते हैं।[५]

किरातार्जुनीय में इन्द्र अर्जुन को परीक्षा लेने की दृष्टि से उन्हें मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हैं तथा वे लौकिक कामनाओं की क्षणभंगुरता अथवा अनित्यता को सिद्ध करते हुये चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियों को विजित करने की शिक्षा देते हैं—

जीयन्तां दुर्जया देहे रिपवश्चक्षुरादयः।
जितेषु ननु लोकोऽयं तेषु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥[६]

अन्त में अपने भक्त अर्जुन की दृढ़ता को देखकर वास्तविक रूप में प्रकट होकर इन्द्र उन्हें भगवान् शंकर की आराधना का उपदेश देते हैं।[७]

---

१. जटानां कीर्णया केशैः संहत्या परितः सितैः।
पृक्तयेन्दुकरैरह्नः पर्यन्त इव संध्यया ॥ किरातार्जुनीय ११।३।

२. ३. किरातार्जुनीय क्रमशः ११।४–५, ११७।

४. शिशुपालवध १।४१। ५. किरातार्जुनीय ११।८०, १८।४६।

६. वही ११।३२। ७. वही ११।८०–८१।

**किरातपति शंकर**

इन्द्रकील निवासी मुनिजन अर्जुन के असह्य तपःप्रभाव से अभिभूत होकर भगवान् शंकर के पास जाते हैं। वे सब ( मुनिगण ) पहले उनकी वन्दना करते हैं। भगवान् शंकर हिमालय के उच्च शिखर पर आसीन हैं, चौदहों भुवनों को जीतने वाले तेज से युक्त सम्पूर्ण विश्व को उदरस्थ बनाते हुये के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं।[1]

मुनियों के निवेदन को सुनकर अपने भक्त अर्जुन की मयदानव रूप सूकर से रक्षा करने तथा परीक्षा लेने की दृष्टि से वे किरातपति का रूप धारण करते हैं।

किरातपति ससैन्य वन में प्रवेश करते हैं जिससे वन में पशु-पक्षी सभी संत्रस्त हो जाते हैं और हलचल मच जाती है।[2] शबर सेनापति ( किरातपति ) अवस्थान पूर्वक धनुष आकृष्ट करते हैं। उनके चरण के दबाव से पर्वत झुक जाता है।[3] उनका बाण अत्यन्त शीघ्रता से धनुष से छूटते ही शूकरवधरूप लक्ष्य का भेदन करता है।[4] बाण को लेने की इच्छा से शूकर के निकट पहुँचे हुये अर्जुन को किरातपति का दूत बाण ग्रहण करने से रोकता है किन्तु अर्जुन बाण ले लेते हैं। तदनन्तर किरातपति और अर्जुन में युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। किरातनाथ अर्जुन के समस्त बाणों को काट डालते हैं।[5] तत्पश्चात् दोनों में मल्लयुद्ध होता है। किरातपति अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होते हैं और पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं।

भारवि ने अपने काव्य में किरात सेनापति के रूप में जो शंकर की अवतारणा करायी है वह पुराण प्रसिद्ध होते हुये भी मौलिक हैं। शंकर की भगवत्ता का जो मानवीय भूमि पर अभिनय होता है, वह उस अवतारवाद का संकेत है जिसमें भगवान् अपने भक्त का कल्याण करने की इच्छा से अनेक रूप धारण करते हैं। उनके अवतरण में भक्त का हित निहित है।

---

१. किरातार्जुनीय १२।२१। २. वही १२।४५।
३. वही १३।१८। ४. वही १३।२३।
५. परिमोहयमाणेन शिक्षालाघवलीलया।
जैष्णवी विशिखश्रेणी परिजह्रे पिनाकिना॥ वही १५।३६।

**अन्य पात्र**

किरातार्जुनीय महाकाव्य में अर्जुन, युधिष्ठिर, द्रौपदी, दुर्योधन एवं भीम जैसे प्रमुख पात्रों के साथ ही नकुल-सहदेव, यक्ष आदि लघु पात्रों की भी यथोचित उपस्थापना हुयी है। यद्यपि ऐसे पात्रों का काव्य में अत्यल्प प्रसंग ही आया है तथापि वे सभी सम्पूर्ण काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

प्रथम सर्ग में द्रौपदी द्वारा विभिन्न पाण्डवों की पृथक्-पृथक् चर्चा के साथ ही एक श्लोक में नकुल और सहदेव का भी उल्लेख हुआ है जो अत्यन्त स्वाभाविक है—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितो विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥[1]

तृतीय सर्ग में वेदव्यास के द्वारा राधेय कर्ण, जमदग्निपुत्र परशुराम, भीष्म, द्रोण का भी उल्लेख हुआ है। कर्ण धृतराष्ट्र पक्षीय दुर्मन्त्री है,[2] राधेय कर्ण अत्यन्त धैर्यशाली है जिसे देखकर मृत्यु भी दब जाती है।[3]

परशुराम जमदग्नि ऋषि के पुत्र तथा शस्त्र विद्या के आचार्य हैं जिन्होंने इक्कीस बार राजाओं का वध किया है किन्तु उन्हें भी अपने शिष्य भीष्म से पराजित होना पड़ा है। परशुराम ऐसे तपस्वी हैं जो अस्त्र विद्या के तत्त्वों का अच्छा ज्ञान रखते हैं जिनके वीरत्व की चर्चा जनसाधारण द्वारा की जाती है।[4]

भीष्म पितामह, जिनसे यमराज भी हार मानता है, अच्छे धनुर्धर हैं तथा दुर्योधन के सहायक हैं।[5]

द्रोणाचार्य युद्ध में प्रलयाग्नि सदृश हैं। उनके सम्मुख पाण्डवों का भी टिक पाना कठिन है।[6]

किरात काव्य में कुबेर के दूत यक्ष का भी चरित्र वर्णित है जो अर्जुन को इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचाने ले जाता है। यक्ष का काव्य में

---

१. किरातार्जुनीय १।३६। २. वही ३।१४। ३. वही ३।२१।
४. किरातार्जुनीय ३।१८, २१, १३।६२। ५. वही ३।१९।
६. वही ३। २०।

अपना कोई विशेष स्थान नहीं है, वह अर्जुन का मार्ग सहायक मात्र ही है।

यक्ष इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान करने वाले अर्जुन से शरत् शोभा का यथावसर वर्णन करता है। उसका प्रमुख गुण यह है कि उसे अवसर का ज्ञान है तथा वह मनोभावों को भी समझता है—

ततः स संप्रेक्ष्य शरद्गुणश्रियं शरद्गुणालोकनलोलचक्षुषम्।
उवाच यक्षस्तमचोदितोऽपि गां न हींगितज्ञोऽवसरेवसीदति ॥[1]

किरातार्जुनीय की कथावस्तु यद्यपि स्वल्प है किन्तु यदि पात्रों की दृष्टि से विचार किया जाय, जिनका सम्बन्ध दैनिक परिस्थितियों से है, तो यह मानना पड़ेगा कि वे ( पात्र ) मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों का स्पर्श करते हैं और कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट मनुष्य को अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यक् प्रबोध कराने में सर्वथा समर्थ हैं।

**श्रीकृष्ण**

श्रीकृष्ण शिशुपालवध महाकाव्य के नायक हैं। उनका चरित्र धीरोदात्त कोटि का है। वे क्षत्रिय राजवंशी हैं। उनमें सौन्दर्य, विनम्रता, सरलता, धैर्य, शौर्य, त्याग, समुदाचार परायणता आदि गुण विद्यमान हैं। वे राजनीति के भी कुशल पण्डित हैं।

शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य का बड़ा ही अभिराम चित्रण हुआ है। उनके श्यामवर्ण एवं तेजस्वी रूप को कवि ने जिन उपमानों के साथ उपमित किया है, उनसे पात्रगत सौन्दर्य का सम्यक् परिज्ञान हो जाता है। श्रीकृष्ण अञ्जन पर्वत (नीलगिरि) विशाल इन्द्रनीलमणि की कान्ति, नवीन जलधर सदृश श्याम, पूर्णचन्द्र के लाञ्छन,[2] विकसित तमाल तथा अलसी पुष्प के सदृश श्याम आभावाले हैं।[3] वे तपाये गये सुवर्ण के समान देदीप्यमान पीताम्बर वाले तथा नीलमणि के फर्श कि तरह श्याम शरीर तथा हरताल के समान पीताम्बर वाले हैं। वे कमल परागों से चित्रित यमुना की जलराशि के समान सुशोभित होते

---

१. किरातार्जुनीय ४।२०। २. शिशुपालवध १।१५–१६,१९,२०,३।११।
३. वही १।२२, ३।१७।

हैं।[१] उनका वक्षःस्थल कपाट सदृश चौड़ा तथा मनोरम है,[२] जो उनकी सत्वता का सूचक है। उनके केश काले तथा सुगन्धित हैं।[३] कुन्द कलिकाग्र समान उनकी दशन पंक्ति है।[४]

श्रीकृष्ण को सौन्दर्य का समुचित बोध है, क्योंकि वे हस्तिनापुर को प्रस्थान करते समय मुकुट, कुण्डल, केयूर, कंकण, मुक्ताहार आदि आभूषणों को धारण करते हैं।[५] उनके अलौकिक सौन्दर्य को देखने के लिए ही इन्द्रप्रस्थ की रमणियाँ अपने कार्यों को छोड़कर शीघ्रतापूर्वक दौड़ पड़ती हैं।[६] कोई अर्ध शृंगार किये ही दौड़ पड़ती हैं, हार के स्थान पर करधनी को ही पहने चल पड़ती हैं।[७] यह सब भगवान् श्रीकृष्ण का सौन्दर्य एवं जनाह्लादक रूप ही है जो बलात् आकृष्ट कर लेता है। काव्य में यत्र तत्र वर्णित श्रीकृष्ण का सौन्दर्य साकल्येन अत्यन्त भव्य है। आकृतिगत सौन्दर्य के साथ ही उनकी वाणी, वेष[८] और शृंगारिक चेष्टाओं[९] में भी माधुर्य है। इससे उनके ललित सात्विकगुण का पता चलता है।

माघ ने श्रीकृष्ण के वंश एवं वैभव आदि का दैवी वर्णन भी उपस्थापित किया है। वे जगन्निवास हैं।[१०] वे विष्णु के अवतार हैं। उनकी मुट्ठी में तीनों लोक एवं शरीर में चौदहों भुवन समाहित हैं।[११] वे अपने अपने पौरुष से दुष्टों के नियन्त्रणार्थ पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये हैं—

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशःस्याःकथमीश ! मादृशाम्॥[१२]

श्रीकृष्ण अवतारी हैं किन्तु वे नर रूप में दुष्टों का संहार कर लोक-मर्यादा की प्रतिस्थापना करते हैं।

श्रीकृष्ण अत्यन्त विनम्र हैं वे ऋषियों, मुनियों तथा अतिथियों का स्वागत बड़ी श्रद्धा से करते हैं। उनकी मधुर आकृति में नम्रता कूट कूट

---

१. शिशुपालवध १।२०,३।११। २. वही १३।१०। ३. वही १३।१२।
४. वही २।७। ५. वही ३।४–११। ६. वही १३।३०–४९।
७. वही १।३०। ८. वही ३।११। ९. वही ३।१६।
१०. वही १।१।
११. युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत। वही १।२३।
१२. वही १।३७।

कर भरी है। नारद के आकाश से उतरने से पहले ही वे उनके स्वागत में अपने आसन से उठ खड़े होते हैं।[१] अर्घ्यादि के द्वारा उनकी भलीभाँति पूजा करते हैं।[२] वे पूजा कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।[३] नारद के कहने पर आसन ग्रहण करते हैं तथा उनके द्वारा कमण्डल में लाये गये तीर्थजल के छिड़कने से वे नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं।[४]

श्रीकृष्ण अत्यन्त वाग्मी हैं। वे अत्यन्त चातुर्य से नारद के आगमन-प्रयोजन को जानना चाहते हैं—

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्॥[५]

इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर स्वागतार्थ समागत युधिष्ठिर को दूर से ही देखकर श्रीकृष्ण स्वयं ही उनसे पहले अपने रथ से उतरकर खड़े हो जाते हैं।[६] स्वयं जगत् पूज्य होकर भी अपनी गुरुता का विस्तार करते हुए भूमि-स्पर्श कर युधिष्ठिर को प्रणाम करते हैं।[७] यहाँ तक कि वे युधिष्ठिर के समक्ष अपनी नम्रता के कारण वामन ही बने रहते है।[८] तदनन्तर वे पाण्डवों के मध्य पहुँचकर सबका कुशल क्षेम पूछते हैं। उन्होंने स्वजनों के बच्चों का नाम सम्बोधन करके सबकी स्वस्थता का समाचार पूछा जो उचित ही था, क्योंकि बड़े भारी ऐश्वर्य को पाकर भी अहंकार रहित सज्जन साधारण बात भी नहीं भूलते हैं।[९] इसके द्वारा श्रीकृष्ण की सज्जनता अभिमान राहित्य एवं उनकी प्रकृष्ट स्मृति का पता चलता है।

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने आये हैं अतः वे अपने पूरे सामर्थ्य के अनुसार उनके (युधिष्ठिर) हित साधन में सर्वथा तत्पर हैं। वे युधिष्ठिर से कहते हैं—कठोर आज्ञा का भी पालन करने को तत्पर मुझे आप स्वेच्छया कर्त्तव्य कार्यों में नियुक्त कीजिये और मुझे अपने अनुज अर्जुन से अभिन्न समझिये तथा इस यज्ञ में जो राजा भृत्य के समान कार्य नहीं करेगा, यह सुदर्शन चक्र उसे बन्धक बना देगा। अर्थात् सिर काट देगा।[१०] वस्तुतः माघ के नायक रूप में ऐसे पात्र को

१. शिशुपालवध १।१२। २. वही १।१४। ३. वही १।१७। ४. वही १।१८–१९। ५. वही १।३०। ६. वही १३।७। ७. वही १३।८। ८. वही १३।१२। ९. वही १३।६८। १०. वही १४।१६–१७।

चुना है जिसमें यथावतर मृदुता एवं कठोरता दोनों हैं। वे अत्यन्त विनम्र भी हैं किन्तु अपने कर्त्तव्य के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करने वाले को क्षमा भी नहीं कर सकते हैं। ठीक भी है, क्योंकि वे (श्रीकृष्ण) "दुष्कृताम् विनाशाय तथा सधूनां परित्राणाय" पुराणप्रसिद्ध हैं।

महाकवि माघ के चरित्र चित्रण की एक विशेषता यह है कि वे वर्ण्य पात्र में आवश्यक एवं व्यावहारिक गुणों की अवतारणा करते हुये उनका सफल क्रियात्मक रूप भी प्रस्तुत कर देते हैं। व्यक्ति का एक बहुत बड़ा गुण है, अपनी प्रशंसा के प्रति निरपेक्षता। यदि यह सिद्ध हो जाय तो वही मनुष्य देवत्व का अधिकारी हो जाता है।

माघ के श्रीकृष्ण आत्मश्लाघा के प्रति उदासीन रहते हैं।[१] वे अनन्त गुणों से विभूषित हैं, उनका गुणानुवाद करने वाला लज्जित नहीं होता है किन्तु वे स्वगुण श्रवण स्पृहा न होने से स्वयं लज्जा का अनुभव करते हैं। वे अपने गुणों को तथा दूसरे के दोषों को छिपाते हैं।[२]

युधिष्ठिर द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का जो वर्णन हुआ है, वह वस्तुतः उनके शौर्य एवं परोपकारी व्यक्तित्व का द्योतक है। युधिष्ठिर कहते हैं कि आपके प्रभाव से ही मैं इस भारतवर्ष का बहुत समय तक सम्राट् बना हुआ हूँ।[३] मेरे धर्मराज कहलाने में भी आप ही कारण है।[४] श्रीकृष्ण अत्यन्त विनम्रता के साथ जो उत्तर देते हैं वह वस्तुतः उनकी उदात्तता का सूचक है। वे कहते हैं—इस समय तुम्हारा महान् प्रताप अपनी नीति की महिमा से ही समस्त राजाओं को पराजित करने वाला है क्योंकि यदि पथ्य सेवन करने वाला नीरोग होता है तो उसमें दूसरे का क्या गुण है ?[५]

श्रीकृष्ण का सर्वोत्कृष्टगुण है उनकी परदुःखकातरता। वे प्रजा के दुःख से दुःखी होते हैं। उन्हें शिशुपाल द्वारा अपने प्रति किये जाने वाले अपराधों की चिन्ता नहीं है अपितु उन्हें उसकी लोकसन्तापकारिता से कष्ट है।[६] वस्तुतः यही उनके अवतार का कारण भी है जिसे प्रथम सर्ग में नारद जी ने स्तुतिपरक ढंग से प्रस्तुत किया है।

---

१. शिशुपालवध १४।३। २. वही १६।३०। ३. वही १४।५।
४. वही १४।६। ५. वही १४।१३–१६।
६. न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यस्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्॥ शिशुपालवध २।११।

श्रीकृष्ण का धैर्य लोकोत्तर है। धैर्य छूट जाने वाली विषम परिस्थितियों में भी वे धैर्य का परित्याग नहीं करते हैं। वस्तुतः विकारोत्पादक परिस्थितियों में भी जिनके चित्त क्षुब्ध नहीं होते वे ही धैर्यशाली हैं।[1] वे शिशुपाल के कठोर वचनों को सुनकर भी किंचिन्मात्र विकृत नहीं होते हैं, क्योंकि सत्यसन्ध पुरुष को कटु वचनों द्वारा भला कौन विकृत ही कर सकता है ?[2] वे अपशब्द कहते हुए शिशुपाल को कोई उत्तर नहीं देते क्योंकि सिंह मेघों के गरजने पर गरजता है शृगाल के रोदन के प्रति नहीं।[3] शिशुपाल प्रेषित दूत के कटु सन्देश को सुनकर सारी यदुसभा क्षुब्ध हो जाती है किन्तु श्रीकृष्ण के चित्त में स्वल्प भी विकार उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि वर्षा के जल से नदियाँ विकृत होती है, समुद्र में कोई परिवर्तन नहीं होता है।[4]

श्रीकृष्ण अत्यन्त दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। उन्होंने अपनी बुआ सात्वती से शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा कर देने की प्रतिज्ञा की थी जिसका वे पूर्णरूपेण निर्वाह करते हैं। वे शिशुपाल द्वारा पहले किये गये सहस्रों अपराधों को न मानते हुए युधिष्ठिर के सभा-भवन में ही किये जाने वाले अपराधों को पहला अपराध मानकर गिनते हैं।[5] यह उनके दृढ़व्रत का द्योतक है।

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार काव्य का अंगीरस शृंगार,वीर तथा शान्त में से कोई एक होता है। इस दृष्टि से माघ काव्य का अंगीरस वीर है। इस वीर रस की परिपुष्टि काव्य के नायकभूत श्रीकृष्ण के युद्धवीरत्व में हुयी है। वे अत्यन्त कुशल वीर योद्धा हैं। उन्नीसवें सर्ग में शिशुपाल के साथ युद्ध में उनके अलौकिक पराक्रम के दर्शन होते हैं।

श्रीकृष्ण ने कवचावृत शरीर वाले शत्रुओं के नेत्रों की पुतलियों

---

१. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।
कुमारसम्भव १।५९।

२. शिशुपालवध १५।४०।

३. प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनुहुँकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केशरी॥ शिशुपालवध १६।२५

४. शिशुपालवध १७।१८। ५. शिशुपालवध १५।४२।

में शर-प्रहार किया क्योंकि वे दान देने में स्थूल लक्ष्य थे, बाण चलाने में स्थूल लक्ष्य नहीं थे ।[४] इसके द्वारा श्रीकृष्ण के युद्धवीरत्व तथा दानवीरत्व दोनों का संकेत किया गया है ।

श्रीकृष्ण के बाणों ने तमाम शत्रुओं के प्राण ले लिये, उनकी प्रत्यञ्चाओं को काट दिया । शत्रुओं को विदीर्ण कर ये रण प्रांगण में शोभित होने लगे ।[१] यद्यपि वे रणक्षेत्र में अकेले थे तथापि शत्रुओं को दो, तीन, चार रूप में दिखायी पड़ते थे ।[१]

तदनन्तर श्रीकृष्ण और शिशुपाल का युद्ध प्रारम्भ होता है । श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के बाणों को वैसे ही नष्ट कर दिया जैसे प्रतिवादी, वादी के प्रमाणों को दूसरे प्रमाणों से खण्डित कर देता है ।[१]

यद्यपि शिशुपालवध के युद्ध की उतनी स्वाभाविक वर्णना नहीं हो सकी है जितनी भारवि की स्वाभाविक बन सकी है । इसका एक कारण तो यह भी है कि माघ अपने नायक के ईश्वरत्व को नहीं भूल पाते हैं । तथापि वीररस की परिपुष्टि में कोई व्यवधान नहीं पड़ता है अपितु वह यावत् काव्यपरिसमाप्ति रोमाञ्चकारी बना रहता है ।

श्रीकृष्ण ने अपनी कोहनियों को संकुचित कर कर्णपर्यन्त प्रत्यञ्चा को खींचा जिससे मदोन्मत्त क्रौञ्चों के कलरव के समान उच्च स्वर से धनुष टंकार हुआ । धनुष खींचने के समय उनका वक्षःस्थल विस्तृत हो गया, कन्धे कुछ झुक गये, शिर मयूरवत् ऊपर को उठ गया, आगे और पीछे मुट्ठियाँ दृढ़ हो गयीं ।[२]

टंकार करते हुये विद्युत् की भाँति प्रत्यञ्चावाले धनुष से बड़े-बड़े असंख्य बाण शब्द करते हुए उसी प्रकार निकलने लगे जिस प्रकार, गर्जनकारी विद्युत्-मेघ से बड़ी-बड़ी असंख्य जल की धारायें शब्द करती हुयी निकलती हैं ।[३] शिशुपाल ने प्रस्वापनास्त्र का प्रयोग किया किन्तु

---

२. वही १९।९९ । ३. वही १९।१००-१०२ ।

४ द्विधा त्रिधा चतुर्धा च तमेकमपि शत्रवः ।
पश्यन्तः स्पर्धया सद्यः स्वयं पञ्चत्वमाययुः ॥ शिशुपालवध १९।११७ ।

१. शिशुपालवध २०।१७ । २. वही २०।१९-२० ।

३. वही २०।२१ ।

श्रीकृष्ण की कौस्तुभमणि के प्रकाश से सभी जागते रहे ।[१] शिशुपाल का नागास्त्र भी श्रीकृष्ण के द्वारा अपनी ध्वजा पर अंकित गरुड़ को सस्मित देखने से उससे निःसृत गरुड़ों के द्वारा विफल कर दिया गया ।[२]

इस प्रकार विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग शिशुपाल द्वारा किया जाता रहा किन्तु वे सभी श्रीकृष्ण के संकेत मात्र चेष्टा द्वारा विफल होते रहे। शिशुपाल का आग्नेयास्त्र भी सफल न हो सका क्योंकि उसे श्रीकृष्ण ने मेघास्त्र से अर्थहीन कर दिया ।[३]

अन्त में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को वाग्बाणों से व्यथित करना शुरू किया। इस पर उन्होंने (श्रीकृष्ण) अपने सुदर्शन चक्र से उसके शरीर को शिरोविहीन कर दिया ।[४] तदनन्तर शिशुपाल के शरीर से एक दीप्तिमान तेज निकला जो श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया ।[५]

कवि ने तेज के समाहित होने का वर्णन करके श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व सिद्ध किया है।

महाकवि माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण को काव्य में नर रूप में प्रतिष्ठित कर उनमें विभिन्न उदात्त मानवीय गुणों का समाहार किया है जो अत्यन्त अनुकरणीय बन सके हैं। कवि ने श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो नारद द्वारा लोकपोडकों का विनाश कर सज्जनपरित्राण रूप उद्देश्य अथवा अन्य कारण संकेतित किया है उसका काव्यान्त में सफल निर्वहन किया है। माघ ने श्रीकृष्ण को ही नायक रूप में इसलिए चुना होगा अथवा श्रीकृष्ण-प्रधान घटना को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया होगा जिससे उनकी विष्णुविषयक आस्था पुष्ट होने के साथ ही नायक सदृश काव्य का भी रक्तलोकत्व सुस्थापित हो सके। कुछ भी हो किन्तु उनके श्रीकृष्ण जहाँ जनमानस की श्रद्धा के केन्द्र विन्दु हैं वहीं वे अपने मानवीय गुणों से एक आदर्श मानव का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। वे शौर्यवान, प्रतापी, दयादाक्षिण्य गुणों से अलकृत अत्यन्त मनस्वी एवं दृढ़व्रती हैं। संक्षेप में उनके अनेक गुणों को प्रकाशित करने में उद्धव का निम्नांकित श्लोक समर्थ है—

१. वही २०।३६–३८। २. वही २०।५२–५३।
३. शिशुपालवध २०।६५–६६। ४. वही २०।७८।
५. वही २०।७९।

"तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत् ।
नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः ॥"[1]

**नारद**

शिशुपालवध में नारद देवदूत के रूप में प्रवेश करते हैं। वे सूर्य की भाँति तेज के पुञ्ज हैं। आकाशमार्ग से वसुदेवसद्म में निवास करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाते हैं।[2]

नारद जी गौरवर्ण के हैं।[3] कमल केशर की भाँति पीली जटायें धारण किये हैं।[4] शरीर पर पीली मूँज की मेखला हैं,[5] सुनहरे वर्ण का यज्ञोपवीत है।[6] शुभ्रवर्ण और अंजन के समान काले मृगचर्म को धारण किये हैं।[7] हाथ में वीणा और स्फटिक माला है।[8] वे अतीन्द्रिय ज्ञान निधि हैं।[9] देवतागण उन्हें उनके सम्मान में अपनी सीमा तक भेजने आते हैं।

नारद जी अत्यन्त तेजस्वी मुनि हैं।[10] वे संगीत में अत्यन्त निष्णात हैं। वे सदैव महती नाम की वीणा लिये रहते हैं, जिसे निरन्तर बजाने से उनका अंगुष्ठ नख वीणा के तार के संघर्ष से उज्ज्वल हो गया है। उचित आरोहावरोह के साथ वीणा वायु के आघात से बज उठती है।[11]

नारद की गुरुता से उनके पृथ्वी पर पैर रखते ही अधः स्थित सर्पों की फणायें सप्रयास ऊपर उठाने पर भी नीचे को झुकने लगती हैं।[12]

नारद जी अत्यन्त गौरवशाली हैं। इसका ज्ञान श्रीकृष्ण द्वारा उनके सम्बन्ध में की गयी प्रशंसा से होता है। वे कहते हैं कि आपका दर्शन शरीरधारियों की तीनों लोकों की पवित्रता का सूचक है।[13] वे (नारद) बाह्य एवं आन्तरिक ,अन्धकार को मिटाने वाले होने से सूर्य से भी श्रेष्ठ

१. वही २।१०९। २. शिशुपालवध १।१–३। ३. वही १।४।
४. वही १।५। ५. वही १।६। ६. वही १।७।
७. वही १।६। ८. वही १।९। ९. वही १।११।
१०. वही १।३, २४। ११. वही १।९–१०। १२. वही १।१३।
१३. हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥
शिशुपालवध १।२६।

हैं क्योंकि सूर्य तो मात्र बाह्य अन्धकार को ही मिटाता है। वे अक्षय ज्ञान की निधि हैं।[1]

नारद जी अत्यन्त ज्ञानी हैं। वे जानते हैं कि श्रीकृष्ण ही साक्षात् विष्णु हैं।[2] मोक्ष मार्ग को पहुँचे हुये जनों के प्राप्तव्यस्थान हैं। वे सांख्यमत के अनुसार श्रीकृष्ण को क्रियारहित, दुर्ज्ञेय, विकारहीन बता-उनके ब्रह्मरूप का प्रतिपादन करते हैं, जिसका किसी ज्ञानी के द्वारा ही वर्णित किया जाना सम्भव है।[3] नारद ने इस प्रसंग में श्रीकृष्ण के निर्गुण रूप के साथ ही सगुण[4] रूप का भी चित्रण किया है।

नारद जी अत्यन्त वाक् पटु है। वे अपने वाक् चातुर्य से भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हैं तथा अपने शिशुपालवध रूप प्रयोजन की सिद्धि हेतु उनके ( श्रीकृष्ण के ) द्वारा अतीत में हिरण्यकशिपु और रावण रूप में वध किये जाने का वर्णन करते हैं। नारद जी कहते हैं कि यद्यपि आप स्वयं हो लोकद्रोहियों के विनाशार्थ प्रवृत्त हैं तथापि आपसे बातचीत करने का लोभी मन मुझे वाचाल वना रहा है—

"प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः॥"[5]

शिशुपाल के जन्मान्तरीय औद्धत्य[6] का वर्णन करके उसके वधार्थ भगवान् श्रीकृष्ण को प्रवृत्त करते हैं।[7] नारद जी ने अपने पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने वस्तुतः शत्रु के प्रति क्रुद्ध होकर नारद जी को उसके ( शिशुपाल के ) वधार्थ स्वीकृति प्रदान कर दी।[8]

यद्यपि शिशुपालवध में नारद जी का दर्शन प्रथम सर्ग में ही होता है तथापि सम्पूर्ण कथावस्तु में गति प्रदान करने का श्रेय नारद जी को ही प्राप्त है।

इस प्रकार नारद जी तेजस्वी देवर्षि, गौरवशाली, संगीत प्रेमी, भक्ति, ज्ञान और तपस्या की राशि हैं। वे इन्द्र के दूत के रूप में शिशुपालवध

१. शिशुपालवध १।२७–२८। २. वही १।३१। ३. वही १।३२–३३।
४. वही १।३४–३९। ५ वही १।४०। ६. शिशुपालवध १।४२–४८।
७. वही १।७३। ८. वही १।७५।

का सन्देश देते हैं। यदि उन्हें दूत की दृष्टि से देखा जाय तो वे अपने कार्य में अत्यन्त पटु एवं कुशल हैं। वे परोपकार में सतत रत हैं।

**शिशुपाल**

शिशुपाल माघ काव्य का प्रतिनायक है। शिशुपाल खलनायक कहलाता है। वह अत्यन्त अभिमानी है। युद्ध कला में अत्यन्त प्रवीण है। वह युधिष्ठिर की सभा में श्रीकृष्ण, भीष्म तथा पाण्डवों को कटु वचन कहता है।

शिशुपाल बचपन में चार भुजा वाला था तथा मुख में पूर्ण चन्द्रमा के समान था।[1] वह अत्यन्त अभिमानी है क्योंकि शिवादि देवताओं के वरदान से प्राप्त अतिशय पराक्रम वाले रावणादिकों का उपहास करता है।[2] उसे अपने बल पर अत्यधिक गर्व है। वह ब्रह्मा के भी आदेश का उल्लंघन करने वाला है।[3]

यद्यपि शिशुपाल प्रतिनायक है, अभिमानी एवं उद्दण्ड है तथापि माघ का शिशुपाल महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत के शिशुपाल से अधिक गम्भीर, युद्धकला विशारद, दुर्वादी किन्तु वाक्पटु तथा राजनीतिक एवं स्वाभिमानी भी है, किन्तु उसमें ईर्ष्याद्वेष अधिक है।

माघ काव्य के प्रथम सर्ग में नारद जी के द्वारा श्रीकृष्ण को दिये जाने वाले इन्द्र-सन्देश में शिशुपाल के औद्धत्य का वर्णन होने के अनन्तर उसका विशद चरित्र पन्द्रहवें सर्ग से काव्य परिसमाप्ति तक आया है।

शिशुपाल अतिशय ईर्ष्यालु है। वह युधिष्ठिर की सभा में श्रीकृष्ण की पूजा को नहीं सहन कर पाता।[4] वह क्रुद्ध हो जाता है। अत्यधिक क्रोध के कारण उसके आँसू गिरने लगते हैं। शरीर से पसीना बहने लगता है। अपने पर्वत-शिखर सदृश कठोर कन्धों से सभा भवन के खम्भे को धक्का देने लगता है। क्रोधातिशय के कारण उसकी भृकुटि वक्र हो जाती है, अत्यधिक भ्रूभंग के कारण वह भयावह हो जाता है।[5] उसका क्रोध बढ़ जाता हैं। जिससे वह पर्वत की चट्टान के समान कठोर जाँघ पर हाथ पटक कर ताल ठोंकता है।[6]

---

१. वही १।७०। २. वही १।७१। ३. वही १।७२-७३।
४. शिशुपालवध १५।१। ५. वही १५।४-८। ६. वही १५।१०।

उसकी वाणी में कटुता होते हुये भी गाम्भीर्य है। वह निर्भीकता से मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी में कटु एवं उच्च स्वर में सभा में बोलने लगता है।[1] वह सर्वप्रथम श्रीकृष्ण को न फटकार कर युधिष्ठिर को ही फटकारता है क्योंकि उसे विदित है कि इस यज्ञ का आयोजन उन्हीं (युधिष्ठिर) के द्वारा हुआ है।[2] शिशुपाल ने जो सभा स्थित श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर एवं भीष्म की निन्दा की है, उसमें उसकी निपुणता भी छिपी हुये है। वह युधिष्ठिर की 'धर्मराज' इस पदवी की निन्दा करते हुये कहता है कि तुम्हें धर्मराज झूठ ही कहते हैं और उसी प्रकार है जैसे अत्यन्त अशुभ मंगल ग्रह को लोग 'मंगल' कहते हैं।[3]

भीष्म पितामह को भी वह फटकारते हुये उन्हें निम्नगा (नीचगामिनी) का पुत्र कहकर निन्दा करता है।[4]

तदनन्तर वह श्रीकृष्ण को भी कटु वचन कहने लगता है। यहाँ ज्ञातव्य है कि यदि शिशुपाल की वाणी में कवि कृत विरोध परिहार पक्ष को न भी लिया जाय तो सिद्धान्ततः उसके सिद्धान्त उच्च कोटि के हैं किन्तु वैविध्य यह है कि वह समस्त सिद्धान्तों एवं आदर्शों के आश्रय-स्थान श्रीकृष्ण को ही विपरीत सिद्ध करता है। उसका यह कथन कि हे अङ्ग ! ( श्रीकृष्ण ) तुम अपने को समझो क्योंकि अपने स्वरूप को नहीं समझना आपत्ति का स्थान होता है।[5] इसमें उसका तर्क तो ठीक है किन्तु वह स्वयं क्रियात्मक रूप से किसको फटकार रहा है, नहीं विदित है। अथवा उचित ही है दुष्टों की वाणी में अर्थ और सिद्धान्त विपरीत होते ही हैं।

शिशुपाल श्रीकृष्ण के सभी पर्यायभूत नामों जैसे मधुसूदन, इष्टसत्य, चक्रधर, श्रीपति, विक्रमी, भूमिभृत्, तुलित, भूभृत् (गोवर्धन उठाने से पड़ा नाम) आदि नामों की विपरीतार्थकता सिद्ध करता है।[6] इतना ही नहीं वह बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है। प्रायः दुष्ट स्वयं किसी से विरोध करने के पश्चात् यह चाहते हैं कि सभी उसके विरोधी बन जायँ। इस दृष्टि से वह सभा स्थित अन्य राजाओं को भी उत्तेजित करता है। सिंह

१. वही १५।१३।    २. वही १५।१४।    ३. वही १५।१८।
४. शिशुपालवध १५।१९, २१।    ५. वही १५।२२।
६. वही १५।२३, २५-३२।

सदृश आप सबके देखते रहने पर जो गीदड़ के समान कृष्ण की पूजा हुयी है, वह आप सभी का अनादर और तिरस्कार है ।[1]

शिशुपाल के जीवन का काव्यगत सर्वोत्कृष्ट पक्ष है—उसका वीरत्व, जिसके कारण ही नायक का उत्कर्ष प्रकटित हो सका है। शिशुपाल अत्यन्त वीर है। श्रीकृष्ण से उसका वैर बद्धमूल है।

शिशुपाल के बाणवर्षण जन्य वीरत्व की पराकाष्ठा के दर्शन तो तब होते हैं जब उसके बाणों से सूर्य छिप जाता है, आकाश की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। पृथ्वी के निवासी न तो आकाश देख पाते हैं और न आकाशस्थ देवादि पृथ्वी ही देख पाते हैं।[2] श्रीकृष्ण की सेना को शिशुपाल ने उसी प्रकार निश्चेष्ट कर रोक लिया जिस प्रकार कोई पक्षिसमूह को चेष्टाहीन करके पिंजड़े में बन्द कर ले।[3]

जब श्रीकृष्ण के बाणों ने उसकी सेना को परास्त करना प्रारम्भ किया तो उसने स्वापनास्त्र चलाया[4] जिससे श्रीकृष्ण की सारी सेना धनुष का अवलम्बन करके सो गयी।[5] पुनः उसने नागास्त्र[6] तथा आग्नेयास्त्र[7] चलाया किन्तु वे सब अपने प्रभाव को प्रकटित हुये श्रीकृष्ण द्वारा खण्डित कर दिये जाते हैं।[8] अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से शिरच्छेदन कर दिये जाने पर उसका तेज उन्हीं ( श्रीकृष्ण ) में मिल जाता है और वह सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

**सात्यकि**

यह शिनि का पौत्र है। शिशुपाल के दूत दुर्मुख ने जब श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रिय और अप्रिय रूप द्व्यर्थक बातें कहीं, तभी उसका मुँहतोड़

---

१. मृगविद्विषामिव यदित्थमजनि मिषतां पृथासुतैः।
अस्य वनशुन इवापचितिः परिभाव एष भवतां भुवोऽधिपाः॥
वही १५।३४।

२. अमनोरमतां यतीजनस्य क्षणमालोकपथान्नमः सदां वा।
रुरुधे पिहिताहिमद्युतिद्यौर्विशिखैरन्तरिता च्युता धरित्री॥
वही २०।१५।

३, ४, ५. शिशुपालवध क्रमशः २०।१७, २०।३२, २०।३३-३४।
६. वही २०।४१। ७. वही २०।५९। ८. वही २०-७६।

उत्तर देने के लिये प्रगल्भ प्रतिभावान वक्ता सात्यकि को चक्रपाणि श्रीकृष्ण ने संकेतित किया।[1] उसने भी दुर्मुख की ही भाँति प्रिय किन्तु मर्मघातक वाणी में उत्तर दिया। सात्यकि के उत्तरों से उसकी वक्तृता, व्यवहार कुशलता एवं राजनीति-पटुता का भी पता चलता है। पहले वह (सात्यकि) दूत (दुर्मुख) को फटकारता है। उसने दुर्मुख की वाणी को बाहर से प्रिय तथा अन्दर से अप्रिय होने से मार्ग में बोलने वाले अमंगल सूचक पिंगल, टिटिहरी आदि के समान[2] कहकर शिशुपाल के दोषों को कहना प्रारम्भ किया।[3]

सात्यकि की बातों में नीति परक ढंग से शिशुपाल के दोषों का उल्लेख है। इससे उसकी नीतिज्ञता एवं व्यावहारिकता स्पष्ट होती है। वह सज्जन और दुर्जन का गुण कथन करते हुए श्रीकृष्ण और शिशुपाल में अन्तर को सिद्ध करता है। सात्यकि के अनुसार शिशुपाल अत्यन्त हल्के चित्त का है क्योंकि उदारचित्त वाले अप्रिय बातों को भी प्रकट नहीं करते किन्तु शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की युधिष्ठिर कृत पूजा के प्रति अपनी ईर्ष्या व्यक्त की है, अतः वह अत्यन्त तुच्छ हृदय का है।[4] बड़ी चतुरता से सात्यकि श्रीकृष्ण और शिशुपाल की असमानता का उल्लेख करता है। वह कहता है कि शिशुपाल तो क्रोधावेश से जीता जा चुका है और श्रीकृष्ण ने क्रोध को जीत लिया है अतः क्रोधजयी सज्जनों का क्रोधाभिभूत दुष्ट के साथ कैसी समानता ?[5] दुष्टों के पास अपने कोई गुण न होने से वे सज्जनों का दोष कथन करके ही आनन्दित होते हैं।[6]

इस प्रकार सात्यकि ने दूत को जो उत्तर दिया है, उससे उसकी वाक्पटुता और नीतिज्ञता प्रकट होती है।

यद्यपि काव्य में सात्यकि के चरित्र से कोई वैशिष्ट्य नहीं उत्पन्न हुआ है अपितु कवि को अपनी श्रद्धा प्रकट करने के साथ ही विद्वत्तापूर्वक काव्य कलेवर की वृद्धि में यत्किञ्चित् गति मिल सकी है।

**भीष्म**

भीष्म शान्तनु के पुत्र हैं। वे वृद्ध एवं अनुभवी हैं। धर्मशास्त्रादि का

---

१, २, ३. शिशुपालवध क्रमशः १६।१६, १९, २०।

४, ५, ६. वही क्रमशः १६।२१, २३, २६, २८।

उन्हें अच्छा ज्ञान है। इसके साथ ही वे अपूर्व योद्धा हैं। कर्मकाण्ड में भी उनकी अप्रतिहत गति है।

राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर युधिष्ठिर उन्हें सुयोग्य समझकर उनसे अर्घ्यदान के सम्बन्ध में पूछते हैं। इस पर वे नम्रतापूर्वक शास्त्रोक्त विधि से स्नातक, गुरुजन, ऋत्विक्, जमाता आदि छः को अर्घ्य प्रदान करने के योग्य बताते हैं।[१] वे इस सम्बन्ध में यह भी कहते हैं कि स्नातकादि गुणवान् सभी पृथक् पृथक् सत्कार-योग्य हैं अथवा अधिक गुणवान् एक ही व्यक्ति पूज्य होता है, यह भी शास्त्रीय विधि है।[२]

भीष्म को भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति असीम श्रद्धा है। वे श्रीकृष्ण को अर्घ्य प्रदान के योग्य बताकर अपनी आस्थापरक सम्मति देते हैं।[३] वे श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व एवं ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हैं।[४] भीष्म और नारद की स्तुति में पर्याप्त साम्य है। नारद ने संक्षेप में श्रीकृष्ण के प्रभाव का स्तुतिपरक ढगं से एक प्रयोजनविशेष के कारण वर्णन किया है किन्तु भीष्म निरपेक्षभावेन श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण के विभुत्व, परमेश्वरत्व का गायन करते हैं। नारद के अनुसार श्रीकृष्ण पुरातन, पुराण पुरुष हैं और भीष्म की स्तुति में भी वे ईश्वर संज्ञक पुरुष विशेष हैं।[५]

भीष्म की वीरता का बोध उनकी श्रीकृष्ण विषयक श्रद्धा को व्यवहित करने वाले शिशुपाल के निन्दित वचनों की प्रतिक्रिया में होता है।[६] वे अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक सभा में कहते हैं—जो व्यक्ति मेरे द्वारा की गयी श्रीकृष्ण की पूजा को नहीं सहन करता है, वह युद्धार्थ धनुष ग्रहण करे, सभी राजाओं के मस्तक पर मेरा पैर रखा है।[७]

काव्य में भीष्म अत्यन्त गम्भीर, तत्त्ववेत्ता, शास्त्रज्ञ एवं कृष्ण-भक्त के रूप में चित्रित किये गये हैं। माघ ने अपने काव्य में नारद, भीष्म, सात्यकि जैसे पात्रों को मात्र श्रीकृष्ण के महत्त्वप्रख्यापन हेतु ही उपन्यस्त किया है अथवा प्रकारान्तर से अपनी विष्णु विषयक आस्था की अभिव्यक्ति की है। इनमें नारद का वस्तुतः एक विशिष्ट प्रयोजन है जो उनके दौत्य कर्म में निहित है। श्रीकृष्णस्तुति तो मात्र मुख्य प्रयोजन की सहायिका ही है।

---

१, २, ३, ४. शिशुपालवध क्रमशः १४।५५, ५७, ५८, ५९–८६।

५, ६, ७. वही क्रमशः १।३३, १४, ६२, १५।४४–४५, १५।४६।

**युधिष्ठिर**

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के बुआ के पुत्र हैं। वे अत्यन्त शिष्ट एवं विनम्र हैं। उनका वक्षःस्थल कम चौड़ा था किन्तु उनके हाथ घुटनों तक लटकते थे।[१] श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अपार श्रद्धा है। श्रीकृष्ण उन्हें राजसूय यज्ञ में पूर्ण सक्षम मानते हैं।[२] युधिष्ठिर श्रीकृष्ण पर अविचल विश्वास रखते हैं। वे उन्हीं (श्रीकृष्ण) के आश्रय से यज्ञ-सम्पन्न करना चाहते हैं।[३]

महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण के मुख से युधिष्ठिर के सम्बन्ध में जो कहलवाया है उससे उनके (युधिष्ठिर) प्रताप एवं गौरव का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। वे अत्यन्त प्रतापी तथा अपने पराक्रम से एकच्छत्र राज्य करने वाले एवं प्रजा का पुत्रवत् स्नेह करने वाले हैं।[४] उनके राज्य में किसी भी प्रकार का उपद्रव नही है, राज्य निरातंक है।

युधिष्ठिर बड़ी ही नम्रता पूर्वक श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आपके हितकर्त्ता रहने पर मेरी सब सम्पत्ति स्थिर है अथवा मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हैं।[५]

इस प्रकार युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अत्यधिक श्रद्धावनत हैं। वे धर्म धुरीण हैं। उनके गुणों के कारण ही श्रीकृष्ण प्रभावित होकर सभी आज्ञाओं का अनुजवत् पालन करते हैं।[६] युधिष्ठिर के पराक्रम, औदार्य एवं सारल्य के कारण यज्ञ में समागत सभी नृपति छोटे बड़े कार्यों को बड़ी लगन से करते हैं। पशुरक्षादि साधारण कार्यों को भी करने में गौरवान्वित होते हैं।[७]

युधिष्ठिर यद्यपि स्वयं ज्ञानवान् हैं तथापि वे अर्घ्य के सम्बन्ध में भीष्म-पितामह से पूछते हैं।[८] इससे उनकी निरभिमानिता प्रकट होती है। समर्थ होते हुये भी उनमें किसी भी प्रकार का मद नहीं है। भीष्म कहते हैं कि यद्यपि तुम स्वयं सब कुछ जानते हो तथापि यह तुम्हारी सदाचारपालन की परम्परा है।[९] उनके गुणों के कारण ही शत्रु भी धर्मराज और सत्यसन्ध जैसी उनकी उपाधियों से प्रभावित हैं।[१०]

---

१. शिशुपालवध १३।१०।    २. वही २।९।    ३. वही २।१०३।
४. शिशुपालवध १४।१३-१४।    ५. वही १४।१७।    ६. वही १४।१५।
७. वही १४।४२।    ८. वही १४।५३।    ९. वही १४।३४।
१०. वही १५।१६-१७।

युधिष्ठिर की शिष्टतापूर्ण गुरुता का तो पता वहाँ चलता है जब वे अपने अनन्य इष्ट श्रीकृष्ण को अपशब्द बकते हुये शिशुपाल को भी नहीं कुछ कहते क्योंकि वह भी उनका सम्बन्धी (मौसेरा भाई) है और उनके निमन्त्रण पर ही यज्ञ में आया है।[१] अपितु वे अनुनय पूर्वक उसे सभा से न जाने के लिए रोकते ही हैं।[२]

शिशुपालवध में युधिष्ठिर की दानवीरता का सुन्दर वर्णन हुआ है। वे पंक्तिपावन ब्राह्मणों को यथाक्रम दक्षिणा प्रदान करते हैं।[३] इन्द्र सदृश अप्रतिहत शासन वाले उन युधिष्ठिर ने विस्तृत भूमि को दान दिया।[४] उनके यज्ञ में भी इच्छा से आया हुआ व्यक्ति निराश नहीं हुआ, उसकी धन, स्वास्थ्य, भोजन अथवा अन्य इच्छित पदार्थों की कामनायें सफल हुयीं।[५]

उन्होंने सभी को आदर पूर्वक दान दिया तथा प्रचुर धन प्रदान कर आत्मश्लाघा नहीं की।[६]

इस प्रकार कवि ने युधिष्ठिर की दानशीलता का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। काव्य में युधिष्ठिर एक प्रमुख पात्र हैं क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के दो कार्यों में एक कार्य राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना भी है जिसे युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के ही भरोसे सम्पन्न करते हैं।[७]

---

१. वही १५।६८। २. वही १५।६७। ३. शिशुपालवध १४।३३।
४. वही १४।३६। ५. वही १४।४९। ६. वही १४।४५।
७. वही १४।७।

## तुलनात्मक समीक्षा

महाकवि माघ बहुत अंशों में भारवि के ऋणी हैं। भारवि काव्य के पात्रों का सन्निबन्धन नितान्त मौलिक हैं और माघ की मौलिकता में अपने पूर्ववर्त्ती किरातार्जुनीय के पात्रों का सैद्धान्तिक मिश्रण है। प्रत्येक काव्य में कुछ उग्र उच्छृङ्खल एवं कुछ शान्त तथा गम्भीर पात्र होते हैं। यदि समान विचार के चरित्रों का समावेश किया जाय तो काव्य में विभिन्न विरोधी परिस्थितियों का चित्र एवं उनका समाधान नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिसके अभाव में काव्य सर्वतोभावेन समाजोपयोगी नहीं हो सकेगा। इस दृष्टि से महाकाव्य में नायक और खलनायक अथवा प्रतिनायक दोनों के ही पक्षधर अपने पृथक्-पृथक् विचारों के साथ काव्य में उपस्थित रहते हैं। यद्यपि प्रधानतया समस्त सहयोगी पात्रों के वैचारिक वैमत्य का पर्यवसान यथापक्ष नायक अथवा प्रतिनायक में ही होता है। नायक का सहायक यदि उसके फलागम के विपरीत है तो वह कदापि नहीं स्वीकार कर सकता किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि अन्य पात्र नितान्त गौण अथवा अनुपयोगी होते हैं अपितु उनसे नायक का उत्कर्ष ही होता है। इतना होने पर भी जब एक काव्य के पात्रों का दूसरे काव्य के पात्रों से साम्य दृष्टिगत होने लगता है तो उनसे कविकर्म की तुलनात्मक धारणा पाठक के हृदय में सहज ही उत्पन्न हो जाती है।

भारवि और माघ दोनों के काव्यों में समागत पात्रों में पर्याप्त साम्य एवं वैषम्य है। किरातार्जुनीय के पात्रों में अर्जुन, द्रौपदी, भीम, युधिष्ठिर, वनेचर, दुर्योधन, वेदव्यास, यक्ष, इन्द्र एवं किरातपति शंकर हैं। माघ काव्य में श्रीकृष्ण, नारद, युधिष्ठिर, भीष्म, अर्जुन, बलराम, उद्धव एवं शिशुपाल हैं। माघ ने किसी स्त्री पात्र की योजना नहीं की है।

यदि दोनों काव्यों के पात्रों की तुलना की जाय तो भारवि के भीम एवं द्रौपदी, माघ के बलराम एक कोटि में आ सकते हैं तथा किरात के युधिष्ठिर एवं माघ के उद्धव एक कोटि में रह सकते हैं। दौत्यकर्म की दृष्टि से नारद तथा किरात के वेदव्यास भी तुलनीय हैं। जहाँ तक

दोनों काव्यों के नायकों का प्रश्न है तो वे दोनों ही अपने-अपने स्थान पर उत्साहपूरित हैं और लक्षणग्रन्थोक्त नायक-गुणों से ओत-प्रोत हैं, उनकी तुलना का कोई औचित्य नहीं बनता है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि किरात-काव्य के नायकभूत अर्जुन का पराक्रम माघ काव्य की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है क्योंकि अर्जुन पूर्णतया मानवीय धरातल पर चित्रित हैं और माघ के श्रीकृष्ण दिव्य धरातल पर।

**भीम तथा बलराम**

किरातार्जुनीय महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के प्रारम्भिक पचीस श्लोकों में भीम के चरित्र का निरूपण हुआ है। वे द्रौपदी की उत्तेजनापूर्ण वाणी का समर्थन करते हुये अपने वक्तव्य का प्रारम्भ करते हैं।

शिशुपालवध में राजनीतिक प्रसंग के अवसर पर बलराम का चरित्र द्वितीय सर्ग के १४वें श्लोक से ६६वें श्लोक तक विकसित हुआ है।

बलराम वीर योद्धा हैं। वे बढ़ते हुये शत्रु की उपेक्षा नहीं कर सकते। कवि ने बलराम के चरित्र को सिद्धान्त रूप में एक ही श्लोक से स्पष्ट कर दिया है। शत्रु के अपराध को सुनकर रेवती के ओष्ठबिम्ब के चुम्बन में प्रसिद्ध बलराम के ओष्ठ क्रोध के कारण काँपने लगते हैं।[1] इससे बलराम की वीरता एवं विलासिता दोनों का पता चलता है। यहाँ तुलनात्मक दृष्टि से यह ध्यातव्य है कि भारवि के भीम में विलासिता का लेश मात्र भी नहीं है। उसका एक तो कारण कविगत दृष्टिकोण भी है क्योंकि भारवि पौरुष प्रधान कवि हैं जब कि माघ पौरुषवान् किन्तु विलासी भी हैं।

अतः बलराम, भीम एवं द्रौपदी के वीरत्वपूर्ण वचनों की तुलना ही उचित होगी जो दोनों में ही राजनीतिक धारणा को संजाये हुये हैं।

बलराम का चरित्र जिस पर आधारित है, वह विषयवस्तु है, शिशुपाल का वध अथवा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होना इसी से श्रीकृष्ण कार्यद्वयाकुल हैं।

---

१. ततः तपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा।
ओष्ठेन रामो रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना॥
शिशुपालवध २।१४

बलराम का विचार है कि शत्रु की उपेक्षा करना ठीक नहीं है क्योंकि बिना शत्रु का समूल नाश किये प्रतिष्ठा का मिलना बड़ा दुर्लभ है तथा एक भी शत्रु के रहते हुये सुख मिलना सम्भव नहीं है।[1] बलराम के मत से यद्यपि शिशुपाल फुफेरा होने से कृत्रिम शत्रु की ही श्रेणी में आता है। किन्तु वह अपकारी है, अतः उसके साथ कोई समझौता नहीं अपितु तदनुकूल (शत्रुवत्) व्यवहार ही सापेक्ष है।[2] वे (बलराम) भगवान् श्रीकृष्ण को शिशुपाल के पूर्वकृत अपराध, जो उसने श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में द्वारिकापुरी को घेर लिया था, का स्मरण दिला कर उन्हें अपने अनुकूल विचारों से उत्तेजित करते हैं।[3] उनको दृष्टि में यदि पुरुषोचित पौरुष है तभी वह पुरुष कहलाने के योग्य है, अन्यथा उसका जन्म लेना चिन्तनीय है।[4]

बलराम सामनीति के विरोधी हैं। शत्रु के प्रति सामनोति का प्रयोग करना वैसे ही है जैसे तप्त घी में छोड़ी गयी जल की बूँदे।[5]

इस प्रकार बलराम यथाशीघ्र शत्रु के विनाश में विश्वास करते हैं। क्षमा, शान्ति एवं सहिष्णुता का उनके पास कोई स्थान नहीं है। वे शत्रुवध जन्य यश के अभिलाषी हैं। शत्रु का जो व्यवहार है तदनुकूल उसके प्रति करणीय अवसरोचित मानते हैं। बलराम की दृष्टि में नम्रता का कोई स्थान नहीं।[6] वह अपमान नहीं सह सकते।[7]

किरातार्जुनीय में यही स्थिति है भीम एवं द्रौपदी की। द्रौपदी भी शत्रु के प्रति शान्ति अथवा सामनीति को नहीं स्वोकार करती हैं वे 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' की नोति का ही समर्थन करती है।[8] द्रौपदी भी स्पष्ट रूपेण कह देतो है कि महाराज! क्षमा को दूर भगाइये और प्रचण्ड प्रताप का आश्रय लीजिये।[9]

---

१. शिशुपालवध २।३४–३५। २. वही २।३७। ३. वही २।३९।
४. वही २।४७। ५. वही २।५५। ६. वही २।५३।
७. पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥
शिशुपालवध, २।४६।
८. किरातार्जुनीय १।३०। ९. वही १।४२ पूर्वार्धं।

द्रौपदी का ही समर्थन भीम भी करते हैं। भीम की वाणी में द्रौपदी से और अधिक ओज है क्योंकि वे स्वयं एक वीर योद्धा हैं। वे (भीम) कहते हैं कि सिंह के समान बड़े लोगों का ( पराक्रमी ) स्वभाव है कि वे किसी के अभ्युदय को सहन नहीं करते जिस प्रकार सिंह मेघ गर्जन सुनकर गर्जना करता है।[१]

बलराम शत्रुवधार्थ मात्र साक्षिस्वरूप श्रीकृष्ण को उपस्थित रहने को ही कहते हैं, शेष तो सेना विजय प्राप्त कर ही लेगी।[२] तथैव भीम भी युधिष्ठिर से कहते हे कि मतंगजों और चारों समुद्रों की भाँति इन्द्र के समान आपके भ्राताओं के पराक्रम को समारांगण में कौन सहन कर सकता है ?[३]

यहाँ बलराम और भारवि काव्य के भीम एवं द्रौपदी का चरित्रगत साम्य यह है कि दोनों काव्यों के पात्र अत्यन्त क्रोधी हैं और तुरन्त उत्तेजित हो जाते हैं। उन्हें बिना शत्रु का विनाश किये चैन नहीं है। वे नीतिशास्त्र की, अपने अनुसार बिना परिस्थिति का विचार किये हुये व्याख्या करते हैं। न तो भीम, द्रौपदी में इतनी गम्भीरता है कि वे इस दृष्टि से परिस्थिति का विचार करें कि दुर्योधन की स्वाभाविक धूर्तता के प्रकाशित होते ही तात्कालिक राजन्य वर्ग विपरीत हो जायेगा और विद्रोह कर देगा, जिससे शत्रु को अधीन करने का अच्छा अवसर मिल जायेगा। इसके साथ ही युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन ( १३ वर्ष की अवधि की प्रतीक्षा ) भी हो जायेगा। दूसरे माघ के बलराम तो वस्तुतः 'मुसलपाणि' ही हैं। उन्हें भी श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा का ध्यान नहीं है जो शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करने के लिये उसकी माँ सात्वती से वचनबद्ध हैं।[४]

---

१. वही २।२१।

२. विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥
शिशुपालवध २।५९।

३. द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः।
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः॥
किरातार्जुनीय २।२३।

४. किरातार्जुनीय २।७, १०।

दोनों ही महाकाव्यों में ऐसे पात्र हैं, जिनके माध्यम से भारवि और माघ ने बिना पूर्वापर विचार किये कार्य करने वाले अपरिपक्व नीतिज्ञ का प्रतिनिधित्व कराया है।

दोनों काव्यों के उक्त पात्रों में बहुत बड़ा अन्तर भी है, वह यह है कि माघ के बलराम भारवि के भीम एवं द्रौपदी से अधिक राजनीतिज्ञ हैं। भीम केवल उत्साह और पुरुषार्थ ही का वाक् शस्त्र लेकर युधिष्ठिर से अपना पराक्रम व्यक्त करते हैं, किन्तु माघ के बलराम मित्र-शत्रु[1] की प्रकृति आदि राजनीतिक गुत्थियों को अच्छी तरह समझते हैं। वे राजनीति के कुशल पण्डित हैं। इतना होते हुये भी यह सुस्पष्ट है कि बलराम भीम और द्रौपदी की वाणी एक समान है। यदि अन्तर की दृष्टि से विचार किया जाय तो मेरा मत है कि उक्त पात्रों की ओजस्वी विचारधारा माघ ने भारवि से ली है और राजनीतिक विद्वत्ता की छाप उनको अपनी है।

बलराम, भीम एवं द्रौपदी दोनों ही अपने-अपने स्थान पर कथानक को गति देने में सहायक हुये हैं।

### युधिष्ठिर और उद्धव

किरातार्जुनीय में युधिष्ठिर के चरित्र का विकास द्वितीय सर्ग के छब्बीसवें श्लोक से ५२वें श्लोक तक तथा तृतीय सर्ग के पञ्चम श्लोक से नवम श्लोक तक मुख्य रूपेण हुआ।

शिशुपालवध में उद्धव का बौद्धिक एवं राजनीतिक व्यक्तित्व द्वितीय सर्ग के ७०वें श्लोक से ११७वें श्लोक तक अभिव्यक्त हुआ है। उद्धव अत्यन्त विवेकी एवं वाक्पटु हैं। यहाँ पर स्मर्तव्य है कि उद्धव और युधिष्ठिर दोनों एक ही परिस्थिति में चित्रित हुये हैं। उद्धव बलराम की उत्तेजक वाणी के विपरीत अपना शान्त एवं गम्भीर मत व्यक्त करते हैं तथा युधिष्ठिर भीम और द्रौपदी की उत्तेजना को समझाकर शान्त करते हैं। यद्यपि दोनों ही विद्वान् एवं गम्भीर वक्ता हैं किन्तु युधिष्ठिर उद्धव से अधिक सीधे हैं। वे बड़ी सरलता से भीम को समझाते हैं किन्तु उद्धव की वाणी में व्यंग्य है। वे (उद्धव) अपना मत व्यक्त करने से पूर्व बलराम के

---

१. शिशुपालवध २।३६-४१।

लिए 'मुसलपाणि'[१] शब्द का प्रयोग करते हैं जिससे यह व्यञ्जित हुआ है कि बलराम शक्ति के तो धनी हैं किन्तु बुद्धि के कुन्द हैं।

इस प्रसंग में दोनों चरित्रों में पर्याप्त सामञ्जस्य है। कवि ने भीम के लिए दुष्ट मतवाले हाथी शब्द का प्रयोग किया है जिन्हें युधिष्ठिर शान्त करने का प्रयास करते हैं।[२] युधिष्ठिर पहले भीम की वाणी की प्रशंसा करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि क्रुद्ध व्यक्ति को कैसे समझाया जा सकता है। वे कहते हैं कि तुम्हारी सप्रमाण वाणी में सुबुद्धि स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रही है, वह अर्थगाम्भीर्य से पूरित है, पुनरुक्तिदोष से मुक्त है, तुम्हारी युक्तियाँ पुरुषार्थ का अवलम्बन करने वाली हैं, तुमने अपने विषय का उचित प्रतिपादन किया है।[३] यह कहकर वे अपना मुख्य समयोचित कर्त्तव्यानुष्ठान अभिव्यक्त करते हैं।

शिशुपालवधमें उद्धव जी भी पहले बलराम की वाणी की सारता का संकेत कर समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि बलराम जी के बोलने के अनन्तर इस समय मेरा बोलना अनुचित ही है फिर भी जो (श्रीकृष्ण द्वारा) मुझे चाचा मानने का गौरव है वही बोलने को प्रेरित कर रहा है। सीमित सात स्वरों से गुम्फित गाने के समान निश्चित वर्णों से रचित वचन की अनन्तता होती है,आश्चर्य है। यद्यपि स्वेच्छया विषयेतर जल्पना सरल है किन्तु प्रसंगोचित वाणी की अभिव्यक्ति कठिन है।[४] कुशल वक्ता श्रुति मधुर, अर्थगौरवशालिनी, प्रसाद ओज माधुर्यादि गुणों से युक्त तथा गोमूत्रिकादि बन्धों एवं शब्द वैचित्र्य से युक्त वचन बोलते हैं।[५]

वस्तुतः कवि ने यहाँ अपने काव्यगत सिद्धान्त का निरूपण करने के साथ ही उद्धव की वाणी को उक्त गुणों से परिपूर्ण उपन्यस्त किया है।

इस प्रकार उद्धव और युधिष्ठिर की वाणी में इस दृष्टि से साम्य है कि दोनों ही लक्षणग्रन्थसम्मत वाणी बोलते हैं।

युधिष्ठिर अध्यात्मनिष्ठ राजनीतिक हैं। वे कहते हैं कि विजयेच्छु पुरुष को पहले अपने क्रोध को जीतना चाहिए और फलसिद्धि के

१. संप्रत्यसांप्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना।
शिशुपालवध २।७० पूर्वार्द्ध

२. किरातार्जुनीय २।२५। ३. वही २।२६-२९।

४. शिशुपालवध २।७०-७३। ५. वही २।७४।

स्थायित्व पर दूरदृष्टि होनी चाहिए।[१] पहले बुद्धि से अज्ञान को मार भगाना उचित है क्योंकि सूर्य बिना अन्धकार को नष्ट किये नहीं उदित होता है। जो वीर होते हुए भी क्रोध जन्य मोह को नहीं रोकता वह अपनी प्रभु, मन्त्र और उत्साह शक्तियों को खो बैठता है।[२] युधिष्ठिर राजनीति के क्षेत्र में अत्यन्त विवेकवान् तथा दूरदर्शी हैं। वे जानते हैं कि दुर्योधन अधिक दिनों तक नम्रता का व्यवहार नहीं कर सकता, क्योंकि वह वस्तुतः अहंकारी है, मात्र प्रदर्शन के लिये नम्र बना है। समय आने पर उसकी उद्दण्डता एवं अहंकार से राजन्य वर्ग में भेद उत्पन्न हो जायेगा[३] और तब नीति पथ से च्युत हुआ दुर्योधन प्रजा के सम्मान का पात्र नहीं रह जायेगा।[४] युधिष्ठिर की दृष्टि में दुर्विनीत शत्रु का अभ्युदय उपेक्ष्य है क्योंकि वह स्वयं नष्ट हो जाता है।[५]

युधिष्ठिर भीम को बड़ी ही व्यावहारिक राजनीतिक धारणा के द्वारा समझाते हैं। इससे लगता है कि युधिष्ठिर का अभिप्राय अपनी उक्त विषयक विद्वत्ता प्रदर्शित करना नहीं है अपितु भीम को उचित तथ्यों के आधार पर समझाना है। यह भारवि की विशेषता है कि वे पात्र का ध्यान रखकर उसके द्वारा स्तरानुकूल विषय और तर्कों का सन्निबन्धन करते हैं किन्तु माघ अपने पाण्डित्य को हठात् पात्रों पर लादते चलते हैं। यद्यपि भारवि के युधिष्ठिर और माघ के उद्धव, दोनों शान्त प्रकृति के हैं। दोनों में उत्तेजना नहीं है तथा राजनीतिक भी हैं किन्तु उद्धव अपेक्षाकृत अधिक राजनीतिक हैं। उन्होंने जो नीति की बाते कही हैं वे कौटिल्य, कामन्दक एवं शुक्र आदि आचार्यों के सम्मत हैं। उद्धव गहन राजनीतिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि विजय की कामना करने वाला अकेला ही राजा बारह राजाओं के मध्य में उत्साह को न छोड़ता हुआ उसी प्रकार अभ्पुदय को प्राप्त करता है जैसे बारह सूर्यों में दिन को करने वाला सूर्य ही उदय होता है।[६] इस प्रकार कवि द्वादश आदित्यों[७] की चर्चा कर यातव्य और पार्ष्णिग्राह आदि बारह राजाओं की राजनीतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।[८]

---

१. किरातार्जुनीय २।३५। २. वही २।३६-३७।
३. वही २।४७। ४. वही २।४९। ५. वही २।५२।
६. शिशुपालवध २।८१। ७. धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। ८. शिशुपालवध २।९२।

उद्धव के तर्कों में राजनीति के गूढ़ सिद्धान्त छिपे हैं किन्तु युधिष्ठिर अत्यन्त सरल हैं। वे राजनीति शास्त्र की व्याख्या नहीं प्रस्तुत करते हैं। उद्धव के वचनों में यद्यपि राजनीति की उच्चकोटिक व्याख्या है किन्तु वह स्वाभाविकता नहीं है जो युधिष्ठिर की नीति में है। माघ के उद्धव तो राजनीति के प्रवक्ता लगते हैं किन्तु युधिष्ठिर एक क्रियाशील सन्त। इतना होते हुये भी दोनों ही पात्रों का अपने-अपने काव्य में जो उद्देश्य है, वह वस्तुतः एक है। युधिष्ठिर अभी दुर्योधन पर आक्रमण करना नहीं चाहते[1] और उद्धव भी शिशुपाल पर चढ़ाई करना कालोचित नहीं मानते।[2]

काव्य में युधिष्ठिर की अपेक्षा उद्धव का वक्तव्य देर तक चलता है। अन्त में उद्धव की ही सलाह मान ली जाती है किन्तु भारवि काव्य में युधिष्ठिर के वक्तव्य की समाप्ति से पहले ही वेदव्यास आ जाते हैं और पीछे की सारी बातें समाप्त हो जाती हैं तथा कथानक को दिशा ही बदल जाती है।

उद्धव और बलराम दोनों ही गम्भीर एवं दूरदर्शी हैं किन्तु उद्धव में राजनीतिक सिद्धान्तों का निरूपण अधिक है युधिष्ठिर में प्रसंगानुकूल राजनीति-प्रतिपादन है।

भारवि और माघ दोनों ही कवियों ने अपने काव्यों में जिन पात्रों का समावेश किया है, वे वस्तुतः अपने में पूर्ण एवं प्रसंगोचित है। दोनों ही काव्यों में संवाद-शैली को अपनाया गया है। किरात में अर्जुन नायक है तथा शिशुपालवध में श्रीकृष्ण। दोनों ही वीर रस के पोषक हैं।

पात्रों के चरित्र-चित्रण की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता होती है उनका काव्य में उपयुक्त स्थान पर उपस्थापन तथा विषयवस्तु के अनुसार उनके व्यक्तित्व का प्रकाशन। यद्यपि कवि का अपना काव्यगत सिद्धान्त एवं उसकी विद्वत्ता का सन्निवेश उसके कर्तृत्व में होता है तथापि वह ऐसा होना चाहिये जिससे पाठक को यह आभास न हो कि कवि कहीं पर जान बूझकर अपना पाण्डित्य प्रकट कर रहा है अथवा पात्र कथावस्तु के विकास का साधन न बनकर कवि प्रतिभा प्रकाशन का मात्र साधन बन गया है। चरित्र-चित्रण की सफलता संवाद शैली पर निर्भर करती है, इससे कवि का पाण्डित्य तो झलकता ही है साथ ही काव्य में एक प्रवाह बना रहता है। इस दृष्टि से विचार करने पर भारवि एवं माघ दोनों

---

१. किरातार्जुनीय २।४६। २. शिशुपालवध २।९५।

ही महाकवियों ने संवाद शैली को अपनाया है। भारवि काव्य में द्रौपदी तथा भीम का युधिष्ठिर से कथन तथा माघ काव्य में श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव के संवाद अपने में पूर्णतया सफल हैं। सभी पात्र अपने पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि लगता है कि वही पात्र सही है जो बोल रहा है किन्तु जब दूसरा पात्र अपना वक्तव्य प्रारम्भ करता है, तो वही अप्रतिम प्रतीत होने लगता है। शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दा करता है, वह भी यदि निरपेक्ष भाव से देखा जाय तो स्वाभाविक आभासित होता है। किरात में शिव-दूत और अर्जुन का संवाद अत्यन्त तर्कयुक्त एवं प्रभावी है। महाकवि माघ ने एक भी स्त्री पात्र की काव्य में उपस्थापना नहीं की है। भारवि के काव्य में द्रौपदी का चरित्र वस्तुतः एक वीर क्षत्राणी के रूप में अत्यन्त प्रभावी बन सका है।

यद्यपि दोनों ही काव्यों के पात्र अपने स्थान पर उचितरूपेण सन्निविष्ट हैं तथापि तटस्थभावेन विचार करने पर प्रतीत होता है कि भारवि के पात्र माघ की अपेक्षा अधिक गम्भीर एवं अकृत्रिम हैं। माघ के उद्धव मात्र राजनीति के पण्डित ही बनकर रह जाते हैं। शिशुपाल का अस्त्र युद्ध उतना प्रभावोत्पादक नहीं है जितना वाग्युद्ध। माघ सारी शक्ति श्रीकृष्ण के पर्यायभूत नामों के शिशुपाल द्वारा खण्डन में ही लगा देते हैं। वहीं कवि अपनी प्रतिभा से निन्दा को स्तुति रूप में प्रकट करता है। इससे काव्यगत पात्र का नहीं अपितु कविगत वैदुष्य का प्रख्यापन होता है। भारवि के अर्जुन का पराक्रम किरातपति के साथ युद्ध में बहुत अच्छी तरह स्वाभाविक रूप से पुष्ट हो सका है।

जहाँ तक पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य के वर्णन का प्रश्न है, वह दोनों ही काव्यों में पात्रानुकूल है। भारवि के वेदव्यास से कम माघ के नारद का व्यक्तित्व नहीं है। वेदव्यास पाण्डवों के पास एकाएक समागत तेजःपुञ्ज हैं।[1] तो माघ के नारद भी तेजःपुञ्ज हैं।[2] श्रीकृष्ण नारद की यथोचित पूजा करते हैं[3] तो अर्जुन व्यास की।[4] माघ के नारद कमल केसर के समान कान्तिवाली जटाओं को धारण किये हैं तथा स्वयं

---

१. किरातार्जुनीय २।५६।		२. शिशुपालवध १।३।
३. वही १।१४।		४. किरातार्जुनीय २।५८।

शरद्ऋतु के चन्द्रमा को किरणों के समान शुक्लकान्ति वाले है।[1] भारवि के वेदव्यास भी शरद्ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के सदृश मनोहर हैं।[2] भारवि के वेदव्यास के दर्शनों से पाप निर्मूल हो जाते हैं, कल्याण की वर्षा होती है,[3] तो नारद के पापनाशक दर्शन से श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो जाते हैं।[4]

इस प्रकार दोनों ही कवियों ने नारद, वेदव्यासोचित स्वरूप, आतिथ्यादि का यथोचित वर्णन किया है। शिशुपालवध में जैसी कि यह सामान्य बात है कि वे ( माघ ) कभी-कभी पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर बहक जाते हैं। बलराम के परिचय[5] में जो शृङ्गारिकता जोड़ दी है, वह पात्र के स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार खटकती है।

---

१. शिशुपालवध १।५। २. किरातार्जुनीय ३।१।
३. किरातार्जुनीय ३।७। ४. शिशुपालवध १।२९।
५. वही २।१४, १७।

## राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक दशा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण परिस्थितियों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। उसके प्रत्येक कार्य में तत्कालीन समाज की रूपरेखा प्रतिबिम्बित होती है। वह अपने कार्य से समाज को प्रभावित करता है तथा स्वयं भी प्रभावित होता है। वस्तुतः परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत धर्म है जिसके अनुसार चर, अचर में किसी न किसी प्रकार का विकार अथवा परिवर्तन होता रहता है। यदि सृष्टि का यह गुण समाप्त हो जाय तो मनुष्य का कौतूहल, नित्य नूतन आविष्कारों के प्रति जिज्ञासु प्रवृत्ति एवं जीवन का आनन्द ही समाप्त हो जायेगा। यद्यपि इस परिवर्तनकारी प्रक्रिया को प्रकृति ही गति देती है जिसका अनुसरण जड़-चेतन सभी करते हैं।

इस गतिशील सृष्टि का जो जड़ उपादान है वह स्वयं को व्यक्त नहीं कर सकता तथा चेतन का विवेकवान् प्राणी मनुष्य ही उसके रहस्यों का अनुसन्धानात्मक प्रकाशन करता है। इसके साथ ही वह अपने मानवीय परिवर्तनों एवं उत्थान-पतन आदि का भी अध्ययन करता है। वस्तुतः जो जितना ही अधिक संवेदनशील होगा वह उतना ही अधिक सूक्ष्म निरीक्षण कर उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेगा। यद्यपि सभी मनुष्य विभिन्न प्रकार की पारम्परिक अथवा नवीन क्रियायें करते रहते हैं किन्तु वे सभी इतने सचेष्ट नहीं रहते कि उसका मूल्यांकन कर सकें तथापि यदि कोई उनके व्यवहारों एवं परिस्थितियों के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्ति करता है तो वे आनन्दानुभूति अथवा यथोचित स्वानुभूति अवश्य करते हैं। सर्वाधिक संवेदना अलौकिक काव्य जगत् के कर्त्ता कवि में होती है। वह अपनी सूक्ष्मेक्षणसम्पन्न प्रतिभा से समाज के ही विविध यथार्थ रूपों को उसके (समाज के) समक्ष प्रस्तुत करता है और कवि के कर्तृत्व-साफल्य की यही कसौटी भी है। कवि के कर्त्तव्य की इतिश्री इतने से ही नहीं हो जाती। उसे तो सामाजिक आदर्श की समुपस्थापना भी करनी होती है जिसे वह अपनी व्यञ्जनापरक दृष्टि अथवा शब्दशक्ति से प्रवृत्त एवं निवृत्त करता है। किन्तु इन सबके मूल में आदर्शोपस्थापित समाज

की यथार्थ चित्रणा निहित है। यहाँ यह स्मर्तव्य है कि कवि की व्यापक दृष्टि समाज के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ती है चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र हो अथवा सांस्कृतिक एवं धार्मिक आदि।

यदि कवि अपने समाज का अपने कर्त्तृत्व में ध्यान रखे तो उसकी कृति या तो मात्र इतिहास की पिष्टपेषिका अथवा काल्पनिकता की पोथिका बनकर रह जायेगी। अत्यन्त प्राचीन इतिवृत्त भी कवि के हाथ में पड़कर नित्य नूतन भावों का उन्मेष करते हुये समाज के स्वरूप का दर्पणवत् प्रकाशन करता रहता है। उसका उपजीव्य भूत काव्योचित कथानक मात्र स्वयुगीन परिस्थिति वैविध्य का प्रकाशन आधार बन जाता है। प्रायः सभी विदग्ध काव्यों में तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। यह सम्भव है कि उसे कहीं स्वाभाविक रूप से वर्णित किया जाय और कहीं आलंकारिक रूप से; किन्तु तत्कालीन प्रभाव को तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है।

प्रस्तुत प्रसंग में किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध महाकाव्यों के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दशा का चित्रण वर्ण्य है। अतः यथाक्रम इनकी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत है—

**राजनीतिक दशा**

किरातार्जुनीय महाकाव्य भारतीय इतिहास के उस काल का प्रतिनिधित्व करता है, जब देश कई छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और उनके छोटे-मोटे राजे अपने आस-पास के राजाओं को वश में करने के लिए प्रयत्नशील थे। इसके लिये वे साम, दाम, दण्ड एवं भेद की नीतियों का आश्रय लेते थे। प्रायः छोटे राज्यों के राजा लोग किसी बड़े राजा के अधीन एवं करद रूप में रहते थे। इस युग के राजाओं में प्रायः राज्यापहरण की प्रवृत्ति बढ रही थी, वे येन केन प्रकारेण अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये सतत प्रयत्नरत थे।

यद्यपि भारवि ने अपने काव्य का आधार कौरव एवं पाण्डवों की राज्य विषयक घटना को ही बनाया है तथापि काव्य में कविकालिक राजनीतिक दशा का स्पष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है।

किरातार्जुनीय में चित्रित दुर्योधन की शासन पद्धति के अनुसार देश कई राज्यों में विभक्त था। छोटे राजा किसी बड़े राजा के अधीन थे।

वनेचर के वचनों से इस बात की परिपुष्टि होती है। वह युधिष्ठिर से बताता है कि दुर्योधन के सभामण्डप का प्रांगण उपहार प्रदान करने के लिये समागत अनेक राजाओं के हाथी, घोड़ों से व्याप्त रहता है।[१] इसके द्वारा यह भी सुस्पष्ट होता है कि तत्कालीन प्रभावी राजाओं के वश में अनेक करदाता राजा भी रहते थे जो भयवश अपने से अधिक शक्तिवाले राजा की दरबारी किया करते थे। राजन्यवर्ग दुर्योधन के दान, दया एवं दाक्षिण्यादि गुणों से आकृष्ट होकर अवनतशिरसा उसकी आज्ञा का पालन करता था[२]। राजाओं के पारस्परिक युद्ध भी हुआ करते थे। इसका प्रमाण प्राणार्पण द्वारा दुर्योधन के हित साधन में लगे उसके महाबलिष्ठ धनुर्धर, कुलोन योद्धाओं के वर्णन से मिल जाता है।[३] राजा को अपने समीपवर्त्ती राष्ट्रों से सदैव भय भी बना रहता था।[४]

वंशानुक्रम के अनुसार राज्य की प्राप्ति होती थी। प्रायः एक ही राजवंश के परम्परया राजा हुआ करते थे। इस तथ्य का उद्‌घाटन द्रौपदी की वाणी से है जो युधिष्ठिर को उद्दीप्त करते हुये कहती है कि आपने पूर्वजो से प्राप्त राज्यलक्ष्मी को उसी प्रकार खो दिया है अथवा नष्ट कर दिया है जिस प्रकार मदस्रावी गजराज पुष्पगुम्फित माला को नष्ट कर देता है।[५] युधिष्ठिर के पास उनके गुणों से आकृष्ट होकर समागत वेदव्यास जी के 'क्या आप लोग उस धृतराष्ट्र के पुत्रों में से नहीं हैं?'[६]–इस कथन से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र सम्बन्धी वृत्तान्त के परिज्ञान हेतु कुशल गुप्तचर होते थे जो अत्यन्त कठिनाई से जानने योग्य रहस्यों का पता लगाने में पटु थे। इस राजनीति विषयक तथ्य का उद्‌घाटन युधिष्ठिर एवं दुर्योधन की गुप्तचर व्यवस्था से हो जाता है। गुप्तचर ही राजाओं के नेत्र होते थे।[७] दुर्योधन ने स्वदेश एवं विदेश सर्वत्र मन्त्र-गोपन समर्थ कर्मचारियों को नियुक्त कर रखा था।[८]

---

१. अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः॥
किरातार्जुनीय १।१६।

२, ३, ४, ५. किरातार्जुनीय क्रमशः १।२१, १।१९, २।५३, १।२९, ३१।

६, ७, ८. वही ३।१३, १।४, १।१४।

भारवि ने अपने काव्य के अल्प प्रसंग में ही राजनीति के राजा, मंत्री, गुप्तचर, सेना एवं सन्धि विग्रह आदि अंगों की स्वाभाविक वर्णना की है जिससे सहज ही तत्कालीन राजनीतिक दशा का चित्र उभड़ कर समक्ष आ जाता है।

राज्य की उन्नति एवं सुस्थिरता की दृष्टि से मंत्रियों एवं राजाओं का पारस्परिक सामंजस्य नितान्त आवश्यक होता है। उक्त विषयक मान्यता की पुष्टि वनेचर के वचनों से हो जाती है जहाँ वह कहता है कि जब स्वामी (राजा) और अमात्यादिक परस्पर अनुरक्त रहते हैं तभी सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ उनकी सहचारिणो बनकर रहती हैं।[१] अन्तरंग अमात्यादिकों के क्रोध से उत्पन्न अल्पमात्र भी विरोध राजा का नाश कर देता है।[२] इन बातों से यह सिद्ध होता है कि उस समय राजा को स्थायी एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिये गुप्तचरों की नियुक्ति, मंत्रियों के परामर्श का समादर जैसी बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था।

उस समय राजनीति के सैद्धान्तिक सूत्रों का भी अपने विकसित रूप में प्रयोग होता था। साम, दाम, दण्ड, भेद, प्रभु, मन्त्र, उत्साह शक्ति एवं सन्धि विग्रह आदि का कालोचित अपेक्षित वर्त्ताव किया जाता था। राजाओं के द्वारा मनूपदिष्ट मार्ग का अनुसरण किया जाता था। सम्भवतः मनु द्वारा स्थापित सिद्धान्तों को आदर्श मानकर व्यवहार होता था। महाकवि कालिदास ने भी राजा दिलीप को मनु प्रवर्त्तित पद्धति से सम्यक् अनुपालन का समर्थक बताया है।[३] दुर्योधन काम, क्रोधादि विकारों को जीतकर मनूपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करता था।[४] दुर्योधन साम, दाम, दण्ड, भेद, रूप चार प्रकार की नीति का यथोचित अवलम्बन करता था।[५] उस समय अपने राज्य को सुदृढ़ करने को दृष्टि से प्रजा के हित का उचित ध्यान रखता था। इसके लिये किरात में वर्णित दुर्योधन की कृषि

---

१. सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।
किरातार्जुनीय १।५ उत्तरार्द्ध।

२. किरातार्जुनीय २।५१।

३. रेखामात्रमपि क्षुण्णादा मनोर्वर्त्मनः परम्। रघुवंश १।१७।

४. किरातार्जुनीय १।९। ५. वही १।१२।

विषयक व्यवस्था प्रमाण है।[1] यद्यपि दुर्योधन अवसरवादी कृत्रिम आदर्श-राजा है तथापि वह प्रजाहित को सर्वोपरि मानकर शासन करता है। दुर्योधन के शासनकाल में एक ओर जहाँ राजनीति के सिद्धान्तानुसार राज्य संप्राप्ति एवं संरक्षण के उपायों का चिन्तन होता था वहीं 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' की नीति को भी प्रश्रय मिल रहा था। एक ओर नीति एवं सदाचार में निष्ठा रखने वाले प्रतिज्ञाबद्ध राजा थे तो दूसरी ओर राज्यापहरण करने की नियति से षड्यन्त्रकारी अनैतिक राजा भी संघर्षरत थे। काव्य में इनका प्रतिनिधित्व क्रमशः युधिष्ठिर एवं दुर्योधन करते हैं।

तत्कालीन राजा राजनीतिक निर्णयों में जल्दबाजी नहीं करते थे बल्कि बहुत ही सोच समझकर, विचार पूर्वक कर्त्तव्यानुष्ठान में संलग्न होते थे। युधिष्ठिर, भीम एवं द्रौपदी की उस बात को नहीं मानते जिसमें केवल आत्मशक्ति के आधार पर ही शत्रु पर आक्रमण कर देने का आक्रोश पूर्ण समर्थन है[2] अपितु वे विवेक पूर्वक शान्त हृदय से सोच विचार कर कालोचित आलोचना पूर्वक ही शत्रु के साथ व्यवहार करने के पक्ष में हैं।[3]

युद्ध के पूर्व दूत भेजे जाते थे जिनके माध्यम से सन्धि प्रस्ताव होता था। सन्धि की शर्त अथवा अधीनता न स्वीकार करने पर युद्ध होते थे। किरात में किरातपति (शंकर) पहले अर्जुन के पास इस आशय से दूत भेजता है कि वे (अर्जुन) बाण लौटाकर सन्धि कर लें किन्तु अर्जुन के द्वारा सन्धि प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिये जाने पर युद्ध प्रारम्भ हो जाता है।[4] महाकवि भारवि का समय ऐहोल अभिलेख के आधार पर ५५० ई० से ६०० ई० के मध्य माना जाता है। वे चालुक्यवंशीय विष्णु-वर्धन के सभा पण्डित थे। अतः उनके काव्य में तत्कालीन राजनीति का भी सूत्रवत् संकेत मिलता है।

---

१. सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति॥
किरातार्जुनीय १।१७।

२. वही १।३०, ४५, २।८। ३. वही २।३०।

४. वही १३।३५ तथा १४।२१।

किरात की भाँति शिशुपालवध के भी सम्यक् अनुशीलन से तत्कालीन राजनैतिक दशा की पर्याप्त जानकारी हो जाती है।

भारवि की भाँति महाकवि माघ भी दरबारी कवि थे। यद्यपि उनके जीवनकाल के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है तथापि विभिन्न प्रमाणों के आधार पर उनका समय आठवीं शताब्दी के मध्य माना जाता है।

भारवि एवं माघ के समय की राजनैतिक परिस्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

माघ का समय विभिन्न राजाओं के संघर्ष का समय था। उस समय कई छोटे-छोटे राज्य थे।[1] छोटे राजा बड़े एवं शक्तिशाली राजाओं के अधीन रहते थे।

शिशुपालवध काव्य के द्वितीय सर्ग में वर्णित मन्त्रणा से कविकालिक राजनैतिक दशा का ज्ञानार्जन करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

राजनीतिक मन्त्रणा के प्रसंग में बलराम युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के बजाय शिशुपाल पर आक्रमण करने का परामर्श देते हैं किन्तु उद्धव अपने वक्तव्य में उसका विरोध करते हुये उसे कालोचित नहीं मानते क्योंकि शिशुपाल के साथ अनेक राजा हैं। वे कहते हैं—

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्॥[1]

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय शक्तिशाली राजा की अधीनता में अनेक राजा रहते थे। कवि ने पुराणों में प्रसिद्ध अनेक शिशु-पाल पक्षीय राजाओं बाणासुर, कालयवन, रुक्मी, शाल्व आदि का भी परिगणन कराया है।[2] इसके द्वारा यह विदित होता है कि उस समय अनेक राज्य थे।

ऐसी ही राजनैतिक परिस्थिति भारवि के समय में भी थी। किराता-र्जुनीय में भीम की त्वरित आक्रमणकारी विचारधारा को समयोचित न

---

१. शिशुपालवध २।९६।

२. ये चान्ये कालयवनशाल्वरुक्मिद्रुमादयः।
तमःस्वभावास्तेऽप्येनं प्रदोषमनुयायिनः॥
शिशुपालवध २।९८।

मानते हुये युधिष्ठिर कहते हैं कि जो यदुवंशियों के मित्र एवं मातृ-पितृ पक्षीय हैं वे भी उनके ( यदुवंशियों के ) विरुद्ध नहीं जा सकते क्योंकि वे केवल अपने समय को टालने के लिए दुर्योधन के सामने विनम्र रहते हैं।[१]

किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपालवध में राजनैतिक परिस्थितियों का अधिक सुस्पष्ट चित्रण हुआ है क्योंकि भारवि की कथावस्तु राज्य विहीन राजा ( युधिष्ठिर ) के पौरुष पर आधारित है और माघ का कथानक समृद्ध एवं सम्पन्न राजाओं ( श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर ) से सम्बद्ध है।

भारवि एवं माघ दोनों महाकवियों के काव्यों में राजनीतिक मन्त्रणा वर्णित है। अतः स्पष्ट है कि उस समय किसी कार्य के सम्नबध में पहले सम्यक् प्रकारेण मन्त्रणा होती थी।

भारवि की अपेक्षा माघ के समय में राजनीति का सैद्धान्तिक पक्ष अधिक प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुका था। शिशुपालवध में द्वादश राजाओं,[२] प्रभु, मन्त्र, उत्साह, शक्ति, षड्गुण सन्धि[३] आदि का काव्य में विस्तृत वर्णन मिलता हैं।

प्रातःकाल राजाओं को जगाने के लिए बन्दीजन मधुर कण्ठ से गायन करते थे।[४] ब्राह्ममुहूर्त में उठकर राजा लोग राज्य सम्बन्धी अश्व, गजादि एवं साम, दान आदि विभिन्न विषयों का चिन्तन करते थे।[५] राजा प्रजा को दर्शन देता और राज्य सम्बन्धो कार्यों का निरीक्षण करता था।[६]

युद्ध के पूर्व दूत भेजे जाते थे। किरातार्जुनीय में किरातपति पहले अर्जुन के पास दूत भेजता है तो शिशुपालवध में शिशुपाल युद्ध से पहले श्रीकृष्ण के पास दूत भेजता है।[७] वीर सैनिक अपने स्वामी के हित में प्राणों की बाजी लगा देते थे :[८]

---

१. किरातार्जुनीय २।४५।

२., ३. शिशुपालवध, क्रमशः २।८७, २।९३। ४. वही ११।१।

५. शिशुपालवध ११।६। ६. वही ११।४८।

७. शिशुपालवध १६।१। ८. वही १९।५७।

उस समय धर्मयुद्ध की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। इस बात की पुष्टि शिशुपाल के उस वर्णन से होती है जिसमें दोनों पक्षों की पैदल सेना, अश्व सेना, हस्ति सेना एवं रथ सेना आपस में मिल जाती है[1] अर्थात् पदाति पदाति से, अश्व सेना अश्व सेना से एवं हस्ति सेना हस्ति सेना से युद्ध करती हैं।

नगर की रक्षा के लिये परकोटे बने होते थे।

वस्तुतः उस समय राज्य में अशान्ति व्याप्त थी। छोटे-छोटे राजा अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील थे। शिशुपालवध में जो राजनीतिक दृश्य उपस्थापित हुआ है, उसमें हर्षोत्तरकालीन राजनैतिक दशा की छटा दृष्टिगत होती है। जब हर्ष की मृत्यु के पश्चात् छोटे-छोटे राजा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व--स्थापन करना चाहते थे। शिशुपाल के माध्यम से तत्कालिक राजाओं की ओर संकेत किया गया है तथा वसुदेव के घर में दुष्टों के नियन्त्रणार्थ रहने वाले श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष आदर्श प्रजारञ्जक राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यों तो किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध दोनों महाकाव्यों में तत्कालिक राजनीतिक दशा का चित्रण प्राप्त होता है तथापि माघ ने भारवि से अधिक प्रौढ राजनीति का चित्रण किया है।

दोनों काव्यों में मन्त्रणा गुप्तचर व्यवस्था, प्रजा नीति एवं सन्धिविग्रह आदि विषयों का राजनीतिशास्त्र सम्मत सन्निबन्धन हुआ है जिसमें तत्कालिक राजनीतिक दशा स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है।

## किरातार्जुनीय में चित्रित सामाजिक दशा

सामाजिक दशा के अन्तर्गत मुख्यतः वर्णव्यवस्था, शिष्टाचार, रहन-सहन व्यवसाय एवं विभिन्न परम्पराओं का परिगणन किया जाता है। किरात काव्य में राजनीतिक दशा के साथ-साथ सामाजिक स्थिति का भी संकेत मिलता है।

भारवि के समय में समाज में वर्ण व्यवस्था की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जातियों में सभी का पृथक्-पृथक्,

---

१. वही १८।४।

विवेचन नहीं हुआ है तथापि मुख्य रूपेण उच्च एवं निम्नकुल के रूप में जातीय विभाजन था।

समाज में ब्राह्मणों का विशेष सम्मान था। इस तथ्य की पुष्टि द्रौपदी के उस वाक्य से हो जाती है जहाँ वह युधिष्ठिर से कहती है कि पहले आपका यह शरीर ब्राह्मण भुक्तावशिष्ट अन्न से परिवर्धित होकर रमणीय किन्तु सम्प्रति अन्य फलों के खाने से क्षीण हो रहा है।[1]

उच्च कुलोत्पन्न जनों का संग अपने अनुकूल कुलीनजनों से ही होता था। किरातपति के अनुचर द्वारा अर्जुन से किया गया मैत्री प्रस्ताव इसी कारण स्वीकृत नहीं हो पाता है क्योंकि किरात निम्न जाति के (जिन्हें शूद्र कहा जा सकता है) अन्तर्गत परिगणित है और अर्जुन सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय हैं। अर्जुन किरातपति के अनुचर से कहते हैं कि वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने वाले कहाँ हम और निम्न जीवों की हत्या करने वाला कहाँ तुम्हारा स्वामी! दोनों में बड़ा अन्तर है। कहीं हाथी शृगालों से मित्रता करते हैं।[2]

इससे प्रतीत होता है कि वर्णाश्रम व्यवस्था की समाज में सम्यक् प्रकारेण मान्यता थी। क्षत्रियों का मुख्य धर्म प्रजा का पालन होता था। क्षत्रिय याचकवृत्ति नहीं स्वीकार करते थे। मनस्वी क्षत्रिय के लिये याचना अत्यन्त गर्हित कार्य था। वे अपनी शक्ति द्वारा शक्तिशाली से युद्ध करके हठात् अभिलषित वस्तु लेने की इच्छा रखते थे। इस बात का ज्ञान अर्जुन के कथन से हो जाता है।[3]

क्षत्रियों का कर्त्तव्य था सज्जनों की रक्षा करना। इस कार्य से उनके विरत होने पर बड़ा अपमान होता था। द्रौपदी अर्जुन से कहती है—जो सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ हों वही क्षत्रिय हैं तथा जो समरांगण में कौशल प्रदर्शित करे वही कार्मुक अथवा धनुष है।[4]

---

१. पुरोपनीतं नृप रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसः समं वपुः।
किरातार्जुनीय १।३९।

२. किरातार्जुनीय १४।२२। ३. वही १४।१०।

४. स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यस्तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः।
वहन् द्वयीं यद्यफलेऽर्थजाते करोत्यसंस्कारहतामिवोक्तिम्॥
किरातार्जुनीय ३।४८।

यज्ञादि कार्य ब्राह्मण अथवा तपस्वी करते थे। क्षत्रियों का कार्य शत्रु का उन्मूलन तथा प्रजा की रक्षा होता था। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि यदि आप शौर्य का परित्याग करके क्षमा का अवलम्बन लेना चाहते हैं तो जटा बढ़ाकर अग्निहोत्र कीजिये।[1] इन्द्र अर्जुन को सांसारिक नश्वरता का उल्लेख करते हुये मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हैं किन्तु अर्जुन उसे अस्वीकृत कर देते हैं। उन्हें अपने क्षत्रियत्व पर गर्व है[2] जो तत्कालीन उच्च कुलोचित मर्यादा एवं क्षत्रिय-कर्त्तव्य का सूचक है।

इससे यह भी द्योतित होता है कि उस समय अपने कर्त्तव्य का पालन सबसे बड़ा धर्म माना जाता था।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास—इन चार आश्रमों की भी मान्यता थी। क्योंकि अर्जुन इन्द्र से कहते हैं कि मैं आश्रम परिवर्तित करने में स्वतन्त्र नहीं हूँ।[3] अर्जुन स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि आप मुझे पहले ही मनुवृत्ति का उपदेश कर रहे हैं जबकि मनु आदि आचार्यों ने क्रमानुसार आश्रम-वर्ताव का निर्देश किया है—

> कथं वादोयतामर्वाङ् मुनिना धर्मरोधिनी।
> आश्रमानुक्रमः पूर्वैं स्मर्यते न व्यतिक्रमः॥[4]

इस प्रकार संक्षेप में किरातार्जुनीय में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत वर्णाश्रम व्यवस्था की मान्यता के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

भारवि के समय में शिष्टाचार का सुन्दर वर्ताव होता था। प्रत्येक गृहस्थ अपने घर में आये अतिथि का अच्छी प्रकार से स्वागत करता था। वेदव्यास के आगमन पर युधिष्ठिर ने व्यास का जो सत्कार किया है, वह तत्कालीन अतिथि सेवा का आदर्श उदाहरण है। उस समय अपने से बड़े के आगमन पर खड़े होना, उसका अर्घ पाद्य, आसनादि से अर्चन आदि शिष्टाचार की परम्परा थी।[5]

यद्यपि स्त्रियाँ सर्वथा पुरुषों के अधीन थीं तथापि वे यथावसर पुरुषों का कर्त्तव्य बोध कराती थीं। सम्भवतः तत्कालीन समाज में शिक्षित

---

१. किरातार्जुनीय १।४४। २. वही ११।४५।
३. वही ११।७७। ४. वही ११।७६।
५. किरातार्जुनीय २।५७–५८।

स्त्रियों से भी गृहपति परामर्श लेते थे। वनेचर से दुर्योधन के राज्य विषयक समाचार को प्राप्त करने के अनन्तर युधिष्ठिर कृष्णा सदन (द्रौपदी गृह) में प्रवेश करते हैं और समग्र वृत्तान्त बताते हैं।[१] जिसमें तत्कालीन समाज की भी झलक दिखायी देती है।

किरातार्जुनीय महाकाव्य में चित्रित स्थिति के अनुसार तत्कालीन समाज का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था। इसका प्रमाण प्रथम सर्ग में दुर्योधन की राज्य व्यवस्था वर्णन प्रसंग से मिल जाता है जहाँ वनेचर कहता है कि उसने जगह-जगह पर कूपों, तालाबों एवं नहरों का निर्माण कराया है। कृषकों को बिना विशेष परिश्रम के प्रचुर अन्न प्राप्त हो जाता है।[२] इसके अतिरिक्त चतुर्थ सर्ग में इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुये अर्जुन द्वारा वर्णित प्राकृतिक दृश्यों से भी एतद्विषयक तथ्य की पुष्टि होती है। अर्जुन परिपाक दशा को प्राप्त धान्यराशिके कारण गौरवर्णा भूमि के पास से होकर निकलते हैं जहाँ किसानों का निवास है।[३]

वे झुकी हुयी धान की बालों से भरे खेतों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।[४] गोपिकायें धान की रखवाली करती थीं। इस प्रसग में कवि ने शालि गोपियों के जिन आभूषणों का वर्णन किया है[५], वे वस्तुतः तत्कालीन कृषक स्तर के अनुकूल ही प्रतीत होते हैं।

किरातार्जुनीय में ग्राम्य जीवन के रहन-सहन का भी सुन्दर चित्र दृष्टिगोचर होता है। उस समय गाँवों में भोलापन होता था। गोपों का गायों से अत्यधिक प्रेम था।[६] प्रातःकाल दधिमन्थन का कार्य होता था।[७] ग्रामीणों का जीवन अत्यन्त विनम्र एवं सरल था।[८] सम्भवतः अन्य पशुओं की अपेक्षा गायों का बड़ा आदर था। इनसे हविष्यान्न प्राप्त कर अग्नि-होत्री यज्ञ, हवन आदि धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करते थे।[९]

---

१, २, ३. वही क्रमशः १।२६, १।१७, ४।१।

४. किरातार्जुनीय ४।२, ४, २६। ५ वही ४।७।

६. गतान्पशूनां सहजन्मबन्धुतां गृहाश्रयं प्रेम वनेषु बिभ्रतः।
ददर्श गोपानुपधेनु पाण्डवः कृतानुकारानिव गोभिरार्जवे॥
किरातार्जुनीय ४।३१।

७, ८, ९. किरातार्जुनीय क्रमशः ४।१५–१६, ४।१९, ४।२३।

समाज में नव-विवाहिता रमणी का भी सम्मान होता था।[1] यद्यपि इसका विस्तृत वर्णन नहीं हुआ है, मात्र हिमालय वर्णन प्रसंग में नव-विवाहिता-रमणी का उल्लेख ही हुआ है।

तत्कालीन समाज में मदिरापान का भी प्रचलन था।[2] सम्भवतः सामान्य वर्ग के मनोविनोदार्थ वेश्या नृत्य भी होता था।[3]

इस प्रकार किरातार्जुनीय में चित्रित समाज वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप, शिष्टाचारप्रिय, विनीत, सुसम्पन्न एवं कर्त्तव्य-परायण था। भारवि ने महाकवि माघ की भाँति सामाजिक जीवन का स्पष्ट अथवा खुला चित्र खींचा है, तथापि स्वाभाविक रूप से तत्कालीन सामाजिक दशा का उनके काव्य में जो सन्निवेश हुआ है, वह अत्यन्त स्पृहणीय बन पड़ा है।

**शिशुपालवध में चित्रित सामाजिक दशा**

महाकवि माघ ने राजनीति, धर्म एवं दर्शन आदि विषयों का अपने काव्य में पाण्डित्यपूर्ण समाहार करने के साथ ही तत्कालीन विभिन्न परि-स्थितियों की भी सम्यक् उपस्थापना की है जो किरातार्जुनीय से अधिक सुस्पष्ट एवं विस्तृत है। महाकवि माघ यद्यपि भारवि की अपेक्षा अधिक विलासी एवं राजसी प्रकृति के हैं किन्तु उन्होंने (माघ ने) ग्राम्य जीवन से लेकर नगर-जीवन तक के विभिन्न वर्गों के जीवन स्तर, व्यवहार, परम्पराओं आदि का सम्यक् वर्णन किया है।

माघ के समय में वर्णाश्रम व्यवस्था की मान्यता दृढ़ थी। समाज में ब्राह्मणों का विशेष सम्मान था। राजा लोग भी ब्राह्मणों का आदर करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणादि वर्णों की मर्यादा की रक्षा हेतु उद्यत प्रतीत होते हैं।[4] इस सन्दर्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण आदि वर्णों का विभाजन था तथा ब्राह्मणों को शीर्षस्थ स्थान प्राप्त था। युधिष्ठिर के यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर उन्हें प्रसन्न

---

१, २, ३. वही ९।१०, ९६।८, ९।६९, ८।२२, ४।१४।

४. स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो बध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः।
विशेषको वा विशिशेष यस्याः श्रिय त्रिलोकीतिलकः स एव ॥
शिशुपालवध ३।६३।

करने का भी उल्लेख है।[1] धार्मिक कार्यों में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों का विशिष्ट सम्मान होता था। भीष्म पितामह यज्ञ में अर्घ्य पूजा के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं कि इस ब्राह्मण-क्षत्रिय समूह में श्रीकृष्ण ही सर्वाधिक योग्य हैं।[2] यद्यपि विभिन्न वर्णों का काव्य में पृथक्-पृथक् वर्णन नहीं हुआ है तथापि ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के गौरव एवं सम्मान का वर्णन होने से यह स्पष्ट होता है कि उस समय वर्णव्यवस्था थी। वर्णसंकरों को राज्य में निम्न समझा जाता था और उन्हें कोई सम्मान प्राप्त नहीं था। युधिष्ठिर के यज्ञ में सदाचारी, सत्कुलोत्पन्न ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययन पाठ करने का उल्लेख है।[3] एतद्विषयक श्लोक में कवि ने विशेष रूप से 'अवर्णसंकरैः' शब्द का प्रयोग किया है जो इस बात का सूचक है कि वर्णसंकरों की उपेक्षा थी।

वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध दोनों ग्रन्थों में प्रायः समान स्थिति का चित्रण हुआ है। उभयत्र ब्राह्मणों का विशेष सम्मान उल्लिखित है।

शिशुपालवध में आश्रम व्यवस्था की ओर भी संकेत हुआ है। युधिष्ठिर यज्ञ में समागत अतिथियों (ब्राह्मणों) का स्वागत करने में श्रमित नहीं होते। इस स्थल पर युधिष्ठिर के लिए 'आश्रमों के नियन्ता' इस विशेषण का प्रयोग किया गया है जो तत्कालीन समाज में प्रचलित आश्रम व्यवस्था का द्योतक है।[4]

गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में मधुरता थी। शिष्य अपने गुरुजन के समक्ष अत्यन्त विनम्र रहते थे। इसका संकेत तेरहवें सर्ग के चौबीसवें श्लोक से मिलता है जहाँ उल्लेख है कि पाण्डव गुरु के समक्ष शिष्यों के समान श्रीकृष्ण भगवान् के समीप अवस्थित हुये।[5]

---

१, २. शिशुपालवध १४।३५–३६, १४।५९।

३. शुद्धमश्रुतिविरोधि बिभ्रतं शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसंकरैः।
पुस्तकैः सममसौ गणं मुहुर्वाच्यमानमशृणोद् द्विजन्मनाम्॥

वही १४।३७।

४. आतिथेयमनिवारितातिथिः कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्।

शिशुपालवध १४।३८, उत्तरार्द्ध

५. शिशुपालवध १३।२४।

ऐसा ही वर्णन किरातार्जुनीय में मिलता है। जहाँ अर्जुन, युधिष्ठिर की आज्ञा से विद्यार्थी को भाँति वेदव्यास के सम्मुख उपस्थित होते हैं।[1]

शिशुपालवध में कवि की प्रतिपाद्य वस्तु के साथ ही तत्कालीन विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों का भी स्वाभाविक रूप से समावेश हो गया है। कवि ने वैवाहिक सम्बन्धों के स्वरूप का भी चित्रण किया है जो प्रायः वर्तमान नियमों अथवा परिस्थितियों के समान ही है।

उस समय एक गोत्र में विवाह नहीं होता था। इसी कारण पति के लिये काव्य में गोत्रभिद्[2] शब्द का प्रयोग हुआ है।

स्त्रियाँ पति के बाद रात्रि में शयन करती थीं तथा उनसे (पति से) पूर्व ही ब्राह्ममुहूर्त में जागकर[3] दैनिक कार्य में संलग्न हो जाती थीं। प्रातःकाल स्त्रियाँ ही अधिकतर कुयें से जल लाती थीं।[4]

उस समय पर्दा प्रथा का प्रचलन था। स्त्रियाँ पतिगृह में पर्दे में रहती थीं तथा घूँघट निकाल्ने का भी प्रचार था जो वर्तमान समय के अनुकूल है।[5]

किरातार्जुनीय की भाँति शिशुपालवध में भी वेश्याओं अथवा वार-वनिताओं का वर्णन है जो पुरुषों का मनोरंजन करतीं थीं।[6]

शिशुपालवध में स्त्रियों की वेशभूषा का भी वर्णन मिलता है। स्त्रियों के स्तन ढकने के वस्त्र के लिए कूर्पासक[7] शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्यत्र कंचुक शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[8] स्तन ढकने के लिए उत्तरीय शब्द का भी प्रयोग होता था।[9]

किरात में भारवि ने अंशुक तथा अन्तरीय शब्दों[10] का प्रयोग किया है।

---

१. किरातार्जुनीय ३।२४। २. शिशुपालवध ९।८०।

३. वही ११।१३। ४. वही ११।४४।

५. यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥
शिशुपालवध ५।१७।

६. शिशुपालवध ५।२७। ७. वही ५।३३। ८. वही १२।२०।

९. वही १०।४२। १०. किरातार्जुनीय ९।४७, १०।५४।

किरात की भाँति माघ ने भी अंशुक शब्द का ही प्रयोग किया है ।[१]

स्त्रियां करधनी धारण करती थीं जिसके लिये काव्य में काञ्चो शब्द का उल्लेख हुआ है । किरात में अनेकशः काञ्ची शब्द आया है ।[२]

माघ ने भी काञ्ची शब्द के साथ साथ मेखला, कंचन, काञ्ची शब्दों का भी प्रयोग किया है ।[३]

शिशुपालवध में स्त्रियों को धूप से बचाने के लिए छाता के स्थान पर दुपट्टे के प्रयोग का उल्लेख हुआ है ।[४] स्त्रियाँ पैरों में महावर लगाती थीं ।[५]

इस प्रकार शिशुपालवध में मुख्यरूप से स्त्रियों के दो वस्त्रों उत्तरीय एवं अधोवस्त्र का वर्णन है। वे हार, करधनी, कर्णपूर, कर्णभूषण एवं कंकण धारण करती थीं ।[६]

माघ के समय में सती प्रथा का प्रचलन था । एतद्विषयक तथ्य का उद्घाटन विभिन्न स्थलों पर हुआ है। कवि ने नवम सर्ग में दिवसावसान के समय का जो वर्णन किया है, उससे सती प्रथा के प्रचलन का परिज्ञान होता है—

सूर्य रूप पति के अस्त हो जाने अथवा मर जाने पर दुःखित पत्नी रूप सन्ध्या ने पति के विरह में प्राण त्याग कर दिया ।[७]

युद्ध स्थल में पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाने का भी उदाहरण मिलता है ।[८]

स्त्रियाँ युद्ध स्थल में भी अपने पतियों के साथ जाती थीं ।[९]

माघ के समय में कृषि, व्यापार एवं पशुपालन होता था। खेतों को

---

१. शिशुपालवध १०।४३ । २. वही ८।१६, २३, ५१, ९।४८, १४।५४।

३. वही १०।६२; ८३, ८५, १३।३२, ३४ ।

४, ५, ६, ७. शिशुपालवध ८।५, १३।३३, १३।३२, ९।१७, १३ ।

८. वृत्तं युद्धे शूरमाश्लिष्य काचिद्रन्तुं तूर्णं मेरुकुंजं जगाम ।
त्यक्त्वा नाग्नौ देहमेति स्म यावत्पत्नी तद्यस्तद्वियोगासमर्था ॥
शिशुपालवध १८।६०

९. शिशुपालवध १८।६१ ।

जोतकर उन पर पाटा चलाया जाता था। श्रीकृष्ण की सेना के रथों के पहियों से खुदी हुयी भूमि हाथियों के पैर रखने से बराबर हो गयी, इस पर कवि ने कल्पना की है कि मानों वह भूमि जोतकर पाटा चला देने से समान हो गयी है।[1] धान की रखवाली करने वाली गोपिकाओं का जो स्वाभाविक वर्णन हुआ है[2] उससे भी कृषि विषयक तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है।

महाकवि माघ ने जिन कृषि विषयक उपमाओं को काव्य में उपन्यस्त किया हैं उनसे पता चलता है कि उस समय कृषि पर विशेष ध्यान दिया जाता था।[3]

भोजन में हींग, मिर्च, जीरा आदि का भी प्रयोग किया जाता था।[4] माघ के समय में व्यापार की भो उन्नति थी। रत्नादि का भी व्यापार होता था—

वणिक्पथे यूगकृतानि यत्र भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन् रत्नानि रत्नाकरतामवाप॥[5]

रैवतक पर्वत पर सेना के पड़ाव डालने से पूर्व ही व्यापारियों के दुकानें लगा देने का वर्णन है जो तत्कालीन छोटी-छोटी दुकानों के होने का सूचक है।[6]

सामान्य जन जीवन सुखमय था। निम्न वर्ग के लोगों द्वारा मद्यपान भी होता था। ग्रामीणों में धार्मिक आस्था थी। ग्रामीण लोग पशुपालन करते थे। कवि ने गौओं के स्थान पर मण्डलाकार बैठकर प्रसन्नतापूर्वक मद्यपान कर उछलते कूदते एवं हरिकीर्तन करते हुए गोपों का जो वर्णन किया है, उससे तत्कालीन जन जीवन के सुखमय होने का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।[7]

वस्तुतः सामाजिक क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसके अन्तर्गत वे समस्त बातें आ जाती हैं जिनसे मानव प्रभावित होता है तथा जिनसे प्रेरित होकर जीवनयापन करता है। मनुष्य की रहन-सहन, वर्णाश्रम

---

१. शिशुपालवध १२।२१। २. वही १२।४२–४३। ३. वही १४।३४।
४. वही १४।५०। ५. वही ३।३८।
६. वही ३।२४। ७. वही १२।३८।

व्यवस्था, भोजन व्यवस्था, व्यवसाय आदि उसकी सामाजिक परिस्थितियों में परिगणित किये जाते हैं। ये कुछ ऐसे अपरिहार्य तत्त्व हैं जिन्हें छोड़कर कवि अथवा लेखक अपना कर्त्तृत्व सफल नहीं बना सकता है।

इस दृष्टि से भारवि एवं माघ दोनों ही कवियों ने अपने-अपने काव्यों में समाज के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है। यद्यपि उनके काव्यों में समाज का वह रूप नहीं आ सका है जो वाल्मीकि और कालिदास के काव्यों में सुलभ है। तथापि उन्होंने समाज को तिरस्कृत करके भी काव्य रचना नहीं की है। एक बात और है जो भारवि और माघ को कालिदास से भिन्न कर देती है, वह है काव्य रचना की सैद्धांतिक मतभिन्नता। कालिदास ने समाज से इतना तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि उनका वैदग्ध्य काव्य का अङ्ग बन गया है। उनके मस्तिष्क पर हृदय का प्रभुत्व है किन्तु भारवि और माघ के मस्तिष्क पर कलावादिता का साम्राज्य है।

इतना होते हुये भी भारवि और माघ दोनों ही कवि अपने समाज के स्वरूप को अभिव्यक्त करने में पीछे नहीं हैं। भारवि का समाज माघ की अपेक्षा संकुचित है।

**सांस्कृतिक दशा**

संस्कृति का क्षेत्र सूक्ष्म एवं भावात्मक है। इसका सम्बन्ध ऐसी परिस्थितियोंसे है जो मानव-व्यवहारों को संशोधित करती रहती हैं। यद्यपि संस्कृति का विकास समाज से ही होता है किन्तु संस्कृति समाज से प्राचोन होती है तथा जिसे (संस्कृति का) समाज संजोकर रखता है। समाज के आचार-व्यवहार, सभ्यता, साहित्य एवं कला आदि से संस्कृति का परिज्ञान होता है। संस्कृति के अन्तंगत मनुष्य की उन रुचियों का भी ग्रहण होता है जो उसे प्रकृत्या प्राप्त होती है। जैसे संगीत के प्रति रुचि अथवा सौन्दर्य के प्रति लगाव जो अपने मूर्त में कला के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। संस्कृति वह सत्य है जो मनुष्य को अपने मौलिक उत्थान से अनन्तकाल तक चलने वाले विकास से संयुक्त रखता है।

कवि संस्कृति के प्रभाव से अप्रभावित नहीं रह सकता। संस्कृति को न्यक्कृत करने का तात्पर्य है कि काव्य में जीवन्तता का अथवा कव्योचित प्राणवत्ता का सर्वांशतः अभाव। काव्य में चित्रित संस्कृति के द्वारा तत्कालीन समाज एवं सभ्यता का सम्यक् आकलन भो हो सकता है।

इस दृष्टि से भारवि एवं माघ महाकवियों के काव्यों में सांस्कृतिक दशा का समावेश हुआ है।

किरातार्जुनीय में जिस सभ्यता का समावेश हुआ है, वह वस्तुतः भारतीय संस्कृति के उस पक्ष की द्योतक है जिसमें विकसित समाज का आदर्श स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।

भारवि के समय में समाज में श्रेष्ठ सुयोग्य जनों का यथोचित सम्मान किया जाता था। शिष्टता का यह रूप युधिष्ठिर द्वारा वेदव्यास के सत्कार से सहज ही जाना जा सकता है। वेदव्यास के आगमन पर युधिष्ठिर अपने आसन से उठ खड़े होते हैं तथा शास्त्रीय विधि से उनकी पूजा करते हैं। मुनि की आज्ञा से वे ( युधिष्ठिर ) अपना आसन ग्रहण करते हैं।[1]

सुयोग्य अतिथि का आगमन अत्यन्त सौभाग्य का विषय समझा जाता था। आदर-सत्कार के अनन्तर उसके (अतिथि के) आगमन-प्रयोजन की जानकारी के लिये अत्यन्त विनम्रता पूर्वक निवेदन किया जाता था। युधिष्ठिर वेदव्यास से कहते हैं कि आपका दर्शन पुण्य संचय के अभाव में दुष्प्राप्य है। यह अभिलाषाओं को सफल बनाने वाला है तथा मुझ जैसे व्यक्ति के लिये आपका दर्शन दुर्लभ था।[2] आपके आगमन-प्रयोजन की वार्त्ता सर्वथा निर्मूल है क्योंकि जो निःस्पृह हैं उनका हम लोगों से क्या प्रयोजन हो सकता है? तथापि आपके आगमन-प्रयोजन जानने की इच्छा मुझे प्रेरित कर रही है।[3]

यहाँ तत्कालीन समाज की शिष्टता का कवि ने कितना सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही इस तथ्य का भी उद्घाटन होता है कि ऋषि, मुनि निःस्वार्थभावेन जनकल्याण के लिये विचरण करते थे। वस्तुतः यह हमारी संस्कृति की सर्व प्रमुख विशेषता रही है।

---

१. अवहितहृदयो विधाय सोऽर्हामृषिवदृषिप्रवरे गुरुपदिष्टाम्।
तदनुमतमलञ्चकार पश्चात् प्रशम इव श्रुतमासनं नरेन्द्रः॥
किरातार्जुनीय २।५८।

२. अनाप्तपुण्योपचयैर्दुरापा फलस्य निर्धूतरजाः सवित्री।
तुल्या भवद्दर्शनसंपदेषा वृष्टेर्दिवो वीतबलाहकायाः॥
किरातार्जुनीय ३।५।

३. किरातार्जुनीय ३।९।

शिष्टता एवं मर्यादा की यही परम्परा शिशुपालवध में भी दृष्टिगोचर होती है, जो कविकालिक सांस्कृतिक स्थिति की सूचक है। शिशुपालवध में नारद जी श्रीकृष्ण के पास जाते हैं। वे (श्रीकृष्ण) नारद जी को देखते ही अपने आसन से उठ खड़े होते हैं तथा अर्घ्य आदि पूजा सामग्रियों से उनकी विधि पूर्वक पूजा करते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण का ऐसा करना उचित ही था क्योंकि महात्मा लोग पुण्य न करने वालों के घर पर प्रेम से नहीं जाना चाहते हैं।[1]

दोनों ही काव्यों में एतद्विषयक शिष्टता का समानरूपेण चित्रण है। युधिष्ठिर की भाँति श्रीकृष्ण भी अपने अतिथि नारद की शास्त्रीय विधि से पूजा करते हैं। युधिष्ठिर वेदव्यास के कहने से तथा श्रीकृष्ण नारद जी की आज्ञा से अपना आसन ग्रहण करते हैं।[2] दोनों काव्यों के ऋषि निःस्पृह होते हुये भी जनकल्याण में रत है।

भारवि की अपेक्षा माघ के समय तीर्थों की मान्यता में अधिक वृद्धि हो गयी थी। विभिन्न पवित्र तीर्थों से लाये गये जल को छिड़कना अत्यन्त गौरवास्पद माना जाता था। नारद जी भगवान श्रीकृष्ण के ऊपर अनेक तीर्थों से लाये गये जल को छिड़कते हैं।[3] तीर्थ के जल को विनम्रता पूर्वक ग्रहण करने की श्रद्धापूर्ण मान्यता अब भी है। वस्तुतः नदियाँ एवं पवित्र तीर्थ भारतीय संस्कृति के वे तत्त्व हैं जो विश्व में भारत को गौरव प्रदान करते हैं। अतः इस तथ्य की ओर, माघ का ध्यान देना स्वाभाविक ही है।

भारवि एवं माघ ने जिस संस्कृति का अपने काव्य में समाहार किया है, वह वस्तुतः वैदिक संस्कृति है। जहाँ शिष्टता अतिथि सेवा, सन्ध्या, तर्पण आदि नैतिक पवित्र कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है।

किरातार्जुनीय में सन्ध्या तर्पण आदि की मान्यता का भी वर्णन हुआ है—नीतिमान राजा की राज्यलक्ष्मी सन्ध्या, पूजन, तर्पण आदि से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर सदैव राजा के प्रताप की अभिवृद्धि करती है।[4]

---

१. तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपुरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः॥
शिशुपालवध १।१४।

२, ३. शिशुपालवध १।१८। ४. किरातार्जुनीय ५।२४।

कैलाश पर्वत पर प्रातःकाल पार्वती और शंकर गंगा के तट पर सन्ध्या-वन्दन एवं प्रदक्षिणा करते हैं।[१]

शिशुपालवध में हिरण्यकशिपु जिस ओर जाता है उसके भय से उसी ओर देवता लोग तीनों सन्ध्याओं से उसको ( हिरण्यकशिपु ) नमस्कार करते हैं।[२] इससे यह स्पष्ट होता है कि कविकालीन समाज में सन्ध्या पूजन किया जाता था।

हमारी संस्कृति में शकुन एवं अपशकुन की ओर भी ध्यान देने की अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है। अर्जुन को विदा करते समय द्रौपदी अपशकुन के भय से आँसू नहीं गिराती।[३]

चौदहवें सर्ग में किरात सेना के प्रस्थान के समय अनुकूल सुगन्धित पवन प्रभूत जलकणों के साथ प्रवाहित होने लगती है।[४] पवन की अनुकूलता को यात्राकाल में शुभ माना जाता है। कालिदास ने भी राजा दिलीप के वशिष्ठ-आश्रम की ओर गमन करते हुये मार्ग में अनुकूल वायु का वर्णन किया है।[५] मेघदूत में मेघ के लिए अनुकूल पवन की यक्ष द्वारा कामना की गयी है।[६]

इस प्रकार किरात काव्य में उस सांस्कृतिक चेतना का समावेश हुआ है जो शास्त्रसम्मत है। वस्तुतः कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनको माघ ने अपनी सामयिक सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर काव्य में समाविष्ट किया है। वे पूर्णतया भारवि के ही समर्थक नहीं हैं। यह अवश्य है कि कुछ परिस्थितियाँ दोनों कवियों के समय में समान रही हैं। इस तथ्य की पुष्टि इस आधार पर होती है कि जिन मान्यताओं को कवि द्वय ने अपने काव्य में समाहित किया है, वे अब भी समाज में तदनुरूप ही परिचालित हैं।

शिशुपालवध में अपशकुन के भय से शिशुपाल पक्षीय सैनिकों की रमणियाँ अमंगल के भय से अपनी आँखों से आँसू नहीं गिराती हैं।[७] किसी कार्य के लिये प्रस्थान करते समय यह पूछना कि "तुम कहाँ जा रहे

---

१. वही ४।५०। २. शिशुपालवध १।४६। ३. किरातार्जुनीय ३।३६।
४. किरातार्जुनीय १४।२८। ५. रघुवंश १।४२। ६. मेघदूत पूर्वमेघ-१०।
७. शिशुपालवध १५।८५।

हो'' अशुभ माना जाता है। एतद्विषयक अपशकुन का शिशुपालवध में कवि ने उल्लेख किया है।[1]

दोनों ही कवि पूर्णतया वैदिक संस्कृति के पोषक हैं। वैदिक संस्कृति के अनुसार यज्ञ-याग आदि का माघ के समय में प्रचलन था। राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ का आयोजन करते हैं जिसमें विभिन्न राज्यों के नृपतिगण सम्मिलित होते हैं। यज्ञ का सम्यक् प्रकारेण शास्त्रीय विधि से समापन होता है।[2]

किरातार्जुनीय में यज्ञ का कोई उल्लेख नहीं है। प्रथम सर्ग में द्रौपदी यज्ञ करने को जटाधारी संन्यासियों का कार्य मानती है।[3]

किरातार्जुनीय में मात्र पौरुष को ही व्यक्ति की उन्नति का माध्यम माना गया है जबकि माघ ने पौरुष एवं भाग्य दोनों को ही मान्यता दी है। वे न तो पूर्णतया भाग्य को मानते हैं और न ही पुरुषार्थ को—

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥[4]

माघ के समय भारवि से अधिक राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न होने लगी थी। तत्कालीन राजपूतों में मद्यपान एवं वेश्यागमन की प्रथा का पदार्पण हो चुका था। शिशुपालवध में यद्यपि मांस भक्षण का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि शशक के आखेट करने का[5] संकेत मिलने से यह कहा जा सकता है कि उस समय लोग मांस खाते थे। भारवि ने भी अर्जुन के मुख से किरातपति के लिये ''दव जातिहीनः मृगजीवितच्छिदः''[6] कहलवाया है जिससे उनके (भारवि के) समय में मांसभक्षण का अनुमान लगाया जा सकता है।

स्वयं भारवि एवं माघ के समय सांस्कृतिक परिस्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वस्तुतः सांस्कृतिक परिस्थितियों में सामाजिक दशाओं की अपेक्षा शीघ्र परिवर्तन कम होता है।

किसी भी कवि के समय की सांस्कृतिक दशा के सम्बन्ध में तत्कालीन कला एवं साहित्य का महत्त्व कम नहीं होता है। वस्तुतः कला के माध्यम से तत्कालीन समृद्धि, रुचि एवं जीवन स्तर का पता चलता है।

---

१. शिशु० १५।८७। २. वही १५।१८–५२। ३. किरातार्जुनीय १।४४।
४. शिशुपालवध २।८६। ५. वही ५।२५,२६। ६. किरातार्जुनीय १४।२२।

किरातार्जुनीय में कवि ने यद्यपि विभिन्न कलाओं एवं शिल्पों का चित्रण नहीं किया है तथापि काव्य में शैलीगत जिस कलावादिता का सन्निबन्धन हुआ है, उससे कविकालीन कलाप्रियता का परिज्ञान होता है। भारवि के समय में कला प्रदर्शन के प्रति कवियों का व्यामोह बढ़ने लगा था। इससे यह भी भासित होता है कि तत्कालीन पाठक अथवा श्रोता समाज में भी कला के प्रति आदर की भावना एवं मान्यता में वृद्धि होने लगी थी। किरात में कला की दृष्टि से विभिन्न छन्दों की योजना हुयी है। इनमें गोमूत्रिकाबन्ध,[1] एकाक्षर[2] आदि ऐसे छन्द हैं जो यद्यपि भावों से पूरित हैं पर वे भाव की अपेक्षा कवि की चमत्कारी प्रवृत्ति एवं कलात्मक रुचि के द्योतक हैं।

भारवि ने मूर्तिकला, धातुकला तथा चित्रकला आदि का काव्य में कोई वर्णन नहीं किया है तथापि प्राकृतिक दर्शनों में कवि ने जो कल्पनायें की हैं उनसे तत्कालीन समाज की कला विषयक रुचि का स्पष्ट आभास होता है। कैलाश के शिखर पर बड़े-बड़े ढूह हैं जो विविध रत्नों की प्रभा-पुञ्जों से ढक जाते हैं जिससे वे ( ढूह ) दीवाल की भाँति प्रतीत होते हैं।[3]

महाकवि भारवि की भाँति माघ ने भी काव्यगत कलावादिता का सन्निबन्धन किया है। अन्य कलाओं—मूर्तिकला, धातुकला आदि का कोई उल्लेख नहीं किया है किन्तु मुरज,[4] गोमूत्रिका[5] आदि बन्धों के द्वारा कवि ने स्वकालीन समाज की कलात्मक संस्कृति का दिग्दर्शन कराया है।

भारवि की अपेक्षा माघ के समय में कला के प्रति विशेष व्यामोह बढ़ गया था। शिशुपालवध में यद्यपि पृथग् रूपेण कला विषयक वर्णनों को समाहित नहीं किया गया है तथपि उपमा आदि के माध्यम से जिन चित्रणों को उपन्यस्त किया गया है, वे कला की दृष्टि से अत्यन्त स्पृहणीय बन गये हैं। मन्त्रणा सभा में श्रीकृष्ण, उद्धव एवं बलराम इस प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे तीन सिंहों से अधिष्ठित त्रिकूट पर्वत।[6] सम्भवतः

१. किरातार्जुनीय १५।१२। २. वही १५।१४।
३. वही ५।३६। ४. शिशुपालवध १९।२९।
५. वही १९।४६। ६. वही २।५।

माघ के समय में चित्रकारी अपनी उन्नत अवस्था में रही होगो। द्वारकापुरी की दीवालें इतनी चिकनी हैं कि उन पर कोई चित्र नहीं बन सकता। अतः युवक चित्रकार अपने प्रतिबिम्ब से रत्न की दीवारों को सजीव चित्रों वाली बना देते हैं।[१] द्वारकापुरी में भवनों की कपोतपालिकाओं पर चित्रित पक्षी समूह पर बिलाव आक्रमण करने की इच्छा करते हैं, क्योंकि उन्हें वास्तविक पक्षी प्रतीत होते हैं न कि चित्र। इतना ही नहीं लोगों को वहाँ की चित्रकारी पर इतना विश्वास है की वे उस आक्रमणकारी बिलाव को भी चित्रित ही मानते हैं।[२]

कला की जैसी उन्नति माघ के समय में थी वैसी भारवि के समय नहीं थी। इस तथ्य का आधार दोनों कवियों के महाकाव्य का अनुशीलन है।

यदि स्थापत्य कला की दृष्टि से विचार किया जाय तो किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपालवध में उसका अधिक वर्णन है जो कविकालीन एतद्विषयक कला की उन्नति का द्योतक है।

भारवि ने हिमालय वर्णन प्रसंग में कुबेर द्वारा बड़े-बड़े फाटकों से युक्त नगर के निर्माण का उल्लेख किया है[३] तो माघ ने ऊँचे-ऊँचे परकोटों वाली द्वारकापुरी का चित्रण किया है।[४] कविद्वय के कला विषयक वर्णनों से तत्कालीन सांस्कृतिक दशा का स्वल्प वर्णन होने पर भी इतना स्पष्ट है कि उस समय कलाओं का मनोविनोद के लिये अधिक महत्त्व था जो विलासिता का भी परिचायक है।

संगीत के द्वारा भी कविकालीन सांस्कृतिक चेतना की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भारवि के समय में संगीत का उतना महत्त्व न था जितना माघ के काल में था। किरातार्जुनीय में संगीत विषयक चित्रणों

---

१. शिशुपालवध ३।४६।

२. चिक्रंसया कृत्रिमपत्रिपङ्क्तेः कपोतपालीषु निकेतनानाम्।
मार्जारमप्यायतनिश्चलांगं यस्यां जनः कृत्रिममेव मेने॥
शिशुपालवध ३।५१।

३. किरातार्जुनीय ५।३५।

४. शिशुपालवध ३।३७, ४०।

का अभाव है। भारवि ने एक स्थान पर दधिमन्थन करती हुयी गोपिकाओं के दधि भाण्ड से उठने वाली ध्वनि में मृदंग ध्वनि की उत्प्रेक्षा की है।[1] माघ ने नारद जैसे ऋषि की अपने काव्य में समायोजना की है जो संगीत विद्या के आचार्य ही हैं। नारद जी सदैव महती नाम की वीणा लिये रहते हैं। जब वे आकाश मार्ग से उतरते हैं तो वह ( वीणा ) वायु के आघात से बज उठती है।[2] प्रातःकाल बन्दीजन मधुर ध्वनि में गायन करते हैं।[3] किरातार्जुनीय में भी गन्धर्वों द्वारा अर्जुन के प्रलोभनार्थ विभिन्न उपायों के साथ ही श्रोत्राभिराम मधुर वीणा के बजाने का उल्लेख है जो कवि के समय की संगीतप्रियता एवं महत्ता का द्योतक है।[4]

इस प्रकार, माघ के समय में संगीत के प्रति अत्यधिक जनरुचि एवं गायन-वादन की समुन्नति का द्योतन होता है। इसके साथ ही शिशुपालवध में एक उपमा के माध्यम से नाटक की ओर भी संकेत किया गया है[5] जिससे उस समय सफल एवं विकसित मंचन अथवा अभिनय के होने का आभास होता है। संगीत, कला आदि ऐसे तत्त्व हैं जिनके माध्यम से लोकसामान्य के आचार-व्यवहार तथा सामाजिक स्तर का पता चलता है। वस्तुतः संस्कृति में लोक की समग्र स्थिति आ जाती है जिसकी अभिव्यक्ति कला, साहित्य, संगीत, नाटक आदि के द्वारा होती है।

किरात एवं शिशुपाल दोनों के अनुशीलन के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि दोनों के समय की सांस्कृतिक दशा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। शिष्टता-सभ्यता, वर्णाश्रम-व्यवस्था, ग्राम्य एवं नगरीय जीवन, परम्पराओं, कला आदि में प्रायः समानता है। इतना अवश्य है कि भारवि ने जिन तथ्यों का अंशतः उल्लेख अथवा संकेत मात्र किया है, माघ ने उनको विस्तृत रूपेण सप्रयास अतिरंजित कर दिया है।

**धार्मिक दशा**

भारतीय संस्कृति के प्राणभूत पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म का सर्वप्रथम परिगणन किया गया है। हमारे देश की सर्वप्रमुख मान्यता रही है कि

---

१. किरात० ४।१६। २. शिशुपालवध १।१०। ३. वही ११।१।
४. किरातार्जुनीय १०।३८। ५. शिशुपालवध २।८।

इस लोक ( मृत्युलोक ) के अतिरिक्त परलोक भी है। मानवीय शक्ति के ऊपर उसकी एक नियन्त्रणकारी शक्ति भी कार्य कर रही है जिसे हम प्रकृति, परमात्मा अथवा ज्ञान दृष्टि से 'पुरुष' इस संज्ञा से भी अभिहित करते हैं। उक्त तत्त्वों को दृष्टिगत कर प्रायः प्रत्येक भारतीय अपने लौकिक एवं पारलौकिक सुखों के लिये प्राचीन काल से ही सतत प्रयत्नशील रहा है।

इस प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि ईश्वर अथवा धर्म की साधना में भेद अथवा प्रक्रियायें भिन्न हो सकती हैं। कोई जप के द्वारा उक्त अभीष्ट को प्राप्त करना चाहता है तो कोई तपस्या के द्वारा या कर्मकाण्ड एवं ध्यान, धारणा आदि के द्वारा। यह भी स्मरणोय है कि धर्म का तात्पर्य पारलौकिक साधना के अंगभूत, ईश्वरीय विग्रह की समुपासना ही नहीं है अपितु मानव के अपने यथोचित कर्त्तव्यानुष्ठान को भी धर्म ही माना जाता है। इस प्रकार हम धर्म को ईश्वर सम्बन्धी विविध लोक मान्यताओं तथा कर्त्तव्य पालन इन दो रूपों में स्वीकार करते हैं। इन्हीं को आधार बनाकर किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध काव्यों में चित्रित धार्मिक तत्त्वों के अनुसार भारवि तथा माघ के समय की धार्मिक दशा का वर्णन यहाँ किया जा रहा है—

महाकवि भारवि के समय चारों पुरुषार्थों में मोक्ष की अपेक्षा धर्म, अर्थ तथा काम की अधिक मान्यता थी। यद्यपि सांसारिक विषयों के प्रति हेयता, जीवन की क्षणभंगुरता का विचार कर मोक्ष प्राप्ति की महत्ता का गुणगान किया जाने लगा था किन्तु इन सबसे ऊपर न्याय मार्ग का अवलम्बन कर अपने कर्त्तव्य के सम्यक् परिपालन को श्रेयस्कर माना जाता था। यदि तटस्थ भाव से देखा जाय तो भारवि ने ऐसे धार्मिक युग की कल्पना की है जिसमें पलायनवाद को स्थान नहीं है अपितु उसमें सकल लोक-साधना ही परलोक-साधना बन जाती है। वस्तुतः धर्म का तात्पर्य अपने करणीय व्यापार से निराश होकर एकान्त सेवन नहीं है अपितु उस मानव धर्म से है जिसमें दया, परोपकार, क्षमा, नैतिकता आदि मानवीय मूल्य समाविष्ट हैं जो सृष्टिगत जगत् व्यवहार के द्वारा लोक-धारण में समर्थ हैं।

किरात काव्य के अर्जुन, द्रौपदी, भीम एवं युधिष्ठिर अपने कर्त्तव्य

रूप धर्म को सर्वोपरि मानते हैं और यहाँ तक कि निःस्पृह, वीतराग, मुनिश्रेष्ठ वेदव्यास भी कर्त्तव्य-धर्म को ही वरेण्य स्वीकार करते हैं।

जहाँ तक वेदशास्त्रोक्त धार्मिक मान्यता का प्रश्न है, उसका भी कवि ने अपने काव्य में समाहार किया है। किरातार्जुनीय में धार्मिक स्थिति का ऐसा संघर्षपूर्ण वर्णन हुआ है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय समाज में एक ओर लौकिक नश्वरता का विचार कर भौतिक सुखों से पराङ्मुख होने की धारणा का विकास हो रहा था तथा दूसरी ओर पुरुषार्थ के द्वारा भौतिक किन्तु लोकोपकारी कर्त्तव्यपक्ष की मान्यता का आदर्श भी सुदृढ़ हो रहा था।

भारवि के समय में जीवन को क्षणिक तथा विषयों के सुख को कष्टकारी ही माना जाता है।[1] इस दृष्टि से मोक्ष के लिये प्रयत्न करना प्रशंसनीय माना जाने लगा था।[2] उक्त धर्म की अपेक्षा कर्त्तव्य-पालन रूप धर्म की अधिक मान्यता थी। अर्जुन इन्द्र को उनके मोक्ष रूप उपदेश के विपरीत जो उत्तर देते हैं उससे लगता है कि उस समय कर्म अथवा आश्रमोचित कर्त्तव्यानुष्ठान पर अधिक बल दिया जाता था और वही सबसे बड़ा धर्म था—

स्वधर्ममनुरुन्धन्ते नातिक्रममरातिभिः।
पलायन्ते कृतध्वंसा नाहवान्मानशालिनः॥[3]

सज्जनों के पक्षधर वेदव्यास जी भी युधिष्ठिर को अपने पराक्रम का आश्रय लेकर शत्रु-प्रतीकार का उपदेश देते हैं।[4] वस्तुतः कवि ने अत्यन्त उदात्त धार्मिक व्यवस्था की ओर संकेत किया है जिसमें लोकपीडक, आततायी, अन्यायी को लोकहित में मारना आवश्यक है और यही कारण भगवान् के धरा पर अवतरण का भी होता है। माघ के श्रीकृष्ण दुष्टों के वधार्थ जगत् शासनार्थ ही वसुदेव के घर में रहते हैं।

भारवि कालीन समाज में कर्मकाण्ड की भी मान्यता थी।[5] उस समय अपने-अपने आश्रम के अनुकूल धर्म का पालन किया जाता था। यज्ञ आदि

---

१. किरातार्जुनीय ११।१२, ३०।

२. अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः संततापदः।
इति त्याज्ये भवे भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः॥ किरातार्जुनीय ११।१३।

३. किरातार्जुनीय ११।७८। ४. वही ३।१६–१७। ५. वही १३।६५।

का भी प्रचलन था किन्तु वह विजयेच्छु क्षत्रिय कर्त्तव्य न था अपितु संन्यासियों का था ।[1]

अर्जुन ने भगवान् शंकर के प्रकट होने पर उनकी जो स्तुति की है, उससे यह विदित होता है कि उस समय एकेश्वरवाद की मान्यता होने के साथ ही अवतारवाद की भी मान्यता दृढ़ हो चुकी थी ।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में ऐसे अनेक तथ्यों का समावेश किया है जिनसे उस समय की धार्मिक दशा का उद्घाटन होता है ।

माघ स्वयं विष्णु-भक्त थे किन्तु उनकी धार्मिक चेतना में संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है । उन्होंने जहाँ अपनी वैष्णवी आस्था के अनुकूल श्रीकृष्ण का भक्तिपूर्ण चरित्र गायन किया है वहीं बौद्ध धर्म का भी उपमा के द्वारा उल्लेख किया है जिससे कवि-युग की धार्मिक उदारता सुव्यक्त होती है । धर्म का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं आस्थापरक है । मूलतः एक ही परमात्मा विभिन्न सम्प्रदायों में उपासना भेद से पृथक् पृथक् रूप में स्वीकृत है । इस शाश्वत तथ्य को प्रायः सभी विद्वानों एवं कवियों ने अपने अपने वचनों अथवा ग्रन्थों में भाषा भेद से व्याख्यायित किया है ।

माघ के समय में अवतारवाद की पूरी मान्यता थी । इस दृष्टि से कवि ने नृसिह, राम एवं श्रीकृष्ण के अवतारों का वर्णन किया है जो लोकपीडक हिरण्यकशिपु, रावण एवं शिशुपाल का वध करते हैं ।

वस्तुतः शिशुपालवध में जिस धार्मिक चेतना का चित्रण हुआ है, उससे यह सुस्पष्ट होता है कि उनके काल में अनेक देवताओं की उपासना होती थी । धार्मिक कट्टरता नहीं थी । माघ ने श्रीकृष्ण रूप में विष्णु के अवतार के साथ ही शिव, बौद्ध एवं जैन धर्मों की ओर भी संकेत किया है । रैवतक वर्णन प्रसंग में रैवतक को नगेश अर्थात् भगवान् शंकर के रूप में चित्रित किया गया है—

आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा—
माक्रम्य संस्थितमुदग्राविशालश्रृंगम् ।
मूर्ध्नि स्खलत्तुहिनदीधितिकोटिमेन—
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम् ॥[2]

---

१. वही १।४४ । २. शिशुपालवध ४।१९ ।

दिशा रूप वस्त्रों को धारण करने वाले, विशाल शृङ्गों वाले नन्दी पर आसीन तथा चन्द्रमा रूप कला को धारण करने वाले कैलाशपति शंकर को देखकर सभी विस्मित हो जाते हैं। यहाँ भगवान् शिव के लोक-प्रसिद्ध विग्रह का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है जो इस बात का सूचक है कि उस समय साकार ईश्वर की उपासना की जाती थी और देवताओं के शास्त्रसम्मत स्वरूप की मान्यता थी।

माघ ने द्वितीय सर्ग में बलराम के मुख से राजनीतिक मन्त्रणा के प्रसङ्ग में बौद्ध धर्म के आत्मरूप में प्रतिष्ठित पञ्चस्कन्धों को उल्लिखित किया है।[1] जो तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म के अस्तित्व का द्योतक है। यद्यपि उक्त प्रसङ्गों के आधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि उस समय बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा भी थी तथापि विभिन्न धर्मों में लोगों की आस्था का पता चलता है जो धार्मिक उदारता का सूचक है।

माघ के समय में जैन धर्म के प्रचलन का भी संकेत मिलता है। शिशुपालवध के १९वें सर्ग में एक श्लोक में 'जिन:' (महावीर) शब्द का उल्लेख करते हुये भगवान् श्रीकृष्ण को 'जिन' का अवतार कहा गया है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म का भी समाज में सम्मान था।

शिशुपालवध में ब्रह्मा का भी नामोल्लेख हुआ है। इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के घोड़ों की लगाम पकड़ लेते हैं, इस पर कवि ने कल्पना की है कि मानों ब्रह्मा ने शंकर के घोड़ों की लगाम पकड़ी है।[3]

शिशुपालवध में वर्णित विभिन्न देवताओं से सम्बद्ध स्थलों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय बहुदेववाद था। किसी धर्म को मानने की न तो अनिवार्यता थी और न तो धार्मिक कट्टरता ही।

यद्यपि माघ विष्णुभक्त हैं और भारवि शिवभक्त तथापि माघ ने एक स्थान पर शिव को विष्णु से उच्च अथवा श्रेष्ठ रूप में चित्रित किया है जिससे उनके (माघ के) भगवान् शंकर के प्रति आस्था एवं अनुराग का द्योतन होता है।[4]

१. सर्वकार्यंशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ॥ शिशुपालवध २।२८।

२. शिशुपालवध १९।१ २। ३. वही १३।१९।

४ क्रियते धवल: खलूच्चकैर्धवलैरेव सितेतरैरध:।
सिरसौघमधत्त शंकर: सुरसिन्धोर्मधुजित्तमङ्घ्रिणा॥ शिशुपालवध १६।४६।

भारतीय धार्मिक आस्था के केन्द्रबिन्दु पौराणिकग्रन्थसम्मत मान्यतायें हैं। वस्तुतः इन पौराणिक आस्थाओं से तत्कालिक धार्मिक दशा का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। माघ के समय में पौराणिक आख्यानों अथवा कथाओं की पूरी मान्यता थी।[1] पुराणों में वर्णन है कि पृथ्वी पाताल स्थित सर्प के फनों पर स्थित है। सृष्टि के साथ ही प्रलय सम्बन्धी विचारों के प्रति पौराणिक आधार पर लोगों में दृढ़ता थी। युगान्त में जीवों का संहार करने वाले कैटभारि श्रीकृष्ण के उदर में चौदहों भुवन विस्तार के साथ रहते हैं।[2]

यद्यपि माघ की भाँति भारवि ने विभिन्न धर्मों तथा देवताओं का अपने काव्य में उल्लेख नहीं किया है तथापि उस समय (भारविकाल में) बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी। सम्भवतः तब भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथक्-पृथक् अधिष्ठातृ देवों की मान्यता थी क्योंकि अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव सहित इन्द्र आदि देवताओं द्वारा वर एवं अस्त्र प्रदान करने का उल्लेख हुआ है।[3]

किरात एवं शिशुपालवध दोनों ही काव्यों में साकार एवं निराकार ईश्वर को स्पष्ट परिकल्पना की गयी है। शिशुपालवध में नारद भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये उन्हें क्रियाशून्य, उदासीन योगियों द्वारा साक्षात्करणीय तथा सज्जनों की रक्षा करने के लिए मनुष्य जन्म धारण करने वाला कहते हैं।[4]

किरात में अर्जुन भगवान् शंकर की स्तुति करते हैं—भगवान् शंकर जन्म, जरा एवं मरण से रहित तथा परमाणु के भी कारण हैं तथापि वे (शंकर) स्त्री और पुरुष दोनों का शरीर धारण किये हैं।[5] उपर्युक्त तथ्यों से यह सुव्यक्त होता है कि दोनों कवियों के काल में धार्मिक उन्नति थी तथा लोगों में ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था थी।

शिशुपालवध में यज्ञ का विस्तृत वर्णन मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय लोगों में यज्ञों के प्रति आस्था थी। युधिष्ठिर के यज्ञ-वर्णन से तत्कालीन समाज की यज्ञ एवं कर्मकाण्ड के प्रति आस्था का पता चलता है। उस समय दैनिक यज्ञों का भी प्रचलन था।[6]

---

१, २. शिशुपालवध क्रमशः १।१३। ३. किरातार्जुनीय १८।४६।
४. शिशुपालवध १।३३, ३५। ५, ६. किरातार्जुनीय १८।३३, ३४.३६।

महाकवि माघ के समय में धर्म का स्वरूप पूर्णरूपेण विकसित था। राजा लोग यज्ञ एवं दान करते थे, मुनि, योगीजन ईश्वर के अचिन्त्य एवं सूक्ष्म स्वरूप का ध्यान करते थे तथा सामान्य गृहस्थ, कृषक आदि भगवान् का संकीर्तन कर अपनी धार्मिक भावना का प्रकाशन करते थे। युधिष्ठिर जैसे राजा राजसूय जैसे यज्ञों का अनुष्ठान कर वैदिक सिद्धान्तों का अनुपालन करते थे। नारद, सनत्कुमार आदि ईश्वर का चिन्तन करते थे तो गोप लोग जो सामान्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन[1] करते हुये पाये जाते हैं।

शिशुपालवध में धर्म के विभिन्न स्वरूपों का चित्रण मिलता है जो तत्कालीन धार्मिक प्रगति का द्योतक है।

किरात एवं शिशुपाल दोनों काव्यों में चित्रित धार्मिक दशा में किञ्चित् अन्तर भी है। भारवि वैयक्तिक धर्म के समर्थक नहीं हैं। उनके तप जैसे धर्म विषयक अनुष्ठान की भी परिणति राष्ट्र धर्म में हो जाती है। अर्जुन की कठोर तपस्या दुराचारी दुर्योधन के वधार्थ है। वस्तुतः वही सच्चा धर्म है जो लोक को धारण करने में समर्थ हो। अपने कर्तव्य का पालन सबसे बड़ा धर्म है। सम्भवतः इसी दृष्टि से किरातार्जुनीय में वेदव्यास भी अर्जुन को अपने कर्तव्य पालन का उपदेश करते हैं।

शिशुपालवध में माघ ने साकार एवं निराकार की जो विस्तृत विवेचना की है, उससे प्रतीत होता है कि उस समय धर्म का विकास तो था किन्तु वह आत्मोन्नति का ही साधन रहा होगा।

उपर्युक्त तथ्यों का विवेचन करने से यह स्पष्ट होता है कि भारवि एवं माघ दोनों कवियों के समय में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दशा में कोई विशेष अन्तर न था। इतना अवश्य है कि भारवि की अपेक्षा माघ के समय में विभिन्न क्षेत्रों में अधिक प्रगति थी।

१. शिशुपालवध १२।३८।

## भारवि एवं माघ का पाण्डित्य

मनुष्य ज्ञानवान् प्राणी है क्योंकि आहार, मैथुन, भय आदि जो प्रवृत्तियाँ हैं वे मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियों में समान रूप से पायी जाती हैं। इस दृष्टि से जीवलोक के समस्त प्राणी समान हैं, पर मनुष्य इस अर्थ में श्रेष्ठ हो जाता है कि उसके पास विशेष ज्ञान की थाती है जो अन्य प्राणियों में दुष्प्राप्य है। इसीलिये भर्तृहरि ने ज्ञान से हीन प्राणी को पशु माना है।[1] परन्तु ज्ञानवान् होते हुये मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वाङ्गपूर्ण विकास के लिये साहित्य, संगीत, कला आदि अपेक्षित हैं। भर्तृहरि के इस वाक्य से व्यञ्जित होता है कि वास्तविक अथवा सार्थक जीवन के लिये साहित्य एवं लोकानुभव का संचय अनिवार्य है। मनुष्य की यही बहुज्ञता है कि वह पार्थिव रूप से एक-देशीय होते हुये भी विभिन्न विषयों--राजनीति, धर्म दर्शन आदि का ज्ञान एवं गम्भीर अनुभव युक्त हो। इन सबके लिये आवश्यकता होती है गहन अध्ययन एवं सूक्ष्मेक्षणा की। जब विभिन्न शास्त्रों एवं लोक व्यवहार का गम्भोरतम एवं परिष्कृत अनुभव प्रवाह के रूप में अभिव्यक्त होता है तो वही काव्य का रूप ग्रहण कर लेता है और उसका कर्त्ता कवि शब्द से मण्डित होने लगता है। कवि और सामान्य जन की प्रतिभा में अन्तर होता है। कवि यत्र तत्र विकीर्णज्ञान को सर्वसाधारण के सम्मुख सुसज्जित रूप में प्रस्तुत कर उसे यथावश्यकता प्रवृत्त अथवा निवृत्त करता है। कवि समाज के विभिन्न अनुभवों को अपनी सूक्ष्मेक्षणा से ग्रहण कर उसे शास्त्र के निकष से संस्कृत कर प्रस्तुत करता है। इसीलिये कवित्व शक्ति का प्राप्त होना दुर्लभ बताया गया है।[2] इस दुर्लभ कवित्व शक्ति के लिये आवश्यकता होती है व्युत्पत्ति और प्रतिभा की; इन्हीं के संयोग से काव्य का स्रोत प्रस्फुटित होता है।[3] व्युत्पत्ति के अन्तर्गत समस्त ज्ञान-विज्ञान की बातें आ जाती हैं वह समस्त

---

१. नीतिशतक, श्लोक सं० १२

२. नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥ अग्निपुराण ।

३. व्युत्पत्यभ्याससंस्कृता प्रतिभास्य हेतुः ॥ काव्यानुशासन ।

ज्ञान काव्य का अंग बन जाता है। कोई भी शब्द, अर्थ, न्याय, कला ऐसा नहीं है जो काव्य अंग न बन सके।[1] विभिन्न अचार्यों ने काव्य के अन्तर्गत ही समाहित हो जाने वाली समस्त विद्याओं का उल्लेख कर कवि के गुरुतर भार की ओर संकेत किया है। आचार्य राजशेखर ने काव्य को पन्द्रहवाँ विद्यास्थान माना है।[2] उन्होंने बहुज्ञता को व्युत्पत्ति माना है।[3] शक्ति तो नैसर्गिक अथवा स्वाभाविक है तथा व्युत्पत्ति अर्जित है।[4] किसी ने शक्ति को विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतिपादित किया है और किसी ने अभ्यास को। आचार्य आनन्दवर्धन ने व्युत्पत्ति की अपेक्षा प्रतिभा को अधिक महत्त्व दिया है। उनका कथन है को व्युत्पत्ति की न्यूनता होने पर भी काव्यगत दोषों को शक्ति द्वारा समाहित किया जा सकता है किन्तु शक्ति या प्रतिभा के अभाव में काव्य के दोष शीघ्र ही स्पष्ट हो जाते हैं।[5] आचार्य कुन्तक प्रतिभा को ही प्रमुखता प्रदान करते हैं जो संस्कारजन्य है। इस योग्यता का सभी में प्राप्त होना सम्भव नहीं है।[6] जयदेव ने व्युत्पत्ति और अभ्यास दोनों को ही महत्त्वपूर्ण बताया है।[7]

समन्वयवादी आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्त्ती समस्त काव्याचार्यों के सिद्धान्तों का अध्ययन कर एक सर्वमान्य तथ्य का प्रतिपादन किया है। उन्होंने शक्ति, निपुणता और अभ्यास को काव्य स्थान का हेतु स्वीकार किया है।[8] वस्तुतः मम्मट की शक्ति, निपुणता और अभ्यास तीनों में

---

१. न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥ भामह—काव्यालंकार।

२. सकलविद्यास्थानैकायतनं पंचदशं काव्यं विद्यास्थानम् इति यायावरीयः।
काव्यमीमांसा पृ० ९

३. 'बहुज्ञता व्युत्पत्तिः'। 'उचितानुचितविवेको व्युत्पत्तिः' इति यायावरीयः।
वही ५, पृ० ३७

४. काव्यादर्श १।१०३। ५. ध्वन्यालोक ३।६।

६. प्राक्तनाद्यतनसंस्कारपरिपाकप्रौढा प्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः।
वक्रोक्तिजीवित १।२९ वृत्ति

७. चन्द्रालोक १।६।

८. शक्तिर्निपुणता काव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥ काव्यप्रकाश १।३।

विभिन्न पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त अन्तर्भूत हो जाते हैं तथा एक तथ्यपरक कथन भी समक्ष आता है जो विभिन्न कवियों के काव्यानुशीलन से यथार्थ सिद्ध होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों काव्य-रचना के हेतु स्वरूप अपेक्षित हैं। प्रतिभा वह तत्त्व है जिसके द्वारा ग्रन्थों का अनुशीलन कर उनमें औचित्य एवं अनौचित्य का विमर्श किया जा सकता है। व्युत्पत्ति वह गहन ज्ञान है जो प्रतिभाशाली जनों के लिए अल्पश्रमसाध्य है। उच्चकोटि के महाकवियों में व्युत्पत्ति और प्रतिभा की स्पष्ट प्रतीति होती है। विभिन्न शास्त्रों का गहन ज्ञान रखते हुये व्यावहारिक जगत् का सूक्ष्म अनुभव कर समाज एवं विश्व को एक नवीन आलोक प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में हमें महाकवि भारवि और माघ के पाण्डित्य का विवेचन अभिप्रेत है। वस्तुतः दोनों ही महाकवियों के काव्यों में राज-नीति, व्याकरण, धर्म, दर्शन आदि के ज्ञान के साथ ही मनुष्यों के मनोवैज्ञानिक एवं पशुओं तक के स्वाभाविक भावों का यथास्थान सम्यक् वर्णन हुआ है।

**महाकवि भारवि का पाण्डित्य**

महाकवि भारवि का चिन्तन एवं उनकी कल्पनायें नितान्त मौलिक हैं। उनके किरातार्जुनीय महाकाव्य को दृष्टिगत कर विचार करने पर प्रतीत होता है कि वे काव्य जगत् में अपना अद्वितीय स्थान बनाने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे जिसके कारण ही उन्होंने अलंकृत काव्य शैली का प्रवर्त्तन किया। प्रस्तुतः वे किसी के पीछे चलने वाले कवि न थे अपितु वे स्वयं ऐसे प्रतिनिधि कवि थे जिनके पीछे माघ, श्रीहर्ष जैसे विद्वान् कवि चलने लगे। वे प्रतिभा और व्युत्पत्ति के धनी थें। उनके काव्य में उनका वैदग्ध्य पदे-पदे परिलक्षित होता है। वे वेद, वेदांग, पुराण, राज-नीति, व्याकरण, दर्शन, कामशास्त्र आदि के मर्मज्ञ पण्डित थे। उनकी सर्वाधिक विशेषता तो यह है कि उन्होंने उन उन विषयों का परम्परागत पालन न करते हुये उसे अपनी प्रतिभा से मण्डित कर एक नवीन दिशा प्रदान की। वे राजनीति के तो महान् पण्डित ही हैं। उनके राजनीतिक विचारों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बहुत कुछ साम्य है। भारवि के

स्वतन्त्र चेता होने का अभिप्राय यह नहीं है कि वे स्वेच्छाचारी हैं, अपितु वे शिष्ट एवं मर्यादित रूप से प्रत्येक नवीन आदर्श की प्रस्तुति करते हैं। यह भी सम्भव है जब कवि ने विभिन्न शास्त्रों एवं अपने पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का गहनतम अध्ययन किया हो। वे अपने काव्य में काव्यशास्त्रीय लक्षणों का भी उल्लेख करते है, जिससे उनकी काव्यज्ञता सुस्पष्ट है। उन्होंने काब्य के क्षेत्र में अर्थगौरव की विशेष रूप से स्थापना की।

महाकवि भारवि के नाना विषयक पाण्डित्य को निम्नांकित सूत्रों में विभक्त कर प्रस्तुत किया जा रहा है—

**राजनीति**

किरात काव्य का प्रारम्भ राजनीति के वातावरण में होता है। प्रथम श्लोक से ही कवि की राजनीति-कुशलता का परिचय प्राप्त होने लगता है। युधिष्ठिर द्वारा शत्रु-वृत्तान्त परिज्ञानार्थं प्रेषित वनेचर अपना कार्य सम्पन्न कर द्वैतवन में उनसे ( युधिष्ठिर से ) यथास्थिति निवेदन करता है।[1]

इस वनेचर को कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर कापटिक कहा जा सकता है। आचार्य कौटिल्य ने दूसरे के रहस्यों का ज्ञाता, बड़ा प्रगल्भ तथा विद्यार्थी की वेषभूषा में रहने वाले गुप्तचर को कापटिक कहा है।[2]

वनेचर और युधिष्ठिर; द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर के मध्य वार्ता में राजनीति का उच्चकोटिक निरूपण प्राप्त होता है। वनेचर ने यद्यपि मात्र शत्रु-वृत्तान्त का ही निवेदन अपने नियोजक स्वामी (युधिष्ठिर) से किया है तथापि उसकी इस उक्ति में कि स्वामी और अमात्यादिकों के अनुकूल रहने पर सम्पत्तियाँ चिरस्थायो रहती है एवं राजाओं का चरित्र दुर्ज्ञेय है, में भी सूक्ष्म राजनैतिक कवि चेतना का पुट है।[3]

वनेचर के विभिन्न कथनों में पदे-पदे राजनीतिक तथा लोक-व्यवहार के अनेक उपयोगी तथ्यों का उद्घाटन हुआ है। राजा को क्रोध त्यागकर

---

१. किरातार्जुनीय १।१। २. कौटिल्य का अर्थशास्त्र अध्याय १० द्वितीय खण्ड
३. किरातार्जुनीय १।५–६।

धर्मशास्त्रानुकूल निष्पक्ष भावेन दण्ड देना चाहिए। उसे स्वराष्ट्र एवं पर-राष्ट्र सर्वत्र आत्मीय कर्मचारियों को कार्यभार सौंपकर पूर्ण विश्वस्त न होकर मात्र विश्वास का प्रदर्शन करते रहना चाहिये।[१] इस प्रकार की राजनीतिक एवं व्यावहारिक बातें, जो नीतिगत हैं[२], का सुन्दर सन्निवेश होने से बरबस कवि के सूक्ष्म अनुभव एवं पाण्डित्य का गान करना पड़ता है। महाकवि भारवि को यदि हम राजनीति के साथ आचार शास्त्र या नीति का भी पण्डित कहें तो अनुचित न होगा। वे राजनीति का धर्म एवं आधार नियन्त्रित रूप स्वीकार करते हैं, छल प्रपंचपूर्ण नहीं। तभी तो दुर्योधन की राजनीतिक विचारधारा में उदारता, दानशीलता, आलस्यराहित्य, छोटे-बड़े का आज्ञापालन आदि का समावेश है।[३] साम, दान, दण्ड, भेद नामक चतुर्विध उपायों; प्रभु, मन्त्र, उत्साह—तीन शक्तियों; सन्धि-विग्रह इत्यादि अंगों की सूक्ष्मताओं पर कवि ने अपना विचार व्यक्त कर अपने प्रखर राजनीतिक ज्ञान का परिचय कराया है।[४]

वनेचर अपनी शत्रुपक्षीय नीति को यथाज्ञान अपने स्वामी से निवेदन कर पुरस्कृत होकर चला जाता है। तदनन्तर युधिष्ठिर द्रौपदी के भवन मे प्रवेश कर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाते हैं।

यहाँ भारवि और माघ में बहुत कुछ साम्य है, माघ के काव्य में नारद जो इन्द्र के दौत्य कर्म का सम्पादन करते हैं, के चले जाने पर विशिष्ट सभा भवन में श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव प्रविष्ट होते हैं। मन्त्रणा कर्त्ताओं की संख्या में साम्य है तथा जो मन्त्रणागृह में अन्तर है, वह एक तो माघ की अपनी भारवि से स्पर्धा के कारण है तथा दूसरे एक निर्वासित राजा एवं वास्तविक राजा के साधनों में अन्तर होना भी आवश्यक एवं स्वाभाविक है।

युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को सारा शत्रु समाचार बताने पर मानिनी द्रौपदी युधिष्ठिर को उत्तेजित करती है। यद्यपि द्रौपदी में उत्तेजना है

१. किरातार्जुनीय १।१३–१४।

२. "न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।"—व्यासवचनम्

३. किरातार्जुनीय १।२१।

४. वही १।१५।

तथापि राजनीति से पृथक् कोई बात नहीं कहती है। द्रौपदी 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' नीति की समर्थक है[1] जो वस्तुतः पौरुषवान् राजा के लिये अत्यन्त नीतिसंगत है।

भीम जो अत्यन्त उद्धत एवं क्रान्तिकारी पात्र हैं उनके माध्यम से भारवि ने अन्वीक्षिकी, त्रयी, दण्ड, वार्त्ता चार विद्याओं की ओर संकेत किया है।[2] भारवि ने अपने राजनीति विषयक ज्ञान के प्रदर्शन में दो ऐसे पात्रों का संयोजन किया है जिसमें भीम उच्छृङ्खल एवं मात्र शक्ति प्रधान राजनीति का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा युधिष्ठिर शान्ति एवं गम्भीरतम राजनीति के पक्षपाती हैं। भीम की राजनीति में व्यक्तिगत कष्ट के त्वरित प्रतीकार की क्षणिक उत्तेजना है तथा युधिष्ठिर प्रजावर्ग के चिर-स्थायी कल्याण की भावना से युक्त राजनीति से ओतप्रोत हैं। भीम के मत में कार्यसिद्धि के सहायक, कार्य साधन के उपाय, देश-विभाग, काल-विभाग तथा विपत्ति प्रतिकार ये पाँच अङ्ग हैं किन्तु सर्वत्र उत्साह शक्ति की आवश्यकता होती है—

प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपञ्चाङ्गविनिर्णयो नयः।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियतिं लोक इवानुरुध्यते ॥[3]

युधिष्ठिर राजनीति पर शान्तिपूर्वक विचार करते हैं। एकाएक क्षणिक उत्तेजना अथवा भावुकता में पड़कर कोई कार्य नहीं करना चाहिये क्योंकि अविवेक आपत्तियों, असफलताओं का कारण होता है।[4]

इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर युधिष्ठिर की राजनीति चलती है जिसमें स्थायी राजलक्ष्मी की प्राप्ति निहित है। भारवि ने विवेकपूर्ण पौरुष को मान्यता दी है क्योंकि विवेकी पुरुष की कार्यसिद्धि अवश्यम्भाविनी है, तथा साहसियों की कार्यसिद्धि संदिग्ध रहती है।[5]

---

१. व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृतांगान्निशिता इवेषवः॥
किरातार्जुनीय १।३०।

२. वही २।६। ३. वही २।१२।

४. किरातार्जुनीय २।३०। ५. वही २।३२।

युधिष्ठिर के शान्त एवं सरल स्वभाव में राजनीति के सूक्ष्म एवं उच्च विचार भरे पड़े हैं। वे शत्रु के प्रति उदासीन नहीं हैं, अपितु उसकी सम्पूर्ण स्थिति की जानकारी में लगे हैं।

सुयोधन प्रकृत्या अत्यन्त दुर्विनीत, मायावी, अभिमानी है, इस समय जो उसके गुण दृष्टिगत होते है, वे कृत्रिम एवं क्षणिक है जिनका निर्वाह वह चिरकाल तक न कर सकेगा और जिससे स्वतः ही उसके सम्बन्धी मित्र तथा प्रजावर्ग विरुद्ध हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में अल्प प्रयास से ही शत्रु को जीता जा सकता है। यदि उन्नति को प्राप्त करने वाला पुरुष अविनीत है तो वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।[1] इसके विपरीत जो विवेकशील एवं विनम्र हैं वह कर्त्तव्य रूप बीज का विवेक रूप जल से सेचन कर सम्पत्ति रूप फल को प्राप्त करता है।[2]

इस प्रकार महाकवि भारवि ने अपने किरातार्जुनीय में राजनीतिक ज्ञान का गम्भीर परिचय दिया है।

**व्याकरण**

महाकवि भारवि राजनीति के साथ ही व्याकरण के भी प्रकाण्ड आचार्य हैं। किरातार्जुनीय में काव्यगत विशेषताओं के साथ-साथ व्याकरण के प्रौढ़ प्रयोगों के भी दर्शन होते हैं।

किरातार्जुनीय की व्याकरणगत परिवीक्षा से कवि के एतद्विषयक पाण्डित्य का आकलन प्रमुखतः दो वर्गों में विभक्त कर किया जा सकता है--वैयाकरण सिद्धान्त सम्बन्धी वर्णन तथा शब्द प्रयोग वैविध्य वर्णन।

**वैयाकरण सिद्धान्त**

महाकवि भारवि व्याकरण के सम्पूर्ण प्रकरणों में निष्णात हैं।

---

१. किरातार्जुनीय २।५२।

२. अभिवर्षति योऽनुपालयन्विधिबीजानि विवेकवारिणा।
स सदा फलशालिनीं क्रियां शरदं लोक इवाधितिष्ठति॥
वही २।३१।

किरात महाकाव्य में प्रकृति और प्रत्यय के मध्य आने वाले अनुबन्ध का भगवान् शंकर और अर्जुन के मध्य वधार्थ प्राप्त सूकर के द्वारा अनुबन्ध लोप का शास्त्रीय स्वरूप प्रदर्शित किया गया है।[१]

श्लिष्ट प्रयोग के माध्यम से कवि ने एक स्थान पर वैयाकरण सम्प्रदाय का सैद्धान्तिक पक्ष उपस्थापित किया है। प्रकृति-प्रत्यय विवेचन पूर्वक संस्कार को प्राप्त शब्द ही प्रयोक्तव्य होते हैं।[२] पतंजलि ने अपने महाभाष्य में शब्द की संस्कार्यता एवं संस्कारनिष्ठ शब्दों की ही प्रयोगार्हता का एकस्वरेण प्रतिपादन किया है।[३] असंस्कृत शब्द प्रयोग से प्रत्यवाय होता है। यह सब भारवि के 'संस्कारवत्वाद्' प्रयोग से अभिव्यक्त होता है। आप्त (प्रामाणिक) आचार्यों के प्रयोगों को ही शब्दों की साधुता का एकमात्र हेतु स्वीकार किया गया है।

महाकवि भारवि ने व्याकरण के सिद्धान्तों का अपने काव्य में विस्तृत रूपेण समावेश नहीं किया है किन्तु उन्होंने जो भी न्यूनाधिक्य रूप से उल्लिखित किया है, उसका प्रभाव उत्तरकालीन कवियों पर पड़ा जिसके कारण भट्टि एवं माघ आदि ने विभिन्न स्थानों पर अपने व्याकरण विषयक पाण्डित्य के प्रदर्शन में ऐसे अनेक वैयाकरण सिद्धान्त प्रयुक्त किये।

**शब्द प्रयोग**

किरातार्जुनीय में जो व्याकरण सम्मत प्रयोग प्राप्त होते हैं उनसे भी कवि के एतद्विषयक गहन ज्ञान का परिचय मिलता है। प्रयोग वैविध्य के आधार पर कवि के व्याकरणशास्त्रीय ज्ञान को निम्नलिखित सोपानों में देखा जा सकता है—

**कर्मवाच्य (प्रयोग) बाहुल्य**

किरातार्जुनीय में कवि के कर्मवाच्य प्रयोग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा।[४] का उदाहरणभूत अपहत्ये[५] प्रयोग

---

१. किरातार्जुनीय १३।१९।

२. संस्कारवत्वाद्रमयत्सु चेतः प्रयोगशिक्षागुणभूषणेषु।
जयं यथार्थेषु शरेषु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशशंसे॥ किरात० १७।६

३. पतञ्जलि का महाभाष्य — प्रथम आह्निक।

४. लघुसिद्धान्तकौमुदी ३।३।१३१। ५. किरातार्जुनीय ११।६८।

कर्मवाच्य लट्लकार में प्रयुक्त हुआ है। अरुध्येताम्[1] दर्शयते[2] आदि पद प्रयोग कवि के कर्मवाच्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

**द्विकर्म धातुओं का अनेकशः प्रयोग**

वनेचर के प्रयाणानन्तर पाञ्चाली (द्रौपदी) कुटीर में स्थित युधिष्ठिर ने कौटुम्बिक जनों को शत्रु-वृत्तान्त सूचित किया। इस वर्णन में चक्षिन् धातु का आचचक्षे[3] द्विकर्मक धातु प्रयोग सौन्दर्य का द्योतक है। 'शात्' धातु का द्विकर्मक प्रयोग भारवि के पद प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ 'शासन्' धातु से 'शास्ति' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[4]

**भाववाच्य-प्रयोग**

महाकवि भारवि ने कर्तृवाच्य के स्थान पर भाववाच्य प्रयोग में अधिक रुचि दिखायी है। भगवान् शिव कि गर्दन पर दृष्टिपात करते ही अर्जुन के नेत्र घूमने लगे, अतः वे तीन-चार पग लड़खड़ा गये। इस प्रसंग में चस्खले यह भाववाची लिडन्त का सुन्दर प्रयोग है।[5]

**क्वसु प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग**

क्वसु प्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग में भारवि अत्यन्त सिद्धहस्त हैं। विद्यार्थी के समान अग्रज युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य कर अर्जुन वेदव्यास के समक्ष उपस्थित हुए। इस स्थल पर कवि ने 'भाषायां सदवसश्रुवः' इस सूत्र से विहित क्वसु प्रत्यय से युक्त प्रतेदिवांसः[6] पद की अपेक्षित योजना की है।

**लुङ् के स्थान पर लिट् प्रयोग**

भूतकालिक धातु प्रयोग में प्रायः सामान्यभूत अर्थवाचक लुङ् लकार का ही प्रयोग होता है किन्तु महाकवि भारवि ने किसी घटना का वर्णन करते हुये परोक्षभूत में लिट् लकार का प्रयोग किया है, लङ् और लुङ् का नहीं। इस प्रकार के प्रयोगों का काव्य में प्रचुर सन्निवेश हुआ है। निरेजे, वितेने, इयाय, विभौ, ऊचे आदि क्रमशः राजृ, तनु, इण, भा एवं वच् धातु के लिडन्त रूप है,[7] जो कवि के लिडन्त प्रयोग प्रवृत्ति के प्रति विशेष आग्रह के सूचक हैं।

---

१. किरातार्जुनीय १।४२ ११।५१ २. वही १।१०।

३, ४, ५, वही १।२६, १।५, १८।६।

६, ७. वही ३।२४, १०।१९, १८।१९, २१, ५१।

**लोक-प्रयोग में विरल किन्तु पाणिनि शास्त्र सम्मत प्रयोग**

आलोच्य महाकाव्य में महाकवि ने कहीं-कहीं ऐसे शब्दों की योजना की है, जो पाणिनीय शास्त्र सम्मत तो हैं किन्तु लोक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं है। ऐसे शब्दप्रयोग भारवि के वैयाकरण पाण्डित्य के संसूचक तथा महाकवि की शब्द शय्या के सौन्दर्यीकरण में सहायक सिद्ध हुये हैं। एतद्विषयक कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

णिच् प्रत्ययान्त रच् धातु से निष्पन्न रचयांचकार, विजहीहि, विलीये उद्धरे, अवतस्तरे[1] आदि ऐसे ही प्रयोग हैं जिनसे कवि का पाण्डित्य द्योतित होता है।

**अनतिविस्तृत पदावली समन्वित प्रयोग**

महाकवि भारवि का अनतिविस्तृत पदावली समन्वित पदशय्या द्वारा अर्थगाम्भीर्य्य का नैसर्गिक आनयन उनके व्याकरण शास्त्रोय अगाध पाण्डित्य का प्रदर्शक है जबकि बाण आदि कवियों ने पदशय्या के आकर्षण हेतु विस्तृत पदावली वाले लम्बे समासों की योजना का आश्रय लिया है। सम्पूर्ण किरात में स्वल्प पदावली वाले लघुकाय समासों के ही प्रयोग प्राप्त होते हैं। फिर भी इन पदों का अर्थगाम्भीर्य स्पृहा का विषय है। यद्यपि यह गुण सम्पूर्ण महाकाव्य में प्रचुरता के साथ पाया जाता है तथापि निम्नलिखित श्लोक इसका सुन्दर उदाहरण हो सकता है—

तदनघ तनुरस्तु सा सकामा व्रजति पुरा हि परासुतां त्वदर्थे।
पुनरपि सुलभं तपोऽनुरागी युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपः ॥[2]

इस प्रकार किरातार्जुनीय में ऐसे अनेक स्थल हैं जो कवि के व्याकरण विषयक पाण्डित्य के द्योतन के साथ ही अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं।

भारवि ने शब्दप्रयोगों में व्याकरण पाण्डित्य प्रदर्शन को किंचित् अंश में भी लक्ष्यरूपेण स्थिर नहीं किया है। समग्र दृष्टि से कवि का

---

१. किरातार्जुनीय ६।२४, ११।३१, ११।७९, १४।२९।

२. वही १०।५०।

गम्भीर :व्याकरण ज्ञान महाकाव्य के अर्थगाम्भीर्य की उपस्थापना में अतीव सहायक हुआ है।

यद्यपि काव्यशास्त्रीय आचार्य भामह ने 'विषमविलोचनस्य वक्षः'[1] में आजघ्ने पद को च्युतसंस्कृति दोष से आक्षिप्त करते हुये महाकवि की व्याकरणोचित प्रौढ़ि में किंचित् संशयित दृष्टि का उपक्रम प्रस्तुत किया है किन्तु नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न महाकवि भारवि के वैयाकरण ज्ञान में सूक्ष्मेक्षिका सम्पन्न समालोचन अथवा सहृदय को कवि (भारवि) के व्याकरण शास्त्रीय पाण्डित्य का पदे-पदे प्रत्यक्षीकरण होता है। आचार्य मल्लिनाथ ने 'प्राप्य' पद को अध्याहृत मानकर आजघ्ने पद के दोष का स्पृहणीय परिहार कर दिया।

**दर्शन**

महाकवि भारवि राजनीति, व्याकरण आदि विषयों के साथ ही दर्शन के भी अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने अपने इस ज्ञान को काव्य में यथास्थान उपस्थापित किया है। यद्यपि इस विषय का किरातार्जुनीय में पर्याप्त सन्निवेश नहीं हुआ है, क्योंकि कवि ने अपने ज्ञान को पृथक् रूप से प्रदर्शित करने का प्रयत्न नहीं किया है। उनके सम्पूर्ण काव्य में जो दर्शन विषयक प्रसंग आये हैं, उनके आधार पर भारवि के दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की जा रही है—

किरातर्जुनीय के तृतीय सर्ग में महर्षि वेदव्यास पाण्डवों के निकट आते हैं। वे पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिये युधिष्ठिर को उपाय बताते हैं जिसके अनुसार अर्जुन को इन्द्र और शंकर के प्रसादनार्थ तपस्या करनी है। अतः अर्जुन को व्यास जी अपने तपोबल से शीघ्र ही योगविधि बता देते हैं। चौबीस तत्त्वों के ज्ञान में उनकी (अर्जुन की) आँख खुली हुयी की भाँति हो जाती है।[2] यहाँ कवि ने साङ्ख्य दर्शनोक्त चौबीस तत्त्वों की ओर संकेत किया है।

अर्जुन योगशास्त्रानुकूल विधि से चित्तवृत्ति का नियमन कर मुनियों की वृत्ति को धारण किये हुये तपोरत हैं।[3] इस स्थल पर 'चित्तवृत्ति-

---

१. किरातार्जुनीय १७।६३। २. वही ३।२६।
३. वही ६।१९।

निरोधः योगः' योग दर्शन की यह परिभाषा सुतरां प्रतिबिम्बित होती है। अन्यत्र योग शक्ति के द्वारा महात्माओं के जन्म, मरण को जीत लेने का उल्लेख हुआ है जो[1] कवि के याग सम्बन्धो ज्ञान का द्योतक है। योग की ही महिमा से व्यास, वाल्मीकि आदि मुनि इतिहास, पुराणादि को सर्जना कर लोगों का उपकार करने में समर्थ हो सके हैं।[2]

कवि ने योग विषयक अष्टांग मार्ग की ओर संकेत करते हुये तपोरत अर्जुन के यम, नियम के पालन से कायिक क्षीणता किन्तु आन्तरिक शक्तिमत्ता का उल्लेख करते हुये उनकी (अर्जुन की) मूर्तिमान् अथर्ववेद से तुलना की है।[3] यहाँ पर कवि के योग ज्ञान का तो आभास होता ही है, साथ ही इस बात की भी पुष्टि होती है कि भारवि को सिद्धान्ततः भारतीय-ऋषि मनीषा के ज्ञानपुञ्ज स्वरूप वेदों का भी सम्यक् परिज्ञान है वे अथर्ववेद के स्वरूप को जानते हैं, जिसमें शान्त एवं हिंसा रूप से अभ्युदय तथा अभिचार काण्ड (दो भागों में) है।

किरातार्जुनीय में कवि के अद्वैतवेदान्त विषयक ज्ञान का भी यत्रतत्र समावेश हुआ है। हिमालय पर्वत परमपुरुष भगवान् के सदृश अज्ञेय है जिसे केवल ब्रह्मा ही जान सकते हैं।[4] यहाँ ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के प्रथम मन्त्र का शब्दान्तर प्रकटित हुआ है।

ज्ञात तत्त्व के प्रति प्रवृत्त होने से पूर्व भौतिक विनश्वरता तथा सुखों की अनित्यता एवं जीवन के भुक्त सुखों से सन्ताप प्राप्ति की निश्चित यथार्थता का अवबोध परमावश्यक होता है। वेदान्त दर्शन सम्मत उक्त तथ्य का प्रतिपादन पाशुपतास्त्र प्राप्त्यर्थ तपोरत अर्जुन के परीक्षणार्थ समागत इन्द्र की वाणी में सुव्यक्त हुआ है।[5]

महाकवि भारवि की वेदों के प्रति बड़ी आस्था है जिसका परिचय अर्जुन की वाणी से मिल सकता है जहाँ वे इन्द्र के वचनों की प्रशंसा

---

१. किराता० १३।४३। २. वही १८।२९।

३ यमनियमकृशीकृतस्थिरांगः परिददृशे विधृतायुधः स ताभिः।
अनुपमशमदीप्ततागरीयान् कृतपदपंक्तिरथर्वणेव वेदः॥ वही १०।१०।

४. वही ५।१८।

५. वही ११।१२-१३।

करते हुये कहते हैं कि आपने (इन्द्र) जो कहा है, वह तर्क के द्वारा अखण्ड होने से वेद वाक्य सदृश है ।[1]

अन्त में अर्जुन ने भगवान् शंकर के प्रकट होने पर उनकी जो स्तुति की है उससे कवि के दार्शनिक ज्ञान का पता चलता है—

लोग मुक्ति प्राप्त करने के लिये भगवान् शंकर की आराधना करते हैं और (शंकर) निःस्वार्थभाव से भक्तों अथवा सेवकों को फल प्रदान करते हैं ।[2] वे निराकार हैं । अजन्मा होकर भी शरीर धारण करते हैं । उनसे ही सम्पूर्ण जगत् प्राणवान् है तथा वे पञ्चमहाभूतों के कारण एवं परमाणु के भी कारण हैं ।[3]

कवि ने भगवान् शंकर की वायु, जल; अग्नि एवं व्योम रूप मूर्तियों की भी वन्दना की है[4] जो ईश्वर के विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित होने के सिद्धान्त का संसूचक है ।

भारवि विभिन्न विषयों के साथ कर्मकाण्ड विषय के भी ज्ञाता हैं—

गंगा के तट पर तपस्यारत अर्जुन उसी प्रकार प्रतीत हो रहे हैं जैसे वेदी के निकट हविष की अभिलाषा से प्रज्वलित अग्नि ।[5] भारवि कर्मकाण्ड में हिंसा के विरोधी हैं । उनके मतानुसार कर्मकाण्डगत हिंसा तृषा शान्त्यर्थ प्रवाहित पवित्र जल को दूषित कर देने के समान हेय है ।[6]

वेदोक्त विधि वाक्य की इतिकर्तव्यता से प्रेरित होकर अनुष्ठित यज्ञकर्त्ता का यज्ञ व्यापार ही साध्य सिद्धि में समर्थ हो सकता है ।[7] महाकवि भारवि ने यज्ञगत प्रायश्चित्त विधान की पूर्ण अभिज्ञता सर्पास्त्र के शामक गरुडास्त्र के वर्णन प्रसंग में व्यक्त की है ।[8]

भारवि की पुनर्जन्मवाद में दृढ़ आस्था है ।[9] वस्तुतः पुनर्जन्मवाद ही भारतीय दर्शन का मेरुदण्ड है ।

---

१. किरातार्जुनीय ११।३९ । २. वही १८।२४ ।
३. वही १८।३४–३५ । ४. वही १८।३७–४० ।
५. वही २।१२ । ६. वही ११।१९ ।
७. वही १३।२८ । ८. वही १६।४८ ।
९. वही १६।४९ ।

किरातार्जुनीय में दार्शनिक वर्णनों के सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि कवि ने कहीं पर भी माघ की भाँति पाण्डित्य प्रदर्शन करने की चेष्टा नहीं की है।

**पौराणिक ज्ञान**

कवि को रामायण, महाभारत एवं पुराणों का अच्छा ज्ञान है। यद्यपि उक्त विषय का उनके काव्य में अत्यल्प समायोजन हुआ है, किन्तु इससे कवि के पौराणिक ज्ञान की न्यूनता का आकलन नहीं किया जा सकता है। किरातार्जुनीय में प्राप्त पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथाओं को निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है—

इन्द्र के उपदेशानुसार अर्जुन भगवान् शंकर के प्रसादनार्थ तपोरत हैं। इतने में ही सूकर अर्जुन के वधार्थ उनकी ओर बढ़ता है। उसे देखकर वे (अर्जुन) कल्पना करते हैं—यह तक्षकपुत्र अश्वसेन हो सकता है जिसके बन्धु बान्धव खाण्डव वन की अग्नि से जला दिये गये थे और वह क्रुद्ध होकर बदला चुकाने के लिए उपस्थित हुआ है।[१] यहाँ पर महाभारत में उल्लिखित खाण्डववन दाह की कथा की ओर संकेत किया गया है।

भगवान् शंकर का दूत किरात, अर्जुन से सन्धि कर लेने की बात कहता है—आप उनके (किरातपति के) बाण को लौटाकर स्वयं समागत श्रीरामचन्द्र तथा वानरेन्द्र सुग्रीव को मित्रता की तरह मैत्री कर लें।[२] इस स्थल पर राम और सुग्रीव की मित्रता का उल्लेख हुआ है।

कवि ने उदाहरण रूप में परशुराम के अस्त्रविद्या विशारदत्व[३] की ओर भी संकेतित किया है। समुद्र मन्थन को घटना का भी एक औपम्य विधान के रूप में संकेत मिलता है।[४]

किरातार्जुनीय में प्रयुक्त पौराणिक आख्यान अत्यन्त लोकप्रिय एवं जनाह्लादक हैं। इनके सन्निवेश से कवि के पौराणिक ज्ञान के सुस्पष्ट होने के साथ ही इस बात को भी पुष्टि होती है कि उन्हें एतद्विषयक पाण्डित्य के प्रदर्शन का कोई आग्रह नहीं है।

---

१ किरातार्जुनीय १३।११। २. वही १३।५७।
३. वही १३।६२। ४. वही ९।२८।

**कामशास्त्र**

महाकवि भारवि ने शृंगारिक स्थलों के वर्णन में कामशास्त्र का भी बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। इसमें बाह्य एवं आभ्यन्तर रति के साथ ही काम विषयक परिस्थितियों में मानव मन की क्या मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है, इसका भी संकेत किया है।

बरफ की चट्टान के सदृश सफेद गायों का झुण्ड शरत्कालीन नदी के बालुकामय ढेर को छोड़ते हुये चला जा रहा है, उसे देखकर अर्जुन को वैसा ही कौतूहल उत्पन्न होता है जैसे किसी कामुक व्यक्ति को रमणी के जघन प्रदेश से सरकती हुयी साड़ी को देखकर होता है।[1] ऐसे वर्णनों से कवि के अत्यन्त मनोवैज्ञानिक कामशास्त्र विषयक ज्ञान का पता चलता है। इसके अतिरिक्त एतद्विषयक शास्त्रीय पक्ष का भी काव्य में यथोचित समाहार हुआ है। आचार्य वात्स्यायन ने बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप से रति के दो भेद किये हैं जिनमें बाह्य सुरत के अन्तर्गत चुम्बन, आलिंगन, नखक्षत एवं दन्तक्षत तथा आभ्यन्तर में विभिन्न भेदों के साथ साक्षात् सुरत व्यापार का उल्लेख किया है।

कामशास्त्र से सम्बद्ध विभिन्न तथ्यों का कवि ने नवम सर्ग में सविस्तर वर्णन किया है।

प्रियतमों द्वारा वल्लभाओं के मुखचुम्बन से उनकी नीवी ग्रन्थि शिथिल हो जाती है।[2] तदनन्तर प्रियतम करधनी के सहारे रुके हुये वस्त्रों को हटा देते हैं, अतः प्रियतमायें स्वयं खूब स्तनों को दबाकर आलिंगन करती हैं।[3] आलिगन के पश्चात् उसके, ( आलिंगन के ) शोभावर्द्धक नखक्षत एवं दन्तक्षत आदि बाह्य सुरतव्यापारों का समारम्भ होता है।[4] मद्यपानानन्तर रमण जो रतिरताविष्ट चित्त होकर ताड़न, चुम्बनादि करते हैं, वे यथास्थान न होकर भी शोभायमान होते हैं।[5]

बाह्य सुरत के पश्चात् जो आन्तरिक सुरत का कवि ने वर्णन किया है, वह भी अत्यन्त स्वाभाविक एवं हृदयावर्जक है। सुरतकाल में युवतियों के स्वचलित पवन, हस्तपञ्चालन, सोत्कार के शब्द एवं अर्द्धनिमीलित

---

१, २, ३, ४, ५. किरातार्जुनीय क्रमशः ४।१२, ९।४७, ९।४८, ९।४९, ९।७३।

नेत्र—ये सब कामदेव के उद्दीपन के अङ्ग बन जाते हैं।[1] सम्भोग काल में सुरयुवतियों के केशबन्धन आदि क्रूर कार्यों से उनकी मालायें कुचल जाती हैं। परस्पर अनुरक्त चित्त होकर गन्धर्व और सुरांगनायें कामदेव के वशीभूत होकर यथेष्ट रति व्यापार करते हैं।[2]

किरातार्जुनीय में यद्यपि महाकाव्य के अपेक्षित लक्षणों के अनुसार काम विषयक प्रसङ्गों का सन्निबन्धन हुआ है तथा वह इस दृष्टि से भी अत्यन्त उचित बन सका है क्योंकि नायक भूत अर्जुन की परीक्षा से सम्बद्ध है। गन्धर्वों एवं अप्सराओं की विकारोत्पादक अनेकविध शृङ्गारिक क्रीडाओं से अर्जुन किञ्चित् मात्र विचलित नहीं होते।

## हस्ति विज्ञान

किरातार्जुनीय में सातवें सर्ग के कतिपय श्लोकों में कवि के हस्ति विषयक ज्ञान का भी संकेत मिलता है।

देवसेना के हाथी निरन्तर अपने सातों नाड़ियों से मदक्षरण कर रहे थे, वह मद गन्ध पुष्पों की सुगन्धि को भी तिरस्कृत करने वाली थी जो इलायची के गन्ध के समान प्रतीत हो रही थी।[3] गजविद्या के अनुसार वे सात स्थान जिनसे मदक्षरण होता है, इस प्रकार हैं—दोनों नेत्र, दोनों कपोल, सूँड, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय।

यद्यपि महाकवि माघ ने हस्तिविद्या सम्बन्धी पाण्डित्य का अपने काव्य में प्रचुर सन्निवेश किया है किन्तु उनके वर्णनों में भारवि का प्रभाव है।[4]

## अन्य ज्ञान

महाकवि भारवि ने राजनीति, व्याकरण आदि से सम्बद्ध अपने पाण्डित्य के यथाप्रसंग उपस्थापन के साथ ही शकुन, पशुचेष्टा एवं लोकव्यवहार से सम्बद्ध विषयों का भी समावेश किया है।

शकुन विषयक ज्ञान का परिचय तृतीय सर्ग के उस श्लोक से मिलता है जहाँ अर्जुन को तपश्चर्यार्थ विदा करती हुयी द्रौपदी अमंगल के भय से

---

१. किरातार्जुनीय ९।५०। २. वही ९।७२–१४।

३. वही ७।३८। ४. शिशुपालवध १७।६८।

अश्रुपात नहीं होने देतीं, क्योंकि यात्रा के समय स्त्री की आँखों से आसुओं का गिरना अशुभ माना जाता है।[१] किरातार्जुनीय में पशु चेष्टाओं का भी काव्यमय समाहार हुआ है। कहीं अपने प्रतिद्वन्द्वी वृषभ को परास्त कर विजय लाभ में वप्रक्रीडा करता हुआ वृषभ दिखायी देता है,[२] कहीं वत्स का स्मरण कर प्रस्नुतपीवरोधसागौसमूह[३] और कहीं भय के मारे सिमट कर खड़ी हुयी चमरो गाये[४] आदि ऐसे चित्रण हैं जो कवि के पशुभावों के प्रति किये जाने वाले सूक्ष्म निरीक्षण के द्योतक हैं।

भारवि ने लोकजीवन का भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ अनुभव किया है। वे ग्रामों में अपने खेतों की रखवाली करने वाली[५] तथा दधिमन्थन[६] आदि कार्यों को करने वाली स्त्रियों की दशा को बड़ी अच्छी तरह से जानते हैं।

काव्य सर्जना के लिये विभिन्न विषयों का ज्ञान आवश्यक है, अन्यथा काव्य सहृदयश्लाघ्य नहीं हो सकेगा किन्तु यदि कवि अपने विविध ज्ञान का ही काव्यमय सन्निबन्धन करता है तो भी काव्य सहृदयहृदयहारी नहीं हो सकता है। एतदर्थ पाण्डित्य अथवा ज्ञान का इस प्रकार काव्य में सन्निबन्धन आवश्यक होता है जिससे कथावस्तु का प्रवाह एवं काव्यात्मभूत रस तत्त्व में कोई व्याघात न हो।

इस दृष्टि से 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य में भारवि ने अपने पाण्डित्य को रसोचित रूप में समुपन्यस्त किया है।

**महाकवि माघ का पाण्डित्य**

महाकवि माघ का ज्ञान अगाध एवं प्रौढ़ है। शिशुपालवध काव्य के सम्यग् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्हें विभिन्न क्षेत्रों का सुन्दर अनुभव था। माघ वेद, वेदांग, दर्शन, पुराण, राजनीति, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्यौतिष, संगीत, कामशास्त्र, पशु विज्ञान आदि के मर्मज्ञ एवं निष्णात विद्वान् प्रतीत होते हैं। इस समस्त पाण्डित्य का विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत पृथक्-पृथग् विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

**व्याकरण**

महाकवि माघ महान् वैयाकरण थे। वस्तुतः एक नवीन शैली

---

१, २, ३. किरातार्जुनीय क्रमशः ३।३६, ४।११, ४।१०।

४, ५, ६. वही क्रमशः १२।४७, ४।७–९, ४।१५–१६।

( अलंकृत शैली ) के पोषक होने के कारण उन्होंने अपने काव्य को कुछ क्लिष्ट बनाने के उद्देश्य से भी व्याकरण के विभिन्न सूत्रों का अवलम्बन किया है। यद्यपि उन्होंने दुरूह व्याकरण को भी सरल रूप प्रदान किया है किन्तु वह काव्य की दृष्टि से कठिन ही प्रतीत होता है। शिशुपालवध में व्याकरण की छटा पदे-पदे लसित होती है।

व्याकरण की दृष्टि से निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य है जिसमें नारद जी श्रीकृष्ण से शिशुपाल के जन्मान्तरीय ( रावण रूप ) औद्धत्य का वर्णन करते हैं—

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्यमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥[1]

यहाँ महाकवि माघ के कुशल लकार प्रयोग का पाण्डित्य परिलक्षित होता है जिसमें उन्होंने 'क्रियासमभिहारे लोट्' का सुन्दर प्रयोग किया है।

स्मरणवाचक कोई पद पहले रहने पर अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है जिसका सूत्र है—अभिज्ञावचने लृट्[2]। नारद जी श्रीकृष्ण को रावणवध का स्मरण दिलाते हैं कि दशरथ पुत्र रामचन्द्र के के रूप में आपने सीता का अपहरण करने वाले रावण को समुद्र लंघन कर लंका के पास मारा था, यह आप स्मरण करते हैं।[3] यहाँ स्मरणार्थक स्मृ धातु होने से 'हनिष्यति' में लृट् लकार का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि को लकारों के सूक्ष्म नियमों का व्याकरण सम्मत परिज्ञान था।

इस महाकाव्य में व्याकरण सम्मत प्रयोगों की लकारादि नियमों के अनुकूल प्रचुरता है।[4] अभिन्यवीविशत्[4], का 'अभिनिपूर्वाद्विशतेर्ण्यन्ताल्लुङि णिश्रि' इत्यादि सूत्रों के नियमानुसार प्रयोग हुआ है। "सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्[5]", यहाँ "अधो-

१. शिशुपालवध १।५१। २. शिशुपालवध १।६८।
३. लघुसिद्धान्तकौमुदी ३।२-११२।
४. शिशुपालवध १।१४, १६, ३।७०, ३३। ४. वही १।१५।
५. वही ५।५०।

गर्थदयेशां कर्मणि[1]" सूत्र से "महोत्सवानाम्" में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग काव्य में सुलभ हैं।

व्याकरणसम्मत प्रयोगों के साथ-साथ माघ ने व्याकरणशास्त्र के सिद्धान्तों की ओर भी संकेत किया है। इसका उल्लेख राजनीतिक मन्त्रणा के अवसर पर उद्धव जी की वाणी के माध्यम हुआ है। वह शिशुपाल एक पद ( स्थान या व्यवसाय, उद्योग ) में शत्रुओं को उसी प्रकार मारता है जिस प्रकार (सुबन्त-तिङन्त रूप) एक पद में उदात्त स्वर (अनुदात्त-स्वरित स्वर को) मारता है या बाधित करता है।[2] 'उदात्त स्वर एक पद में अन्य सभी स्वरों को अनुदात्त कर देता है' इस सिद्धान्त का औपम्य विधान के द्वारा सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। पाणिनीय व्याकरण के प्राचीन ग्रन्थों 'न्यास', 'काशिका' और 'महाभाष्य' की ओर संकेत कर कवि ने अपने व्याकरण शास्त्र के अगाध पाण्डित्य का परिचय दिया है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥[3]

यहाँ एक राजनीतिक दृष्टि से गुप्तचरों की आवश्यकता का उल्लेख करते हुये महाभाष्य-पक्ष में यह स्पष्ट हुआ है कि जिस प्रकार सूत्रार्थ प्रतिपादक न्यास ग्रन्थ से युक्त, सुन्दरकाशिका नामक वृत्तिवाली तथा महाभाष्य नाम वाले सुन्दर निबन्ध से शोभित भी व्याकरण-विद्या पस्पशाह्निक के बिना नहीं शोभित होती। पस्पशाह्निक महाभाष्य का प्रथम अध्याय है जिसमें प्रायः व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के प्रयोजन वर्णित हैं।

मद्य के नशे ने अङ्गनाओं में विद्यमान किन्तु अप्रकाशित विलास को उस प्रकार प्रकट कर दिया, जिस प्रकार भू आदि धातुओं में अन्तर्हित किन्तु अप्रकाशित अर्थ को प्र, परा आदि उपसर्ग प्रकाशित कर देते हैं।[4]

यहाँ 'उपसर्गाः द्योतका एव न वाचकाः' व्याकरण नियम प्रदर्शित किया गया है। महाकवि माघ व्याकरणगत शुद्धोच्चारण की महत्ता से पूर्ण विज्ञ हैं। यह उच्चारण परिज्ञान व्याकरण के ज्ञान द्वारा ही सम्भव

---

१. लघुसिद्धान्तकौमुदी २।३-५२। २. शिशुपालवध २।९५।
३. वही २।११२। ४. वही १०।१५।

है। पाणिनीय शिक्षा में मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर बल दिया गया है।[1] माघ ने इसका विचार कर युधिष्ठिर के यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा शुद्ध मन्त्रोच्चारण पूर्वक हवन किये जाने का निरूपण किया है।[2] वेद में समस्त विभक्तियों, वचनों एवं लिंगों में मन्त्र नहीं कहे गये हैं अतः यज्ञ क्रिया में निपुण याज्ञिक ऊह कुशल (व्याकरणज्ञ) यथोचित लिंगादि में परिवर्तित करके उच्चारण करते थे।[3] पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में ऊह का निर्देश किया है।[4] ऋत्विक् लोग समान रूप होने से सन्देहोत्पादक किन्तु कार्थ के प्रति भिन्न फल देने वाले समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय कर लेते हैं।[5] यहाँ पर माघ का उच्चारण एवं समास का वेदव्याकरण-सम्मत पाण्डित्य लक्षित होता है।

महाकवि माघ ने व्याकरण शास्त्रीय परिभाषा का स्वरूप शिशुपाल के दूत के माध्यम से स्पष्ट किया है—स्वल्पाक्षरों वाली भी सम्पूर्ण देश में परिव्याप्त तथा गौरवयुक्त की आज्ञा अल्पाक्षरों वाली सम्पूर्ण लक्ष्यों में प्रवृत्त होने वाली निर्बाध होने से प्रतिष्ठा को प्राप्त विशिष्टार्थ की द्योतक परिभाषा के समान कहीं भी नहीं रुकती है।[6]

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि माघ व्याकरण का गम्भीरतम शास्त्रीय ज्ञान रखते थे। पाणिनीय व्याकरण के सम्यक् अनुशीलन का पता उनके इस श्लोक से चलता है—

निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम् ।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत्समराजिरम् ॥[7]

शिशुपालवध के उन स्थलों का जहाँ व्याकरण के सिद्धान्त अथवा व्याकरण की शाब्दिक सिद्धि प्रक्रिया के अनुकूल प्रयोग किये गये हैं, को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि ने अपनी व्याकरण प्रतिभा का

---

१. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ॥
—पाणिनीय शिक्षा—५२ ।

२. शिशुपालवध १४।२० । ३. वही १४।२३ ।

४. पतंजलि का महाभाष्य-प्रथम आह्निक ५. शिशुपालवध १४।२४ ।

६. शिशुपालवध १६।८० । ७. वही १९।७५ ।

प्रदर्शन करने के लिये इस काव्य का प्रणयन किया है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है बल्कि कवि का यह ज्ञान स्वतः यथावसर प्रकट हो गया है, कवि ने भट्टि काव्य के समान कोई योजनाबद्ध रूप से इसका प्रयोग नहीं किया है। यह तो माघ के काव्य प्रणयन का वैशिष्ट्य है जो उनकी कृति में स्वाभाविकता को प्राप्त है।[1]

## राजनीति

महाकवि माघ राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्हें राज्य की प्रशासनिक प्रणाली का बड़ा सूक्ष्म अनुभव है। राज्य के क्या कर्त्तव्य हैं, उसे किस प्रकार मन्त्रणा करनी चाहिये, शत्रु की वास्तविक शक्ति का परिज्ञान कर उस पर आक्रमण करना चाहिये, इत्यादि गूढ राजनीतिक रहस्यों का काव्य की सुन्दर हृदयावर्जक शैली में निरूपण किया गया है। माघ का राजनैतिक ज्ञान उनका स्वतन्त्र अथवा निरालम्ब नहीं अपितु विभिन्न प्राचीन राजनीति ग्रन्थों के अनुरूप है जिससे लगता है कि महाकवि का राजनीतिशास्त्रीय अध्ययन विशद है।

शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग से राजनीति का वर्णन प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण इन्द्रसन्दिष्ट नारद से शिशुपाल के वध को स्वीकृति दे चुके हैं तथा यज्ञ करने के इच्छुक युधिष्ठिर द्वारा भी निमन्त्रित हैं। इन दो परस्पर विरोधी कार्यों से वे 'कार्यद्वयाकुल' हैं अतः ऐसे समय करणीय कर्त्तव्य हेतु प्रथम मन्त्रणा परमावश्यक है। आचार्य चाणक्य ने भी गम्भीरतापूर्वक मन्त्रणा करने के पश्चात् ही कार्य प्रारम्भ करने का निर्देश किया है।[2] अतः विमर्श करने के लिये श्रीकृष्ण चाचा उद्धव और अग्रज बलराम सहित मन्त्रणागृह में प्रवेश करते हैं।[3] श्रीकृष्ण विमर्श हेतु विषय निर्धारण के सम्बन्ध में कहते हैं—हित की कामना करने वाले व्यक्ति को बढ़ते हुये शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि राजनीतिज्ञ बढ़ते हुये रोग तथा शत्रु को समानरूपेण घातक मानते हैं।[4] बलराम जी कहते हैं कि राजनीतिज्ञों में कुछ अपने

---

१. वही २।२४–७१।

२. मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अध्याय १४, सूत्र १।

३. शिशुपालवध २।२।

४. वही २।१०।

उत्कर्षकाल को तथा कुछ शत्रु के विपत्तिकाल को उस पर आक्रमण का उचित समय मानते हैं।[1] चाणक्य ने भी शत्रु के कमजोर होने पर विग्रह का विधान किया हैं।[2] शिशुपालवध में राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है। जिससे कवि की राजनीति विषयक मर्मज्ञता ज्ञापित होती है। माघ संधि विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव षड्गुणों तथा तीन शक्तियों—प्रभु, मन्त्र, उत्साह एवं वृद्धि, क्षय और स्थान तीन उदयों की ओर संकेत करते हैं[3] जो चाणक्य आदि पूर्वाचार्यों ने राजनीति निरूपण में सिद्धान्ततः प्रतिपादित किया है।[4]

राजाओं की विजय पाँच सहायकों—कार्यारम्भ का उपाय, कार्य की सिद्धि में उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, देश तथा काल का समुचित विभाजन, विपत्तियों को दूर करने का उपाय और कार्य की सिद्धि[5] अथवा पाँच मन्त्रों पर निर्भर करती है। इसकी उपमा बौद्धों के रूप, वेदना आदि पञ्चस्कन्धों से दी है।

इससे प्रतीत होता है कि माघ ने चाणक्य आदि नीतियों का अध्ययन किया था अन्यथा उनके वर्णन इतने सटीक एवं अनुरूप न होते। वे यह भी जानते हैं कि गुप्त मन्त्रणा का अतिशीघ्र क्रियान्वयन अपेक्षित होता है अन्यथा रहस्य के विवृत हो जाने का भय रहता है[6] जो राजा की असफलता का ही परिचायक है।

अन्त में बलराम जी राजनीति का सार ही व्यक्त कर देते हैं कि अपनी उन्नति या अभ्युदय तथा शत्रु की वर्धिष्यमाणता होने पर शत्रु पर अभियान करना चाहिये।[7] राजनीति में साम, दाम, दण्ड एवं भेद ये चार उपाय बताये गये हैं जिनके कालोचित प्रयोग से राजा शत्रु पर

---

१. शिशुपालवध २।५७।

२. कौटिल्य का अर्थशास्त्र—गैरोला, पृ० ५५०। ३. शिशुपालवध २।२६।

४. सन्धिविग्रहासनयानद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पृ० ५५९—५५०।

५. शिशुपालवध २।२८।

६. मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि।

चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशंकया॥ शिशुपालवध २।२९।

७. शिशुपालवध २।३०।

विजय प्राप्त करता है। बलराम जी कहते हैं कि जो चतुर्थोपाय दण्ड साध्य है उसके साथ 'साम' नीति का व्यवहार सर्वथा वैसे ही अनुचित है जैसे ज्वर में रोगी को स्नान करा देना।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि माघ ने अपने महाकाव्य में बलराम और उद्धव जी के माध्यम से मन्त्रणा के अवसर पर राजनीति के[2] गूढ तत्त्वों का नीति संगत विवेचन किया है जो उनके प्रकृष्ट पाण्डित्य का द्योतक है।

**दार्शनिक ज्ञान**

शिशुपालवध के अनुशीलन से उनके दर्शन सम्बन्धी प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिज्ञान हो जाता है। शिशुपालवध महाकाव्य में कथानक की दृष्टि से विभिन्न दर्शनों का प्रसंगतः वर्णन होना स्वाभाविक भी है क्योंकि उनके नायक श्रीकृष्ण योगियों के साक्षात्करणीय होते हुये भी लोकपीडक कंसादि अत्याचारियों के वधार्थ पृथ्वी पर अवतरित हुये हैं।[3]

**सांख्य दर्शन**

प्रथम सर्ग में नारद जी श्रीकृष्ण से कहते हैं—अपनी चित्तवृत्तियों को वशीभूत कर किसी प्रकार आपका साक्षात्कार करने वाले योगीजन आपको विकार से बहिर्भूत, महदादि तेईस विकारों से विलक्षण त्रिगुणात्मिका, प्रकृति से पृथक् प्राचीन पुरुष कहते हैं।[4] सांख्य शास्त्र के अनुसार ईश्वर क्रिया रहित, द्रष्टा मात्र, दुर्ज्ञेय, निर्विकार तथा सत्त्वादि गुणत्रय से पृथक् है।[5]

मन्त्रणा सभा में बलराम जी श्रीकृष्ण से अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुये कहते हैं—आपको सेना द्वारा दी गयी विजय वैसे ही प्राप्त हो जिस प्रकार सांख्य के मत में बुद्धि सम्बन्धी भोग उदासीन आत्मा को कहा जाता है।[6]

---

१. वही २।५४।

२. वही २।८१, ८२, ९३। ३. वही २१।३७ ४. वही १।३३।

५. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ सांख्यकारिका ३।

६. शिशुपालवध २।५९।

सांख्य शास्त्र के अनुसार आत्मा निष्क्रिय अभोक्ता तथा उदासीन है। पुरुष का न बन्धन होता है और न मुक्ति। बन्धन तो प्रकृति के धर्म हैं।[1] तथापि पुरुष बद्ध हुआ, मुक्त हुआ, आत्मा को सुख हो रहा है अथवा दुःख हो रहा है—इस प्रकार बुद्धि का भोग मात्र आत्मा का कहा जाता है।

**योग**

शिशुपालवध में योग के सिद्धान्तों का स्पष्ट उल्लेख हुआ है जो कवि के अगाध पाण्डित्य का प्रतीक है। रैवतक पर्वत पर योगीजन मैत्री, करुणादि चित्तवृत्तियों को संयमित कर अविद्या, अस्मिता आदि पञ्च क्लेशों को विनष्ट कर एवं प्रकृति, पुरुष का (सजीव समाधि) अन्तर ज्ञातकर उसे भी रोककर स्वयं प्रकाश पुरुष में स्थित होना चाहते हैं।[2] इस श्लोक में योग शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली ही प्रस्तुत कर दी गयी है। प्रकृत प्रसंग में योग के साथ ही सांख्य सिद्धान्त की भी चर्चा आ गयी है। प्रकृति तथा पुरुष के विवेक का ग्रहण नहीं करने से पुनरपि जननं पुनरपि मरणं तथा विवेक का ग्रहण करने से प्रकृति के हट जाने पर मुक्ति होती है।

चतुर्दश सर्ग में युधिष्ठिर के सभा स्थान में उपस्थित श्रीकृष्ण की भगवत्ता का प्रख्यापन भीष्म पितामह करते हैं—तत्त्वदर्शी लोग इन श्रीकृष्ण को सर्वज्ञ आद्यन्तहीन होते हुये भी प्राणियों को अनुगृहीत करने की इच्छा से मनुष्य रूप में अवतीर्ण, अविद्या, आस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश रहित पुराण पुरुष कहते हैं।[3] इस श्लोक के माध्यम से महाकवि माघ ने योगशास्त्र के अनुसार ईश्वर की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन किया है।

**मीमांसा**

माघ के मीमांसा दर्शन विषयक विशिष्ट ज्ञान की जानकारी उनके राजसूय यज्ञ के वर्णन प्रसंग से होती है। मीमांसा शास्त्र के ज्ञाता ऋत्विक्

---

१. तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥ सांख्यकारिका ६२।

२. वही ४।५५। ३. शिशुपालवध १४।६२।

लोग ( अनुवाक्या या देवताओं के आह्वान करने वाले मन्त्र द्वारा ) उच्च स्वर से याज्या द्वारा देवताओं के उद्देश्य से हवन करते हैं ।[१] महाकवि का यज्ञ विषयक प्रतिपादन उनके मीमांसा शास्त्र परिज्ञान का सूचक है ।

सामवेद के ज्ञाता हस्तसंचालन पूर्वक सप्त स्वर वाले सामवेद को बिना स्खलित हुये उच्च स्वर से गान कर रहे हैं ।[२] इत्यादि वर्णनों से कवि के मीमांसा शास्त्र विषयक पाण्डित्य का पदे-पदे दर्शन होता है ।

महाकवि माघ ने विभिन्न दर्शनों के आलंकारिक विवेचन के साथ ही नास्तिक बौद्ध दर्शन का भी स्मरण कर लिया है ।[३]

**उपनिषद् ज्ञान**

शिशुपालवध के अनुशीलन से माघ का उपनिषदों के परिज्ञान का परिचय मिलता है । नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण की भगवत्ता अथवा ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि बढ़े हुये विषयाभिलाष को नियन्त्रित कर दुर्गम मोक्ष मार्ग पर चलने वाले मनस्वी के पुनरावृत्ति रहित आप ही प्राप्तव्य ( मोक्ष ) स्थान हैं ।[४]

यहाँ पर उपनिषदों में वर्णित परम प्राप्तव्य मोक्ष का वर्णन हुआ है ।

**पौराणिक ज्ञान**

माघ का पौराणिक ज्ञान भी अगाध है । उनकी भागवत, गीता आदि में सर्वत्र अप्रतिहत गति है । उनके काव्य में पौराणिक कथायें पदे-पदे प्राप्त होती हैं ।

प्रथम सर्ग में नारद के लिये 'चिरन्तन मुनि,'[५] की संज्ञा पौराणिक कथा की ओर संकेत करती है । कवि ने समुद्र मन्थन की सुप्रसिद्ध पौरा-

---

१. शिशुपालवध १४।२० ।

२. वही १४।२१ ।

३. वही २।२८ ।

४. वही १।३२ ।

५. वही १।१५ ।

णिक कथा का भी स्मरण दिलाया है ।[1] विष्णु भगवान् के उदर में ब्रह्मा या मार्कण्डेय मुनि का प्रविष्ट होना[2] आदि ऐसे उपाख्यान काव्य में अनुस्यूत हैं ।

औपम्य विधान के द्वारा निषाद-ब्राह्मण सम्बन्धित उपाख्यान द्रष्टव्य है—

सार्थं कथञ्चिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः ।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादैर्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥[3]

इस स्थल पर महाभारत के आदि पर्व में वर्णित उस कथा की ओर संकेत किया गया है जिसमें निषादों को खाते हुए गरुड़ ने ब्राह्मण को भी मुख में डाल लिया था जिससे गरुड का कण्ठ जलने लगा और उन्होंने उसे ब्राह्मण जानकर तुरन्त उगल दिया ।

**कामशास्त्र**

महाकवि माघ को विभिन्न विषयों के साथ ही कामशास्त्र का भी गहनतम ज्ञान है । प्रायः कवि ने अपने एतद्विषयक पाण्डित्य का परिचय विभिन्न स्थलों जैसे—द्वितीय सर्ग के मन्त्रणा प्रसंग में, अष्टम सर्ग के जल विहार एवं दशम सर्ग के सुरत वर्णन आदि में कामशास्त्रीय अर्थ चित्रोपन्यास द्वारा किया है ।

कवि ने बाह्य[4] एवं आभ्यन्तर सुरत[5] का भी स्वाभाविक वर्णन किया है । एक स्थान पर कवि ने 'कामसूत्र' का स्पष्ट उल्लेख ही कर दिया है । वे कहते हैं कि रमणी के सीत्कार, रतिकालीन कण्ठकूजन, करुण वचन, प्रेमालाप, निषेधार्थक (रहने दो, बस करो आदि) वचन हँसना तथा अलंकारों की ध्वनि ये सब वात्स्यायन विरचित कामसूत्र के पद से प्रतीत होते हैं ।[6]

---

१, २, ३. वही क्रमशः २।१०७, २४।४०, ५।६६ ।

४. वही ७।४४, ४६।४९, ८।२-६ ।

५. वही ६।५८-५९ ।

६. सीत्कृतानि भणितं करुणोक्तिः स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि ।
हासभूषणरवाच्च रमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः ॥
शिशुपालवध १०।७५ ।

**आयुर्वेद**

माघ को राजनीति, व्याकरण, वेदान्त आदि की व्युत्पत्ति के साथ ही वैद्यक शास्त्र पर भी समान अधिकार है। काव्य में उपन्यस्त एतद्-विषयक वर्णनों को दृष्टिगत कर कतिपय उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा रहा है—

बलराम जी मन्त्रणा गृह में अपना अभिमत व्यक्त करते हुये कहते हैं कि दण्ड द्वारा वश में किये जाने योग्य शत्रु के साथ शान्ति का व्यवहार उसी प्रकार हानिकारक है जैसे पसीना लाने योग्य नवीन ज्वर का शीतलोपचार करना।[1] इसके द्वारा माघ ने आयुर्वेद के ज्वर चिकित्सा को सुन्दर ढंग से उपमित किया है। बुद्धिमान पुरुष समय आने पर अपने शत्रु को क्षीण शक्ति पाकर उसी प्रकार आक्रमण कर देता है जैसे असाध्य रोग अपथ्य सेवन करने पर भी विकार को नहीं प्रकट करता हुआ भी रोगी को क्षीण शक्ति होने पर मार डालता है।[2] राजयक्ष्मा विभिन्न अनेक रोगों का समूह होता है[3] इत्यादि वर्णनों से कवि के आयुर्वेद विषयक ज्ञान[4] का परिचय मिलता है।

**ज्यौतिष**

शिशुपाल वध में ज्योतिष सम्बन्धी तथ्यों का यथा प्रसंग सन्निबन्धन हुआ है जो कवि के उक्त विषयक पाण्डित्य का सुतरां द्योतक है—

महारथी सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण अपने पुष्परथ (क्रीड़ा रथ) पर उसी प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जिस प्रकार इष्ट सिद्धि करने वाले, सभी दिशाओं में अप्रतिहतगति एवं क्षिप्र संज्ञक पुष्य नक्षत्र पर चन्द्रमा समासीन होता है।[5]

चन्द्रमा के दूसरे और बारहवें स्थान पर सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के रहने पर दुरुधरा नामक योग होता है। इस सिद्धान्त का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है—

---

१. शिशुपालवध २।५४।    २. वही २।८४।
३. वही २।९६।    ४. वही ३।७३, २०।७६।
५. वही ३।२२।

पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोधि रुचिरेण चक्रिणा ।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना ॥[1]

**संगीत**

माघ ने अपने काव्य को संगीत ज्ञान के प्रयोग से मण्डित कर लोकोत्तर बना दिया है। महाकवि माघ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जिस विषय का स्पर्श करते है, उसका मात्र बाह्य परिचय अथवा अपने ज्ञान का ऊपरी प्रदर्शन ही नहीं करते अपितु वे उस विषय के निष्णात आचार्य की भाँति अपना प्रभाव जमा देते हैं। माघ को संगीत के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक दोनों पक्षों का गहनतम ज्ञान है। वस्तुतः कवि ने जिन ऋषि के माध्यम से अपना संगीत विद्या का आचार्यत्व निरूपित किया है वे शास्त्र-प्रसिद्ध संगीत के आचार्य हैं। नारद जी की वीणा निरन्तर बजती रहती है। अंगुष्ठ के निरन्तर वीणा के तार पर ताड़ित करते रहने से वह रक्त वर्ण हो गया है।[2] नारद जी अपने हाथ में 'महती' नाम की वीणा लिये हुए आकाश मार्ग से नीचे उतर रहे हैं उस समय वायु के आघात से संगीत शास्त्र के नियमानुसार षडजादि स्पष्ट स्वरों से युक्त एवं स्वरों की ग्राम[3] मूर्च्छनाओं[4] सहित महती नामक वीणा बज रही है।[5] यहाँ पर माघ का एक ही श्लोक सम्पूर्ण संगीत शास्त्र के स्वर नियमों का स्पष्ट संकेत करता है। माघ केवल स्वर, मूर्च्छना आदि के सिद्धान्तों से ही परिचित नहीं है अपितु वे यह भी जानते हैं कि कब किस स्वर में बजाना चाहिए। एकादश सर्ग के प्रभात वर्णन में उन्होंने वैतालिकों द्वारा वीणादिवाद्ययुक्त पंचम एवं ऋषभ रहित गान द्वारा अपने संगीत पाण्डित्य का सुन्दर परिचय दिया है।[6]

---

१. वही १३।२२। २. शिशुपालवध १।९।

३ यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते॥ सर्वंकषा टीका १।१०।

४ क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
सामूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च॥
सर्वंकषा टीका, १।१०।

५. शिशुपालवध १।१०। ६. वही ११।१।

**पशु विद्या**

शिशुपालवध के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि माघ मानवेतर प्राणियों के मनोभावों के मर्मज्ञ अवश्य रहे होंगे तथा उन्होंने अत्यन्त निकटता से व्यावहारिक जगत् का सूक्ष्मक्षण किया होगा। यहाँ पर उनके काव्य के आधार पर पशु विद्या से सम्बद्ध पाण्डित्य का अवलोकन किया जा रहा है—

श्रीकृष्ण की सेना रैवतक पर्वत पर चल रही है। घोड़ों की द्रुत गति को रोककर धीमी गति से चलाने में निपुण तथा चाबुक को तीन प्रकार से प्रयोग करने में कुशल अश्वारोही द्वारा चालित अश्व तीव्रता से पृथ्वी पर पैर रखते हुये मण्डलाकार गति विशेष से चल रहे हैं।[१] यहाँ पर अश्व को चलाने एवं कोड़े से तीन प्रकार के प्रयोगों का निर्देश शास्त्रीय लक्षणों के सर्वथा अनुकूल है। महाकवि माघ को अश्व के भौंरी, बालों का घुमाव आदि लक्षणों का उत्तम ज्ञान है।[२] अश्व की षड्विध प्रेरणाओं को जानने वाला तथा छः दिशाओं में मुख मोड़ने में अभ्यस्त घोड़ों को घुड़सवार पाँच प्रकार की चाल सिखाने के लिये नौ प्रकार को विधियों में घुमाने लगता है।[३]

इस प्रकार के विभिन्न वर्णनों से माघ के अश्वविद्या के गम्भीर पाण्डित्य पर विश्वास हो जाता है।

महाकवि को पशु जगत् का कितना अनुभव है, इस बात का ज्ञान उनके काव्य में वर्णित हस्ति[४], उष्ट्र[५], बैल[६], गर्दभ[७] आदि के वर्णनों से हो जाता है।

---

१. शिशुपालवध ५।१०।

२. आवर्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः सम्पन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः।
अश्वाःप्यधुवंसुमतीमतिरोचमानास्तूर्णंपयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः॥
शिशुपालवध, ५।४।

३. शिशुपालवध ५।६०, ५६।

४. वही ५।४९-५०, १७।६८, १८।६।

५. वही १२।६, ७, ८।

६. वही ५।६२, ६४।

७. वही ५।७।

गायों का मनोरम दृश्य भी कवि की लेखनी से ओझल नहीं हो सका है। बाँधे गये बछड़ों को स्नेह से चाटती हुयी गायें एवं दोनों घुटनों से दुग्ध पात्र को दबाये हुये[1] गोपजनों का स्वाभाविक एवं मनोहारी वर्णन हुआ है।

कवि ने वनराज उपाधि के अनुकूल ही सिंह का भी सुन्दर चित्रण किया है। अनादर के साथ दोनों नेत्रों को एक बार क्षणमात्र खोलकर फिर सोने की इच्छा करता हुआ सिंह समीप से ही प्रस्थान कर रही सेना से भयभीत नहीं होता अन्यथा वह वनराज कैसे हो सकता ?[2]

माघ ने मधुमक्खियों का भी सुन्दर चित्रण किया है जो वृक्ष की दाढ़ी के समान प्रतीत हो रही हैं।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि माघ ने अपने काव्य के उपजीव्यभूत शिशुपालवध विषयक ऐतिहासिक आख्यान को अपनी बहुक्षेत्रीय प्रतिभा से व्याकरण, राजनीति, दर्शन एवं अन्यान्य विषयों का समाहार कर अपने अगाध तथा प्रौढ़ पाण्डित्य का परिचय दिया है। कवि को विदग्ध कवियों में अपने एक ही महाकाव्य के द्वारा अन्यतम स्थान प्राप्त हो सका है। यद्यपि कवि ने शैली की दृष्टि से भारवि का अनुसरण किया है किन्तु उन्होंने जो काव्य में विविध विषयों का वैदुष्य समुपस्थापित किया है, वह भारवि से बढ़कर है।

**पाण्डित्य का शैली पर प्रभाव**

भारवि एवं माघ दोनों ही कवि विभिन्न शास्त्रों के मर्मज्ञ पण्डित हैं। कवि अपनी रुचि एवं अपने समय के सामाजिक स्तर के अनुकूल अपनी काव्यसर्जना के लिये कथावस्तु का चयन करता है तथा आहृति वस्तु को अपनी प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति से मण्डित कर उसे काव्य का रूप प्रदान करता है। महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार उपजीव्यभूत कथावस्तु

---

१. शिशुपालवध १२।४०–४१।

२. सावज्ञमुन्मील्य विलोचने सकृत्क्षणं मृगेन्द्रेण सुषुप्सुना पुनः।
सन्यान्न यातः समयापि विव्यथे कथं सुराजंभवमन्यथाथवा॥
शिशुपालवध, १२।५२।

३. शिशुपालवध १२।५४।

ऐतिहासिक होती है। इस कथावस्तु को वह (कवि) अपनी शैली के आधार पर उसी रूप में प्रस्तुत कर सकता है अथवा आवश्यकतानुसार अपेक्षित परिवर्तन भी करने में स्वतन्त्र होता है। परिवर्तन में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उपजीव्य वस्तु की मौलिकता में कोई आघात न पहुँचे, साथ ही उसके आदर्श एवं लोकानुसारी पक्ष का ह्रास भी न हो। यहाँ यह ध्येय है कि यदि कवि कथावस्तु में परिवर्तन नहीं करता है अथवा रचनाकालीन समाज एवं सहृदय पाठक को दृष्टिगत कर काव्य-सर्जन नहीं करता है तो उसकी कृति न तो सहृदयश्लाघ्य हो सकेगी और न ही रचनाकार अथवा कवि की मौलिकता का बोध कराने में समर्थ हो सकेगी। अतः कथावस्तु अत्यन्त प्राचीन होते हुये भी कवि के कौशल से नवीनतम सी प्रतीत होने लगती है। किसी भी काव्य में जितना महत्त्व वस्तु का होता है उससे कम महत्त्व शैली का नहीं होता। कथानक प्राचीन अथवा ऐतिहासिक होने के कारण प्रायः सर्वविदित होता है किन्तु कवि की शैली के द्वारा वही वस्तु अधिकाधिक आह्लादक एवं सुग्राह्य बन जाती है। इस प्रकार कथानक तथा वर्णनपद्धति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। न केवल शैली का ज्ञान होने से काव्य स्पृहणीय बन सकता है और न मात्र वस्तु-उपस्थापन से ही। दोनों के समन्वय से काव्य की मूल्यवत्ता में वृद्धि होती है। वस्तुतः काव्य रचना के क्षेत्र में पाण्डित्य शब्द का जहाँ कहीं प्रयोग होता है वहाँ इसका अर्थ कविगत विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान से लाया जाता है। कवि अपने समग्र ज्ञान को प्रदर्शित किये बिना नहीं रह सकता है। यदि उपजीव्य वस्तु स्वल्प हो और कवि का वैदुष्य अत्यधिक हो, ऐसी स्थिति में काव्य पाण्डित्य प्रदर्शन का ही आदर्श बनकर रह जाता है।

महाकवि कालिदास में विभिन्न विषयों से सम्बद्ध पाण्डित्य की न्यूनता नहीं है; वेद, शास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि के कथन के साथ ही उनमें चर अचर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिज्ञान का भी अपूर्व समावेश है। मानव के साथ ही पशु-पक्षी आदि की चेष्टाओं आदि के सम्बन्ध में भी उनकी समान गति है किन्तु उनका कोई भी काव्य पाण्डित्य प्रदर्शन का रूप नहीं ग्रहण करता क्योंकि उनकी कथावस्तु इतनी विस्तृत है कि उन्हें अपनी बहुज्ञता के समाहार करने का अवसर मिलता रहता है। अलंकृत शैली के कवियों में कथावस्तु के विस्तार का अभाव है और उनका

पाण्डित्य अगाध है जिसे वे अपने एक ही काव्य में समाहित कर देना चाहते हैं। अतः स्वाभाविक है कि उन्हें जानबूझ कर या तो ऐसे प्रसङ्ग खोजने पड़ते हैं जहाँ वे अपने ज्ञान का खुलकर प्रदर्शन कर सकें अथवा अनपेक्षित स्थान पर ही अपने ज्ञान कोष का प्रस्तुतीकरण करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में काव्य का प्रवाह मन्द हो जाता है और पाठक मात्र शैली से प्रभावित होकर रह जाता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में भारवि एवं माघ के पाण्डित्य का उनकी शैली पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन अभिप्रेत है। अतः सर्वप्रथम भारवि के पाण्डित्य का शैली की दृष्टि से प्रभाव निम्नांकित है—

रससिद्ध शैली की काव्य परम्परा में रचित महाकाव्यों की कथावस्तु की अपेक्षा अलंकृत शैली के कवियों (भारवि, माघ आदि) का कथानक अल्प है। इस अल्प कथानक में कवियों ने प्रायः अपने शास्त्रीय एवं काव्य-शास्त्रीय पाण्डित्य के सन्निबन्धन का प्रयास किया है अतः उनकी शैली पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

भारवि ने किरात में किरात वेशधारी भगवान् शंकर और अर्जुन के युद्ध को ऐतिहासिक घटना का अठारह सर्गों में वर्णन किया है। इस कथा को कवि ने अपने विभिन्न क्षेत्रीय ज्ञान एवं अलंकार आदि के द्वारा मण्डित कर स्पृहणीय बना दिया है।

किरातार्जुनीय का कथानक जिस गति से प्रारम्भ होता है, उस गति से अन्त तक नहीं चलता अपितु कवि की पाण्डित्य प्रदर्शनकारी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर शिथिल हो जाता है और एक लम्बे समय के बाद पुनः गतिमान होता है। इस दृष्टि से काव्यगत तत्तत् स्थलों का विवेचन समीचीन है जिनसे शैली में अवरोध उत्पन्न हुआ है।

किरात में कथा का आरम्भ वनेचर के शत्रु-वृत्तान्त-कथन से होता है। तदनन्तर द्रौपदी तथा भीम हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं जो युधिष्ठिर को अपने राजनीतिक पाण्डित्य के साथ शत्रु के त्वरित शमन के लिये प्रस्तावित करते हैं। इस प्रसङ्ग को भारवि ने अपने राजनीति विषयक पाण्डित्य के विवेचन हेतु उचित अवसर समझा है जिससे कथावस्तु का प्रवाह मन्द पड़ने लगता है और शैली की अलंकारिकता का आभास होने लगता है। यहाँ यह स्मर्तव्य है कि अलंकृत शैली का तात्पर्य अपने ज्ञान

से कथावस्तु को सुसज्जित करना है, चाहे वह अलंकारों के माध्यम से हो या शास्त्रीय पाण्डित्य के द्वारा।

भारवि की इस राजनीतिक मन्त्रणा का काव्य के मूल कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि न तो द्रौपदी और भीम के अनुसार दुर्योधन पर आक्रमण ही होता है और न युधिष्ठिर के राजनीति पूर्ण शान्त उपदेश का द्रौपदी एवं भीम पर प्रभाव पड़ता है। इस स्थान पर कवि ने राजनीति विषयक पाण्डित्य का समुपस्थापन किया है। जहाँ प्रभु, मन्त्र, उत्साह तीन शक्तियों, कार्य सिद्धि के पाँच अङ्गों[1], साम, दाम, दण्ड, भेद नामक राजनीति के चर्तुविध उपायों, सन्धि-विग्रह इत्यादि की सूक्ष्मताओं पर कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से गहन विचारों का उपस्थापन किया है। उनका राजनीति शास्त्र विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रगाढ़ है। यहाँ यह भी ध्येय है कि कवि ने अपने काव्य में एतद्विषयक ज्ञान का जानबूझ कर अन्तर्भाव किया है जिससे शैली पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है और उक्त सन्दर्भ में उसकी चित्रात्मक शैली की पुष्टि में एक प्रमाण बन गया है। पुनः वेदव्यास के आने से कथावस्तु आगे बढ़ती है। वेदव्यास का आगमन किरात के तृतीय सर्ग में वर्णित है। वे (वेदव्यास) शत्रु प्रतीकारार्थ अर्जुन को इन्द्र और शंकर की तपस्या करने का आदेश देकर चले जाते हैं। तत्पश्चात् अर्जुन इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी मध्य शरद्ऋतु वर्णन एवं हिमालय वर्णन प्रसङ्गों का समायोजन हुआ है। शरद्ऋतु तथा हिमालय रूप उक्त वर्णनों से कथानक में अवरोध उत्पन्न होता है। पुनः षष्ठ सर्ग में अप्सरायें अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने के लिये समुपस्थित होती हैं।

सप्तम सर्ग से दशम सर्ग तक अप्सराओं की विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं का वर्णन हुआ है जिससे कथासूत्र टूट जाता है और कवि की शृङ्गार-वर्णन-प्रियता एवं कामशास्त्रीय वर्णना के दर्शन होने लगते हैं। भारवि ने बाह्य एवं आभ्यन्तर रति, कामुक दशाओं आदि का शृङ्गार-पूर्ण चित्रण किया है।

ग्यारहवें सर्ग में पुनः कवि अपने मूल प्रतिपाद्य को पकड़ता है और धीरे-धीरे आगे होता है। इन्द्र अर्जुन के निकट स्वयं आते हैं। इस प्रसंग

---

१. किरातार्जुनीय २।१२।

में कवि ने इन्द्र से अर्जुन के लिये जो कुछ बतलाया है वह दर्शनशास्त्रोचित है जहाँ संसार की असारता एवं मोक्ष की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है।

इन्द्र उपस्थित होकर शंकर के प्रसादनार्थ तपस्या करने का उपदेश देकर चले जाते हैं। तदनन्तर अर्जुन इन्द्र के निर्देशानुसार तपस्या करते हैं। इस मध्य सूकरवधजन्य दोनों ( शंकर और अर्जुन ) में मृगयाकलह प्रारम्भ हो जाता है जो शनैः शनैः एक भीषण युद्ध के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

पन्द्रहवें सर्ग से अठारहवें सर्ग तक किरात सेना एवं अर्जुन का युद्ध होता है। इस स्थल पर कवि ने अपने अलङ्कारशास्त्रीय ज्ञान के प्रदर्शन का पूरा प्रयास किया है जिससे उसकी शैली अत्यन्त चित्रात्मक बन गयी है। इस प्रसङ्ग में विभिन्न प्रकार के चित्रबन्धों का सुन्दर निबन्धन किया गया है।

किरातार्जुनीय में यद्यपि राजनीति, दर्शन आदि विभिन्न शास्त्रों का न्यूनाधिक रूप से वर्णन हुआ है किन्तु उसकी शैली शास्त्रीय नहीं बन सकी है। इसका कारण यह भी है कि उनका शास्त्रीय ज्ञान मात्र अपने एतत्सम्बन्धी पाण्डित्य के प्रदर्शन की दृष्टि से उपनिबद्ध हुआ है।

वस्तुतः कवि तीन प्रकार के होते हैं—शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। इनमें शास्त्रकवि के भी तीन भेद होते हैं—शास्त्रीय सन्निबन्धन करने वाले, शास्त्र में काव्य का सन्निबन्धन करने वाले तथा शास्त्रार्थ का समाहार करने वाले। तीनों ही प्रकार के कवियों में बहुज्ञता का होना आवश्यक है। जो कवि अपने शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रकाशन की ही काव्य में योजना करते हैं, वे शास्त्रीय कवि होते हैं तथा उनकी शैली भी प्रायः शास्त्रीय होती है। जो कवि शास्त्र में काव्य का सर्जन करते हैं वे शास्त्र में काव्य के निरूपक कवि होते हैं—इसके अन्तर्गत वे काव्य माने जा सकते हैं जिनमें किसी शास्त्र विशेष की काव्यमय व्याख्या की जाय जिसके लिये अलङ्कार, गुण आदि नितान्त गौण तत्त्व होते हैं जैसे वैद्यक शास्त्रों का काव्यात्मक सन्निबन्धन। शास्त्रार्थ का सम्मिश्रण करने वाले वे कवि हैं जो अपने विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान को तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं जैसे माघ, श्रीहर्ष आदि। ऐसे कवि के लिए शास्त्रों का

गहन ज्ञान और उसे प्रस्तुत करने के लिए लक्षणग्रन्थ सम्मत काव्य-शास्त्रीय पाण्डित्य परिज्ञान की आवश्यकता होती है।

अलंकृत सरणि के कवियों में अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति का प्राधान्य है जिससे उन्होंने अपने ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के लिए काव्यशास्त्रीय आधार को अङ्गीकार किया है।

भारवि भी ऐसे ही कवि हैं जो अपने बहुक्षेत्रीय ज्ञान को काव्योचित रूप में प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि किरात काल में अलङ्कारी प्रवृत्ति का समारम्भ दृष्टिगत होता है किन्तु वह अपने विकसित रूप में नहीं प्रकट हो सका है। यही कारण है जिससे भारवि की शैली में कालिदासीय वैदर्भी के भी दर्शन होते हैं।

किरातार्जुनीय का कथानक भले ही स्वल्प है किन्तु उसमें कलापक्ष के साथ ही भाव पक्ष की भी सुन्दर अभिव्यञ्जना हुयी है। यद्यपि राजनीति एवं गन्धर्व आदि की क्रीड़ाओं से अधिकाधिक कथावस्तु में व्याघात हुआ है तथापि वे काव्य के तथा नायकभूत अर्जुन के गाम्भीर्य, शौर्य आदि के पोषक होने से अनुचित नहीं प्रतीत होते। किन्तु भारवि के पश्चात् माघ में पूर्णरूपेण अपनी बहुज्ञता के चमत्कारिक सन्निबन्धन की धारणा दृष्टिगोचर होती है।

भारवि की काव्यगत धारणा में अर्थगाम्भीर्य, पुनरुक्तिदोषराहित्य, तथा निश्चित अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली पदयोजना को प्रमुख स्थान मिला है जिसका कहीं भी कवि ने उल्लंघन नहीं किया है। उनका (भारवि) पाण्डित्य इस तथ्य को भूल नहीं पाता और यही कारण है कि भारवि मात्र कला प्रधान कवि की दृष्टि से ही नहीं देखे जा सकते।

किरातार्जुनीय में कवि ने जहाँ कहीं भी अपने पाण्डित्य की उप-स्थापना की है वहाँ भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुयी है किन्तु जब कवि ने काव्यशास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य के लक्षणों को दृष्टिगतकर वस्तु वर्णन किया है, वहाँ शैली में दुरूहता एवं आलंकारिकता का समावेश हो गया है।

किरात महाकाव्य में कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं जिनसे शैली में उनकी अलंकारप्रियता प्रतिभासित हुयी है—

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार काव्य में पर्वत वर्णन अपेक्षित होता है। अतः कवि ने हिमालय पर्वत का वर्णन इसी काव्यशास्त्रीय दृष्टि को ध्यान में रखकर किया है। हिमालय वर्णन में भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष अधिक विकसित हुआ है। कवि ने इस स्थल पर यमक एवं श्लेष अलंकारों का कलात्मक प्रदर्शन किया है।

हिमालय पर जलयुक्त एक मानसरोवर है जो विकसित कमलों से युक्त रहता है। कलहंसों अथवा सम्पूर्ण जाति के हंसों का निवास स्थान है। किसी कारणवश कुपित पार्वती एवं प्रथमगणों सहित शुद्ध चित्त भगवान् शिव को भी वह पर्वत धारण करता है।[1] यहाँ हंस और कलहंस, सकलहं तथा सगणं पदों के प्रयोग से यमक है। इस प्रकार हिमालय वर्णन में अनेक यमकों की सुन्दर योजना हुयी है जो व्यंजना की अपेक्षा शैली की आलंकारिकता की द्योतक है।[2]

भारवि के समग्र कलात्मक पाण्डित्य के दर्शन पन्द्रसवें सर्ग के युद्ध वर्णन प्रसंग में होते हैं जहाँ कवि ने विविध बन्धों की योजना से काव्य को दुरूह बना दिया है। इस स्थल पर यमक और अनुप्रास की योजना से काव्यशास्त्रीय ज्ञान का चमत्कार प्रकट होता है। किरातार्जुनीय में एकाक्षरपाद, निरोष्ठ्य, पादान्तादियमक, एकाक्षरपाद, द्वयक्षर, गौमूत्रिका आदि बन्धों की रचना से वर्ण्य वस्तु गौण हो गयी है और कवि की काव्य विषयक कलात्मक प्रकृति उभरकर सामने आ गयी है।

युद्ध वर्णन प्रसंग में चित्रित गोमूत्रिकाबन्ध का एक दृश्य द्रष्टव्य है जहाँ स्वामी कार्तिकेय पलायमान सेना को रोकते हुये अर्जुन के विषय में कहते हैं—यह पुरुष (अर्जुन) दानव, नाग, पहाड़ और राक्षस इनमें से कोई भी नहीं है। यह भूमिचारी रजोगुणी मनुष्य है अतः यह सरलतया विजेतव्य है।[3]

इसी प्रकार एक समुद्गक में अर्जुन की सैन्य साधनहीनता का जो वर्णन किया गमा है, वह भी कवि के काव्य कौशल से चमत्कृत प्रतीत

---

१. किरातार्जुनीय ५।१३।

२. वही ५।२०, २३, २५, २७।

३. किरातार्जुनीय १५।१२।

होता है। अर्जुन के पास वेगवान् रथ, अच्छी गति वाला अश्व, ऐरावत हाथी, पदाति सेना कुछ भी नहीं है।[1]

लक्षणग्रन्थोक्त नियमानुसार महाकाव्य में विभिन्न रसों की योजना के साथ वीर, शृङ्गार एवं शान्त में से कोई एक रस अंगी होना चाहिये। इस दृष्टि से किरात काव्य वीर-रस प्रधान है किन्तु उसमें अन्य रसों की की अपेक्षा शृङ्गार रस की अधिक वर्णना हुयी है। छठे, सातवें एवं आठवें सर्गों में गन्धर्वों एवं अप्सराओं की विविध क्रीड़ाओं के शृंगारिक वर्णनों से काव्य का अंगीभूत वीररस क्षीण सा हो गया है। तथापि भारवि वीररस के निबन्धन में माघ से आगे हैं।

यद्यपि महाकवि भारवि ने अपने ज्ञान को काव्य में चमत्कारिक दृष्टि से उपन्यस्त करने का प्रयास किया है किन्तु इससे मूल कथावस्तु पर कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा है जो पाठक के कौतूहल को बनाये रखने में असमर्थ हो। किरातार्जुनीय अलंकृत शैली का काव्य होने पर भी महाकवि कालिदास की वैदर्भी रीति के पर्याप्त निकट है जिसमें कलात्मकता के साथ भावों की अभिव्यक्ति का सुन्दर समावेश है। सम्पूर्ण किरात काव्य में ऐसा कहीं नहीं प्रतीत होता है कि कवि किसी एक स्थान पर अपने प्रसंगोचित समग्र ज्ञान अथवा पाण्डित्य को अपने पूरे सामर्थ्य से समाविष्ट कर देना चाहता है। यदि किरात काव्य के शृंगार एवं युद्ध वर्णन प्रसंगों की योजना कलात्मक न की जाती तो सम्पूर्ण महाकाव्य भाव प्रधान शैली का अन्यतम महाकाव्य हो सकता था। तथापि इन प्रसंगों का भी अपना महत्त्व है जो कवि को एक नवीन शैली की उद्भावना करने का श्रेय प्रदान करते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण काव्य में कवि का प्रतिपाद्य सुस्पष्ट प्रतिभासित होता है।

**माघ के पाण्डित्य का उनकी शैली पर प्रभाव**

महाकवि माघ ने शिशुपाल-वध रूप स्वल्प कथानक को अपने बहुक्षेत्रीय शास्त्र ज्ञान से मण्डित कर विपुलकाय महाकाव्य के रूप में परिणत कर दिया है। माघ शुद्ध रूपेण शास्त्रार्थ श्रेणी के महाकवि हैं जो अपने पाण्डित्य को काव्यात्मक रूप प्रदान करते हैं। शिशुपालवध महाकाव्य राजनीति, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण, राजशास्त्र आदि

---

१. किरातार्जुनीय १५।१६।

विषयों के प्रखर पाण्डित्य से सम्यक् रूपेण समलंकृत हैं। कवि ने एक स्थान पर पूरी शक्ति के साथ अपनी बहुज्ञता का उपस्थापन किया है जिससे उनकी शैली पूर्णरूपेण अलंकृत हो गयी है।

कवि की शैली का सर्वाधिक प्रभाव उसकी प्रतिपाद्य कथावस्तु पर पड़ा है। अतः सर्वप्रथम माघ के शास्त्रीय ज्ञान से कथानक पर पड़ने वाले प्रभाव को देखना प्रसंगोचित है।

शिशुपालवध की कथावस्तु का प्रारम्भ नारद के आगमन से होता है। वे (नारद) भगवान् श्रीकृष्ण से शिशुपालवध रूप इन्द्र-सन्देश को सुनाते हैं। नारद के गमनान्तर भगवान् श्रीकृष्ण अपने पितृव्य उद्धव एवं अग्रज बलराम के साथ विचार विमर्श करते हैं क्योंकि उन्हें (श्रीकृष्ण को) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिल चुका है।

उक्त विषयक मन्त्रणा में कवि ने अपने समग्र राजनीतिशास्त्र के सैद्धान्तिक पाण्डित्य को पूरे सामर्थ्य के साथ सन्निबन्धन किया है। इस प्रसंग में कवि ने बारह प्रकार के राजाओं, प्रभु, मन्त्र, उत्साह तीन शक्तियों, षड्गुण सन्धि आदि राजनीतिक विषयों की सुन्दर योजना की है।[1] सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में जो राजनीतिक विचार विमर्श होता है, उससे स्पष्ट भासित होता है कि कवि ने अपने एतद्विषयक पाण्डित्य की जान बूझकर उपस्थापना की है। मन्त्रणा में उद्धव का मत मान्य होता है जिसके अनुसार श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान करते हैं।

शिशुपालवध का कथानक रुक-रुक कर चलता है। तीसरे सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण की इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान की तैयारी में उनके केयूर, कंकण, आदि आभूषणों के धारण करने का वर्णन हुआ है। महाकाव्य में अपेक्षित नगर वर्णन की दृष्टि से द्वारिकापुरी तथा समुद्र का भी चित्रण है जो अत्यन्त आलंकारिक बन पड़ा है। चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का विभिन्न यमकों के द्वारा सुन्दर चित्रण हुआ है।

यहाँ कथावस्तु का विवेचन इस दृष्टि से विचारणीय है कि कवि के पाण्डित्यपूर्ण वस्तु-उपस्थापन से प्रतिपाद्य कथानक में व्याघात उत्पन्न

१. शिशुपालवध २।८२–९३।

हुआ है और शैली में आलंकारिकता या चित्रात्मकता का समावेश हो गया है।

चतुर्थ सर्ग में वर्णित रैवतक वर्णन से लेकर बारहवें सर्ग तक की कथा का मुख्य वस्तु (कथानक) से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। दीर्घ काल तक मुख्य कथावस्तु विच्छिन्न रहती है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इन स्थलों का महत्त्व अवश्य है जहाँ महाकाव्य में अपेक्षित पर्वत, सेना प्रयाण, ऋतुवर्णन, वनविहार, जलविहार, सूर्यास्त, पान-गोष्ठी, रतोत्सव एवं प्रभात वर्णन का लक्षणग्रन्थोक्त रीति से चित्रण किया गया है। तेरहवें सर्ग से पुनः कवि कथासूत्र को पकड़ता है। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँचते हैं और युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होते हैं। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा से शिशुपाल क्रुद्ध हो जाता है और श्रीकृष्ण एवं शिशुपाल की सेनाओं में युद्ध होता। युद्ध वर्णन प्रसंग में कवि ने विभिन्न चित्रबन्धों की योजना की है।

वस्तुतः काव्य में यदि पाण्डित्य का समावेश उचित स्थान पर किया जाय तो वह काव्य भावपक्ष की दृष्टि से अधिक समादृत होता है किन्तु यदि पाण्डित्य का समावेश इस दृष्टि से किया जाय कि पाठक कवि के नानाविषयक पाण्डित्य से प्रभावित हो तो ऐसी स्थिति में कवि की बहुज्ञता का जो मूल्यांकन किया जा सकता है और वह उत्कृष्ट प्रतिभाशाली कवि की कोटि में परिगणित भी हो सकता है किन्तु काव्य और उसकी शैली की दृष्टि से प्रभावी नहीं माना जा सकता।

महाकवि माघ ने दर्शन, कर्मकाण्ड, व्याकरण आदि विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान प्रदर्शन के साथ ही काव्यशास्त्रीय पक्ष को भी सैद्धान्तिक रूप से समुपन्यस्त करने का प्रयास किया है।

महाकवि माघ ने प्रबन्ध निर्वाहकता के महत्त्व को अपने काव्य में सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार किया है[1] किन्तु वे स्वयं उसका पालन नहीं करते हैं। यद्यपि प्रबन्ध के यथोचित निर्वाह न कर पाने का कारण कवि

---

१. बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥ शिशुपालवध २।७३।

साहित्यिक समाज की पाण्डित्यप्रियता ही है तथापि कथावस्तु की प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर पाण्डित्योपस्थापन अधिक प्रभावी एवं श्लाघ्य हो सकता है।

माघ ने प्रायः जिस किसी भी विषय में अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करनी चाही है, उसके (विषय के) सैद्धान्तिक पक्ष को भी सूत्र रूप में उपस्थापित कर दिया है। वे व्याकरण शास्त्र के विभिन्न नियमों का काव्यात्मक चित्रण करते हैं, कामशास्त्र का भी मूल विषय के प्रतिपाद्य के रूप में उल्लेख किया है। इसके साथ ही कवि ने काव्यशास्त्रीय पक्ष की ओर भी संकेत किया है जो उनके गहन पाण्डित्य का सूचक है।

शिशुपालवध में कहीं-कहीं पर उनकी (माघ की) शैली शास्त्रीय हो गयी है। प्रायः ऐसे स्थल उपमालंकार से मण्डित हैं। द्वितीय सर्ग की राजनीतिक मन्त्रणा में उद्धव शिशुपाल पर आक्रमण न करने का मन्तव्य देते हुये कहते हैं कि वह (शिशुपाल) एक पद में शत्रुओं को उसी प्रकार मारता है जिस प्रकार एक पद में उदात्त स्वर अनुदात्त स्वर को मारता है।[१] युद्ध में पितृव्य, मातुल आदि को धराशायी देखकर कवि रणांगण की पाणिनीय अष्टाध्यायी से तुलना करता है जिसमें उक्त शब्द निपात हैं।[२] रति कला में सीत्कार, प्रेमयुक्त वचन, अलंकारों की ध्वनि ये सभी वात्स्यायन के कामसूत्र प्रतीत होते हैं।[३] यद्यपि ऐसे स्थल बहुत कम हैं तथा जो हैं भी वे शास्त्रीय शैली की दृष्टि से नहीं अपितु कवि के पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण उपन्यस्त हुये हैं। युद्ध विषयक वर्णन की शैली शुद्धरूपेण चित्रात्मक है। जहाँ कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि गोमूत्रिका, मुरज आदि बन्धों से शिशुपालवध काव्य विषम हो गया है।[४]

यद्यपि माघ के पाण्डित्य से उनकी शैली पाण्डित्यपूर्ण बन गयी है तथापि कवि विचित्र शैली का सर्वथा समर्थक है।

---

१. शिशुपालवध, २।९५। २. वही १९।७५। ३. वही १०।७५।

४. विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम्॥ वही १९।४१।

## माघ पर भारवि का प्रभाव

महाकवि भारवि एवं माघ दोनों ही वैदुष्य एवं काव्य प्रतिभा से सुसम्पन्न हैं। दोनों को व्याकरण, राजनीति, दर्शन आदि विषयों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वस्तुतः नैसर्गिकी प्रतिभा से प्रतिभासित शास्त्रानुशीलन जन्य ज्ञान के अभाव में उत्कृष्ट काव्य रचना सम्भव नहीं है। इसके साथ अभ्यास भी अपेक्षित होता है। इस तथ्य को दृष्टिगत कर कुन्तक, राजशेखर, वाग्भट एवं मम्मट आदि जैसे प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने काव्य-सर्जना के तीन हेतुओं को प्रतिपादित किया। इनमें समन्वयवादी, सारग्राही आचार्य मम्मट ने शक्ति, निपुणता एवं अभ्यास को काव्य-रचना का हेतु माना है।[1]

काव्य-सर्जना में जहाँ प्रतिभा के अतिरिक्त शास्त्रादि के अध्ययन से प्राप्त व्युत्पत्ति आवश्यक होती है वहीं पूर्ववर्ती कवियों के काव्य भी प्रेरणादायक होते हैं। कवि समाज का सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है। वह जहाँ एक ओर अपने समाज का स्वरूप चित्रित करता है, वहीं दूसरी ओर अपनी बहुज्ञता को भी समान महत्त्व देता है। इसके लिये वह मात्र अपने ज्ञान का आधार यही नहीं मानता कि उसमें कितनी विद्वत्ता है अपितु समसामयिक रचनाओं अथवा ग्रन्थों में ज्ञान प्रदर्शन का क्या स्तर रहा है, इसे भी जानता है। विभिन्न कालों में कुछ ऐसी कृतियाँ हो गयी हैं जो तत्कालीन साहित्य की मापदण्ड बन गयीं। उन्हीं का अनुकरण अथवा आश्रय लेकर परवर्त्ती कवियों ने काव्य प्रणयन किया है। जैसे—रससिद्ध शैली में काव्य रचना का एक युग था जिसका मापदण्ड कालिदास की रचनायें थीं। तदनुसार उत्तरकालिक कवियोंने उनको दृष्टिगत कर अपनी काव्यकला को मूर्तिमान् रूप दिया। इसी प्रकार का एक युग अलंकृत शैली का आया जिसका प्रवर्त्तन महाकवि भारवि ने किया और उससे माघ, श्रीहर्ष आदि परवर्त्ती कवि पर्याप्त रूप से प्रभा-

---

१. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥ काव्यप्रकाश १।३।

वित हुये । पूर्व कवियों की काव्य रमणीयता का अनुकरण अथवा अनुहरण करने से आश्रित कवि की कथावस्तु नवीनता को धारण कर शोभायमान होने लगती है । वह पुनरावृत्ति जैसी नहीं आभासित होती अपितु वह चन्द्रमा की रमणीयता को लेकर सुशोभित होने वाली सुन्दरी के मुख की भाँति शोभायमान होती है ।[1]

काव्य के शरीर की रचना कथावस्तु से होती है और शैली अथवा वर्णनपद्धति से काव्य की प्राणप्रतिष्ठा होती है । इन्हीं दोनों से समन्वित काव्य-प्रतिभा सहृदयों का हृदय आवर्जित करती है ।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में माघ-काव्य पर भारवि का प्रभाव विवेचनीय है । अतः इसका आधार कथावस्तु और शैली मानकर किया जा रहा है । कथावस्तु का तात्पर्य मात्र यही नहीं है कि दोनों कवियों के काव्य की विषयवस्तु किस ग्रन्थ की उपजीवी है अपितु यह भी कि यथेच्छ आहृत कथावस्तु का कवि ने अपने काव्य में कैसे उपस्थापन किया है और वस्तु-प्रस्तुतीकरण में उसे कहाँ तक सफलता मिली है ।

अलंकृत शैली के उद्भावक महाकवि भारवि के किरात का माघकृत शिशुपालवध पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है । शिशुपालवध के सम्यक् अध्ययन से ऐसा भासित होता है कि माघ ने भारवि को अपना आदर्श मानकर ही काव्य रचना की है परन्तु उनके मन में यह भावना अवश्य रही होगी कि उनका काव्य भारवि के काव्य से उत्कृष्ट सिद्ध हो सके ।

दोनों ही महाकाव्यों की कथा मूलतः महाभारत पर आश्रित है । भारवि ने शैव होने के कारण शिव ( किरातरूपधारी ) से सम्बद्ध घटना को अपने काव्य का विषय बनाया तो माघ ने अपनी वैष्णव-श्रद्धा के अनुसार श्रीकृष्ण कथा प्रधान वस्तु के आधार पर अपने काव्य की रचना की ।

---

१. आत्मनोऽन्यस्य सद्भावे पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि ।
वस्तु भातितरां तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम् ॥
ध्वन्यालोक ४।१४ ।

भारवि काव्य का प्रारम्भ श्री शब्द से होता है[1] तदनुसार महाकवि माघ ने भी अपने काव्य के आरम्भ में श्री शब्द को ही प्रयुक्त किया है।[2] सर्गारम्भ की भाँति सर्ग समाप्ति में भी माघ ने भारवि का अनुकरण किया है। परन्तु अन्तर केवल इतना है कि भारवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का सन्निवेश किया है।[3] माघ ने प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में लक्ष्मी के पर्यायभूत 'श्री' शब्द का समाहार किया[4] है इससे भारवि प्रयुक्त 'श्री' शब्द के प्रति माघ के अनुराग का द्योतन होता है।

किरातार्जुनीय के तृतीय सर्ग में महर्षि वेदव्यास पाण्डवों के समीप उनके साधुत्व से प्रभावित होकर शत्रु प्रतीकारार्थ मन्त्रविद्या प्रदान करते हैं। इस अवसर पर युधिष्ठिर व्यास जी का बड़ी ही श्रद्धा एवं विनय से स्वागत करते हैं। माघ काव्य में नारद जब भगवान् श्रीकृष्ण के निकट आते हैं तो उनका सम्यक् स्वागत श्रीकृष्ण के द्वारा किया जाता है। इस प्रसङ्ग में किरात के युधिष्ठिरकृत स्वागत का शिशुपालवध के श्रीकृष्ण द्वारा पर्याप्त अनुकरण किया गया है।

युधिष्ठिर व्यास जी से कहते हैं कि आपका दर्शन ब्रह्मा के समान विफल नहीं हो सकता, वह पापों को निर्मूल करता है तथा कल्याण एवं कीर्ति को बढ़ाता है।[5] ऐसे ही भाव श्रीकृष्ण की वाणी में मिलते हैं। वे नारदजी से कहते हैं कि हे मुने! आपके पापनाशक दर्शन से कृतार्थ हो गया हूँ। तथापि मैं आपके कल्याणकारी वचनों को सुनना चाहता हूँ।[6]

---

१. श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥
किरातार्जुनीय १।१।

२. श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥
शिशुपालवध १।१।

३. द्रष्टव्य—किरातार्जुनीय के प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक।

४. द्रष्टव्य—शिशुपालवध के प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक।

५. किरातार्जुनीय ३।७। ६. शिशुपालवध १।२९।

किरात के प्रथम सर्ग में वनेचर का आगमन होता है। वह दुर्योधन की समृद्धिमूलक शासन पद्धति का वर्णन करता है और द्रौपदी युधिष्ठिर की विपद्ग्रस्तता को बताकर उन्हें युद्ध की प्रेरणा प्रदान करती हैं। यद्यपि माघ ने अपने काव्य में संदेशवाहक के रूप में एक ही पात्र नारद का सन्निवेश किया है तथापि उन्होंने भारवि का बहुत कुछ अनुसरण किया है। नारद जी शिशुपाल के जन्मान्तरीय औद्धत्य का वर्णन कर श्रीकृष्ण से शिशुपाल के वध रूप इन्द्रसन्देश का कथन करते हैं। दोनों में अन्तर यह है कि वनेचर युधिष्ठिर के द्वारा स्वयं शत्रु-वृत्तान्त जानने के लिये भेजा गया था और शिशुपालवध में नारद इन्द्र-सन्दिष्ट हैं।

किरातार्जुनीय में वनेचर के द्वारा शत्रु-वृत्तान्त बतलाने के अनन्तर युधिष्ठिर भीम तथा द्रौपदी के मध्य बातचीत होती है।[1] इसी से प्रभावित होकर नारद के प्रस्थानानन्तर शिशुपालवध में भी श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम के मध्य मन्त्रणा होती है।[2]

किरात में द्रौपदी शत्रु-वृत्तान्त सुनकर शत्रुकृत पूर्वका अपमान स्मरण कर उत्तेजित हो जाती है और राजनीति से सम्बद्ध कुछ व्यावहारिक तथ्य भी प्रस्तुन करती है जो प्रायः पौरुष को जागृत करते हैं। इस प्रसङ्ग में भी माघ पर भारवि का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने विभिन्न स्थलों पर भारवि से अवश्य ही प्रेरणा प्राप्त की है किन्तु उसे इस प्रकार वर्णित किया है जिससे कवि ( माघ ) का अपना काव्योन्मेष दृष्टिगत होता है। शिशुपालवध में अधिकतर उसी विषय को पाण्डित्य-पूर्ण बना दिया गया है।

दोनों ही काव्यों में राजनीतिक मन्त्रणा होती है। भारवि की द्रौपदी और भीम की छाप माघ के बलराम पर पड़ी है और युधिष्ठिर से उद्धव प्रभावित हुये हैं। द्रौपदी युधिष्ठिर की सहनशीलता और शान्ति को एक राजा की दृष्टि से अनुचित मानती है, वह उसे मुनियों का धर्म स्वीकार करती है।[3] इसका प्रभाव प्रकारान्तर से माघ के बलराम की वाणी में देखा जा सकता है, जहाँ वे ( बलराम ) कहते हैं कि जो राजा थोड़ी सी

---

१. किरातार्जुनीय १।२६, २।५४। २. शिशुपालवध २।६–११७।

३. किरातार्जुनीय १।४४।

सम्पदा से अपने को कृतकृत्य मान लेता है, कृतार्थ हुये ब्रह्मा ( दैव ) भी उसकी सम्पत्ति को नहीं बढ़ाते हैं ।[1]

भारवि के वर्णित उक्त प्रसङ्ग का भाव यह है कि राज्याभिलाषी पुरुष को सन्तोष नहीं करना चाहिये । तथैव माघ का भी अभिप्राय है ।

भारवि के भीम का प्रभाव बलराम पर द्रष्टव्य है । भीम युधिष्ठिर से कहते हैं कि शत्रुओं की विपत्ति केवल आपके अनुत्साह के कारण दूर है, यदि आप उत्साहित हो जायँ तो शत्रु विपद्ग्रस्त हो जायँ । सम्पूर्ण दिशाओं में सुविज्ञात मतङ्गजों तथा चतुस्समुद्रों की भाँति, इन्द्र के समान पराक्रमी आपके कनिष्ठ भ्राताओं के पराक्रम को शत्रुओं में कौन सह सकता है ।[2]

इन्हीं भावों को प्रकारान्तर से बलराम की वाणी में देखा जा सकता है । वे श्रीकृष्ण से कहते हैं कि संसार को लाँघने के इच्छुक तथा दूसरे से न लाँघे जाने वाले अत्यन्त महान् यादव रूपी समुद्रों को आपकी सहनशीलता तट के समान रोक रही है ।[3]

भारवि के भीम को अपने भाइयों की शक्ति पर गर्व और आत्मविश्वास है तथा जो विपद्ग्रस्तता है, वह युधिष्ठिर की सहनशीलता के कारण है । माघ के बलराम को भी अपनी सेना पर गर्व है किन्तु वहाँ श्रीकृष्ण की क्षमा ( सहनशीलता ) अवरोधक है ।

यहाँ माघ न केवल भावों से प्रभावित हुये हैं अपितु वे भारवि के पात्रोचित सन्निबन्धन से भी प्रेरित हुये हैं जिसके अनुसार उन्होंने भारवि भीम, जो उद्धत रूप से चित्रित हैं, से अपने मुसलपाणि बलराम का सामञ्जस्य दर्शाया है ।

युधिष्ठिर शान्ति एवं गम्भीरतापूर्वक कार्य करने के पक्षधर हैं । किन्हीं स्थलों पर माघ भारवि से इतना प्रभावित हुये हैं कि उन्होंने अपने प्रमाण की पुष्टि मे वे ही तर्क भी प्रस्तुत कर दिये हैं । युधिष्ठिर भीम को समझाते हुये कहते हैं कि उदयाभिलाषी पुरुष को बुद्धि से अज्ञान को दूर करना चाहिये क्योंकि अंशुमाली सूर्य भी रात्रिजनित अन्धकार को दूर किये

---

१. शिशुपालवध २।३२ । २. किरातार्जुनीय २।२२–२३ ।

३. शिशुपालवध २।५८ ।

विना उदित नहीं होते।[1] ठीक यही उदाहरण बलराम अपने पक्ष की पुष्टि में प्रस्तुत करते हैं। उनका विचार है कि स्वाभिमानी लोग शत्रुओं का समूल नष्ट किये विना उदित नहीं होते। इस विषय में गहन अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य का उदाहरण है।[2]

यद्यपि ऐसे प्रसङ्गों से माघ का गौरव कम नहीं होता है अपितु भारवि काव्य से कवि ( माघ ) प्रभावित हुआ है यह तथ्य स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

किरातार्जुनीय में वेदव्यास के उपदेशानुसार अर्जुन इन्द्र के प्रसादनार्थ इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान करते हैं अतः द्रौपदी उन्हें विदा करते समय अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं किन्तु अमङ्गल के भय से उसकी आँखों से अश्रु नहीं गिरते।[3] महाकवि माघ ने अपशकुन सम्बन्धी इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है। अतः शिशुपाल की सेना में रमणियाँ अपने प्रियतम को विदा करते समय अमङ्गल के भय से आँसू नहीं गिरातीं।[4] यद्यपि माघ ने इस स्थल पर अपने शकुनशास्त्रीय ज्ञान को खोलकर रख दिया है जो नितान्त मौलिक है तथापि जो शकुन सम्बन्धी प्रेरणा मिली है, वह भारवि को ही है। अन्तर यह है कि माघ ने उसे विस्तृत रूप प्रदान कर दिया है।

किरातार्जुनीय के चतुर्थ सर्ग में शरद् ऋतु का रोचक वर्णन किया गया है तथा पंचम सर्ग में हिमालय का सुन्दर चित्रण है। इसका प्रभाव माघ पर भी पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने चतुर्थ सर्ग में रैवतक वर्णन तथा षष्ठ सर्ग में षड्ऋतु वर्णन उपन्यस्त किया है। भारविकृत शरदृतु का वर्णन बहुत कुछ माघ को प्रभावित कर सका है।

किरातार्जुनीय में वर्णन है कि शरदृतु में मयूरों का मदक्षीण हो

---

१. अपनेयमुदेतुमिच्छता तिमिरं रोषमयं धिया पुरः।
अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते॥
किरातार्जुनीय २।३६।

२. समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।
प्रध्वंसितान्धतमस्तत्रोदाहरणं रविः॥ शिशुपालवध २।३३।

३. किरातार्जुनीय ३।३६। ४. शिशुपालवध १५।८५।

जाने से उनकी केका में कर्णकटुता आ जाती है, अतः कान मदोन्मत्त हंसों की ही ध्वनि सुनना चाहते हैं। क्योंकि गुणवान वस्तु के प्रति प्रेम होता है न कि (गुणहीन) चिरपरिचित वस्तु के प्रति।[१] यहाँ कवि ने इस स्वाभाविक कारण के साथ एक सूक्ति भी चरितार्थ कर दी है।

माघ ने भी शब्दान्तर से ऐसा ही वर्णन किया है—समय ही मनुष्य को बलवान अथवा कमजोर करता है, मानों इसी कारण हंसों के स्वर मधुर तथा मयूरों के स्वरों में कर्कशता आ गयी है[२]। माघ ने भी सूक्ति की गतार्थकता का प्रसङ्गोचित समाहार करके भारवि का अनुसरण किया है। इस स्थल पर भारवि और माघ दोनों ने ही धान की फसल तथा उनकी रखवाली करने वाली स्त्रियों का सुन्दर चित्रण किया है। हिरणियों का झुण्ड, मयूरों की षड्ज केका को भी तिरस्कृत करने वाली मधुर-कण्ठ गोपियों के गान में दत्तचित्त होकर फसल और घास चरने से विरत हो जाता है।[३] तथैव शिशुपालवध में भी धान की रक्षा करने वाली गोप-वधुयें अपने उच्च स्वर से गाये जाने वाले मधुर गान से आकृष्ट तथा धान खाने से विरत मृग-समूहों को नहीं भगाती हैं।[४]

वस्तुतः माघ किन्हीं स्थलों पर भारवि से इतना प्रभावित हुये हैं कि उन्होंने किञ्चिद् अन्तर से उनके सम्पूर्ण भावों को अपने काव्य में समेट लिया है।

शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में रैवतक वर्णन भी भारवि के हिमालय प्रसङ्ग से पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होता है। इस स्थल पर किरातार्जुनीय का माघ पर प्रभाव यह है कि अर्जुन के साथ यक्ष है जो उन्हें (अर्जुन को) हिमालय के प्रति उत्कण्ठित समझकर अवसरानुकूल बिना पूछे मधुर शब्दों में बोलने लगता है।[५] शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के साथ उनका सारथि दारुक है जो रैवतक पर्वत देखने में उत्कण्ठित श्रीकृष्ण से सम्बद्ध विषयों में कहने लगता है।[६]

भारवि ने दिगन्तव्यापी पर्वत को जो गहन वनों से युक्त है,

---

१. किरातार्जुनीय ४।२५। २. शिशुपालवध ६।४४।
३. किरातार्जुनीय ४।४३। ४. शिशुपालवध ६।४९।
५. किरातार्जुनीय ५।१६। ६. शिशुपालवध ४।१८।

परमपुरुष भगवान् के सदृश अज्ञेय एवं ब्रह्मा के द्वारा ही जानने योग्य रूप में वर्णित किया है।[१]

माघ ने भी कुछ विस्तार के साथ रैवतक पर्वत को ब्रह्मा के समान चित्रित किया है जो सहस्रों शिखरों एवं सहस्रों पादों (समोपस्थ पर्वतों) से पृथ्वी पर स्थित है और सूर्यचन्द्र रूप दो नेत्रों वाला है।[२] भारवि को विविध रत्नों की प्रभा-पुञ्ज से हिमालय पर भित्ति की आशंका होती है[३] तो माघ रैवतक पर्वत पर सोने की रेखा से सुशोभित शुभ्रवर्ण चाँदी की भित्ति में भस्म धूसरित अग्नि ज्वाला संयुक्त तृतीय नेत्र वाले शिव-ललाट की कल्पना करते हैं।[४]

किरातार्जुनीय सप्तम सर्ग में गन्धर्वों तथा अप्सराओं के सेना निवेश का निरूपण हुआ है। माघ ने पञ्चम सर्ग में श्रीकृष्ण के सेना-निवेश का चित्रण किया है।

किरातार्जुनीय के अष्टम सर्ग में पुष्पावचय का वर्णन है तथा शिशुपालवध के सप्तम सर्ग में इसी विषय का चित्रण हुआ है। इस प्रसङ्ग में महाकवि माघ भारवि के एक सन्देहालङ्कार से पर्याप्त प्रभावित मालूम पड़ते हैं।

किरातार्जुनीय में वर्णन है कि कमलिनियों में छिपी हुयी एक सखी के सम्बन्ध में अन्य सखियाँ उसे अच्छी तरह न पहचान कर सन्देह करती हैं—सखी के नेत्रों में उन्हें कमल पर बैठे दो भ्रमरों का, केश-पाशों में मौन धारण किये स्थिर भ्रमरवृन्द का तथा मन्दहास में विकसित कमल का जिससे किञ्जल्क उड़ रहे थे, सन्देह हो रहा था। यह भ्रम कुछ देर में दूर हो सका और तब पता चला कि यह तो सखी ही है।[५]

शिशुपालवध में लगभग इसी प्रकार की योजना हुयी है—तडाग के समीप में दिखायी देने वाले पदार्थ में कमल अथवा युवती के मुख का सन्देह होता है किन्तु यह सन्देह करके किसी पुरुष को बगुलों के सहवासी

---

१. किरातार्जुनीय ५।१८। २. शिशुपालवध ४।४।
३. किरातार्जुनीय ५।३६। ४. शिशुपालवध ४।२८।
५. किरातार्जुनीय ८।३५–३६।

कमलों में न रहने वाले विब्बोकों (स्त्रियों के विलास विशेष) से युवती के मुख होने का निश्चय हो जाता है।[1]

किरातार्जुनीय में एक अप्सरा ने अपने प्रिय पर जल छींटना चाहा किन्तु उसका प्रिय गन्धर्व उसका (अप्सरा का) हाथ पकड़ लेता है, इससे कामासक्त अप्सरा की नीवी शिथिल हो जाती है किन्तु जल के कारण करधनी नीचे खिसक जाती है और वह विवस्त्र नहीं हो पाती। इससे उस करधनी ने वही काम किया जो एक सखी करती है।[2]

शिशुपालवध में जल के कारण रमणी का वस्त्र हट जाता है और उस वस्त्रहीन श्रोणिवाली रमणी को प्रिय देखना चाहता है जिससे वह लज्जित हो जाती है। किन्तु तरंग रूपी हाथ से रखे गये कमलपत्र रूपीवस्त्र से ढक जाने से कमलिनी का सखीत्व भासित होने लगता है।[3]

पुष्पावचय तथा जलविहार आदि के प्रसङ्गों में माघ भारवि से प्रभावित हुये हैं किन्तु अन्तर यह है कि माघ ने भारवि से प्रेरणा लेकर उसे विस्तृत शृङ्गारातिशय से अतिरंजित कर दिया है। माघ के ऐसे वर्णनों के मूल में भारवि की छाप स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होती है।

किरातार्जुनीय के नवम सर्ग तथा शिशुपालवध के ग्यारहवें सर्ग में प्रभात वर्णन मिलता है। इन वर्णनों के आकलन से स्पष्ट हो जाता है कि भारवि का प्रभाव माघ पर पड़ा है।

जिस प्रकार कोई आश्रित व्यक्ति अपने आश्रय का परित्याग कर देने से गौरव-क्षीण हो जाता है और निम्न अवस्था को प्राप्त कर खिन्न रहता है उसी प्रकार सूर्य बिम्ब के अर्द्धभाग के अस्त हो जाने पर सूर्य का किरण-पुञ्ज उसका (सूर्य का) आश्रय छोड़ देने से लघु होकर पश्चिम दिशा में

---

१. शिशुपालवध ८।२९।

२. विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्॥
किरातार्जुनीय ८।११।

३. पर्यच्छे सरसि हृतेंऽशुके पयोभिर्लोलाक्षे सुरतगुरावपत्र विष्णोः।
सुश्रोण्या दलवसनेन वीचिहस्तन्यस्तेन द्रुतमकृताब्जिनी सखीत्वम्॥
शिशुपालवध ८।४६।

कान्तिहीन हो रहा है।[1] प्रकारान्तर से माघ ने भी शृङ्गारिक रूप में ऐसा ही चित्रण किया है। प्रातःकाल होने से पहले चन्द्रमा पूर्व से पश्चिम की ओर अस्त हो रहा है या गिर रहा है--जिस प्रकार कोई नायिका अपने साथ सम्भोग कर उन्नति पाये हुये पति को परस्त्रीगमन करने से पतित होता हुआ देखकर ईर्ष्या करती है, उस पर हँसती है तथैव चन्द्रमा को पश्चिम दिशा में गिरते हुये देखकर पूर्व दिशारूपिणी नायिका उसका उपहास करती है।[2]

महाकवि माघ का प्रातःकालिक वर्णन भारवि की अपेक्षा विस्तृत एवं अधिक स्वाभाविक है। उन्होंने शृङ्गारिकता के साथ-साथ प्रातःकालिक प्राकृतिक एवं सौन्दर्य एवं उलूक, चक्रवाकादि पक्षियों[3] जिनका संयोग एवं वियोग साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है, का काव्य में सुन्दर समाहार किया है।

भारवि के नवम सर्ग में वर्णित सुरतपान गोष्ठी का प्रभाव माघ के दशम सर्ग में वर्णित सुरतपान गोष्ठी में देखा जा सकता है।

किरातार्जुनीय में मद्यपानजनित मतवालेपन से अप्सराओं के नेत्र झेंपने लगते हैं, मुख से बातें बन्द हो जाती हैं। हाथ स्तम्भित हो जाते हैं। यही सब कार्य लज्जा के द्वारा भी होते हैं अतः मानों मतवालेपन ने ये सभी बातें लज्जा से ही सीखी हैं।[4]

शिशुपालवध में मद्य के नशे से रमणियाँ नेत्रों को बन्द किये हुये, कुण्ठित वचन वाली तथा शिथिल अङ्गों वाली हो जाती हैं, उनकी लज्जा समाप्त हो जाती है अतः मानों मद्य ने लज्जा से ईर्ष्या के कारण नेत्र बन्द

१. मुक्तमूललघुरुज्झितपूर्वः पश्चिमे नभसि संभृतसान्द्रः।
सामिमज्जति रवौ न विरेजे खिन्नजिह्म इव रश्मिसमूहः॥
किरातार्जुनीय ९।५।

२. उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति
स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठाङ्गनायाः॥
शिशुपालवध ११।१२।

३. वही ११।६४। ४. किरातार्जुनीय ९।६७।

करना, स्पष्ट न बोलना और शरीर का जड़ हो जाना आदि को स्वयं ही पूरा कर दिया।[1]

यहाँ माघ पर भारवि का पूरा प्रभाव दिखायी पड़ता है, केवल शब्दावली उनकी (माघ की) है। दोनों ही कवियों का भाव एक है— लज्जा के कारण नेत्रों का बन्द होना, अस्पष्ट वाणी तथा अङ्गशैथिल्य हो जाता है किन्तु यहाँ ये कार्य मद्यपान के कारण हो रहे हैं। अतः भारवि कल्पना करते हैं कि मतवालेपन ने लज्जा से ये गुण सीखे हैं और माघ मतवालेपन में इन गुणों के समाहार का कारण उसकी (मतवालेपन की) ईर्ष्या मानते हैं।

किरात में गन्धर्वों एवं सुराङ्गनाओं ने काम के वशीभूत होकर अनुरक्त चित्त होकर उसके (काम) अनुकूल सब कुछ किया।[2] शिशुपालवध में इसी से प्रभावित होकर माघ ने वर्णन किया कि रुचिरों या रमणों को जो प्रिय लगा वह रमणियों ने किया।[3]

किरातार्जुनीय में कवि ने अर्जुन की कठोर तपश्चर्या का वर्णन किया है तो माघ ने युधिष्ठिर के यज्ञ एवं उनकी दानशीलता का उत्कृष्ट चित्रण किया है। दोनों में अन्तर यह है कि अर्जुन युद्धवीर हैं और युधिष्ठिर दानवीर। शिशुपालवध में युद्धवीरत्व नायकभूत श्रीकृष्ण में सम्यक् प्रकारेण परिपुष्ट हुआ है।

किरातार्जुनीय के तेरहवें सर्ग में दुर्वादी शिव दूत से अर्जुन का विवाद होता है तो लगभग उसी के आधार पर माघ के सोलहवें सर्ग में दुर्वादी शिशुपाल दूत से सात्यकि आदि का विवाद वर्णित है।

किरातार्जुनीय में अर्जुन शिव-दूत को उत्तर देते हुये कहते हैं कि आपके स्वामी (किरातपति) से मेरी मित्रता कदापि नहीं हो सकती है क्योंकि वर्णाश्रम धर्म को मानने वाले कहाँ हम और निकृष्ट जीवों की हिंसा करने वाला तुम्हारा स्वामी कहाँ? दोनों में बड़ा अन्तर है, नीचों के साथ उच्च व्यक्तियों की मित्रता नहीं होती, हाथी शृगालों के साथ मित्रता नहीं करते।[4] यहाँ मूलतः अर्जुन का स्वाभिमान दर्शाया गया है। शिशुपालवध में सात्यकि यह सिद्ध करता है कि श्रीकृष्ण स्वाभिमानी एवं

---

१. शिशुपालवध १०।२०। २. किरातार्जुनीय ९।७४।
३. शिशुपालवध १०।७९। ४. किरातार्जुनीय १४।२२।

समान शक्ति वाले शत्रु का ही प्रत्युत्तर देते हैं। वह (सात्यकि) कहता है—महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के अपशब्दों का जो उत्तर नहीं दिया, उसका कारण उनकी महानता है क्योंकि सिंह मेघ के गरजने पर गरजता है, स्यारों के रोदन पर नहीं।[१] यहाँ स्वाभिमान एवं स्तरानुकूल शत्रुता करने की प्रामाणिकता में दोनों कवियों ने प्रायः समान उदाहरण दिये हैं, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि माघ पूरे काव्य में भारवि से प्रभावित रहे हैं, इसकी छटा यत्र तत्र मिलती है।

किरातार्जुनीय में अर्जुन ने शिवदूत को अन्त में चेतावनी दी है कि यदि बाण लेने तुम्हारे स्वामी आयेंगे तो उनकी वही दशा होगी जो मणि की इच्छा से सर्प के पास जाने वाले की होती है।[२] इसका प्रभाव माघ के सात्यकि पर भी पड़ा है जो शिशुपाल दूत से उन्हें यथोचित उत्तर देने को ललकारता है।[३]

किरातार्जुनीय के चौदहवें सर्ग में ही सेना सन्नाह तथा युद्ध का वर्णन है। इसी का विस्तृत एवं शब्दाडम्बर युक्त परिष्कृत रूप शिशुपालवध के पन्द्रहवें, सत्रहवें तथा अठारहवें सर्ग में मिलता है।

किरातार्जुनीय में भववान् शंकर का दूत उनके (शंकर) निकट जाता है; तदनन्तर सेनापति (किरातपति) के आदेश से किरात की विशाल सेना गम्भीर गर्जन करती हुयी प्रलयकाल के झञ्झावात से प्रेरित होकर समुद्र की लहरों की तरह दौड़ पड़ती है।[४] इसी वर्णन से प्रभावित होकर माघ ने सभा-क्षोभ का चित्रण किया है—वाग्मी दूत के, प्रलयकाल में क्षुब्ध वायु के समान वचनों को सुनने के अनन्तर महाप्रलय के लिये उद्यत वह सभा समुद्र के समान तत्काल क्षुब्ध हो गयी।[५] किरातपति के सैनिक ऊँची-नीची भूमि पर अत्यन्त तेजी से प्रतिस्पर्द्धा पूर्वक आगे बढ़ रहे थे।[६] उधर माघ के श्रीकृष्ण की सेना के सैनिक भी अत्यन्त वेगपूर्वक युद्धार्थ आगे बढ़ रहे हैं।[७]

---

१. शिशुपालवध १६।२५। २. किरातार्जुनीय १४।२५।
३. शिशुपालवध १६।३४। ४. किरातार्जुनीय १४।२७।
५. शिशुपालवध १७।१। ६. किरातार्जुनीय १४।३२।
७. शिशुपालवध १७।५०।

भारवि ने युद्ध का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है जबकि माघ ने उसे पर्याप्त चमत्कारिक बना दिया है। श्रीकृष्ण की सेना कवचादि युद्ध सामग्रियों से सर्वथा युक्त है किन्तु तपस्वी अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष मात्र से ही रणाङ्गण में सुशोभित होते हैं। माघ का युद्ध एक राजा का दूसरे राजा से है अतः वहाँ विभिन्न सैन्य साधनों एवं अस्त्रों का वर्णन स्वाभाविक है किन्तु एक तपस्वी का एक किरात सेना के साथ युद्ध अपने स्तर पर अपेक्षाकृत अच्छा बन पड़ा है। माघ ने युद्ध में हथियारों एवं अश्व आदि का सुन्दर चित्रण किया है किन्तु भारवि काव्य में ऐसा कुछ नहीं है। किरातार्जुनीय में युद्धकाल में मुख्यरूपेण वीर रस का ही चित्रण हुआ है किन्तु माघ ने वीर के साथ ही वीभत्स का अत्यधिक पोषण किया है।

कथावस्तु की दृष्टि से महाकवि माघ में भारवि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। माघ में अपनी मौलिकता न्यून नहीं है अपितु उन्होंने वर्ण्य विषयों को अपने काव्य का आधार बनाकर उसे अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं कल्पनाप्रवणता से रमणीय बना दिया है। इससे यह भी द्योतित होता है कि तत्कालीन संस्कृत साहित्य पर भारवि का प्रभाव बढ़ रहा था और उनके काव्य को कवि समाज में पर्याप्त समादर मिल रहा था। इसी से प्रेरित होकर माघ ने भी अपने काव्य की रचना की। माघ ने सुकविकीर्ति दुराशयादः[1] लिखकर यह स्पष्ट सङ्केत किया है कि मैं भारवि आदि सुकवियों के यश को प्राप्त करने की इच्छा से काव्य प्रणयन कर रहा हूँ। जहाँ तक उनके लक्ष्मीपति के चरित कीर्तन की बात है, वह तो मात्र उनका बहाना है तथापि इससे उनकी मौलिकता एवं धार्मिक आस्था में कोई न्यूनता नहीं आती।

महाकवि माघ में कथावस्तु के साथ ही मुख्य रूप से भारवि की शैली का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारवि ने जिस अलंकृत शैली का प्रवर्त्तन किया उसका पूर्ण विकसित रूप शिशुपालवध में मिलता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अलंकृत शैली की दृष्टि से माघ भारवि से सर्वथा आगे हैं किन्तु उनके मूल में किरातार्जुनीय की ही प्रेरणा का प्रभाव है। शिशुपालवध में अलङ्कारों की विविधता, छन्दों का बाहुल्य, कथावस्तु की स्वल्पता आदि सभी बातें मिलती हैं।

---

१. शिशुपालवध कविवंशवर्णन श्लोक ५।

किरातार्जुनीय में हिमालय पर्वत का यमकालङ्कारों में वर्णन हुआ है, तदनुसार माघ ने भी रैवतक का यमकालङ्कार युक्त चित्रण किया है। यद्यपि प्रत्येक काव्य में अलङ्कारों का प्रयोग अवश्यमेव होता है किन्तु जब प्रसंगेतर वर्णनों में एक ही अलंकार का पुनः पुनः क्रमिक प्रयोग होता है, वहीं काव्य में कवि की अलंकार प्रियता स्पष्ट होने लगती है। वस्तुतः अलंकारों की सार्थकता एवं स्वाभाविकता वहीं है जहाँ प्रतिपाद्य वस्तु के रसोत्कर्ष में सहायता प्राप्त हो और यदि कथावस्तु को गति नहीं मिलती अपितु अलंकार प्रदर्शन की दृष्टि से रस में व्याघात उत्पन्न होता है, तो वहीं कृत्रिमता अथवा किसी अलंकार के प्रति कवि का विशेष आग्रह प्रतीत होने लगता है।

महाकवि माघ ने अलंकारों के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रेरणा भारवि के चित्र-बन्धों से ली है। किरात और अर्जुन का युद्ध विभिन्न चित्रबन्धों के द्वारा वर्णित है। तदनुसार शिशुपाल और श्रीकृष्ण का युद्ध भी विषम चित्रबन्धों से परिव्याप्त है।

किरातार्जुनीय में एक श्लोक एकाक्षर है जो 'न' वर्ण से प्रारम्भ है।[1] इसी प्रतिस्पर्धा में माघ ने भी एक एकाक्षर श्लोक की रचना कर डाली जो 'द' वर्ण से प्रारम्भ होता है।[2] महाकवि माघ ने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ भारवि का अनुकरण किया है। किरातार्जुनीय के युद्ध वर्णन प्रसङ्ग में ही एक अर्थत्रयवाची श्लोक की योजना हुयी है।[3] तदनुसार माघ ने भी एक अर्थत्रयवाची श्लोक का अपने काव्य में समाहार किया।[4] भारवि के सर्वतोभद्र[5], गोमूत्रिकाबन्ध[6] अर्धभ्रमक[7] आदि का प्रभाव माघ पर पर्याप्त रूप से पड़ा है।

महाकवि भारवि को जो अलंकृत शैली के प्रवर्त्तक होने का श्रेय प्राप्त है, उसका प्रमुख कारण उनकी चित्रबन्धों की काव्य में सफल समायोजना है। यद्यपि भारवि ऐसे युग के कवि हैं जब कालिदास की काव्य-परम्परा का परित्याग नहीं किया गया था किन्तु नवीन शैली के प्रति

---

१. किरातार्जुनीय १५।१४। १. शिशुपालवध १९।११४।
३. किरातार्जुनीय १५।४५। ४. शिशुपालवध १९।११६।
५. किरातार्जुनीय १५।२५। ६. वही १५।१२।
७. वही १५।२७।

कवि-समाज में व्यामोह बढ़ रहा था अतः किरात में अलङ्कारत्व अथवा उक्ति भङ्गिमा का पूर्ण परिपाक नहीं मिलता है। उसका विकसित एवं प्रौढ़ रूप माघ एवं श्रीहर्ष में मिलता है। माघ ने जहाँ एक ओर भारवि के प्रभाव से अपने काव्य को समलंकृत कर यश प्राप्त किया है वहीं उन्होंने अपनी स्वतन्त्र काव्य चेतना को पूर्णरूपेण विकसित होने में बाधा भी उत्पन्न की है। यदि माघ भारवि का अनुकरण तथा उनसे प्रतिस्पर्धा न करते तो भी वे एक ऐसे प्रतिभावान कवि थे जो स्वयं एक उच्चकोटिक काव्य का सर्जन कर संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्ररूपेण एक मार्ग के उद्भावक होते।

माघ में भारवि से अधिक बहुज्ञता दृष्टिगत होती है। उनके काव्य में पाण्डित्य का जो विकसित रूप प्राप्त होता है, वह भारवि में नहीं है किन्तु यह भी स्मरणीय है कि माघ ने जो अपने ज्ञान एवं काव्य-कला की उपासना की है, उसका दिशानिर्देशन भारवि ने ही किया है। माघ ने जहाँ भावों एवं अलङ्कारों का अनुकरण किया है, वहीं भारवि से छन्दों के कला प्रदर्शन की शिक्षा ली है। किरातार्जुनीय के पाँचवें तथा अठारहवें सर्ग में लगभग बारह प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है जिसके आधार पर माघ ने भी अपने चतुर्थ सर्ग में अठारह प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

भारवि ने किरात के षष्ठ सर्ग की रचना प्रमिताक्षरा[२] वृत्त में की है। केवल महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार इस सर्ग का अन्तिम श्लोक भिन्न वृत्त है। इसी के सौष्ठव एवं माधुर्य से प्रभावित होकर माघ ने भी अपने काव्य के नवम सर्ग की रचना (सर्गान्त में भिन्न वृत्त) प्रमिताक्षरा वृत्त में की है। यद्यपि दोनों की वर्ण्यवस्तु में भेद है। क्योंकि भारवि के इस वृत्त में इन्द्रकील पर्वत पर आरोहण करने वाले अर्जुन का वर्णन है। वे उसी प्रकार इन्द्रकील पर्वत पर आरूढ़ होते है जैसे विष्णु भगवान् अपने वाहन गरुड़ पर।[१] माघ ने सायङ्कालिक सुन्दरता का चित्रण किया है।[३]

---

१. प्रमिताक्षरासजससैरुदिता।        २. किरातार्जुनीय ६।१।

३. शिशुपालवध ९।१।

उपर्युक्त विवेचन से यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ पर भारवि का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यद्यपि माघ भारवि से अत्यधिक प्रभावित हुये हैं किन्तु उनके काव्य में जो दर्शन, व्याकरण, राजनीति एवं लोकव्यवहार की प्रौढता मिलती है उसका किरातार्जुनीय में अभाव है। माघ के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती महाकवि भारवि के समस्त गुणों का अपने काव्य में अन्तर्भाव करने के साथ उसे और अधिक परिपक्वता प्रदान की है।

भारवि के प्रशस्त गुणों के कारण काव्य जगत् में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली है, उनका अर्थगौरव सम्पूर्ण साहित्य में सुप्रसिद्ध है। किरातार्जुनीय के विशिष्ट गुणों को देखकर आलोचकों ने इसे सन्मार्गदीपिका की संज्ञा दी है जो सूर्य की जाज्वल्यमान आभा के समान अपनी प्रभा से विदग्ध सहृदयों को रससिक्त करती है—

प्रवेशवृत्त्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिव नोपजीव्या॥

**तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः**

माघ एवं भारवि दोनों महाकवि एक ही सरणि के हैं। किसी आलोचक ने दोनों की तुलना करते हुये कहा है कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें तब तक प्रखर रहती हैं जब तक माघ मास नहीं आता है तथैव भारवि (कवि) का प्रभाव तब तक ही था जब तक माघ कवि का साहित्य जगत् में उदय नहीं हुआ था।

कवि अपने समाज एवं परिस्थितियों के अनुसार काव्य सर्जना करता है। ये परिस्थितियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो सामाजिक जीवन से सम्बद्ध तथा दूसरी काव्यगत परिस्थितियाँ। जिस प्रकार कवि अपने देश, काल एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, उसी प्रकार वह तत्कालीन रचनाओं एवं पाठकों की रुचि तथा स्तर से भी प्रभावित होता है। यदि वह मात्र समय एवं समाज का ही चित्र खींचता है तो उसे चिरस्थायी यश नहीं प्राप्त हो सकेगा और वह विद्वत्समाज की सामयिक श्लाघा से वंचित रह जायेगा।

वस्तुतः आलोचकों ने भारवि एवं माघ की तुलना इस दृष्टि से की

है कि दोनों ही कवि अलंकृत शैली प्रधान युग के कवि हैं। अलंकृत शैली का तात्पर्य मात्र यही नहीं होता कि काव्य का जो जीवातु भूत रस पक्ष है और कथावस्तु की अभिव्यञ्जना है, उसे तिरस्कृत कर मात्र उक्ति वैचित्र्य एवं नूतन शब्दों, छन्दों तथा अलङ्कारों से ही काव्य को सजाया जाय अपितु दोनों के सफल संयोजन की अपेक्षा रहती है। इतना अवश्य है कि कथावस्तु स्वल्प होती है और उसे विस्तृत वर्णनों के द्वारा दूर तक बढ़ाया जाता है।

यदि किरात एवं माघ काव्यों की सूक्ष्मेक्षणा की जाय तो माघ कई क्षेत्रों में भारवि से आगे हैं। भारवि की श्रेष्ठता का मुख्य आधार है, काव्य जगत् में एक नवयुग का निर्माण। किसी भी काव्य के अधिकाधिक सम्मानित होने के लिये यह आवश्यक है कि वह लोकव्यवहारों मान्यताओं एवं मानवेतर प्राणियों की स्वाभाविक क्रियाओं का अधिक से अधिक स्पर्श करता हो। इसके साथ ही वह विद्वत्समाज की स्तरानुकूल साहित्यिक तृप्ति भी करता हो। यद्यपि भारवि का शास्त्रीय ज्ञान लोकचित्रण न्यून नहीं है किन्तु जिस युग में उनका मूल्यांकन किया गया उसके अनुरूप भारवि खरे नहीं उतरते। इस आभाणक का प्रचलन तो माघ की प्रौढ अलंकृत शैली के विकास के अनन्तर हुआ है! शिशुपालवध को देखकर पाठकों ने ऐसा अनुभव किया कि वस्तुतः इस सरणि की पूर्ण परिपक्वता माघ में है, भारवि में नहीं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि यदि भारवि का स्वतन्त्र रूप से मूल्यांकन किया जाय तो वे काव्य गुणों से समलङ्कृत अपने स्थान पर अन्यतम हैं। आलोच्य सूक्ति के आधार पर किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध के सम्यक् अनुशीलन से यह विदित होता है कि माघ को सेशंसा का एक मात्र कारण उनका पाण्डित्य ही है चाहे वह राजनीति, दर्शन, पुराणादि से सम्बद्ध हो अथवा शब्द, पद एवं अलंकार प्रयोग के आधार पर हो। क्योंकि यदि कथावस्तु अथवा कथा के विकास की दृष्टि मानी जाय तो शिशुपालवध का कथानक भारवि से बहुत छोटा है और इतने पर भी कथा का प्रवाह अति मन्द और कहीं-कहीं तो रुक ही जाता है।

माघ-प्रशस्ति विषयक प्रकृत आभाणक के मूल में स्थित पाण्डित्य को लक्ष्य कर विमर्श प्रसङ्गोपेत हैं।

**पाण्डित्य**

पाडित्य वह कला है जिसके द्वारा कवि समाज को एक आदर्श दिशा का निर्देशन करते हुए अपने ज्ञान का प्रदर्शन कर विदग्ध जनों का अग्रणी हो जाता है। भारवि एवं माघ दोनों ही कवियों को राजनीति, दर्शन आदि विषयों का गम्भीर ज्ञान है। किरातार्जुनोय का प्रारम्भ राजनीतिक चर्चा से होता है। यह राजनीति विषयक वर्णन वनेचर, द्रौपदी. भीम एवं युधिष्ठिर से सम्बद्ध प्रसङ्गों में उपन्यस्त हुआ है। महाकवि माघ ने भी अपने प्रौढ़ राजनीतिक पाण्डित्य का प्रदर्शन द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण, उद्धव एवं बलराम के मध्य होने वाली मन्त्रणा में किया है। इस आधार पर माघ भारवि से आगे जान पड़ते हैं। भारवि की राजनीति में मात्र पौरुष का प्राधान्य है।[1] द्रौपदी एवं भीम शत्रु के अपमान से क्षुब्ध होकर तुरन्त उस पर आक्रमण कर देना चाहते हैं। यद्यपि किरातार्जुनीय में भी राजनीति के साम-दान-दण्ड-भेद नामक चतुर्विध उपायों तथा प्रभु, मन्त्र, उत्साह रूप तीन शक्तियों एवं सन्धि-विग्रह आदि का वर्णन हुआ है किन्तु वह सूक्ष्म रूप से उल्लेख मात्र है।

दुर्योधन साम-दान-दण्ड-भेद इन सभी उपायों के प्रयोग में अत्यन्त कुशल है।[2] भीम की वाणी में भी राजनीतिक सिद्धान्तों का संकेत है। वे (भीम) कहते हैं कि कार्य सिद्धि के पाँच अङ्ग-सहायक, कार्य साधन के उपाय, देश विभाग, कालविभाग एवं विपत्ति प्रतिकार हैं किन्तु सर्वत्र प्रभुशक्ति की उत्पादिका उत्साह शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता होती है।[3] भारवि के भीम एवं द्रौपदी की राजनीति में पौरुष और उत्साह की प्रधानता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि किरातार्जुनीय में राजनीतिक तत्त्वों का कोई क्रमिक एवं शास्त्रीय विवेचन नहीं है अपितु वह तो अपने प्रमाण को पुष्ट करने के लिये मात्र उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। भीम एवं द्रौपदी अपने वक्तव्य में पुनः पुनः पुरुषार्थ की चर्चा करते हैं, इस बात की पुष्टि युधिष्ठिर के वचनों से हो जाती है जहाँ वे कहते हैं

---

१. किरातार्जुनीय २।१३।

२. किरातार्जुनीय १।१५।

३. वही २।१६।

कि तुमने जिन युक्तियों को उदाहृत किया है वे सभी पुरुषार्थावलम्बिनीं हैं तथा नीतिशास्त्र के विरुद्ध भी नहीं है।[1] युधिष्ठिर के राजनीतिक वर्णनों में गम्भीरता है, वे क्रोधादि को रोककर विवेक पूर्वक कालोचित कर्त्तव्यानुष्ठान की ओर बल देते हैं।[2]

किरातार्जुनीय में राजनीति के पूर्ण विकसित न होने का कारण यह भी है कि वहाँ दुर्योधन के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वहाँ तो युधिष्ठिर अभी अपनी पूर्व प्रतिज्ञात तेरह वर्ष की अवधि की समाप्ति की प्रतीक्षा में हैं[3] तथा वे यह जानते हैं कि दुर्योधन के कपटपूर्ण व्यवहार से प्रजा अधिक दिनों तक अनुरक्त नहीं रह सकेगी।[4] इसी कारण युधिष्ठिर कोई मन्त्रणा नहीं करते हैं, उन्होंने तो केवल पारिवारिक दृष्टि से द्रौपदी एवं भाइयों के सम्मुख शत्रु-वृत्तान्त का कथन किया था। इतने पर द्रौपदी तदनन्तर भीम शत्रुकृत अपमान का स्मरण कर उत्तेजित हो जाते हैं जिनकी उत्तेजना में राजनीति का पुट आ गया है, वस्तुतः वे राजनीति के गहन ज्ञाता नहीं है। उन्हें शान्त करने के लिये युधिष्ठिर ने स्वाभाविक तथ्यों का सहारा लिया है क्योंकि वे यह भी जानते हैं कि अत्यन्त क्रुद्ध द्रौपदी एवं भीम को राजनीति के सिद्धान्त अच्छे नहीं लगेंगे।

इतना अवश्य हैं कि यदि भारवि की राजनीति का उनकी कथा-वस्तु अथवा परिस्थितियों के आधार पर मूल्यांकन किया जाय तो भले ही उनमें राजतीतिक सिद्धान्तों की गुत्थियाँ न हों किन्तु प्रसंग एवं पात्रोचित स्वाभाविकता है जो माघ जैसी राजनीति के समावेश कर देने से असन्तुलित हो सकता था।

यदि राजनीतिक दृष्टि से विचार करके भारवि के साथ माघ की तुलना की जाय तो अवश्य ही वे ( भारवि ) माघ से पीछे हैं। माघ का राजनीतिक ज्ञान नीतिशास्त्र के उच्चकोटिक सिद्धान्तों का अनुसरण करता है। माघ की उक्त विषयक अवधारणा योजनाबद्ध है। शिशुपाल-वध में कार्यद्वयाकुल श्रीकृष्ण रत्नजटित स्तम्भों वाले मन्त्रणा गृह में

---

१. किरात० २।२८। २. वही २।३५।
३. वही २।४६। ४. वही २।४९।

प्रवेश करते हैं। नियमतः श्रीकृष्ण विचार विनिमय हेतु अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं।[1] तदनन्तर बलराम शिशुपाल पर आक्रमण करने के पक्ष में जो अपना मत प्रस्तुत करते हैं, वह वस्तुतः राजनीति के सिद्धान्तों से ओत-प्रोत है। यहाँ यह स्मरणीय है कि माघ ने राजनीतिक चर्चा का एक अलग से प्रसंग ही उपन्यस्त कर दिया है। किरातार्जुनीय में पाठक को वस्तु परिस्थितियों का विचार समक्ष रखना पड़ता है किन्तु शिशुपाल वध के इस प्रसङ्ग को पढ़ने पर यह भाव बना रहता है कि कैसे मन्त्रणा होती है, राजनीति का क्या स्वरूप होता है ? आदि।

बलराम पहले ही राजनीति के ग्रन्थों ( शुक्रनीति आदि ) का उल्लेख करते हुए सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव—छः गुणों, प्रभु, मन्त्र, उत्साह तीन शक्तियों तथा तीन सिद्धियों ( प्रभुसिद्धि, मन्त्र-सिद्धि, उत्साहसिद्धि ) एवं वृद्धिक्षय और स्थान का सिद्धान्ततः वर्णन करते हैं।[2] माघ इसी कारण भारवि से आगे हैं क्योंकि भारवि के ज्ञान को अपने में समाहित कर उसी क्षेत्र में अपने प्रखर पाण्डित्य की उपस्थापना करते हैं। किरातार्जुनीय में वर्णित देश, काल आदि कार्य सिद्धि के पाँच अंगों को माघ अपने काव्य में अन्तर्भूत कर[3] उनसे ( भारवि से ) आगे बढ़ जाते हैं। शिशुपालवध में मित्र तथा शत्रु के भेदों का भी उल्लेख किया गया है जो भारवि काव्य में नहीं है। बलरामजी कृत्रिम सहज एवं प्राकृत रूप में मित्र तथा शत्रु के तीन-तीन भेदों की चर्चा करते हैं।[4]

भारवि केवल सन्धि-विग्रह की ही बात कहकर रह जाते हैं जबकि माघ सन्धि विग्रह के यथोचित प्रयोग का भी निर्देश करते हैं।[5] बलराम राजनीतिक पक्ष की उपस्थापना के अनन्तर पौरुष की महत्ता पर भी बल देते हैं। यदि उत्साह को राजनीति का अंग मानकर विचार किया जाय तो भी माघ भारवि से आगे हैं। किरातार्जुनीय में बार-बार उत्साह एवं

---

१. शिशुपालवध २।१-६।

२. षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ॥ वही २।२६।

३. वही २।२८। ४. वही २।३६।

५. शिशुपालवध २।३७।

पुरुषार्थ की चर्चा से राजनीतिक सिद्धान्त दब से गये हैं, जबकि शिशुपाल-वध में बलराम पहले उक्त विषयक सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण करते हैं तदनन्तर पुरुषार्थ के समर्थन में बड़े ही प्रभावी तथ्य प्रस्तुत करते हैं जो भारवि से कम उत्तेजक अथवा उद्दीप्त करने वाले नहीं हैं। उनके कुछ एतद्विषयक तथ्य द्रष्टव्य हैं—बलराम भी द्रौपदी एवं भीम की भाँति क्षमा के पक्षधर नहीं हैं, वे पौरुष पर बल देते हैं। बलराम के अनुसार शत्रु के अपमानजन्य दुःख में निन्दित जीवन व्यतीत करने वाले का जन्म तो मात्र जननीक्लेशकारक ही है अर्थात् उसका मर जाना ही अच्छा है। मानरहित व्यक्ति से तो धूल अच्छी है जो पैरों से ठुकराये जाने पर उसके शिर पर चढ़ जाती है[1]।

यहाँ भारवि एवं माघ के विभिन्न पात्रों के वक्तव्यों को इस दृष्टि से देखना है कि उनमें अपने विषय का अथवा कवि के प्रसङ्गोचित प्रतिपाद्य का कितना पाण्डित्यपूर्ण चित्रण हुआ है।

वस्तुतः माघ ने अपने काव्य में पाण्डित्यकला प्रदर्शन के प्रति अपना दृष्टिकोण भी अभिव्यक्त कर दिया है। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार निषाद आदि स्वरों के चढ़ाव-उतार से उन्हीं वर्णों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत रचे जा सकते हैं वैसे ही उन्हीं निश्चित (५० वर्णों) वर्णों से नाना प्रकार के अर्थ वाले भिन्न-भिन्न वाक्य बनाये जा सकते हैं।[2] उद्धवजी ने अपनी वाणी में शब्दवैचित्र्य एवं अर्थगम्भीर्यादि गुणों की ओर संकेत किया है।[3]

किरातार्जुनीय में वनेचर, द्रौपदी, भीम एवं युधिष्ठिर की वाणी में राजनीति का निरूपण हुआ है। शिशुपालवध में मुख्य रूप से बलराम और उद्धव के वचनों में उक्त विषय का चित्रण हुआ है जो भारवि की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं पाण्डित्यपूर्ण बन पड़ा है। शिशुपालवध में बलराम से अधिक अच्छा राजनीतिक विषयक ज्ञान उद्धव में मिलता है। उद्धव ने बुद्धि तथा उत्साह की चर्चा के साथ ही बारह आदित्यों के समान बारह राजाओं का उल्लेख किया है।[4] उन्होंने यातव्य (जिस पर

---

१. शिशुपालवध २।४५–४६।   २. वही २।७२

३. वही २।७४।   ४. वही २।८१।

चढ़ाई की जाय), पार्ष्णिग्राह (पीछे रहने वाला) एवं विजिगोषु इन तीन राजाओं का वर्णन कर विजिगीषु को सुमेरु के रूप में वर्णन कर अपने राजनीति विषयक गहन ज्ञान का प्रदर्शन किया है[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि माघ भारवि से प्रेरणा लेकर इतना आगे बढ़ गये हैं कि उनका स्थान माघ से पीछे हो गया है। बलराम एवं उद्धव के माध्यम से शिशुपालवध में जो राजनीति विषयक पाण्डित्य प्रस्तुत किया गया है, वह वस्तुतः किरातार्जुनीय से बढ़कर है।

**दर्शन**

महाकवि भारवि की अपेक्षा माघ का दर्शन विषयक ज्ञान अधिक पाण्डित्यपूर्ण है। किरातार्जुनीय में भी दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है किन्तु वह अल्पसत्य है।

शिशुपालवध में मीमांसा, सांख्य, योग के साथ ही उपनिषद् एवं बौद्ध दर्शन का सुन्दर चित्रण हुआ है। किरातार्जुनीय में योजनाबद्ध रूप से दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा नहीं हुयी है अपितु प्रसङ्गानुकूल यत्र तत्र उक्त विषयक मान्यताओं का स्वाभाविक समावेश हो गया है। भारवि के दर्शन सम्बन्धी कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं—

व्यासजो अपने तपोबल से अर्जुन को योग विधि बतला देते हैं जिससे चौबीस तत्त्वों के ज्ञान में उनकी (अर्जुन की) आँख बहुत समय बाद खुली हुयी की तरह हो जाती है।[2] यहाँ साङ्ख्य दर्शनोक्त चौबीस तत्त्वों[3] का कवि ने संकेत किया है। भारवि ने हिमालय को परम पुरुष की भाँति अज्ञेय रूप में चित्रित किया है।[4] इसके अतिरिक्त अठारहवें सर्ग में भगवान् शिव के प्रकट होने पर अर्जुन ने जो वन्दना की है, उसमें अद्वैतवाद की झलक मिलती है। अर्जुन भगवान् शंकर की स्तुति करते हुये उन्हें मुमुक्षुओं के प्राप्तव्य,[5] अचिन्त्य, अजन्मा होते हुये भी मानव लीला के लिये शरीर धारण करने वाले कहते हैं।[6] वे भगवान् शंकर को पञ्चमहाभूतों का

---

१. वही २।९२।　　　　　　२. किरातार्जुनीय ३।२६।

३. साङ्ख्य कारिका—कारिका सं० ३।

४. किरातार्जुनीय ५।१८।　　　　५. वही १८।२४–२५।

६. वही १८।२९–३०।

कारण और परमाणु का भी कारण कहते हुये वायु, अग्नि, जल एवम् व्योम मूर्ति की स्तुति करते हैं।[1]

भारवि का दर्शन विषयक ज्ञान दुरूह अथवा गूढ़ सिद्धान्तों का व्यञ्जक नहीं है। इससे यह अवश्य भासित होता है कि कवि (भारवि) का दर्शन विषयक ज्ञान न्यून नहीं है तथापि उन्होंने उसे पाण्डित्य की दृष्टि से नहीं प्रकट किया है।

महाकवि माघ ने भारवि से कहीं अधिक एतद्विषयक ज्ञान का प्रदर्शन किया है जिससे शिशुपालवध की अपेक्षा किरातार्जुनीय चमत्कार प्रिय विद्वत्समाज को प्रभावित नहीं कर सका है।

किरातार्जुनीय में हिमालय पर्वत को मात्र परम पुरुष के समान दुर्ज्ञेय बताया गया है, शिशुपालवध में रैवतक पर्वत का पुरुष सूक्त के प्रथम मन्त्र के आधार पर और अधिक विस्तृत स्वरूप चित्रित किया गया है जो (रैवतक पर्वत) सहस्रों पादों तथा सहस्रों मस्तकों एवं सूर्य, चन्द्र रूप दो नेत्रों से युक्त हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के समान है।[2] माघ रैवतक पर्वत पर योगियों की साधना के माध्यम से अपने योगशास्त्र का पाण्डित्य भी प्रस्तुत कर देते हैं। रैवतक पर्वत पर समाधि धारण करने वाले योगीजन मैत्री आदि चित्तवृत्तियों को जानकर (अर्थात् चित्तशोधक वृत्तियों से अन्तःकरण के मल को दूर कर) तथा अविद्या आदि पञ्चक्लेशों को नष्ट कर सबीज योग को प्राप्त किये हुये, प्रकृति तथा पुरुष के परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्त कर (अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष भिन्न हैं, यह जानकर) उसे भी रोकने के लिये (अर्थात् उसे छोड़कर) स्वयं प्रकाश भाव से स्थित होने के लिये इच्छा करते हैं।[3] इस प्रकार माघ ने अपने दर्शन विषयक पाण्डित्य का भारवि से अधिक वर्णन कर उन्हें पीछे कर दिया है।

इसके अतिरिक्त मीमांसा[4], उपनिषद्[5], बौद्धदर्शन[6] एवं ज्योतिष विषयक[7] ज्ञान का भी कवि (माघ) ने सुन्दर सन्निबन्धन किया है। यदि

१. किरातार्जुनीय १८।३५–४१। २. शिशुपालवध ४।४।
३. शिशुपालवध ४।५५। ४. वही १४।२०–२२।
५. वही १।३२। ६. वही २।२८।
७. वही १३।२२।

शिशुपालवध में वर्णित पाण्डित्य अथवा कवि वैदुष्य का मूल्यांकन किया जाय तो इन सबके मूल में कवि का उद्देश्य अपने बहुक्षेत्रीय ज्ञान का काव्यमय प्रदर्शन ही है। इस दृष्टि से भारवि पिछड़ गये हैं।

**व्याकरण**

दोनों ही महाकवियों को व्याकरण का अच्छा ज्ञान है। वस्तुतः व्याकरण के ज्ञानाभाव में क्लिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण काव्य की सर्जना सम्भव नहीं है। अतः उस युग के कवियों के लिये यह आवश्यक था कि वे शब्दों के प्रचलित प्रयोगों से हटकर व्याकरण सम्मत नवीनतम शब्दों को काव्य में स्थान दें।

कवि ने किरातार्जुनीय में व्याकरण विषयक पाण्डित्य का अच्छा प्रदर्शन किया है। कहीं-कहीं पर व्याकरण सम्बन्धी उपमायें बड़ी ही सुन्दर बन पड़ीं हैं। एतद्विषयक ज्ञान का एक चित्र उपमा के माध्यम से इस प्रकार द्रष्टव्य है—प्रकृति और प्रत्यय के मध्य में आने वाले अनुबन्ध की भाँति जन्म मरण रूप बन्धन के नाशक भगवान् शंकर और अर्जुन के मध्य सूकर अपने विनाश के लिये ही प्राप्त होता है न कि स्थिति के लिये।[1] प्रकृति और प्रत्यय दोनों एक साथ मिलकर एक ही अर्थ का बोध कराते हैं। प्रत्यय के साथ आने वाले अनुबन्ध का लोप हो जाता है। यथा 'भू' प्रकृति है 'क्त' (कृत्) प्रत्यय है तथा 'क्' अनुबन्ध है, इसका लोप हो जाता है पुनः प्रकृति भू और तकार से अर्थावबोध हो जाता है। यहाँ शंकर प्रकृति, अर्जुन प्रत्यय और सूकर अनुबन्ध है। इससे भारवि का व्याकरण के प्रति व्यामोह परिलक्षित होता है।

किरातार्जुनीय में जहाँ कवि ने अपने व्याकरण विषयक प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है वहीं उसने कुछ व्याकरण-असम्मत प्रयोग भी किये हैं जैसे दृश् धातु से दर्शयते[2] का आत्मनेपद, आजघ्ने[3] का आत्मनेपदी। भारवि का लकार प्रयोग अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण बन पड़ा है। लिट् अर्थ में स्मके साथ लट् लकार का प्रयोग[4] तथा आह वेद इत्यादि का वर्तमान

---

१. किरातार्जुनीय १।३१९।

२. किरातार्जुनीय ११।१०।

३. वही १७।६३।

४. वही ९।१४।

कालिक प्रयोग एवं सुदूर भविष्यत् कालीन घटना के लिये लुट् का प्रयोग आदि कवि की वे विशेषतायें हैं जिनसे कवि का व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान पुष्ट होता है ।

महाकवि माघ ने राजनीति, दर्शन एवं औपनिषदिक ज्ञान प्रदर्शन के साथ ही व्याकरण सम्बन्धी प्रखर प्रतिभा का अपने काव्य में यथोचित सन्निवेश किया है । उन्होंने जहाँ एक ओर व्याकरण सम्मत प्रयोग किये हैं वहीं दूसरी ओर महाभाष्य में उल्लिखित व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन का भी संकेत किया है ।[1] युधिष्ठिर के यज्ञ में व्याकरणशास्त्रज्ञ ऊह कुशल ऋत्विज् लोग समान रूप होने से सन्देहोत्पादक किन्तु क्रियाफल में भिन्न दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय कर लेते थे ।[2] माघ ने भारवि के पाण्डित्य को इतनी सूक्ष्मता से अपने में समाहित करके उनसे ( भारवि से ) अधिक वैदुष्य प्रदर्शन किया है, जिससे लगता है कि वे भारवि को अपनी प्रतिभा से पराभूत कर देना चाहते थे ।

किरातार्जुनीय में व्याकरण सम्बन्धी सैद्धान्तिक ज्ञान प्रसङ्ग वश आ गया है, स्थान विशेष पर वर्णित करने का कवि का विशेष आग्रह नहीं है किन्तु शिशुपालवध में कवि ने जान-बूझकर व्याकरण सम्मत शब्दों के प्रयोग के साथ ही वैयाकरण सिद्धान्तों का भी प्रदर्शन किया है । यदि भारवि कहीं प्रकृति, प्रत्यय के मध्य अनुबन्ध की चर्चा कर देते हैं तो माघ धातु और उपसर्ग के पारस्परिक सम्बन्धों की महिमा के दर्शन करा देते हैं । वे ( माघ ) मद्यपान से रमणियों के प्रकटित विभ्रम विलास की उपमा उपसर्ग के संयोग से स्पष्ट होने वाले धात्वर्थ से करते हैं ।[3] उदात्त स्वर एक पद ( सुबन्त तिङन्तरूप ) में अन्य सभी स्वरों को अनुदात्त कर देता है[4], आदि व्याकरण विषयक नियमों का शिशुपालवध में प्रचुर सन्निवेश हुआ है ।

---

१. रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्—महाभाष्य प्रथम आह्निक पृष्ठ १ ।

२. शिशुपालवध १४।२३--२४ ।

३. विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ।
शिशुपालवध १०।१५ उत्तरार्द्ध ।

४. वही २।९५ ।

माघ को समराङ्गण, जहाँ सुहृत्, स्वामी, पितृव्य, भ्राता, मातुल आदि वीरगति को प्राप्त होते हैं, पाणिनीय अष्टाध्यायी के सदृश प्रतीत होते हैं जिसमें सुहृत्, स्वामी आदि शब्द निपातित हैं।[१]

भारवि एवं माघ के व्याकरण सम्बन्धी तुलनात्मक पाण्डित्य का विवेचन करने के अनन्तर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि शिशुपालवध काव्य किसी वैयाकरण को किरातार्जुनीय की तुलना में अधिकाधिक रूप में प्रभावित कर सकता है।

किरातार्जुनीय में कतिपय स्थलों पर पौराणिक आख्यानों का संकेत मात्र हुआ है[२] जब कि शिशुपालवध में उक्त विषयक दृष्टान्त बाहुल्येन लब्धावकाश हैं। महाकवि माघ ने अपने काव्य में लगभग पचहत्तर अन्तः कथाओं का समावेश किया है जो उनके गहनतम पौराणिक ज्ञान का द्योतक है।

यदि काव्य में व्यावहारिक प्रयोगों को दृष्टि से विचार किया जाय तो वह चाहे मानव व्यवहारों से सम्बद्ध हो अथवा पशुचेष्टाओं से, माघ में स्वाभाविक वर्णन करने का सामर्थ्य भारवि से अधिक है। माघ का जीवन अत्यन्त सुसमृद्ध एवं विलासी और भारवि का जीवन संघर्षमय रहा। इतना होते हुये भी माघ में भारवि से कम लोकानुभव नहीं है।

गायें रात्रि के पिछले प्रहर में चारागाह से लौट रही हैं, उस समय वे तेजी से दौड़ नहीं सकतीं क्योंकि वे अपने वत्सों का स्मरण कर उत्कण्ठित हो गयी हैं जिससे उनके पीन पयोधरों से दुग्ध परिस्रवित हो रहा है।[३]

भारवि ने जहाँ साहित्य में एक नयी शैली का सूत्रपात किया है, वहीं उनके वर्णनों में कालिदास जैसी स्वाभाविकता एवं मानव मनोभावों को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता भी है। रघुवंश में, दिलीप नन्दिनी के पीछे-पीछे चरागाह से लौट रहे हैं, वहाँ गाय (नन्दिनी) प्रस्नुतपीव-रोधसा होने से धीरे-धीरे चल रही है, राजा (दिलीप) अपने स्थूल जङ्घाओं के कारण मन्द-मन्द बढ़ रहे हैं[४]।

---

१. शिशुपालवध १९।७५। २. किरातार्जुनीय ३।२१, १३।११, ५७।

३. किरातार्जुनीय ४।१०। ४. रघुवंश २।१८।

इधर किरात में इन्द्र तपोरत अर्जुन के पास जाते हैं और वे (इन्द्र) अर्जुन के पास ही बैठ जाते हैं। इससे अर्जुन स्नेह-परिप्लुत हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारवि ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का बड़ा ही सुन्दर तर्क दिया है। अर्जुन का स्नेहसिक्त होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि यदि अपने बान्धवों को कोई नहीं पहचान सकता है तथापि उसके मन में बलात् हर्षोद्रेक होती ही है[1]। ठीक यही स्थिति रससिद्ध कवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में है, जहाँ राजा दुष्यन्त कण्व के आश्रम में अपने पुत्र सर्वदमन (भरत) को न पहचानते हुये भी उसके प्रति औरस पुत्र की भाँति स्नेहिल हो जाते हैं।[2]

इस प्रकार भारवि के कतिपय स्वाभाविक चित्रणों को देखकर 'स्थालीपुलाकन्यायेन' यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य में लोक जीवन को आत्मसात करने का पूरा सामर्थ्य है।

महाकवि माघ विभिन्न क्षेत्रों की भाँति स्वाभाविकता अथवा जन-साधारण को प्रभावित करने की दिशा में भारवि से बढ़कर हैं। उक्त दृष्टि से माघ के कतिपय वर्णन अवलोकनीय हैं।

इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किये हुये श्रीकृष्ण ने गौओं के स्थान पर मण्डलाकार बैठकर बातचीत (गप्प) करते हुए अट्टहास पूर्वक उछलते-कूदते हुये, मद्यपान की इच्छा करते हुए अपने नाम के (श्रीकृष्ण के) सङ्कीर्तन में चित्त लगाये हुए गोपों को देखा।[3] ग्राम्य जीवन का कवि (माघ) ने कितना स्वाभाविक चित्र खींचा है, जो प्रत्यक्ष गाँवों में दृष्टि-गोचर होता है।

सेना प्रयाण कर रही है। मार्ग में ( धूलि से ) खेलते हुये बच्चों को देखकर घुड़सवार लगाम खींचकर घोड़े को रोक रहे हैं, इतने में माँ आकर बच्चे को रास्ते से उठा ले जाती है[4]।

कवि को मानव व्यवहारों का जितना सूक्ष्म अनुभव है, उससे कम पशुचेष्टाओं का नहीं है। माघ पर महाकवि भारवि का अत्यधिक

---

१. किरातार्जुनीय ११।८।

२. किं न खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः।—अ.शा.सप्तम अंक।

३. शिशुपालवध १२।३८।

४. शिशुपालवध ३।३०।

प्रभाव पड़ा है किन्तु उन्होंने (गाघ ने) भारवि को सभी क्षेत्रों में पीछे कर दिया है।

भारवि ने चरागाह से लौटती हुयी वत्सोत्सुका गायों का चित्रण किया है, तो माघ ने अपने वर्णन को और स्वाभाविक बनाने के लिये गोदोहन का व्यावहारिक चित्र खींचा है। बाँधे गये बछड़े को वात्सल्य से गायें चाट रही हैं, दुग्ध दोहन करने वाले गोप ने अपने दोनों घुटनों के बीच दूध दुहने के बर्तन को दबा रखा है।[1]

शिशुपालवध में कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक अपने प्रतिपाद्य को स्वाभाविकता के धरातल पर चित्रित किया है।

विचित्र शैली की अपनी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इस मार्ग में कथावस्तु गौण होती है और उसे (कथा वस्तु को) केवल कवि के पाण्डित्य प्रदर्शन का आधार बनाया जाता है। अतः यदि हम इस शैली की सरणि में किसी कवि की समीक्षा करते हैं तो उसके वस्तुगत प्रवाह की अवरुद्धता अथवा स्वल्पता पर विशेष दोषारोपण नहीं कर सकते अपितु उसके वस्तु-उपस्थापन एवं चमत्कारिक कौशल का मूल्यांकन करते हैं।

प्रकृत प्रसङ्ग में पाण्डित्यगत तुलना का दृष्टिकोण और भी सुस्पष्ट हो जाता है जब श्री हर्ष के सामने माघ फीके पड़ जाते हैं क्योंकि माघ की अपेक्षा नैषधकार ने अधिक पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है जहाँ दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या है, व्याकरण पर आक्षेप भी है; भाषा की दुरूहता है। अलंकृत शैली एवं उत्कृष्ट वैदग्ध्य के कारण भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष को बृहत्त्रयी में स्थान प्राप्त है जो उत्तरोत्तर एक दूसरे से आगे निकल गये हैं।

---

१. शिशुपालवध १२।४०।

## भारवि एवं माघ का संस्कृत साहित्य पर प्रभाव

मनुष्य की अपने जीवन में सर्वाधिक प्रबल अभिलाषा यश प्राप्त करने की होती है जिसके कारण वह अपने सामर्थ्य के अनुसार अपनी समग्र प्रतिभा का प्रयोग करता है। वस्तुतः कीर्ति की स्पृहा ही वह जीवनी शक्ति है जो मानव को अपनी शक्ति के पूर्ण विकास में एक प्रेरक का काम करती है। उस यश का मापदण्ड है तत्कालीन यशस्वी कृतियों अथवा कृतिकारों का समाज पर प्रभाव।

यशःप्राप्ति की इच्छा से प्रायः समस्त कवि समुदाय प्रभावित रहा है। कालिदास जैसे काव्य मनीषा से मण्डित महाकवियों में अपने पूर्ववर्त्ती कृतिकारों के समान यशप्राप्त करने की प्रबल इच्छा के उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने ( कालिदास ) अपने पूर्ववर्त्ती व्यास, वाल्मीकि आदि कवियों के यश को अर्जित करने की कामना अपने रघुवंश काव्य में व्यक्त की है।[1] अतः यह सिद्ध है कि कवियों में तत्कालीन प्रभावी काव्यों के आधार पर काव्य सर्जना की इच्छा होती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि युग-प्रवृत्ति के अनुसार कवियों ने अपने काव्य-प्रणयन का आधार बनाया है। जिस प्रकार कालिदास ने अपने पूर्ववर्त्ती कवियों की प्रभाव प्रधान शैली का युगानुरूप अनुसरण किया है तथैव तदुत्तरकालीन कवियों ने स्वयुगीन प्रभावी काव्यों को अपनी काव्य रचना का प्रेरक तत्त्व माना है।

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में महाकवि कालिदास के पश्चात् भारवि का स्थान प्रमुख है। कालिदास रससिद्ध शैली के कवि हैं, उनके काव्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष का मंजुल समन्वय मिलता है। वे ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं जिनका उत्तरवर्ती कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कालिदास के बाद महाकाव्यों की परम्परा विच्छिन्न हो गयी थी। जिस प्रकार वाल्मीकि और कालिदास के मध्य एक बहुत बड़ा अन्तर है। इस मध्य किसी महाकाव्य के लिखे जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

---

१. रघुवंश १।३, ४।

कालिदास के काव्यों से प्रेरणा लेकर और उसे अपनी अलंकारिक प्रतिभा से समलंकृत कर महाकाव्यों की परम्परा को पुनः आगे बढ़ाने का श्रेय भारवि को ही है। उनकी एक मात्र कृति किरातार्जुनीय है जो अपनी शैली वैचित्र्य और भावों की दृष्टि से भट्टि, कुमारदास एवं माघ की उपजीव्य बन गयी। उत्तरवर्ती महाकाव्यों में 'नवसाहसांकचरितम्' एवं नैषधीयचरितम् को छोड़कर प्रायः समस्त महाकाव्य भारवि की शैली से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि भारवि द्वारा प्रवर्तित शैली में विभिन्न काव्यों की सर्जना हुयी किन्तु उनकी (भारवि की) शैली को पूर्ण परिपक्वता माघ ने ही प्रदान की। अलंकृत शैली की उद्भावना के कारण भारवि का और उसे पूर्ण गति देने के कारण महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। उत्तरवर्ती कवि कविद्वय से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने भी अपने काव्यों को उसी शैली में निर्मित किया। किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध को प्रेरणा लेकर श्रीहर्ष ने जो नैषध काव्य की रचना की वह शैली की दृष्टि से अत्यधिक प्रभावी है।

भारवि के उत्तरवर्ती किन्तु माघ से पूर्व भट्टि और कुमारदास पर भारवि का तथा भारवि और माघ दोनों का माघ के पश्चात्वर्त्ती कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारवि एवं माघ के शृंगारिक वर्णनों और पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना ने भावी कवियों के मार्ग-दर्शन का कार्य किया है।

प्रस्तुत प्रसंग में कविद्वय के संस्कृत साहित्य पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि कवियों ने उनसे (भारवि और माघ से) काव्य-सर्जना की एक सैद्धान्तिक दिशा ली है। यद्यपि कहीं-कहीं भारवि अथवा माघ के भावों का साम्य मिलता है किन्तु वह कवियों का अनुकरण नहीं है क्योंकि समान परिस्थितियों के उपस्थित होने पर यदि समान भावों का उदय हो तो कोई आश्चर्य नहीं अपितु स्वाभाविक है।

## भट्टि पर भारवि का प्रभाव

महाकवि भट्टि का कथानक रामायण पर आधारित है। इसमें रामचन्द्र के जन्म से राज्याभिषेक तक की कथा को बाईस सर्गों में उपनिबद्ध किया गया है। इस काव्य का अंगी वीर रस है।

महाकवि भारवि के पश्चात् उनकी काव्यकला से प्रभावित होने वाले रावणवध के कर्त्ता भट्टि का स्थान प्रमुख है। किरातार्जुनीय में जिस कलावादिता का सन्निबन्धन हुआ, उससे भट्टि पर्याप्त आकर्षित हुये। उनके काव्य में कवित्व और पाण्डित्य दोनों का समन्वय प्राप्त होता है। भट्टि ने भारवि से पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रेरणा लेकर अपने व्याकरण विषयक वैदग्ध्य की समुपस्थापना की। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से भट्टि पर भारवि के प्रभाव को इस प्रकार से देखा जा सकता है।

किरातार्जुनीय का प्रारम्भ राजनीतिक चर्चा से होता है जिसमें सन्धि, विग्रह आदि राजनीति के विषयों का अच्छा चित्रण किया गया है। यद्यपि रावणवध या भट्टिकाव्य व्याकरण प्रधान है तथापि इसमें कवि ने महाकाव्य के अपेक्षित लक्षणों के आधार पर अन्यान्य विषयों का भी समावेश किया है।

किरातार्जुनीय की भाँति भट्टिकाव्य में भी राजनीतिक सिद्धान्तों की छटा दिखायी देती है। बारहवें सर्ग में विभीषण तथा माल्यवान् रावण को भी उपदेश देते हैं जिसमें विजिगीषु राजा के व्यवहार एवं सन्धि-विग्रह आदि का सन्निबन्धन हुआ है। विभीषण रावणं से सन्धि करने की बात कहता है कि राम पत्नी के वियोग में दुःखी हैं और आप बन्धुओं के विनाश से दुःखित है तथा राम ससैन्य समुद्र के किनारे आ चुके हैं अतः आप दोनों में उसी प्रकार सन्धि हो जाय जैसे दो तप्त लौह खण्ड आपस में मिल जाते हैं।[1] यहाँ कवि की उपमा नितान्त मौलिक है किन्तु किरातार्जुनीय के उस प्रसंग की छटा है जहाँ शिव प्रहित दूत अर्जुन से बाण लौटाकर मैत्री कर लेने की बात कहता है।[2] भट्टि ने षाडगुण्य सन्धि की भी चर्चा की है।[3]

इस सन्दर्भ में यह ध्येय है कि जिस प्रकार माघ ने भारवि के विषयों की प्रेरणा लेकर उनसे (भारवि से) अधिक पाण्डित्यपूर्ण रचना की है तथैव भट्टि ने केवल पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना अथवा काव्यात्मक

१. भट्टि काव्य १२।३०।

२. किरातार्जुनीय १३।५७।

३. भट्टि काव्य १२।३५।

प्रवृत्ति का आश्रय लिया है, शेष उनका अपना मौलिक कर्तृत्व है। भट्टि का व्याकरण के प्रति विशेष आग्रह है।

कहीं-कहीं पर भारवि और भट्टि के भाव ऐसे मिल गये हैं जिन्हें पहचानना कठिन हो जाता है।

किरातार्जुनीय में अर्जुन दधि मन्थन करती हुयी ग्वालिनियों को देखते हैं जिनके हाथों से मन्थन दण्ड के संचालन से पार्श्व प्रदेश विस्तृत हो जाता है, उनके नितम्ब दुलक रहे हैं, मन्थन जन्य दधि भाण्ड से मृदंग के सदृश मधुर ध्वनि हो रहो है। स्थूल स्तन थिरक रहे हैं। ऐसी गोपांगनायें नृत्य क्रिया में लीन वारवनिताओं (वेश्याओं) की भाँति प्रतीत हो रही हैं।[1] यद्यपि भारवि ने इतना चित्र तीन श्लोकों में खींचा है और भट्टि उसे एक श्लोक में इस प्रकार उपन्यस्त कर देते हैं—यहाँ राम दधि मन्थन करतो हुई गोपियों के उस नृत्य को देखकर प्रसन्न होते हैं जिनके (गोपियों) अंगों के दोनों पार्श्व संचालित हो रहे हैं। उनके नितम्ब इधर-उधर हिलते से रमणोय लग रहे हैं तथा उनके नृत्य में दही मथने का जो शब्द हो रहा है, वह ताल दे रहा है।[2] भले हो भट्टि का सम्पूर्ण काव्यगत प्रतिपाद्य भिन्न है, किन्तु भट्टि पर पड़ने वाले भारवि के प्रभाव को अस्वीकृत भी नहीं किया जा सकता।

शैली की दृष्टि से भट्टि के काव्य में अधिकतर समासान्त शैली का अधिक प्रयोग नहीं हुआ है। उन्होंने कुछ ही स्थलों पर समासान्त पदावली का निबन्धन किया है। व्याकरण के आचार्य होने का कारण भट्टि का भाषा पर पूरा अधिकार है। उन्होंने तेरहवें सर्ग में समासान्त पदावली का प्रयोग किया है जिसमें संस्कृत और प्राकृत का समान रूप मिलता है।[3] जिस प्रकार माघ अपने शृंगारिक व्यामोह का संवरण नहीं कर सके हैं वैसे ही भट्टि अपने व्याकरण विषयक पाण्डित्य को नहीं छोड़ पाये हैं। फलतः उनके काव्य में प्रसाद गुण का अभाव मिलता है और

---

१. किरातार्जुनीयम् ४।१५--१७।    २. भट्टिकाव्य २।१६।

३. चंचलतरुहरिणगणं बहुकुसुमावबन्धवद्धरामाबासम्।
हरिपल्लवतरुजालं तुंगोरुसमिद्धतरुवरहिमच्छायम्॥
भट्टिकाव्य १३।६।

शैली अवरुद्ध सी हो जाती है। अन्य छन्दों के अतिरिक्त भट्टिकाव्य के दशम सर्ग में पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, पृथ्वी, प्रमिताक्षरा के प्रयोग में भारवि के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

भट्टि ने भारवि का अन्धानुकरण नहीं किया है क्योंकि उनका (भट्टि का) कथानक अपेक्षाकृत विस्तृत है और कवि कथावस्तु के प्रवाह को भूलता नहीं है तथापि उनकी शृंगारिकता एवं पाण्डित्य प्रदर्शन भारवि की ही प्रेरणा है।

**कुमारदास पर भारवि का प्रभाव**

कुमारदास महाकवि भारवि और माघ के मध्यवर्ती काल के कवि हैं। उनकी एक मात्र रचना जानकीहरण है। वे (कुमारदास) ऐसे युग के कवि हैं जब कालिदास और भारवि की शैली का संघर्ष चल रहा था। इस समय भारवि की विचित्र शैली के प्रभाव के साथ ही कालिदास की रसमय शैली का भी आदर था। उक्त काल में यद्यपि कलात्मक प्रदर्शन की दृष्टि से भारवि का महत्त्व बढ़ रहा था किन्तु कविगण रससिद्ध कवि कालिदास को भी नहीं भूले थे।

कुमारदास ने रामायण की कथा के आधार पर अपने काव्य का प्रणयन किया। वे कालिदास की वैदर्भी रीति के समर्थक होते हुये भी युग प्रकृति के अनुसार भारवि की शैली को भी तिरस्कृत नहीं कर सके। यदि कुमारदास भारवि के पूर्ववर्ती कवि होते तो उनमें कालिदास की शैली का विशुद्ध प्रभाव होता किन्तु किरातार्जुनीय के सम्पर्क के कारण उनके काव्य में आलंकारिकता का समावेश दृष्टिगोचर होता है।

जानकीहरण के प्रारम्भिक सर्गों में कवि की सरलता एवं कोमल-कान्त पदावली के दर्शन होते हैं। भारवि का प्रभाव कुमारदास के युद्ध वर्णन के प्रसंगों में दिखायी देता है। ऐसे प्रसंगों में किरातार्जुनीय की चित्रात्मक शैली का पूरा प्रभाव पड़ा है जो सहृदयों की अपेक्षा विदग्ध-जनों को अधिक आकर्षित करने वाला है।

कुमारदास ने अठारहवें सर्ग में एकाक्षर, द्व्यक्षर, विलोम सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, निरोष्ठ्य तथा विविध प्रकार के यमकों को भी अपने काव्य में यथोचित स्थान प्रदान किया है जिससे भारवि के काव्यगत गुणों के प्रति उनके (कुमारदास) आकर्षण की परिपुष्टि होती है। कहीं-कहीं पर कवि

ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण शब्दगत औचित्य का ध्यान नहीं किया है जिससे काव्य में कुछ दोष भी आ गये हैं। जैसे श्लोक के प्रारम्भ में खलु, इव शब्दों का प्रयोग नियमतः वर्जित है[1] तथापि ऐसे दोष काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं।[2]

## हरविजय पर भारवि का प्रभाव

भारवि एवं माघ के पश्चात् रत्नाकर का नाम आता है। इन्होंने हरविजय नामक महाकाव्य की रचना की है। यह पचास सर्गों का एक विपुलकाय महाकाव्य है। जिस प्रकार महाकवि माघ ने भारवि के समग्र काव्यगत गुणों को आत्मसात कर एक प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टि से अपने काव्य का प्रणयन किया उसी प्रकार हरविजय के कर्त्ता रत्नाकर ने उनके (माघ के) काव्य कलेवर एवं शैलीगत गुणों को दृष्टिगत करते हुये अपने पाण्डित्य का काव्यमय प्रदर्शन हरविजय में किया है। यहाँ यह ध्येय है कि रत्नाकर की काव्य रचना में उनके यशोऽर्जन की भावना छिपी है। यद्यपि रससिद्ध शैली के कवियों में भी यशोभावना थी किन्तु उनमें अभिमानराहित्य एवं अतिशय विनम्रता का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। इससे विकसित अलंकृत शैलो के कवियों में दर्प की भावना देखी जाती है, यही दोनों सरणि के कवियों में प्रमुख अन्तर है।

रत्नाकर ने अपने काव्य के सम्बन्ध में दर्पोक्ति की है–मेरा लालित्यपूर्ण सुमधुर सालंकार, प्रसाद मनोहर, विकट यमक एवं श्लेष मण्डित चित्रमार्ग में अप्रतिम वाणी को सुनकर बृहस्पति (वाचस्पति) को भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है।[3]

महाकवि रत्नाकर माघ से पूर्णतया प्रभावित हुये हैं। माघ ने अपनी

---

१. अमर सिंह—अलंकारसूत्रवृत्ति १।५।

२. इव चिन्ता दरिद्रस्य स्थूललक्ष्यं नरेश्वरम्।
जानकीहरण १८।७२, १३।८९।

३. ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोरमा
विकटयमकश्लेषोद्धारप्रबन्धनिरर्गलाः।
असदृशगतीश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतौ गिरो
न खलु नृपतेः चेतो वाचस्पतेरपि शंकते॥ हरविजयप्रशस्ति।

वैष्णवी आस्था के अनुसार "लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारुमात्र" लिखा है तो रत्नाकर ने शैव होने के कारण "चन्द्रार्धचूलचरिताश्रयचारु"[1] लिखकर अपनी काव्य सर्जना का हेतु व्यक्त किया।

अलंकृत शैली के कवियों का प्रमुख प्रभाव रत्नाकर पर यह पड़ा कि उनमें काव्य की कथावस्तु भारवि और माघ से भी अल्प है जा शंकर द्वारा अन्धकासुर-वध से सम्बद्ध है। काव्य की रूढ़ियों के अनुसार कवि ने पुष्पावचय, जलक्रीड़ा, पानगोष्ठी, संभोग आदि विषयों की योजना की है।

यदि काव्य की कथावस्तु अल्प भी हो किन्तु उसका निर्वाह प्रसंगोचित रूप से किया जाय तो वह सहृदय श्लाघ्य हो सकती है किन्तु रत्नाकर में इसका भी अभाव है। वे इस क्षेत्र में माघ से भी आगे निकल गये हैं। हरविजय यद्यपि वीररस प्रधान काव्य है तथापि अप्रासंगिक श्रृंगारिकता की अधिकता से आक्रान्त है।

भाषा एवं भावों की दृष्टि से भी रत्नाकर पर भारवि एवं माघ का प्रभाव दिखायी देता है।

किरातार्जुनीय के चन्द्रोदय वर्णन प्रसंग का रत्नाकर पर प्रभाव देखा जा सकता है। भारवि ने चन्द्रमा के उदय होने से नष्ट हुये अन्धकार के सम्बन्ध में कल्पना की है कि चन्द्रदेव ने अपनी स्वच्छ प्रवाल सदृश किरणों से अन्धकार को उसी प्रकार दूर कर दिया है जैसे भगवान् विष्णु ने शूकरावतार में अपने सोने के समान दाँतों से पृथ्वी को उठाया था।[2] ऐसा ही भावपूर्ण वर्णन रत्नाकर ने भी किया है—चन्द्र किरणों से आकाश उसी भाँति शोभायमान हो रहा था जैसे प्रलयकाल में वराह के दाँतों से उठायी गयी भूमि सुशोभित हुयी थी।[3]

हरविजय काव्य पर माघ का सबसे अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शिशुपालबध के द्वितीय सर्ग के आधार पर रत्नाकर ने अपने काव्य के बारहवें एवं तेरहवें सर्ग की रचना की है, यहाँ राजनीति विषयक

---

१. रत्नाकर—हरविजयप्रशस्ति।

२. किरातार्जुनीय ९।२२।

३. हरविजय २।५८।

पाण्डित्य की उपस्थापना की गयी है। दोनों महाकाव्यों में बारह राजाओं का कथन प्रभु, मन्त्र और उत्साह तीन शक्तियों की चर्चा प्रायः समान रूप से मिलती है। एतद्विषयक एक सन्दर्भ द्रष्टव्य है—

श्रेष्ठ (उच्च) एवं बौद्धिक शक्ति रूप विशाल उत्साह रूप वृक्ष के कारण अभिवर्द्धनशील (फलतः फल समृद्धि से अवनमित) प्रभु शक्ति (कोष एवं सेना) का विस्तार करता है।[१] इसी के आधार पर रत्नाकर ने भी लिखा है—उपायों से युक्त वृक्षों की तरह नीति से राजाओं को फल मिलता है।[२]

हरविजय में राजनीति, व्याकरण, दर्शन, पुराण, अलंकारशास्त्र, संगीत एवं कामशास्त्र आदि विषयों का पाण्डित्यपूर्ण समायोजन हुआ।

कलापक्ष की दृष्टि से यमक, अर्थान्तरन्यास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकारों का वर्णन हुआ है। रत्नाकर पर अलंकृत शैली का सर्वाधिक प्रभाव यह पड़ा कि उन्होंने एकाक्षर द्व्यक्षर, समुद्गक, गौमूत्रिका, मुरज आदि चित्रबन्धों का अपने काव्य में समाहार किया है। इसके साथ ही अर्थत्रयवाची श्लोक की भी रचना की है।[३]

हरविजय काव्य में शिशुपालवध की अपेक्षा अधिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। रत्नाकर की छन्दो योजना सम्बन्धी कुशलता की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने भी की है।[४] कवि ने अपने काव्य में सत्ताईस छन्दों का प्रयोग किया है। इस क्षेत्र में उन्होंने माघ को पीछे कर दिया है।

भारवि एवं माघ के काव्यों से रत्नाकर अत्यधिक प्रेरित हुये जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने शैली के क्षेत्र में उपजीव्यभूत कविद्वय के काव्यों से भी अधिक विद्वत्तापूर्ण एवं अलंकार, छन्द आदि से सम्बद्ध पाण्डित्य का प्रदर्शन किया।

**श्रीहर्ष पर माघ का प्रभाव**

संस्कृत महाकाव्यों में महाकवि माघ के पश्चात् नैषधकार श्रीहर्ष का

---

१. शिशुपालवध २.८९। २. हरविजय १२।३७।

३. हरविजय ४३।२९२।

४. बसन्ततिलकारूढा बागवल्ली गाढसंगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्यामनकानने॥ सुवृत्त तिलक ३२।

स्थान सर्वप्रमुख है। विदग्ध काव्यों में शिशुपालवध की बढ़ती हुयी प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर उन्होंने (श्रीहर्ष) उक्त काव्य की प्रतिस्पर्धा में 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य का प्रणयन किया जो अलंकृत शैली का मूर्धन्य काव्य है। इस महाकाव्य पर माघ की सर्वाधिक छाप दृष्टिगत होती है। यद्यपि कालिदासोत्तर कालीन महाकाव्यों की विकास परम्परा में प्रभावकारी कवियों की दृष्टि से भारवि एवं माघ दोनों का एक साथ नाम लिया जाता हैं किन्तु जहाँ श्रीहर्ष से पूर्व के काव्यों में कविद्वय का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है वहीं नैषध पर मात्र माघ की ही प्रेरणा के दर्शन होते हैं। प्रयासपूर्वक खोजने पर नैषध में भारवि का भी भावगत साम्य मिलता है किन्तु वह किरात के प्रभाव की दृष्टि से नगण्य ही है।

नैषधीयचरित बाईस सर्गों का एक महाकाव्य है। इसमें निषध देश के पुण्यश्लोक राजा नल का चरित्र वर्णित है। इसका अंगीरस शृंगार है तथा अंग रूप में वीर, रौद्र, अद्भुत आदि रसों का भी यथास्थान समायोजन हुआ है। अंगीभूत शृंगाररस के संयोग एवं वियोग दोनों भेदों का महाकाव्य में सफल चित्रण हुआ है। पहले वियोग अथवा विप्रलम्भ का तदनन्तर संयोग अथवा संभोग पक्ष का उपस्थापन मिलता है। महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार कवि ने अपने महाकाव्य में दूत प्रेषण, सुरतक्रीडा, प्रभातवर्णन आदि का महाकाव्य-लक्षण सम्मत वर्णन किया है, जो वस्तुतः अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है।

प्रस्तुत प्रसंग में श्रीहर्ष पर माघ का प्रभाव विवेचनीय है, एतदर्थ उक्त विषयक स्थलों का निम्नांकित रूप से परिशीलन किया जा रहा है—

माघ विभिन्न शास्त्रों एवं पुराणों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनके काव्य में विचित्र शैली के प्रौढ़ एवं पूर्ण परिपक्व रूप के दर्शन होते हैं, यही वे तत्त्व हैं जिन्होंने श्रीहर्ष को आकर्षित किया है और जिसके परिणामस्वरूप नैषधकार ने काव्य के कलात्मक सन्निबन्धन में अपनी अप्रतिम प्रतिभा का पूरे सामर्थ्य के साथ प्रयोग किया है। श्रीहर्ष के सम्बन्ध में यह ध्येय है कि वे दर्शन, व्याकरण एवं विभिन्न शास्त्रों के मर्मज्ञ मनीषी हैं। उनकी उक्त विषयों में सर्वत्र अप्रतिहत गति है। यद्यपि उन्होंने माघ से प्रेरणा ली है किन्तु उनका अपना ज्ञान प्रदर्शन पूर्णतया मौलिक है। माघ और श्रीहर्ष के मध्यवर्त्ती कवियों ने भी माघ का अनुसरण किया है किन्तु वे

संस्कृत साहित्य में नैषधकार जैसा स्थान नहीं बना सके हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी काव्य अथवा कवि की प्रेरणा मात्र लेने से ही उत्कृष्ट काव्य की सर्जना नहीं हो सकती अपितु उसके मूल मे अनुकर्त्ता कवि का पाण्डित्य भी अपेक्षित होता है। जहाँ तक साम्य एवं प्रभाव का प्रश्न है, वह तो कवि मार्ग अथवा शैली के कारण है।

शिशुपालवध में द्वारिकापुरी का तथा नैषध में कुण्डिनपुर का चित्रण है। इस स्थल पर दोनों का साम्य द्रष्टव्य है—

शिशुपालवध में, द्वारिकापुरी दर्पण तल के समान निर्मल समुद्र जल में स्वर्ग की छाया के सदृश दृष्टिगोचर होती है।[1] नैषध में प्राप्त कुण्डिनपुर के चित्रण में ऐसा ही प्रभाव है जहाँ वह नगरी ( कुण्डिनपुर ) किसी सरोवर के मध्य प्रतिबिम्बित होकर स्वर्ग सदृश शोभायमान होती है।[2]

माघ ने दशम सर्ग में यादव रमणियों का जो चित्रण किया है, वह श्रीहर्ष को बहुत कुछ प्रभावित कर सका है।

शिशुपालवध में यादव रमणियों का वर्णन इस प्रकार हुआ है—इनके ( रमणियों के ) शरीर को सुन्दरता ने सुशोभित किया, उस (सुषमा) को परिपूर्ण नवीन युवावस्था ने सुशोभित किया, युवावस्था को कामश्री ने तथा उसे ( कामश्रीको ) प्रियतम के संसर्ग रूप भूषण वाले मद्यपान जन्य नशे ने सुशोभित किया।[3] इस स्थल में माघ की एकावली योजना कितनी स्वाभाविक एवं मनोरम है। नैषध में इसी के आधार पर दमयन्ती का वर्णन द्रष्टव्य है—

पहले तो ब्रह्मा ने ही दमयन्ती की अलौकिक रचना की; पुनः यौवन ने उसे और ऊँचा उठाया एवं अन्त में कामदेव ने विभ्रम कलाओं का अध्यापन कर उसे अवर्णनीय ही बना दिया।[4]

शिशुपालवध में श्रीकृष्ण की स्तुति में भीष्म ने विष्णु के कूर्म, नृसिंह,

---

१. शिशुपालवध ३।३५।

२. नैषधीयचरित २।७९।

३. शिशुपालवध १०।३३।

४. नैषधीयचरित ७।१०८।

वराह आदि रूपों का स्तुतिपरक गायन किया है।[1] इससे प्रभावित होकर श्रीहर्ष ने भी नल की मध्याह्नकालीन पूजा में विष्णु के मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय अवतारों की वन्दना की है।[2]

नैषध काव्य पर माघ के भावों का प्रभावपूर्ण साम्य होने के साथ ही अलङ्कार विषयक प्रभाव भी दिखायी देता है।

श्रीहर्ष माघ की श्लिष्टार्थक रचना पद्धति से अत्यधिक प्रेरित हुये हैं जिसका प्रभाव नैषधीयचरित के तेरहवें एवं सत्रहवें सर्ग में विशेष रूप से पड़ा है। माघ ने अपनी वैष्णवी आस्था के अनुरूप शिशुपाल के दूत दुर्मुख द्वारा की हुयी श्रीकृष्ण की निन्दा को प्रतिभा से श्लोक के आधार पर स्तुतिपरक अर्थ में घटित कर दिया है। शिशुपाल वध में एक अर्थत्रयवाची श्लोक की सुन्दर योजना हुयी है[3] जिसकी प्रतियोगिता में श्रीहर्ष ने पंचार्थक श्लोक की सुन्दर रचना की।[4]

अलंकृत शैली के समग्र गुण अपने प्रौढ़ एवं परिपक्व रूप में चाहे वे अलङ्कार से सम्बद्ध हों अथवा विविध शास्त्रीय पाण्डित्य से, सभी का चरमोत्कर्ष नैषधकाव्य में मिलता है।

किरातार्जुनीय का उक्तिगत अंशतः प्रभाव भी श्रीहर्ष पर पड़ा है। किरातार्जुनीय में हिमालय पर्वत की ओर प्रस्थान करते हुये मार्ग में शरद् शोभा को देखने में अनुरक्त चित्त अर्जुन से समय पाकर यक्ष भी अवसरोचित भाषण करता है। इस पर कवि ने इस सूक्ति का निबन्धन किया कि 'संकेतज्ञ अवसर नहीं चूकता।'[5] इसी प्रकार की एक सूक्ति

१. शिशुपालवध १४।७१–८६।

२. नैषधीयचरित २१।५५–९३।

३. सदामदबलप्रायः समुद्धतरसो बभौ।
प्रतीतविक्रमः श्रीमान्हरिर्हरिरिवापरः॥ शिशुपालवध १९।११६।

४. देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या।
नायं नलः तवातिमहानलाभी यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते॥
नैषध, १३।३४।

५. किरातार्जुनीय ४।२०।

नैषधकार ने उपन्यस्त की—बुद्धिमान के लिये संकेत ही पर्याप्त है।[१] इसी से सम्बद्ध एक और सूक्ति है-बुद्धिमान दूसरे के अभिप्राय को शीघ्र समझ जाते हैं।[२] भारवि ने मायावियों के साथ मायावी-व्यवहार करने की नीति को सूक्ति रूप में उपन्यस्त किया है।[३] इसी प्रकार नैषध में कुटिल के साथ सरलता का व्यवहार अनुचित है।[४] अन्यत्र वनेचर द्वारा "वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः" इस उक्ति का भाव लेकर श्रीहर्ष ने शृंगारिक रूप में दमयन्ती के स्तनों के अनुरूप कुम्भ की रचना करने वाले कुम्भकार क नाम सार्थक किया है।[५]

यद्यपि शैली की दृष्टि से श्रीहर्ष पर भारवि का कोई प्रभाव विशेष नहीं पड़ा है किन्तु वे उनकी (भारवि की) उक्तियों से प्रभावित अवश्य हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने अपना प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी माघ को ही माना और भारवि को इसलिए अछूता नहीं छोड़ा जिससे कि वे यह सिद्ध कर सकें कि उनके गुणों को भी अपने में आत्मसात करने का सामर्थ्य रखते हैं।

कालिदास के पश्चात् महाकवि भारवि ने माघ के काव्य जगत् में पदार्पण के पूर्व तक अपना विशेष प्रभाव डाला और शिशुपालवध के कर्त्ता माघ के साहित्य जगत् में अवतरण के अनन्तर भारवि का प्रभाव क्षीण होने लगा तथा माघ के पाण्डित्य एवं रचना शैली के प्रति विद्वानों का आकर्षण बढ़ने लगा जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत जगत् का अपनी सरणि का एक अन्यतम महाकाव्य जो "नैषधीय चरितम्" से सुप्रसिद्ध है, ख्याति को प्राप्त कर सका।

अलंकृत शैली को जन्म देने के कारण भारवि और उसे गतिशीलता प्रदान करने में महाकवि माघ का स्थान अविस्मरणीय है। जहाँ तक

---

१. सुज्ञंप्रतींगित विभावनमेव वाचः। नैषध ११।१०१।

२. झटितिपराशयवेदिनो हि विज्ञाः। वही, ४।११८।

३. किरातार्जुनीय १।३०।

४. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। नैषध ५।१०३।

५. नैषध ७।७५।

परवर्त्ती संस्कृत साहित्य को भारवि एवं माघ के द्वारा प्रभावित होने का प्रश्न है, वह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास के पश्चात् भारवि एवं माघ ही ऐसे कवि हैं जो आलोचकों की विभिन्न प्रशस्तियों के भाजन और काव्य मूल्यांकन के मापदण्ड बन गये एवं बृहत्त्रयी के रचयिता के रूप में यावज्जगत् संस्कृत साहित्य में वरेण्य हो गये ।

# सहायक ग्रन्थ-सूची


अग्निपुराण : व्याख्याकार–श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास, डॉ० राजदेव मिश्र, घनश्याम दास एण्ड सन्स, फैजाबाद ।

अमरकोश : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

अलङ्कारसर्वस्व : राजानक रुय्यक, निर्णय सागर प्रेस, द्वितीय संस्करण ।

अलङ्कारमीमांसा : डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण ।

अलङ्कारानुशीलन : डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा', चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

अभिलेखमाला : झा बन्धु, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।

औचित्य-विचार-चर्चा : क्षेमेन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९२९ ।

उत्तररामचरितम् : भवभूति, तारणीश झा, इलाहाबाद ।

एकावली : विद्याधर, बम्बई संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, १९०३ ।

काव्यादर्श : आचार्य दण्डी, व्याख्याकार—धर्मेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द लछमनदास, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९७३ ई० ।

कविकण्ठाभरण : क्षेमेन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।

कालिदास-ग्रन्थावली : आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, वाराणसी, २०२० वि० ।

काव्यानुशासन : हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३४ ई० ।

काव्यप्रकाश : आचार्य मम्मट, सम्पादक –डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ ।

काव्यमीमांसा : राजशेखर, अनुवादक—पं० केदारनाथ सारस्वत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना ।

काव्यालंकार : रुद्रट, पं० राजदेव शुक्ल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।

कामसूत्र : वात्स्यायन, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८९१ ।

काव्यालंकारसूत्र : वामन, टीकाकार–डॉ० बेचन झा, चौखम्बा संस्कृत-सीरीज वाराणसी, १९७१।

किरातार्जुनीयम् : भारवि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, पंचम संस्करण।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण।

चन्द्रालोक : जयदेव, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, १९३९।

दशरूपक : धनंजय, श्रीनिवास शास्त्री (सम्पादक), साहित्य भण्डार, मेरठ, चतुर्थ संस्करण।

ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन, व्याख्याकार डॉ० रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

नाट्यशास्त्र : आचार्यभरत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६३।

नैषध महाकाव्य : श्रीहर्ष, चौखम्बा, वाराणसी १९५४।

नैषध-परिशीलन : डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तान एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

नमिसाधु : वृत्ति ( रुद्रट के काव्यालंकार पर टीका ) निर्णय सागर प्रेस, १९२८।

प्रतापरुद्रयशोभूषण : विद्यानाथ, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५०।

बृहत्त्रयी : डॉ०सुषमा कुलश्रेष्ठ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८३।

बुद्धचरितम् : अश्वघोष, चौखम्बा, वाराणसी, १९६३।

भारवि काव्य में अर्थान्तरन्यास : डॉ० उमेश प्रसाद रस्तोगी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण।

भोजप्रबन्ध : बल्लाल, पं० केदारनाथ शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

भासनाटकचक्र : सी० आर० देवधर, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना।

महाभारत : व्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर।

महाभारत सभापर्व : पं० वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी, बलसाड।

मनुस्मृति : हरगोविन्दशास्त्री, चौखम्बा, वाराणसी, २०२१।

महाकवि माघ : मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई०।

महाभाष्य : पतंजलि, चौखम्बा, वाराणसी।

माघ कवि : डॉ०चन्द्रिकाप्रसादशुक्ल, साहित्यअकादमी १९८२ ई० ।

रामायण : वाल्मीकि, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

रावणवध : भट्टि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१ ।

रसगंगाधर : पण्डितराज जगन्नाथ, सम्पादक-दुर्गाप्रसाद, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४७ ।

लघुसिद्धान्तकौमुदी : महेश सिंह कुशवाहा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।

वक्रोक्तिजीवितम् : कुन्तक, व्याख्याकार—राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

विष्णुपुराण : अनुवादक-श्री मुन्नीलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, २००९ ।

व्यक्तिविवेक : महिमभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस ।

सरस्वतीकण्ठाभरणम् : भोजदेव, व्याख्याकार—डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९७६ ।

साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५७ ।

संस्कृत-कवि-दर्शन : डॉ० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९८३ ।

सं० साहित्य का इतिहास : आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, दशम संस्करण, १९७८ ।

संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास : डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, सागर, म० प्र०, १९७६ ।

सं० साहित्य का नवीन इतिहास : कृष्ण चैतन्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ।

संस्कृत काव्यकार : हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७० ।

संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ : संग्रहकर्ता द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक लाला रामनारायण लाल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण ।

संस्कृत साहित्य में सादृश्य-मूलक अलंकारों का विकास : डॉ० ब्रह्मानन्द शर्मा, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर ।

संस्कृतसाहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण : डॉ० उमेश प्रसाद रस्तोगी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ।

संस्कृत-कवि-समीक्षा : डॉ० अमरनाथ पाण्डेय, [illegible]म्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी ।

सुभाषितावलिः : रामचन्द्र मालवीय ।

सांख्यकारिका : डॉ० रामकृष्ण आचार्य, साहित्य भण्डार मेरठ, द्वितीय संस्करण ।

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा : डॉ० केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण ।

संस्कृत रूपकों के नायक : नाट्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० राजदेव मिश्र ।

सुवृत्ततिलक : क्षेमेन्द्र ।

सर्वशास्त्रसंग्रह : सम्पादक—के० वासुदेव शास्त्री, तंजौर, १९५३ ।

सिद्धान्तकौमुदी : बालमनोरमा टीकायुक्त, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

शिशुपालवधम् : माघ, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस ।

संस्कृत-हिन्दी-कोश : वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

श्रीमद्भागवत : गीताप्रेस, गोरखपुर ।

शृंगारप्रकाश : भोजराज, जोश्यर द्वारा सम्पादित, मैसूर ।

हलायुध कोष : हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, १९६७ ई० ।

हनुमन्नाटक : दामोदर मिश्र, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता १८९० ।